भागवतामृतम्

द्वितीय खण्ड

(अष्टम स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध)

प्रथम संस्करण – २,००० प्रतियाँ

प्रकाशित :२३ सितम्बर २०२३

भाद्रपद, शुक्लपक्ष, राधाष्टमी, २०७९ विक्रमी सम्वत्

प्राप्ति-स्थान

मान मन्दिर, बरसाना

फोन – ९९२७३३८६६६

एवं

श्रीराधा खंडेलवाल ग्रन्थालय

अठखम्बा बाजार, वृन्दावन

फोन – ९९९७९७७५५१

श्री मानमन्दिर सेवा संस्थान

गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

http://www.maanmandir.org

info@maanmandir.org

कथा-प्रसंग-सूचिका

पाठ्य-क्रमाङ्क	पृष्ठाङ्क	कथा-क्रम का प्रारम्भिक व अन्तिम अध्याय
अष्टम स्कन्ध	६२६ – ७२४	मन्वन्तरानुचरित्र (१) – मत्स्यावतारचरित्र (२४)
नवम स्कन्ध	७२४ – ७८१	इलोपाख्यान (१) – यदुवंशानुकीर्तन (२४)
दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)	७८१ – ११४८	श्रीकृष्णावतारोपक्रम (१) – अक्रूरोद्बोधन (४९)
दशम स्कन्ध(उत्तरार्ध)	११४८ – १२५१	दुर्गानिवेशन (५०) – श्रीकृष्णचरित्रानुवर्णन (९०)
एकादश स्कन्ध	१२५२ – १३०२	यदुवंशविनाशभूमिका (१) – श्रीकृष्णधामगमन (३१)
द्वादश स्कन्ध	१३०२ – १३१८	भविष्य का राज्यवर्णन (१) – संकीर्तन की शिक्षा (१३)

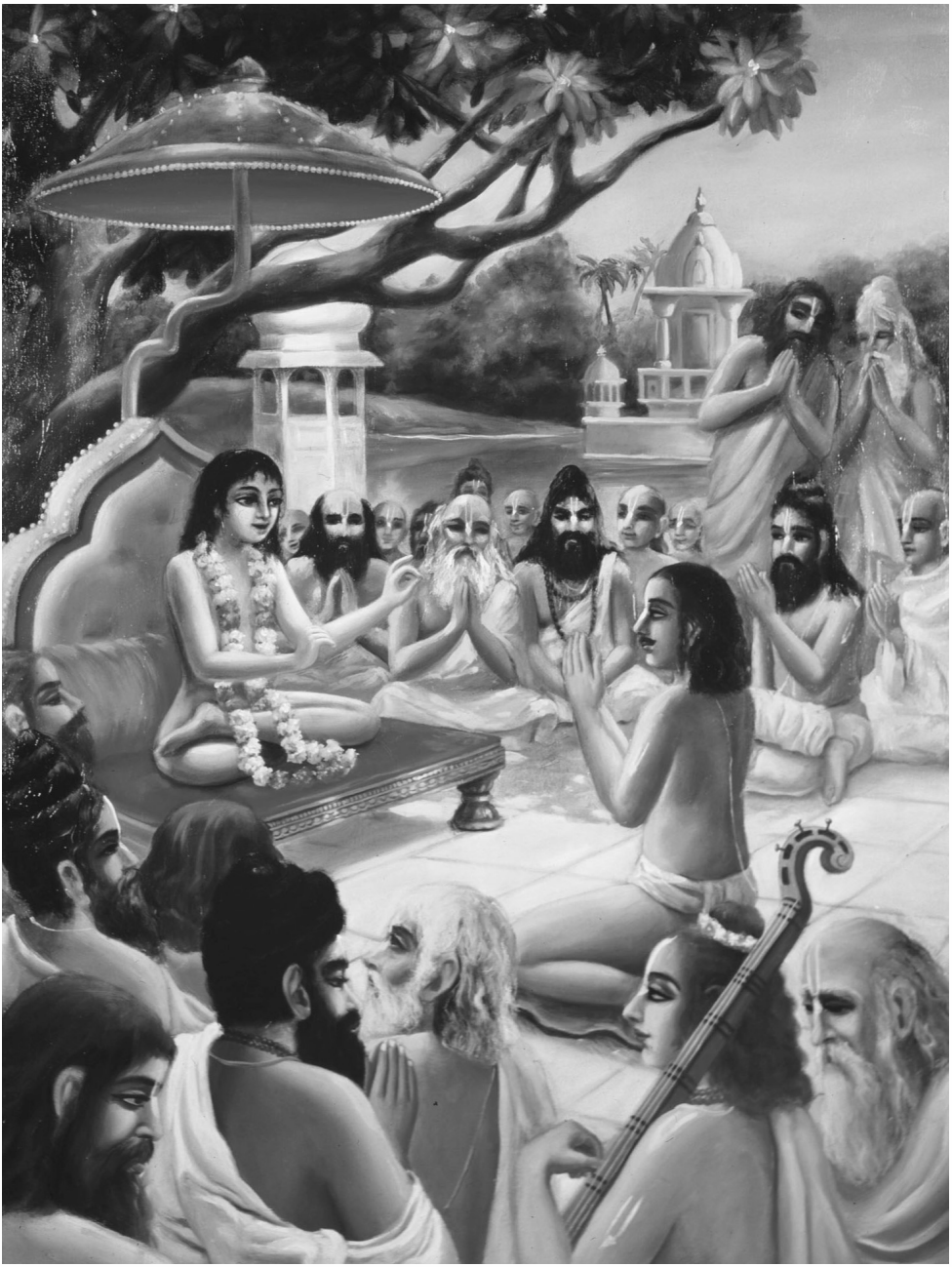

अष्टम स्कन्ध

अध्याय – १

राजा परीक्षित् ने पूछा – गुरुदेव ! स्वायम्भुव मनु का वंश विस्तार मैंने सुन लिया । अब आप मुझे दूसरे मनुओं के बारे में बताइये ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – इस कल्प में छः मनु बीत चुके हैं । एक कल्प में चौदह मनु होते हैं । स्वायम्भुव मनु की कथा तो मैं सुना चुका हूँ । उनकी पुत्रियों आकूति और देवहूति के बारे में भी मैं सुना चुका हूँ । देवहूति के पुत्र स्वयं भगवान् कपिल हुए तथा आकूति के पुत्र यज्ञ भगवान् हुए । स्वायम्भुव मनु राज्य छोड़कर विरक्त होकर वन में चले गये । ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं, उनके नाम हैं – स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम,तामस,रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि । स्वायम्भुव मनु ने सौ वर्षों तक घोर तप किया । वे वन में तपस्या करते समय प्रतिदिन भगवान् की स्तुति किया करते थे ।

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/१/९)

जिनसे यह विश्व चेतन हो जाता है किन्तु यह विश्व जिन्हें चेतना का दान नहीं कर सकता है, जो इसके सो जाने पर भी जागते रहते हैं । यह उस परमात्मा को जान नहीं सकता परन्तु वही परमात्मा इसे जानते हैं । उन चैतन्यरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ।

ईशावास्य उपनिषद् में जो मन्त्र हैं, वैसे मन्त्र स्वायम्भुव मनुजी की स्तुति से मिलते-जुलते हैं, जैसे –

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/१/१०)

यह सम्पूर्ण विश्व और इसमें रहने वाले समस्त प्राणी परमात्मा से ही ओतप्रोत हैं । इसलिए संसार के किसी भी पदार्थ में मोह न करके उसका त्याग करते हुए ही उपभोग करना चाहिए । तृष्णा नहीं करना चाहिए, भला ये संसार की सम्पत्तियाँ किसकी हैं ?

अथाग्रे ऋषयः कर्माणि ईहन्ते अकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायः अनीहां प्रपद्यते ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१/१४)

ऋषि-मुनि नैष्कर्म्य स्थिति प्राप्त करने के लिए पहले कर्मयोग का अनुष्ठान करते हैं । प्रायः कर्म करने वाला पुरुष ही अन्त में निष्क्रियता को प्राप्त होता है ।

(बहुत से बूढ़े लोग सोचते हैं कि अब हम अस्सी साल के हो गये, इसलिए काम नहीं करना चाहिए । नहीं, सौ साल की उम्र तक मनुष्य को कर्म करना चाहिए । वही बात इस श्लोक में कही गयी है कि हमेशा कर्म करो ।)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार स्वायम्भुव मनु इस स्तुति का पाठ कर रहे थे तो राक्षस लोग उनको मारने दौड़े, तब भगवान् ने उनकी रक्षा की । दूसरे मनु हुए स्वरोचिष । उस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम था रोचन । इस प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर में अलग मनु होते हैं, उनके पुत्र होते हैं, इन्द्र होते हैं, ऋषि होते हैं तथा भगवान् के अवतार होते हैं । स्वारोचिष मनु के समय भगवान् ने विभु नामक अवतार लिया था । तीसरे मनु थे उत्तम । उस समय भगवान् ने सत्यसेन नाम से अवतार लिया था । चौथे मनु का नाम था तामस । उस समय

भगवान् ने हरि के रूप में अवतार ग्रहण किया । इसी अवतार में उन्होंने ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की थी ।

राजा परीक्षित् ने कहा – भगवन् ! आप मुझे गज-ग्राह और भगवान् के हरि अवतार की कथा सुना दीजिये ।

अध्याय – २

श्रीशुकदेवजी ने कहा – परीक्षित् ! क्षीर सागर में त्रिकूट नाम का एक पर्वत था, उसकी तीन चोटियाँ थीं । त्रिकूट पर्वत की तराई में वरुणदेव का ऋतुमान् नामक उद्यान था, जो बहुत सुन्दर था । उस उद्यान में बहुत से दिव्य वृक्ष थे । उस उद्यान में एक बड़ा भारी सरोवर था । उस पर्वत के घोर जंगल में बहुत सी हथिनियों के साथ एक गजेन्द्र रहता था । एक बार वह हथिनियों के साथ सरोवर में पहुँचा । वह बड़ा बली था, उसकी धमक से पहाड़ काँपने लगा । गजेन्द्र ने सरोवर में घुसकर खूब जल पिया । उस सरोवर का जल कमलों के पराग से भरा था । गजेन्द्र हथिनियों और उनके बच्चों के मुँह में अपनी सूँड डालकर जल पिलाने लगा । उसी समय दैव इच्छा से सरोवर में एक बलवान ग्राह आया और उसने गजेन्द्र का पाँव पकड़ लिया । कभी गजेन्द्र ग्राह को बाहर खींच लाता तो कभी ग्राह गजेन्द्र को भीतर खींच ले जाता । इस प्रकार उनको लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष बीत गये । अन्त में गजेन्द्र का शरीर कमजोर पड़ गया क्योंकि ग्राह जलचर था, जल के जीव की जल में ताकत बढ़ जाती है । यद्यपि गजेन्द्र के साथी बहुत से हाथी और हथिनी उसकी सहायता करते रहे परन्तु वे सफल नहीं हुए और गजराज संकट में पड़ गया । संकट में पड़ने पर गजेन्द्र को भगवान् की याद आई और उसने कहा कि अब मैं प्रभु की शरण में जाता हूँ । गजेन्द्र के साथ की सभी हथिनियों ने उसका साथ छोड़ दिया, साथ के हाथी और बच्चों ने भी साथ छोड़

दिया । ऐसा ही होता है, मुसीबत में सभी साथ छोड़ देते हैं । अभी तक तो वह गजेन्द्र हथिनियों के साथ विहार करने में लगा रहता था किन्तु अब उसे भगवान् की कृपा से दिव्य स्मृति आई ।

'दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत'

(श्रीभागवतजी - ८/२/३१)

अपने छुटकारे का उपाय न पाकर बहुत देर तक विचार करने के बाद उसे बुद्धि प्राप्त हुई (दिव्य स्मृति आई) ।

संसार में ऐसा देखा जाता है कि कोई आदमी बहुत दुष्ट है, गुंडा है, दुराचारी है, चोर है किन्तु कभी-कभी वह अचानक ही बिल्कुल बदल जाता है और भगवान् की भक्ति करने लगता है, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसके पूर्व जन्म के पुण्य का ऐसा खजाना खुल जाता है कि वह एकदम से आगे बढ़ता है और शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति कर लेता है । इसके विपरीत ऐसा भी देखा जाता है कि कोई बहुत भजन करता है और थोड़ी देर में उसका ऐसा पतन होता है कि वह चोर-डकैत बन जाता है । इसका कारण यही है कि पूर्व जन्म के जो कर्म होते हैं, वे नष्ट नहीं होते हैं । इसीलिए जैसे ही गजेन्द्र ने भगवान् का ध्यान किया तो पूर्व जन्म की भक्ति उसे प्राप्त हो गयी । भक्ति कभी नष्ट नहीं होती है । उस समय गजेन्द्र इस निश्चय पर पहुँचा –

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२/३३)

इस संसार में एक बहुत बड़ा अजगर है, वह काल रूपी अजगर है, यह अजगर ऐसा है, जो हवा में उड़ता है । अजगर तो दौड़ता नहीं

है किन्तु यह काल रूपी अजगर प्रचण्ड वेग से दौड़ रहा है, चारों ओर यह सभी को नष्ट कर रहा है, सभी को खा रहा है ।

हम लोग देखते हैं कि आज हमारी माँ की मृत्यु हुई, काल आज हमारे पिता को खा गया, पुत्र को खा गया ।

गजेन्द्र समझ गया कि मैं भी अब काल रूपी अजगर के मुख में चला गया हूँ । जो ग्राह है, वह काल रूपी अजगर ही है, उसने गजेन्द्र का सारा शरीर जल के भीतर खींच लिया, थोड़ी सी सूँड ऊपर बची थी ।

गज और ग्राह लड़े जल भीतर ।
जौ भर सूँड रही जल ऊपर ॥

गजेन्द्र विचार कर रहा है कि इस काल रूपी अजगर से डरे हुए जीव की रक्षा हो सकती है यदि वह भगवान् की शरण में चला जाये । प्रभु श्यामसुन्दर ऐसे ही हैं ।

नन्दभवन को भूषण माई ।

उनके भय से मृत्यु स्वयं भागती है, वे काल के भी काल हैं । इसलिए मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ।

अध्याय – ३

गजेन्द्र ने भगवान् की शरण ग्रहण करके उनकी स्तुति की । इसे गजेन्द्र स्तुति कहते हैं । इसका पाठ करने से संकट दूर हो जाता है और किसी पर ऋण होता है तो वह ऋण मुक्त हो जाता है । गजेन्द्र ने कहा –

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतद् चिदात्मकम् ।
पुरुषाय आदिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥

(श्रीभागवतजी - ८/३/२)

हे प्रभो ! इस संसार में जड़-चेतन जो कुछ भी है, सब आप ही हैं । जो जगत के मूल कारण हैं और सबके हृदय में पुरुष के रूप में विराजमान हैं एवं समस्त जगत के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसार में चेतनता का विस्तार होता है, उन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ । प्रलय में भी आप अकेले ही विराजते हैं । आप मेरी रक्षा कीजिये । आप ही मेरी गति हैं । आपके जन्म-कर्म को कोई समझ नहीं सकता है ।

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।

(श्रीभागवतजी - ८/३/१२)

आप तीन गुणों का धर्म स्वीकार करके शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारण करते हैं । हे शान्त, घोर और मूढ़ आपको नमस्कार हैं ।

यहाँ भगवान् को मूढ़ भी कहा गया है । मूढ़ कहने के कई अर्थ हैं । एक तो हम लोग मूढ़ हैं – **'मुह्यन्ति इति मूढः'** और एक मूढ़ का अर्थ है – **'मुह्यन्ति अस्मिन् इति मूढः'** – जिसमें बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी आकर मोहित हो जाते हैं ।

गजेन्द्र ने कहा – हे प्रभो ! सत्त्व, रज, तम – सब आपका ही स्वरूप है । आप सब विषयों के दृष्टा हैं, आपको नमस्कार है । आप स्वयं प्रकाश हैं । मेरे जैसे पशु, जो गृहस्थ हैं, संसार में फँसे हुए हैं, उनके लिए आप प्रकाशरूप हैं ।

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं चाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/३/१९)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना से मनुष्य उन्हीं भगवान् का भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं । इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकार का सुख देते हैं । इसके अतिरिक्त आप अव्यय देह अर्थात् पार्षद शरीर भी देते हैं । **'रात्यपि देहमव्ययम्'** अर्थात् भगवान् का जो पार्षद है, उसका शरीर कभी नष्ट नहीं होता है ।

आप अनन्त हैं, सर्वशक्तिमान और परिपूर्ण हैं, मैं आपकी पूजा करता हूँ ।

जिजीविषे नाहमिहामुया किम्
अन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः
तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/३/२५)

हे प्रभो ! मैं अब जीने की इच्छा नहीं करता हूँ ।

(भक्त कभी अपने शरीर से प्रेम नहीं करता है)

मैं जीकर करूँगा क्या ? यह हाथी का शरीर तम रूप है, आफत की जड़ है । यह शरीर सब ओर से अज्ञान रूप आवरण के द्वारा ढका हुआ है । मैं तो आत्मप्रकाश को ढकने वाले अज्ञान से छूटना चाहता हूँ । हे प्रभो ! आपको नमस्कार है ।

'कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने' (श्रीभागवतजी - ८/३/२८)

जिनकी इन्द्रियाँ दुष्ट हैं, वे मनुष्य आपको नहीं पा सकते ।

दुष्ट इन्द्रियों का क्या मतलब है ? दुष्ट इन्द्रियों के द्वारा विषयों में आसक्त होकर बहिर्मुख होगे । शुद्ध इन्द्रियों के द्वारा श्रीकृष्ण में लगोगे । जो इन्द्रियाँ श्रीकृष्ण में लग गयीं, वे देवरूपा इन्द्रियाँ हैं और जो विषयों में लग गयीं, वे असुर रूपा इन्द्रियाँ हैं ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब गजराज ने इस प्रकार स्तुति की तो ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा के लिए नहीं आये क्योंकि यह निर्गुण स्तुति है । अन्त में स्वयं भगवान् श्रीहरि आये ।

बोलो श्रीहरि भगवान् की जय ।

भगवान् के साथ स्तुति करते हुए देवता भी आये । भगवान् गरुड़ पर सवार थे और हाथ में चक्र लिए हुए थे । गजराज तो सरोवर के जल में डूब रहा था और आर्त हो रहा था । आर्त होने का मतलब यह कि उसकी इन्द्रियाँ विकल हो गयी थीं क्योंकि बलवान ग्राह ने जल के भीतर उसे पकड़ रखा था । किन्तु भगवान् की कृपाशक्ति से गजराज की दृष्टि खुली तो उसको गरुड़ जी के ऊपर बैठे भगवान् दिखाई पड़े, उसे भगवान् के हाथ में चक्र भी दिखाई पड़ा । भगवान् के दर्शन होने से गजेन्द्र को शक्ति मिली, जैसे डूबते को तिनके का सहारा । जब शरीर में कुछ शक्ति आई, उसी समय उसने सरोवर से अपनी सूँड द्वारा एक कमल पुष्प तोड़ा और उसे प्रभु की ओर उछाला तथा कठिनाई से बोला –

नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ।

(श्रीभागवतजी - ८/३/३२)

गजेन्द्र ने यह नहीं कहा कि प्रभो, मुझे बचाओ । उसने कहा – 'सारे संसार के गुरु, भगवान् नारायण, आपको नमस्कार है ।' गजेन्द्र ने भगवान् से बचाने की प्रार्थना इसलिए नहीं की क्योंकि उसने पहले ही अपनी स्तुति में कहा कि मैं इस शरीर को जीवित नहीं रखना चाहता । इससे पता चलता है कि गजेन्द्र कितना उत्तम भक्त था । उसने इतना ही कहा – 'अखिल गुरो, भगवन्, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।'

इससे यह भी पता चलता है कि गजेन्द्र निष्काम भक्त था । यद्यपि गजेन्द्र को सकाम भक्तों में आर्त भक्त माना जाता है किन्तु वह ऐसा आर्त नहीं था, जैसे हम लोग हैं । वह ज्ञानमय था । भगवान् ने देखा कि गजराज बहुत पीड़ित हो रहा है, उसका कष्ट प्रभु से देखा नहीं गया, अतः वे गरुड़ को छोड़कर आकाश से कूद पड़े । ऐसा नहीं कि गरुड़ पर ही चढ़कर जायें । यही तो अनुग्रहकातरता है । नहीं तो वे यदि आज्ञा देते तो गरुड़ जी ही गजराज को सरोवर से बाहर खींच लाते । नहीं,

नन्ददास प्रभु तुम ही प्रियतम धारो
आप काज महा काज ।

भगवान् ने विचार किया कि भक्तों की सेवा तो मुझे स्वयं करनी चाहिए । अतः वे गरुड़ से उतरकर स्वयं ही हाथ पकड़कर गजेन्द्र को बाहर खींच लाये, गजेन्द्र के पीछे-पीछे ग्राह भी खिंचा चला आया । भगवान् ने सोचा कि ग्राह को पीछे मारूँगा, पहले तो पीड़ित हो रहे गजराज को बाहर निकालूँ । जब गजराज को प्रभु बाहर निकालकर लाये तब उन्होंने अपने चक्र के द्वारा ग्राह का मुँह चीर दिया ।

अध्याय – ४

शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! उस समय ब्रह्मा, शिव आदि देवता तथा ऋषि और गन्धर्व भी यह दृश्य देख रहे थे, उन्होंने भगवान् के इस कर्म की प्रशंसा की तथा उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे । ग्राह पिछले जन्म में 'हूहू' नमक एक गन्धर्व था । एक बार वह अपनी स्त्रियों के साथ नदी में स्नान कर रहा था । जब कोई पुरुष स्त्रियों के साथ रहता है तो उनको दिखाने के लिए चंचलता करता है । उसी समय उस नदी में स्नान करने के लिए देवल ऋषि आये और स्नान करने लगे । स्त्रियों को हँसाने के लिए हूहू ने जल के भीतर डुबकी

लगाकर देवलजी के पाँव पकड लिए । देवलजी चौंक गये कि यह क्या हुआ ? हूहू जोर-जोर से हँसने लगा । देवलजी ने उसे शाप दे दिया – 'जा, तू ग्राह बन जा ।' महापुरुषों का क्रोध बेकार नहीं जाता है, ग्राह बनने पर भी भगवान् के द्वारा उसका उद्धार हुआ और वह भगवान् की परिक्रमा करके अपने लोक को चला गया ।

गजेन्द्र पूर्व जन्म में द्रविड देश के राजा थे, उनका नाम था इन्द्रद्युम्न । वे राजपाट छोड़कर मलय पर्वत पर रहने लगे और मौन होकर भगवान् का भजन करते थे ।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि भगवान् के भक्त, संत-महापुरुष का आदर अवश्य करना चाहिए । ऐसा नहीं कि भजन में बैठ गये और कोई भक्त या संत आये तो उनका आदर नहीं किया । भगवान् का भक्त सबसे बड़ा है, भजन से भी बड़ा है । ऐसा नहीं करना चाहिए कि कोई महापुरुष आयें और तुम बैठे-बैठे माला फेरते रहो । इससे अपराध लगता है और उसका दण्ड भोगना पड़ता है ।

जब राजा इन्द्रद्युम्न भजन कर रहे थे तो एक बार वहाँ अगस्त्य ऋषि आये । उनको देखकर भी इन्द्रद्युम्न भजन में बैठे रहे और ऋषि का आदर-सत्कार, पूजन, प्रणाम आदि कुछ नहीं किया । ऐसा देखकर अगस्त्य जी ने उन्हें शाप देते हुए कहा – 'यह तो दुरात्मा है, ब्राह्मणों का अपमान करता है । हाथी की तरह ऐंठ कर बैठा है, इसलिए जा, अन्धकार में प्रवेश कर हाथी की योनि को प्राप्त कर ।'

शुकदेवजी कहते हैं – अगस्त्यजी के शाप के कारण राजा इन्द्रद्युम्न को हाथी बनना पड़ा किन्तु भगवान् की भक्ति के प्रभाव से उन्हें हाथी की योनि में भी भगवान् की स्मृति हो गयी । भगवान् की भक्ति अमोघ है, कभी बेकार नहीं जाती है । इसके बाद गजेन्द्र पार्षद गति को प्राप्त हो गये और भगवान् के साथ वैकुण्ठ चले गये । गजेन्द्र के उद्धार की कथा दुःस्वप्न का नाश करने वाली है, यश, उन्नति और

स्वर्ग देने वाली है । स्वयं भगवान् ने कहा – 'जो लोग रात के पिछले प्रहार में उठकर मेरा, इस सरोवर का, क्षीर सागर, श्वेतद्वीप, मेरी गदा, वनमाला, सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतार, गंगा, सरस्वती आदि नदियाँ, भक्त शिरोमणि ध्रुव आदि का स्मरण करते हैं, उनको मैं निर्मल गति प्रदान करता हूँ ।

जो लोग ब्राह्म मुहूर्त में जगकर गजेन्द्र स्तुति से मेरा स्तवन करेंगे, मृत्यु के समय मैं उन्हें निर्मल बुद्धि का दान करूँगा ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसा कहकर अपना शंख बजाया और गरुड़ पर सवार होकर चले गये ।

अध्याय – ५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – पाँचवे मनु का नाम था रैवत । उस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम था विभु और भूतरय आदि देवताओं के प्रधान गण थे । उस समय शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से भगवान् ने वैकुण्ठ नामक अवतार लिया । उन्होंने लक्ष्मीजी की प्रार्थना से वैकुण्ठ धाम की रचना की ।

अब यहाँ यह समझने कि बात है कि भगवान् ने रैवत मन्वन्तर में वैकुण्ठ धाम की रचना की तो क्या वैकुण्ठ धाम नित्य नहीं है ? भगवान् के जितने भी धाम हैं जैसे गोलोक, वैकुण्ठ आदि, ये सब नित्य धाम हैं । एक को भी अनित्य मानने पर सब जगह दोष आ जायेगा । इसलिए साम्प्रदायिक संकीर्णता को छोड़कर व्यापक दृष्टिकोण के साथ चलना चाहिए । वैष्णव आचार्य लिखते हैं कि वैकुण्ठ धाम नित्य है । किन्तु भागवत में जो इस अध्याय में लिखा है कि रमा देवी की प्रार्थना पर भगवान् ने वैकुण्ठ धाम की रचना की तो इसका उत्तर आचार्यों ने यह दिया है –

'वैकुण्ठाख्यो लोकः कश्चिदण्डान्तवर्त्ती कल्पितः' (श्रीवीरराघवाचार्यजी)

जैसे भगवान् के गोलोक में नित्य वृन्दावन धाम है, उसी वृन्दावन को भगवान् पृथ्वी पर भी प्रकट करते हैं किन्तु उसका दिव्य स्वरूप हम लोगों को नहीं दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार भगवान् वैकुण्ठ को भी ब्रह्माण्ड में प्रकट करते हैं जैसे –

'स च लोकालोकपर्वतोपरि निर्मितः' (श्रीवीरराघवाचार्यजी)

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं –

यथा भगवत आविर्भावमात्रं जन्मेति भण्यते, तथैव वैकुण्ठस्य कल्पनमाविर्भावनमेव न तु प्राकृतवत्कृत्रिमत्वम् ।

जैसे श्रीरामजी पैदा हुए, राधारानी पैदा हुई, इसका भाव यह है कि भगवान् का आविर्भाव हुआ, वैसे ही भगवान् के धाम का भी आविर्भाव होता है । जब धाम का आविर्भाव होता है तो ऐसा लगता है कि भगवान् ने एक नया धाम बना दिया । वस्तुतः धाम जितने भी हैं, सब नित्य हैं । अतः रमादेवी की प्रार्थना से भगवान् ने वैकुण्ठ बनाया अर्थात् लोकालोक पर्वत पर या जिन-जिन ब्रह्माण्डों में वे अवतार लेते हैं, वहाँ धाम को उन्होंने प्रकट किया । जैसे एक बार गोलोक धाम में श्यामसुन्दर ने राधारानी से कहा कि चलिए, हम लोग मृत्युलोक के जीवों को रस दें । श्रीजी ने कहा – 'जहाँ वृन्दावन नहीं है, गिरिराजजी नहीं हैं और यमुनाजी नहीं हैं, वहाँ मैं कैसे चल सकती हूँ ?' तब किशोरीजी की प्रसन्नता के लिए वृन्दावन धाम, गिरिराजजी, यमुना आदि पृथ्वी पर प्रकट हुए । जैसे श्रीजी की इच्छा से वृन्दावन धाम का प्राकट्य हुआ, उसी प्रकार रमा देवी की प्रार्थना से भगवान् ने वैकुण्ठ धाम का भी प्राकट्य किया ।

छठे मनु थे चाक्षुष । उस मन्वन्तर में भगवान् ने वैराज की पत्नी सम्भूति के गर्भ से अजित नामक अवतार ग्रहण किया । इस अवतार में भगवान् ने समुद्र मंथन किया था ।

राजा परीक्षित् ने पूछा – 'गुरुदेव ! भगवान् ने समुद्र मन्थन कैसे किया और उसमें से अमृत कैसे निकला, यह कथा आप मुझे सुनाइए ।'

शुकदेवजी कहते हैं – एक समय युद्ध में असुरों ने देवताओं का बुरा हाल कर दिया । देवता पराजित होने के साथ ही निर्जीव हो गये । रणभूमि में गिरकर वे फिर उठ नहीं सके, इस तरह से असुरों ने देवताओं की पिटाई की थी । उनकी ऐसी हालत अपराध के कारण हुई थी । कोई कितना भी बड़ा हो जाये, अपराध के कारण उसकी स्थिति बिगड़ जाती है । जय-विजय वैकुण्ठ के पार्षद थे किन्तु अपराध के कारण उन्हें तीन जन्मों में असुर बनना पड़ा । इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने कहा – **'तृणादपि सुनीचेन ।'** हमेशा दैन्य को लेकर चलो नहीं तो बुद्धि बिगड़ेगी । कितने भी ऊँचे साधक, भक्त हो जाओ, अपराध करने पर फिर तुम्हारा पतन हो जायेगा ।

दुर्वासाजी के शाप से तीन लोक और स्वयं इन्द्र भी श्रीहीन हो गये थे । यह कथा विष्णु पुराण में इस प्रकार है कि एक बार दुर्वासाजी वैकुण्ठलोक से आ रहे थे । उन्हें भगवान् ने अपनी प्रसादी माला दी थी । जब दुर्वासाजी नीचे आ रहे थे तो रास्ते में उन्हें ऐरावत पर चढ़े इन्द्र मिले । इन्द्र ने ऐरावत पर चढ़े हुए ही उन्हें प्रणाम किया । दुर्वासाजी ने भगवान् की प्रसादी माला अपने गले से उतारकर इन्द्र के गले में डाल दी । इन्द्र ने सोचा कि मैं तो समस्त देवताओं का राजा हूँ और ये साधारण से ऋषि अपने गले में पहनी हुई माला मेरे गले में पहना रहे हैं । ऐसा सोचकर उन्होंने वह माला ऐरावत हाथी के मस्तक पर डाल दी । ऐरावत ने उस माला को सूँड में लेकर पैरों से कुचल दिया । दुर्वासाजी ने यह देखकर सोचा कि मैंने भगवान् की प्रसादी माला इसे इसलिए दी कि इसका कल्याण हो किन्तु इसने उसे उतारकर अपने हाथी के मस्तक पर डाल दी और इस हाथी ने उसे पाँव से कुचलकर मसल डाला । देवराज इन्द्र की बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो

गयी है ? भगवत्प्रसादी माला का इसने ऐसा अपमान किया । मैं समझ गया कि इसे बहुत मद हो गया है । इसलिए दुर्वासाजी ने शाप दे दिया – 'तू तीनों लोकों सहित शीघ्र ही श्रीहीन हो जायेगा ।' दुर्वासाजी के शाप से इन्द्र के साथ ही सभी देवता श्रीहीन हो गये । जब देवता श्रीहीन हो गये तो इतने कमजोर हो गये कि असुरों ने उन पर आक्रमण कर दिया और उनकी बहुत पिटाई की । असुरों की मार खाकर सभी देवता निर्जीव से हो गये । असुरों से पिटकर सब देवता ब्रह्माजी के पास गये । ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा – 'हम लोग प्रभु की शरण चलें । हम लोग जिनके अंश हैं, जिनका कोई अपना-पराया नहीं है, वे भगवान् हम लोगों का कल्याण करें ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – सभी देवता भगवान् के धाम में गये । कौन से धाम में गये, ब्रह्माण्ड के भीतर जो भगवान् ने वैकुण्ठ प्रकाशित किया है, वहाँ गये ।

नित्य वैकुण्ठ धाम का प्रकाश ब्रह्माण्ड में भी है । यहाँ नित्य वैकुण्ठ की शाखा (branch office) है । इसलिए देवता लोग उस अजित पद (नित्य वैकुण्ठ के इस ब्रह्माण्ड में प्रकाश स्वरूप वैकुण्ठ) में पहुँचे । जीव गोस्वामीजी ने लिखा है –

विकुण्ठासुतस्यैव तेनैव प्रकाशितं वैकुण्ठंअजितस्य पदं
विकुण्ठासुतस्यैव तेनैव प्रकाशितं वैकुण्ठविशेषं तमसः परम् ।

विश्वनाथचक्रवर्तीजी कहते हैं –

क्षीरोदधिस्थश्वेतद्वीपं पदं क्षीरोदधिस्थश्वेतद्वीपं तमसः प्रकृतेः परम् ।

क्षीर सागर स्थित श्वेतद्वीप में देवगण पहुँचे । अजित पद का उन्होंने यह अर्थ दिया है ।

अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/५/२४)

वहाँ जाकर ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की । ब्रह्माजी बोले –

मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/५/२६)

हे प्रभो ! आप मन से आगे स्थित रहते हैं । मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ आप पहले से ही विद्यमान रहते हैं । वाणी आपका निरूपण नहीं कर सकती । हम आपको नमस्कार करते हैं ।

छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ।

(श्रीभागवतजी - ८/५/२७)

जीव के दोनों पक्ष – अविद्या और विद्या आपमें बिलकुल ही नहीं हैं । ऐसे आप त्रियुग की हम लोग शरण में आये हैं ।

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणम्
मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥

(श्रीभागवतजी - ८/५/२८)

यह शरीर जीव का एक मनोमय चक्र है । यह माया से चलाया जा रहा है । इसके पन्द्रह अरे हैं । इस चक्र के धुरे हैं परमात्मा, वे ही एकमात्र सत्य हैं । हम उनकी शरण में हैं ।

'मुपासते योगरथेन धीराः'

(श्रीभागवतजी - ८/५/२९)

धीर लोग भक्तियोग से उन प्रभु की उपासना करते हैं । कोई भी मनुष्य उनकी माया का पार नहीं पा सकता ।

'प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः'

वे ऐश्वर्यशाली परब्रह्म हम पर प्रसन्न हों । यह वाक्य इस स्तुति में कई बार कहा गया है ।

यह पृथ्वी उनका चरण है, वे महाविभूति वाले ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों । जल उनका वीर्य है, चन्द्रमा उनका मन है, अग्नि उनका मुख है, सूर्य जिनका नेत्र है ।

'प्रसीदतां नः स महाविभूतिः' (श्रीभागवतजी - ८/५/३४)

वे महाविभूति वाले ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों । वायु जिनका प्राण है ।

'प्रसीदतां नः स महाविभूतिः' (श्रीभागवतजी - ८/५/३५)

दिशायें जिनके श्रोत्र (कान) हैं ।

'प्रसीदतां नः स महाविभूतिः' (श्रीभागवतजी - ८/५/३६)

वे महाविभूतिशाली ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों ।

जिनके बल से इन्द्र, कृपा से समस्त देवगण, क्रोध से गिरीश (शंकर), बुद्धि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, वे महाविभूतिशाली ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों ।

जिनके वक्षःस्थल से श्रीजी (लक्ष्मीजी), छाया से पितृगण तथा स्तन से धर्म उत्पन्न हुए हैं, वे महाविभूतिशाली ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों ।

'प्रसीदतां नः स महाविभूतिः'

जिनके मुख ब्राह्मण हैं, वे महाविभूति वाले ब्रह्म हम पर प्रसन्न हों ।

'प्रसीदतां नः स महाविभूतिः'

जिनके अधर से लोभ उत्पन्न हुआ है, ऐसे भगवान् हम पर प्रसन्न हो जाएँ ।

इस प्रकार से भगवान् की महाविभूतियों का वर्णन करने के बाद एक बहुत बढ़िया बात कही गयी है ।

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/५/४८)

छोटे से छोटा कर्माभास भी भगवान् को समर्पत करने से कभी विफल नहीं होता, अनन्त बन जाता है । (जैसे ब्रज में एक पुरानी परम्परा है कि छींकने के बाद गोपियाँ राम-राम कहती हैं अर्थात् छींक भी प्रभु को अर्पण है । कोई इसे देखकर उन्हें मूर्ख समझेगा । वे मूर्ख नहीं हैं, ब्रजवासिनियाँ हैं, वे भागवत को पढ़ चुकी हैं, वे भागवत का सार जानती हैं ।) छोटी-सी बात भी प्रभु को अर्पित कर दो तो वह व्यर्थ नहीं होती, अमोघ बन जाती है ।

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवं आराधनं विष्णोः सर्वेषां आत्मनश्च हि ॥

(श्रीभागवतजी - ८/५/४९)

जैसे वृक्ष की जड़ को सींचने पर पूरा पेड़ सिंच जाता है, उसी प्रकार भगवान् की आराधना करने से सम्पूर्ण प्राणियों की और अपनी भी आराधना हो जाती है ।

अध्याय – ६

शुकदेवजी कहते हैं – जब इस प्रकार देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तब वे उनके बीच में ही प्रकट हो गये । भगवान् के शरीर

की प्रभा से सभी देवताओं की आँखें मिच गयीं । किसी को भगवान् दिखाई नहीं दिए । केवल शंकरजी और ब्रह्माजी ही उन्हें देख सके । भगवान् की बड़ी सुन्दर झाँकी थी । मरकतमणि के समान सुन्दर श्याम शरीर था । कमल के समान उनके नेत्र थे, सुनहले रंग का रेशमी पीताम्बर था, सुन्दर भौंहें, सुन्दर आभूषण थे । सिर पर महामणिमय मुकुट और भुजाओं में बाजूबंद थे, गले में हार और चरणों में नुपुर थे । गले में कौस्तुभमणि थी, भगवान् के निज अस्त्र सुदर्शन चक्र आदि मूर्तिमान होकर उनकी सेवा कर रहे थे ।

ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति करने लगे – भगवान् को नमस्कार है, जो निर्वाण सुख के समुद्र हैं । हे पुरुषर्षभ ! आपका रूप पूज्य है । यह संसार पहले आपमें ही था, मध्य में भी यह आपमें स्थित है और अन्त में आपमें ही लीन हो जायेगा ।

जैसे मनुष्य लकड़ी से आग, गौ से अमृत के समान दूध, पृथ्वी से अन्न, जल तथा व्यापार से जीविका प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही विवेकी मनुष्य शुद्ध भक्ति से भक्तियोग द्वारा आपको प्राप्त कर लेते हैं ।

हे प्रभो ! जिस प्रकार दावाग्नि से झुलसता हुआ हाथी गंगाजल में डुबकी लगाकर सुख-शांति का अनुभव करता है, उसी प्रकार आपके दर्शन से हम लोग भी सुख-शांति का अनुभव कर रहे हैं ।

शुकदेवजी कहते हैं – ब्रह्मादि देवताओं ने जब भगवान् की स्तुति कर ली तो समुद्र मन्थन लीला के द्वारा विहार करने की इच्छा से भगवान् बोले ।

श्रीभगवान ने कहा – ब्रह्मा, शंकर और देवताओ ! तुम लोग मेरी बात ध्यान से सुनो । दैत्यों और दानवों के पास जाकर तुम लोग उनसे सन्धि कर लो । जैसे एक बार साँप ने चूहे से सन्धि कर ली । किसी मदारी ने पिटारी में साँप को बंद कर रखा था, तभी एक चूहा भी

संयोगवश उस पिटारी में छेद करके घुस गया । भीतर साँप को देखकर चूहा डर गया और साँप ने भी सोचा कि इस समय इसको खाना ठीक नहीं है, अतः वह चूहे से बोला कि तू इस पिटारी में छेदकर दे, फिर हम दोनों भाग जायेंगे । चूहे ने पिटारी को काटकर छेद कर दिया, तब साँप चूहे को भी खा गया और पिटारी से भी निकल गया । इसी तरह छलिया श्यामसुन्दर देवताओं को भी छल सिखाने लगे कि तुम लोग असुरों के पास जाकर उनसे सन्धि कर लो, सन्धि करके फिर उनके साथ मिलकर समुद्र मन्थन करो । समुद्र मन्थन करने से अमृत निकलेगा, उसे मैं तुम लोगों को पिला दूँगा और असुरों को अमृत नहीं मिलेगा । तुम लोग मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की नेती बनाकर मेरी सहायता से समुद्र का मन्थन करो ।

न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेर्थाः सान्त्वया यथा ।

(श्रीभागवतजी - ८/६/२४)

क्रोध करने से काम नहीं बनता, शान्ति और धैर्य से ही काम सफल होता है । पहले समुद्र से कालकूट विष निकलेगा, उससे तुम लोग डरना नहीं और लोभ भी मत करना । लोभ और क्रोध काम को बिगाड़ देते हैं ।

शुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार देवताओं को सब बात समझाकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । इसके बाद सब देवता राजा बलि के पास गये, वे लोग अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर गये थे । उन्हें बिना अस्त्र-शस्त्रों के देखकर दैत्य बोले – 'मार डालो, मार डालो ।' राजा बलि ने कहा कि ऐसा मत करो, ये लोग हथियार लेकर नहीं आये हैं । इन्द्र ने राजा बलि को सब बात बताते हुए कहा कि हम लोग मिलकर समुद्र मन्थन करेंगे, उससे अमृत निकलेगा, उसे हम लोग

आपस में बाँटकर पी लेंगे और अमर हो जायेंगे । दैत्यराज बलि और उनके साथी असुरों को यह बात बहुत अच्छी लगी । वे सब मिलकर समुद्र मन्थन के लिए प्रयास करने लगे । उन्होंने अपनी शक्ति से मन्दराचल को उखाड़ लिया और समुद्र तट की ओर ले चले । परन्तु वह पर्वत बहुत भारी था और उसे बहुत दूर ले जाना था । इससे इन्द्र, बलि आदि सब के सब हार गये । यह भगवान् की लीला थी, उन्होंने दिखाया कि बल तो केवल मुझमें है, तुम लोगों में बल कैसे हो सकता है ? जब वे लोग किसी भी प्रकार मन्दराचल को आगे न ले जा सके तब विवश होकर उन्होंने उसे रास्ते में ही पटक दिया और वह पर्वत गिर पड़ा । उसके गिरने से बहुत से देवता और दानव चकनाचूर हो गये । उनके हाथ, कमर और कन्धे टूट गये । उस समय वहाँ भगवान् प्रकट हो गये । उन्होंने देखा कि देवता और असुर पर्वत के गिरने से पिस गये हैं । तब उन्होंने अपनी अमृतमयी दृष्टि से सबको जीवित कर दिया, जिनके हाथ-पाँव टूट गये थे, वे फिर से निकल आये । इसके बाद भगवान् ने एक हाथ से उस पर्वत को उठाकर गरुड़ पर रख लिया और फिर समुद्र के तट पर पर्वत को उतार दिया ।

अध्याय – ७

शुकदेवजी कहते हैं – देवताओं और असुरों ने वासुकि नाग को यह वचन दिया था कि समुद्र मन्थन से प्राप्त होने वाले अमृत में तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा और हम तुम्हें नेती बनायेंगे । इसके बाद देवता और असुर समुद्र मन्थन करने के लिए तैयार हुए । भगवान् ने देवताओं से कहा कि हम जो करें, तुम लोग वही करना । ऐसा कहकर भगवान् वासुकि के मुख की ओर लग गये और देवता भी उधर ही लग गये । यह देखकर विपरीत मति वाले दैत्य लोग बिगड़ गये और बोले – 'अरे, यह तो हमारा अपमान है, तुम लोग तो साँप के मुख की

ओर चले गये और हम उसकी पूँछ पकड़ें, पूँछ तो साँप का अशुभ अंग है, हम उसे नहीं पकड़ेंगे । हम लोग देवताओं से हर मामले में बड़े हैं । हमने वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया है, ऊँचे वंश में हमारा जन्म हुआ है, ताकत में भी तुम लोगों से हम ऊँचे हैं, युद्ध में तुम लोगों को कई बार हम हरा चुके हैं ।' भगवान् उनकी बात सुनकर मुस्कुराने लगे और वासुकि का मुख छोड़कर उसकी पूँछ पकड़ ली, उन्हें देखकर देवताओं ने भी वैसा ही किया । दैत्य प्रसन्न हो गये और देवताओं से बोले – 'हम लोग हर गुण में तुम लोगों से बड़े हैं, इसलिए हमें आगे रहना चाहिए, तुम लोग हमसे छोटे हो, अतः पीछे की ओर लगो ।' भगवान् ने देवताओं से कहा – 'ठीक है, तुम लोग छोटे बन जाओ ।' जब सब लोग अपने-अपने स्थान पर लग गये, फिर उन लोगों ने समुद्र मन्थन करना शुरू कर दिया । जब समुद्र मन्थन होने लगा तो वह पहाड़ अपने भार की अधिकता और नीचे कोई आधार न होने के कारण समुद्र में डूबने लगा । अब तो वे सभी उदास हो गये । भगवान् ने देखा कि यह तो विघ्नराज की करतूत है ।

'विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो' (श्रीभागवतजी - ८/७/८)

कुछ लोग यहाँ प्रयुक्त संस्कृत शब्द विघ्नेशविधि का अर्थ करते हैं – गणेशजी । समुद्र मन्थन के आरंभ में गणेशजी का पूजन नही हुआ तो उन्होंने विघ्न डाला किन्तु वैष्णवाचार्यों ने कहा कि ऐसा नहीं है । जहाँ स्वयं मंगल रूप प्रभु उपस्थित हैं, वहाँ गणेशजी क्यों विघ्न करेंगे ? विघ्नेशविधि का अर्थ वे इस प्रकार करते हैं –

विघ्ने ईशं समर्थं विधिं दृष्ट्वा कच्छपोभूत् ।

विघ्न में समर्थ विधि को देखकर भगवान् कच्छप हो गये अर्थात् विघ्न को दूर करने का जो रास्ता था, उसे देखकर भगवान् ने कच्छप

रूप धारण किया । अत्यन्त विशाल कच्छप का रूप धारण करके भगवान् समुद्र के जल में प्रवेश कर गये और मन्दराचल को ऊपर उठा दिया ।

बोलो कच्छप भगवान् की जय ।

यह भगवान् का कच्छप अवतार है । समुद्र मन्थन के समय भगवान् के तीन अवतार हुए । कच्छप बने, आगे धन्वन्तरि और मोहिनी भी बने । जब मन्दराचल ऊपर उठ आया तो देवता और असुर बड़े प्रसन्न हुए । भगवान् एक लाख योजन के विशाल कच्छप बने थे, जितना बड़ा जम्बू द्वीप है, जिससे कि मन्दराचल कहीं भी घूमता रहे, उसके लिए जगह की कमी न रहे । जब देवता और असुरों ने मन्दराचल को चलाया और वह घूमने लगा तो कच्छप भगवान् को ऐसा मालूम पड़ता था कि कोई मेरी पीठ खुजला रहा है, बहुत दिनों की मेरी पीठ की खुजलाहट आज मिटी है । देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र मन्थन करने के लिए भगवान् उनके शरीरों में शक्ति रूप से प्रवेश कर गये तथा वासुकि नाग के शरीर में भगवान् निद्रा रूप से प्रवेश कर गये । किसी को बहुत कष्ट हो रहा हो तो उसे नींद की गोली दे दी जाये तब निद्रा आने पर उसे कष्ट का पता नहीं चलेगा ।

इधर मन्दराचल पर्वत के ऊपर भगवान् दूसरे पर्वत के समान हजारों भुजायें धारण करके उस पर्वत को दबाकर बैठ गये । उस समय ब्रह्मा और शंकर उनकी स्तुति एवं पुष्पों की वर्षा करने लगे । अब जैसे कहा जाता है कि भगवान् ही सब कुछ हैं तो यहाँ भगवान् के कई रूप हो गये ।

उपर्यधश्चात्मानि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/७/१३)

मन्दराचल पर्वत के ऊपर सहस्त्रबाहु भगवान्, नीचे कच्छप भगवान्, पर्वत में दृढ़ता के रूप में, वासुकि में निद्रा रूप से, देवता और असुरों के शरीर में उनकी शक्ति के रूप में । इस तरह सब ओर स्थित होकर भगवान् बड़े वेग से समुद्र मन्थन करने लगे । उस समय वासुकि नाग के शरीर पर जोर पड़ा तो उसके हजारों नेत्र, मुख और श्वासों से विष की आग निकलने लगी । उसके धुयें से मुख की ओर लगे असुरों के तेज नष्ट हो गये, वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे दावानल से झुलसे हुए साखू और आम के पेड़ हों । देवता भी उस विष की अग्नि से प्रभावित हुए, असुर अधिक हुए । तब भगवान् बादल बनकर देवताओं पर वर्षा करने लगे तथा वायु बनकर शीतलता प्रवाहित करने लगे ताकि देवता जीते रहें । इतने पर भी अमृत नहीं निकला क्योंकि – **करी गोपाल की सब होय ।**

प्रभु ही शक्ति रूप हैं, वे ही नैया पार करते हैं । हम लोग नैया पार नहीं कर सकते । जब तक कृष्ण कन्हैया स्वयं समुद्र मन्थन नहीं करेंगे तब तक अमृत नहीं निकलेगा । तभी तो कहा गया है –

भज ले केशव कृष्ण कन्हैया,
पार लगेगी नैया भैया ।

अब अजित भगवान् स्वयं समुद्र मन्थन करने लगे । कैसे भगवान् हैं –

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्
मूर्ध्नि भ्राजद् विलुलितकचः स्त्रग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैः दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/७/१७)

मेघ के समान साँवले शरीर पर सुनहला पीताम्बर फहरा रहा है । कानों में बिजली के समान चमकते हुए कुण्डल, सिर पर लहराते हुए घुँघराले बाल और लाल नेत्रों से युक्त वे अतिशोभायमान हो रहे थे । अपनी भुजाओं से वासुकि नाग को पकड़कर तथा कच्छप रूप से पर्वत को धारणकर भगवान् मन्दराचल की मथानी से स्वयं समुद्र मन्थन करने लगे । उस समय सबसे पहले हलाहल नामक अत्यन्त भयंकर विष निकला ।

अच्छे काम में सबसे पहले कष्ट ही मिलता है । वह उग्र विष ऊपर-नीचे सर्वत्र उड़ने और फैलने लगा । उस विष भय से भयभीत होकर सम्पूर्ण प्रजा और प्रजापति भगवान् शिव की शरण में गये । प्रजापतियों ने भगवान् शंकर की स्तुति की –

हे महादेव ! हे भूतात्मन ! हम आपकी शरण में हैं ।

'त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः' (श्रीभागवतजी - ८/७/२२)

हे महादेव ! आप बन्धन और मोक्ष दोनों के ईश्वर हैं । इसीलिए विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं । आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव – ये तीनों रूप धारण करते हैं । आप ही परम गुह्य ब्रह्म हैं । आप ही जगदीश्वर हैं । अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपका चरणकमल है । काल आपकी गति है । दिशायें आपके कान हैं । समुद्र आपकी कोख है । सब आपकी ही विभूति है । आपके प्रकाश को न तो ब्रह्माजी समझ सकते हैं, न विष्णु समझ सकते हैं और न ही इन्द्र समझ सकते हैं । आपको कोई नहीं समझ सकता है । आपने अनेकों असुरों को मारा है । आप उमाजी के साथ दो रूप से विराज रहे हैं । एक रूप से तपस्या करते रहते हैं, आपकी महिमा को जो नहीं समझते हैं, वे निर्लज्ज हैं । इस समय इस हलाहल विष से आप संसार की रक्षा कीजिये ।

शुकदेवजी ने कहा – परीक्षित् ! प्रजा का संकट देखकर महादेवजी को बड़ी दया आई । उन्होंने सती जी से यह बात कही । शिवजी ने कहा – 'देवि ! देखो तो सही, समुद्र मन्थन से निकले हुए कालकूट विष के कारण प्रजा पर कितना बड़ा दुःख आ गया है । सारा संसार जल रहा है ।

'एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्' (श्रीभागवतजी - ८/७/३८)

कोई बड़ा है, जिसके पास शक्ति और सामर्थ्य है, उसके जीवन की सफलता इसी में है कि वह दीन-दुखियों की रक्षा करे ।'

वास्तव में दीनों का परिपालन करना कोई बुरा काम नहीं है । कोई शक्तिशाली है तो उसे कमजोर लोगों की रक्षा करनी चाहिए । धनी है तो उसे गरीबों की रक्षा करनी चाहिए । दीनों का पालन करो ।

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।

(श्रीभागवतजी - ८/७/४०)

जो प्राणियों पर कृपा करता है, उससे भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं । यदि कोई निःस्वार्थ भाव से कृपा करता है तो इसे प्रभु समझते हैं, दुनिया के लोग बुराई करते हैं तो उन्हें करने दो ।

अगर तुम किसी पर दया करोगे तो भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे । तुम चार पैसा कमाते हो तो कुछ पैसा गरीबों को दो, केवल अपना ही पेट क्यों भरते हो, दीनों को भी पैसा दो । अपने लिए ही धन मत कमाओ ।

प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।

(श्रीभागवतजी - ८/७/४०)

शिवजी कहते हैं – 'जिस पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं तब मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ । इसलिए अभी मैं इस विष को खा जाता हूँ ।'

शुकदेवजी कहते हैं – भगवान् शंकर इस प्रकार सती देवी से प्रस्ताव करके उस विष को खाने के लिए तैयार हो गये । देवी ने उनके इस कार्य का अनुमोदन किया क्योंकि वे शिवजी का प्रभाव जानती थीं कि इनमें ही सामर्थ्य है, ये इस विष को पचा सकते हैं और कोई नहीं पचा सकता है । सतीजी जगदम्बा हैं और शिवजी जगदीश्वर हैं । वे जानती हैं कि संसार का पालन मुझे भी करना है और शिवजी को भी करना है । गंगाजी अपने विशाल वेग से आकाश से गिरीं, जिनके वेग को लोक-लोकान्तरों में कोई और नहीं झेल सकता था, उन गंगाजी को शिवजी ने अपनी जटाओं में बाँध लिया । इसी प्रकार सब संसार में जो कालकूट विष फैल रहा था, उसे उन्होंने अपनी हथेली पर समेट कर रख लिया और भक्षण कर गये ।

इसीलिए लोग शिवजी को भांग आदि का भोग लगाते हैं । एक बार शिवजी अपनी ससुराल में होली खेलने पहुँचे तो हिमाचल पर्वत बोले कि दामाद का आतिथ्य सत्कार करना है ।

सदाशिव खेलत होरी ।
सौ मन भाँग मँगाए हिमाचल, और ढेर धतूर धरयो री ।
कालकूट और जहर संखिया, गोला भाँग धर्‌यो री ।
और कहें शिव भाँग है थोरी ॥

महादेवजी ने कहा कि भाँग में रंग नहीं आया ।

इसका मतलब यह नहीं कि भाँग अच्छी चीज है, भाँग तो बहुत खराब चीज है । तुलसीदासजी कहते हैं – मैं तो भाँग की तरह बहुत दूषित था किन्तु भगवान् की कृपा से तुलसीदास हो गया ।

जेहि सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास ।

मैं भाँग से तुलसीदास बन गया ।

अस्तु, महादेवजी ने उस भयंकर विष का भक्षण कर लिया किन्तु उस विष ने अपना प्रभाव दिखा दिया और उनका गला नीला पड़ गया । परन्तु वह तो भगवान् शंकर के लिए भूषण रूप हो गया ।

यहाँ शुकदेवजी कहते हैं –

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/७/४४)

साधुओं में यही लोभ रहता है कि दूसरों का दुःख दूर हो और उन्हें सुख मिले तथा यही परम पुरुष भगवान् की आराधना है कि दूसरों के लिए कष्ट उठाया जाये । जिस समय भगवान् शिव विष को पी रहे थे, उस समय थोड़ा सा विष टपक पड़ा था, उसे सर्प,बिच्छू तथा अन्य विषैले जीवों ने चाट लिया ।

अध्याय – ८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार जब भगवान् शंकर ने विष पी लिया तो फिर से समुद्र मन्थन प्रारम्भ हो गया । तब समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई । उसे ऋषियों ने ग्रहण कर लिया क्योंकि यज्ञ करने के लिए पवित्र घी, दूध आदि की आवश्यकता होती है । उसके बाद उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा निकला । वह चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का था । बलि ने उसे लेना चाहा और कहा कि यह मेरे लिए सवारी करने योग्य है । भगवान् ने इन्द्र को संकेत कर दिया था कि तुम चुप रहना, घोड़ा मत लेना, इन्हीं को दे देना, तब बलि ने वह घोड़ा ले लिया । उसके बाद ऐरावत नाम का हाथी निकला । इन्द्र ने कहा कि मैंने अभी तक कुछ नहीं लिया, अतः अब मैं इस हाथी को लूँगा तो इन्द्र ने वह हाथी ले लिया । इसके बाद पारिजात (कल्पवृक्ष) निकला, वह

देवलोक का भूषण हो गया । तत्पश्चात् नाचती-गाती हुई अप्सराएँ प्रकट हुई । अनन्तर, लक्ष्मीदेवी प्रकट हुई । वे भगवान् की नित्य शक्ति हैं । उनकी बिजली के समान चमकीली छटा से दिशायें जगमगा उठीं ।

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।

(श्रीभागवतजी - ८/८/९)

उन्हें देखकर सभी चाहने लगे कि ये हमें मिल जाएँ । असुर, देवता सभी की ऐसी इच्छा थी । मनुष्य भी सोचने लगे कि लक्ष्मी हमें मिल जाएँ ।

सारी दुनिया के लोग सोचते हैं कि लक्ष्मी अर्थात् धन-सम्पत्ति हमें मिल जाए । यह कितनी कुत्सित कामना है । लक्ष्मीजी तो नारायण की हैं, किसी और के पास वे क्यों जाएँगी ?

लक्ष्मीजी को देखकर सभी उनके अभिषेक के लिए दौड़े । स्वयं इन्द्र उनके बैठने के लिए आसन लाये । सभी लक्ष्मीजी के आतिथ्य-सत्कार में लग गये । श्रेष्ठ नदियों ने मूर्तिमान होकर सोने के घड़ों में भरकर पवित्र जल से उन्हें स्नान कराया, उनका अभिषेक किया । पृथ्वी ने औषधियाँ दीं । गौओं ने पञ्च गव्य दिए । बादल मृदंग, ढोल, वीणा आदि वाद्य यंत्र बजाने लगे । समुद्र ने उनको पहनने के लिए पीले रेशमी वस्त्र दिए । वरुण देव ने वैजयंती माला भेंट की । सरस्वतीजी ने हार दिया । इसके बाद ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन पाठ किया । तदनन्तर लक्ष्मीजी अपने हाथों में कमल की माला लेकर अपने योग्य सर्वगुणसम्पन्न पुरुष के गले में डालने के लिए चलीं कि देखूँ, मेरे योग्य कौन है ? वे लजाती और मुस्कुराती हुई इस प्रकार चलीं जैसे कोई सुनहली लता जा रही हो । चलते समय वे विचार करने लगीं कि दुनिया में कोई-कोई तपस्वी हैं परन्तु उन्होंने क्रोध पर विजय नहीं प्राप्त की है ।

कोई यदि तप करता है किन्तु क्रोध करता है तो उसका सारा तप नष्ट हो जाता है । तप करना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है क्रोध को जीतना । लक्ष्मीजी ने सोचा कि किसी में यदि ज्ञान भी है तो उसने आसक्ति को नहीं जीता ।

कबीरदासजी अनपढ़ थे किन्तु उनके अन्दर बिलकुल भी आसक्ति नहीं थी । इसलिए वे महापुरुष हो गये । अतः मनुष्य को आसक्तिरहित होना चाहिए । इसी प्रकार लक्ष्मीजी ने विचार किया कि कोई ईश्वर तो है परन्तु वह दूसरे के आश्रित है । कुछ लोगों में धर्म है, जैसे संसार में अनेक धर्म हैं किन्तु भेद बुद्धि सभी धार्मिक लोगों में है, उनके अन्दर सबके प्रति सौहार्द (भूत सौहार्द) और प्रभु भाव (भगवद्भाव) नहीं है । कोई त्यागी हैं तो नाम के लिए त्याग करते हैं । जो त्याग मुक्ति का हेतु है, वैसा त्याग उनमें नहीं है । किसी में वीरता तो है किन्तु काल के वेग से वे बचे नहीं हैं । कोई दीर्घ आयु वाले हैं किन्तु उनमें शील-मंगल नहीं है । किन्ही में शील-मंगल भी है तो उनकी आयु का पता नहीं है । किसी में दोनों ही बातें हैं किन्तु वे अमंगल मूर्ति हैं जैसे महादेवजी के शरीर पर साँप आदि लिपटे रहते हैं तो ईश्वर होने पर भी उनका वेष अमंगलमय है और जो मंगलमूर्ति भगवान् नारायण हैं, वे मुझे चाहते नहीं हैं । मेरी तरफ पीठ किये खड़े हैं । इस प्रकार लक्ष्मीजी बड़े असमंजस में पड गयीं । अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि भले ही ये मुझसे विमुख होकर खड़े हैं किन्तु मैं तो इन्हें ही वरण करूँगी ।

(इसका भाव यह है कि लक्ष्मीजी त्यागी को ही मिलती हैं । लक्ष्मी यदि तुम्हें चाहिए तो त्यागी बनो । लक्ष्मी के पीछे-पीछे डोलोगे तो नहीं मिलेंगी) यद्यपि भगवान् निरपेक्ष थे, नहीं चाहते थे फिर भी लक्ष्मीजी ने उनके गले में कमलों की सुन्दर माला पहना दी ।

बोलो लक्ष्मी नारायण भगवान् की जय ।

लक्ष्मीजी कमल से पैदा हुई हैं, उनके हाथ में भी कमल है, इसलिए उनका एक नाम कमला भी है । लक्ष्मीजी की नवकमलों की माला कभी मुरझाती नहीं है । लक्ष्मीजी भगवान् के पास जाकर खड़ी हो गयीं । जब भगवान् ने देखा कि ये सबको छोड़कर मेरे पास अनन्य भाव से आयी हैं तब उन्होंने लक्ष्मीजी को अपने वक्षःस्थल में निवास दिया । जब लक्ष्मीजी भगवान् के वक्षःस्थल पर विराजित हो गयीं तो उन्होंने देवताओं की ओर देखा क्योंकि देवता भगवान् के भक्त हैं । अब भगवान् की कृपा से दुर्वासाजी का देवताओं को दिया हुआ शाप हट गया क्योंकि इन्द्र ने भगवान् की प्रसादी माला का अनादर करके भगवान् का ही अपराध किया था । जब देवताओं ने भगवान् की उपासना की तो उन्होंने देवगणों को समुद्र मन्थन करने की आज्ञा दी, तब भगवान् की कृपा से ही इन्द्र एवं देवताओं का अपराध हटा । अब देवताओं को विजय प्राप्त होगी । अब दुर्वासाजी के शाप की सीमा आ गयी । अतः देवता प्रसन्न हो गये । **'श्रिया विलोकिता देवाः ।'** दुर्वासाजी ने शाप दिया था कि तुम तीनों लोकों सहित लक्ष्मीजी से हीन हो जाओगे । अब जब लक्ष्मीजी ने देवताओं की ओर देख दिया तो वे शीलादि गुणों से सम्पन्न हो गये । जब लक्ष्मीजी ने उनकी उपेक्षा कर दी थी तो देवता श्रीहीन हो गये थे ।

इधर लक्ष्मीजी ने दैत्य और दानवों की उपेक्षा कर दी तब वे लोग निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये । इसके बाद समुद्र मन्थन करने पर वारुणी देवी प्रकट हुईं । देवता और असुरों ने अमृत की इच्छा से जब और अधिक समुद्र मन्थन किया तब उसमें से एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ । वह श्याम रंग का था, पीताम्बर पहने हुआ था, गले में माला, कानों में मणियों के कुण्डल, चौड़ी छाती, तरुण अवस्था, अनुपम सौन्दर्य एवं घुँघराले बाल वाले उस पुरुष की छवि बड़ी अनोखी थी । उसके हाथों में अमृत से भरा

हुआ कलश था । वे साक्षात् विष्णु भगवान् के अंशांश अवतार थे । वे ही आयुर्वेद के प्रवर्तक धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

समुद्र मन्थन से चौदह चीजें निकलीं – लक्ष्मीजी, वारुणी, मणि, रम्भा अप्सरा, शंख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा, धर्म, विष, धन्वन्तरि और अमृत ।

धन्वन्तरिजी जैसे ही अमृत का कलश लेकर प्रकट हुए, दैत्यों ने बलपूर्वक उस अमृत के कलश को छीन लिया । यह देखकर सभी देवता बड़े उदास हो गये । अब वे भगवान् की शरण में गये । **'देवा हरि शरणमाययुः ।'**

भगवान् ने कहा – **'मा खिद्यत'** - 'देवताओ ! तुम लोग खेद मत करो । अब अमृत दैत्यों के हाथ में पहुँच गया है तो उनसे लड़ाई करना भी ठीक नहीं है । मैं अपनी माया से उनमें आपसी फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बना देता हूँ ।'

उधर दैत्य लोग जब अमृत का कलश लेकर चले गये तो उनमें आपस में ही अमृत के लिए झगड़ा खड़ा हो गया ।

इससे शिक्षा मिलती है कि यदि मनुष्य में शील गुण नहीं है तो हाथ में आई हुई लक्ष्मी चली जाएगी ।

जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहाँ बिपति निदाना ॥

जिस घर में कलह होगा, वहाँ यदि अमृत भी पहुँच जाये तो उसका वहाँ होना बेकार है । जिस घर में कलह नहीं है, शील गुण है, सबमें एकता है, वहाँ छिनी हुई, गयी हुई चीज भी वापस आ जाएगी । यदि घर में कलह-अशान्ति है तो आई हुई चीज भी चली जाएगी । इसमें भगवान् का दोष नहीं है, दोष हमारा है । अगर हममें आपस में प्रेम, सौहार्द नहीं है तो आई हुई चीज चली जाएगी और यदि हममें सद्बुद्धि है तो गयी हुई चीज वापस आ जाएगी ।

उधर दैत्य लोग आपस में लड़ रहे थे । कोई कहता कि मैं अमृत पहले पिऊँगा, दूसरा कहता कि तू कैसे पहले पियेगा, मैं तेरा चाचा हूँ, मेरा भतीजा होकर कैसी बात करता है, तब तक बाबा बोला – 'अभी तो मैं बड़ा-बूढ़ा बैठा हुआ हूँ और मेरे सामने तुम लोग कलश खोलकर अमृत पीने बैठ गये हो ।'

अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो । (श्रीभागवतजी - ८/८/३८)

इस प्रकार दैत्य कहने लगे – 'पहले मैं पीऊँगा, तू नहीं, पहले मैं, तू नहीं, पहले मैं ।' इस प्रकार उनमें आपस में ही 'तू-तू, मैं-मैं' होने लगी । जो दुर्बल दैत्य थे, वे कहने लगे कि ये बलशाली दैत्य ही सारा अमृत पी जायेंगे । हमारे लिए तो कुछ भी नहीं बचेगा । अतः वे उन बलशाली दैत्यों से धर्म के अनुसार कहने लगे – **'देवाः स्वं भागमर्हन्ति'** – 'अरे भाई ! देवताओं ने भी हमारे साथ परिश्रम किया है अतः थोड़ा अमृत उनको भी दे दो ।'

उन्होंने सोचा कि इस बहाने हमें भी थोड़ा अमृत मिल जायेगा, नहीं तो ये लोग बलशाली होने के कारण सारा अमृत स्वयं ही पी जायेंगे । इस तरह वे लोग बार-बार धर्म की दुहाई देने लगे ।

दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः ।

(श्रीभागवतजी - ८/८/४०)

इतने में ही भगवान् अपनी माया से अत्यधिक सुन्दरी स्त्री मोहिनी के रूप में प्रकट हो गये ।

बोलो मोहिनी भगवान् की जय ।

भगवान् ने इतना सुन्दर स्त्री वेष धारण किया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । उसके शरीर का रंग नील कमल के समान

श्याम था, कानों में कुण्डल थे, सुन्दर कपोल, ऊँची नासिका और सुन्दर मुख था । स्तनों के भार से उदर कृश हो रहा था । मुख से निकली हुई सुगन्ध के कारण भँवरे उसके पीछे-पीछे चल रहे थे । अपने लम्बे केशपाशों में बेले के पुष्पों की माला गूँथ रखी थी । इनके चरणों के नूपुर मधुर ध्वनि से रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे और कमर की कौंधनी भी झुनझुन की मधुर ध्वनि कर रही थी । जब दैत्यों ने मोहिनी के आभूषणों की मधुर ध्वनि सुनी तो वे पीछे मुड़कर देखने लगे । मोहिनी कभी तो लजाती, कभी मुस्कुराती, कभी अपनी भौहों को मरोड़ती और कभी अपनी विलास भरी चितवन से दैत्य सेनापतियों के चित्त में कामोद्दीपन करने लगी ।

अध्याय – ९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – असुर अमृत के लिए आपस में लड़ रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि एक बड़ी सुन्दर स्त्री उनकी ओर आ रही है तथा उसकी चेष्टाओं को देखा तो वे सब कुछ भूल गये कि कहाँ अमृत है, कहाँ देवता हैं ? अभी तक तो वे आपस में 'तू-तू, मैं-मैं' कर रहे थे किन्तु मोहिनी को देखकर आपस में कहने लगे –

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ।

(श्रीभागवतजी - ८/९/२)

'अरे, इसका रूप तो देखो, इसका तेज देखो, इसकी नई जवानी को देखो ।' अब तो असुर आपस की कलह को भूलकर उसके पास दौड़ गये और उससे पूछने लगे – 'अरी कमल के समान नेत्रों वाली तुम कौन हो ? सुन्दरी ! तुम किसकी कन्या हो ? तुम तो हमारे मन को मथे जा रही हो । हम समझ गये कि अभी तक संसार में किसी ने तुम्हारा स्पर्श नहीं किया है । हम लोग कश्यपजी के पुत्र होने के नाते

भाई हैं और हम लोगों ने अमृत के लिए बड़ा परिश्रम किया है किन्तु अब हम लोग इसी अमृत के लिए आपस में लड़ रहे हैं, इसलिए तुम हम लोगों को अमृत का बँटवारा कर दो ।'

अमृत बाँटने का कार्य असुर मोहिनी को इसलिए सौंप रहे थे ताकि यह थोड़ी देर के लिए यहाँ रुक जाये, नहीं तो यह चली जाएगी । इसीलिए उसका सम्मान कर रहे थे कि इसी बहाने कुछ देर यह यहाँ बैठी रहेगी, अमृत बाँटेगी तो इसके हाथ से कुछ मिलेगा, अन्यथा यह जा सकती है । जब असुरों ने मोहिनी से इस प्रकार प्रार्थना की तो उसने कहा – 'अरे, तुम लोग तो महर्षि कश्यप के पुत्र हो और मैं हूँ पुंश्चली । तुम लोग मुझ पर विश्वास क्यों कर रहे हो ? पंडित लोग पुंश्चली स्त्रियों पर विश्वास नहीं करते । दैत्यो ! भेड़ियों और पुंश्चली स्त्रियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि ये दोनों ही सदा नये-नये शिकार ढूँढा करते हैं ।'

शुकदेवजी कहते हैं – मोहिनी की परिहास भरी वाणी सुनकर दैत्यों के मन में उसके प्रति और भी विश्वास बढ़ गया । वे सोचने लगे कि यह बड़ी धर्मात्मा है क्योंकि अपनी निन्दा स्वयं कर रही है । मोहिनी बोली – 'आप लोग मुझ पर विश्वास मत कीजिये, मैं तो स्त्री जाति हूँ, छोटी बुद्धि की हूँ ।' दैत्य कहने लगे – 'अरे, यह तो बड़ी धार्मिक है ।' वे मोहिनी से बोले – 'हम लोग तो तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास करेंगे ।' मोहिनी मना करती है, फिर भी वे उसके ऊपर विश्वास करते हैं ।

शुकदेवजी कहते हैं – दैत्यों ने मोहिनी के हाथों में पूरा अमृत से भरा कलश दे दिया और उसे देकर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि यह अच्छी आ गयी अमृत बाँटने के लिए, नहीं तो हम लोग आपस में ही लड़-लड़कर मर जाते । अमृत का कलश लेकर मोहिनी ने दैत्यों से कहा – 'मुझे अमृत बाँटने की कोई गर्ज नहीं है किन्तु तुम लोगों ने

मुझे यह कार्य सौंपा है तो मेरी यह बात सुन लो कि मैं उचित या अनुचित जो कुछ भी करूँ, वह तुमको स्वीकार करना होगा, बीच में कोई हस्तक्षेप मत करना । इस शर्त पर ही मैं अमृत बाँटूंगी ।' दैत्य मोहिनी की चाल को नहीं समझ पाए, वे तो यही समझ रहे थे कि यह तो बड़ी धर्मात्मा है, अतः सभी दैत्य एक स्वर से बोले – 'तुम्हारी शर्त हमें स्वीकार है । हम लोग तुमसे कुछ नहीं कहेंगे, तुम जैसे चाहो अमृत बाँटो ।' मोहिनी ने कहा कि अमृत पीने से पहले तुम लोग उपवास करो और स्नान करो, ब्राह्मणों को दान करो, गाय की सेवा करो । सभी असुरों ने मोहिनी की बात मानकर उपवास किया, स्नान किया, हवन किया, गायों को घास-चारा खिलाया तथा ब्राह्मणों को दान दिया । ब्राह्मण आकर स्वस्तिवाचन करने लगे । इसके बाद बढ़िया वस्त्र और आभूषण धारण करके सब कुशासनों पर बैठ गये तथा मोहिनी की प्रतीक्षा करने लगे । उसी समय हाथ में अमृत का कलश लेकर मोहिनी सभामण्डप में आई । उसके सोने के नूपुर दूर से ही बड़ी सुन्दर ध्वनि कर रहे थे, उस ध्वनि को सुनकर असुर मोहित होने लगे । मोहिनी के सुन्दर कानों में सोने के कुण्डल थे और उसकी नासिका, कपोल तथा मुख बड़े ही सुन्दर थे । मोहिनी भगवान् ने विचार किया कि असुर तो जन्म से ही क्रूर स्वभाव वाले हैं, इनको अमृत पिलाना सर्पों को दूध पिलाने के समान अन्याय होगा । अभी ये लोग मुझे देखकर मोहित तो हो रहे हैं किन्तु मूर्छित नहीं हुए हैं, होश में हैं, मूर्छित होने पर सारा अमृत देवताओं को पिला दूँगी । अतः मोहिनी जब चल रही थी तो चलते-चलते उसकी स्तनपट्टिका (चोली) खिसक गयी ।

संवीक्ष्य सम्मुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/९/१८)

उसे देखकर असुर मूर्च्छित से हो गये, उन्हें अब चेतना नहीं रही । इसके बाद मोहिनी ने देवता और असुरों की अलग-अलग पंक्तियाँ बना दीं । दैत्यों को उन्होंने दूर बैठा दिया । अब मोहिनी ने देवताओं को अमृत पिलाना आरम्भ किया । असुर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए चुप बैठे थे, उनका मोहिनी से प्रेम भी हो गया था । उन्होंने सोचा कि स्त्री से विवाद नहीं करना चाहिए, इससे स्वयं की निन्दा होती है । असुर व्याकुल हो रहे थे कि कहीं मोहिनी हमसे सम्बन्ध न तोड़ ले, अमृत बाँटकर इसे हमारे पास आ जाना चाहिए । ये कुछ भी करे, इससे कुछ बोलो मत, इसका हमसे प्रेम तो बना रहेगा । इन दैत्यों में राहु बड़ा चतुर था, उसने सोचा कि ये सारे दैत्य तो बड़े मूर्ख हैं, इन्हें होश ही नहीं है । उसने देवताओं का वेष बनाया और उनकी पंक्ति में बैठकर अमृत पी लिया । सूर्य और चन्द्रमा ने तुरन्त ही भगवान् को उसके बारे में बता दिया । भगवान् ने अपने चक्र से उसका सिर काट दिया । अमृत का स्पर्श होने से उसका सिर अमर हो गया और ब्रह्माजी ने उसे ग्रह बना दिया । वही राहु पूर्णिमा और अमावस्या के दिन बदला लेने के लिए सूर्य-चन्द्रमा पर आक्रमण किया करता है । जब देवताओं ने अमृत पी लिया तब असुर प्रतीक्षा करने लगे कि अब मोहिनी हमारे पास आएगी किन्तु भगवान् ने दैत्यों के सामने ही अपना मोहिनी रूप त्यागकर चतुर्भुज विष्णु रूप धारण कर लिया ।

शुकदेवजी कहते हैं – देखो, देवता और दैत्य दोनों ने अमृत पीने के लिए समान रूप से परिश्रम किया किन्तु देवताओं को अमृत मिल गया और दैत्यों को कुछ नहीं मिला । इसका कारण यह था कि देवताओं ने भगवान् के चरणकमलों का आश्रय लिया था जबकि असुर भगवान् से विमुख थे, इसलिए उन्हें अमृत नहीं मिला । अतः भगवान् के चरणों का आश्रय लोगे तो **'लोक लाहु परलोक निबाहू ।'** तुमको जीते जी और मृत्यु के बाद भी लाभ होगा, सदा अमृत मिलेगा ।

सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत् ।

(श्रीभागवतजी - ८/९/२९)

भगवान् के चरणों की आराधना ही सब कुछ करती है ।

अध्याय – १०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब दैत्यों ने देखा कि देवताओं ने अमृत पी लिया और हमें अमृत नहीं मिला तब तो उनकी आँखें खुल गयीं । वे कहने लगे कि अरे, वह मोहिनी तो नहीं थी, वे तो विष्णु थे और उन्होंने हम लोगों को ठग लिया । दैत्य बड़े क्रोधित हुए, उन्होंने अपने हथियार उठाये और देवताओं पर आक्रमण कर दिया । क्षीरसागर के तट पर भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ गया । दैत्यों के सेनापति राजा बलि इन्द्र से लड़े, वरुण हेति से, मित्र प्रहेति से, स्वामीकार्तिक तारकासुर से, यमराज कालनेमि से, विश्वकर्मा मय से लड़े । यहीं पर भद्रकाली निशुम्भ और शुम्भ से लड़ीं । देवगुरु बृहस्पति दैत्यगुरु शुक्राचार्य से लड़े, महादेवजी जम्भासुर से लड़े, अग्नि देवता महिषासुर से लड़े । राजा बलि ने इन्द्र के ऊपर अठारह बाण चलाये, इन्द्र ने उन्हें काट दिया । बलि ने तब शक्ति चलाई, इन्द्र ने उसे भी काट दिया । अब तो बलि अन्तर्धान हो गये और उन्होंने आसुरी माया प्रकट की । समुद्र में बड़ी लहरें और भयानक भँवर उठने लगे, वह चारों ओर से देव सेना को घेरता हुआ उमड़ने लगा । प्रलय की अग्नि के समान बड़ी भयानक आग प्रकट हुई । इस माया के प्रभाव से देवता पराजित हो गये और उन्होंने भगवान् का ध्यान किया, ध्यान करते ही भगवान् वहीं प्रकट हो गये । उनके आठ भुजायें थीं । भगवान् के प्रकट होने से असुरों की माया नष्ट हो गयी । कैसे नष्ट हुई ? यहाँ बहुत बढ़िया बात कही गयी है –

स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/१०/५५)

भगवान् की याद ही समस्त विपत्तियों को नष्ट कर देती है । इसीलिए निष्काम महात्मा कोई अनुष्ठान नहीं करते,कवच पाठ नहीं करते । कवच पाठ आदि करने से क्या होगा, सकाम क्यों बनते हो, निष्काम भक्ति किये जाओ । केवल भगवान् की याद कर लो, उससे समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जायेंगी ।

अस्तु, कालनेमि ने भगवान् की ओर त्रिशूल चलाया । भगवान् ने उसे पकड़ लिया और उसी त्रिशूल से कालनेमि और उसके वाहन को मार डाला । माली और सुमाली नामक बलवान दैत्यों के सिर भगवान् ने अपने चक्र से काट डाले ।

अध्याय – ११

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की कृपा से देवताओं की घबराहट चली गयी और उन्होंने भी बहुत से दैत्यों का संहार किया । इन्द्र ने बलि से लड़ते-लड़ते जब उन पर वज्र उठाया तब सब लोग हाहाकार करने लगे । इन्द्र ने बलि को फटकारा – 'मूढ़ ! तू मायावी है, हमें माया से जीतना चाहता है ।' बलि ने कहा – 'संग्राम में तो कभी हार, कभी जीत होती ही है । तुम लोग अपने को हार-जीत का कारण कर्ता मानते हो, इसलिए मूर्ख हो ।'

इस प्रकार इन्द्र को फटकारकर बलि ने उस पर बाण चलाया । तब इन्द्र ने बलि पर वज्र चलाया, जिससे वे पृथ्वी पर गिर पड़े । बलि का मित्र जम्भासुर आया, उसने इन्द्र पर प्रहार किया, साथ ही ऐरावत पर भी गदा चलाई । ऐरावत घायल होकर घुटने के बल गिर पड़ा । उस समय इन्द्र का सारथी मातलि एक हजार घोड़ों से जुता रथ ले

आया और इन्द्र रथ पर सवार हो गये । जम्भ ने मातलि के ऊपर त्रिशूल चलाया । अन्त में इन्द्र ने वज्र से जम्भ का सिर काट डाला । नारदजी ने नमुचि को जम्भासुर की मृत्यु का समाचार दिया । वह युद्ध के मैदान में आया और एक हजार बाण चलाकर इन्द्र के एक हजार घोड़ों को घायल कर दिया । उसके बाद नमुचि ने इन्द्र पर पन्द्रह बाण चलाये । इन्द्र असुरों के बाणों की वर्षा से ढक गये फिर बाहर निकले । इन्द्र ने अपना वज्र उठाया और उससे नमुचि के भाई बल और पाक का सिर काट दिया । नमुचि ने अपने भाइयों का वध देखकर इन्द्र के ऊपर त्रिशूल चलाया और बोला – 'इन्द्र ! तू मारा गया ।' इन्द्र ने अपने बाणों से उसके त्रिशूल के हजारों टुकड़े कर दिए । इसके बाद इन्द्र ने नमुचि की गर्दन पर वज्र मारा किन्तु उस वज्र से उसके चमड़े पर खरोंच तक नहीं आई । इन्द्र पश्चात्ताप करते हुए बोले कि अब मैं इस वज्र को नहीं लूँगा, यह बेकार है । उसी समय आकाशवाणी हुई – 'यह दानव न तो सूखी वस्तु से मर सकता है और न गीली वस्तु से ।' तब इन्द्र ने समुद्र के फेन से नमुचि का सिर काट दिया । इस प्रकार जब सभी असुरों का संहार हो गया तब ब्रह्माजी ने नारदजी को भेजा कि अब इस युद्ध को जाकर रोको । नारदजी ने देवताओं से कहा कि अब आप लोग लड़ाई बंद कर दें । देवताओं ने नारदजी की बात मानकर युद्ध बंद किया । युद्ध में बचे दैत्य वज्र की चोट से मरे बलि को अस्ताचल की ओर ले गये । वहाँ शुक्राचार्यजी ने अपनी संजीवनी विद्या से राजा बलि को जीवित कर दिया ।

अध्याय – १२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब भगवान् शंकर ने सुना कि भगवान् ने मोहिनी अवतार लेकर असुरों को मोहित कर दिया तो वे देवी के साथ बैल पर सवार होकर वहाँ गये, जहाँ भगवान् निवास करते हैं ।

भगवान् ने गौरी शंकर भगवान् का स्वागत-सत्कार किया । श्रीमहादेव जी भगवान् की स्तुति करने लगे – 'आप ही ब्रह्म हैं, आनन्द स्वरूप हैं, एक आप ही संसार की रचना करते हैं, पालन करते और संहार करते हैं । आपकी महिमा को कोई नहीं जान सकता है ।' विष्णु भगवान् ने पूछा – 'आप किस कारण से मेरे पास आये हैं ?' महादेवजी बोले – 'मैंने आपके बहुत से अवतार देखे हैं किन्तु आपने स्त्री रूप में जो अवतार लिया, इसे मैंने नहीं देखा, उस अवतार में आपने कैसी माया फैलायी, जबकि असुर तो बड़े चतुर होते हैं और आपने उनको ऐसा ठगा कि अमृत का पूरा कलश ही उन्होंने आपको दे दिया । मैं आपका वही रूप देखना चाहता हूँ ।'

शुकदेवजी कहते हैं – जब भगवान् शंकर ने विष्णु भगवान् से यह प्रार्थना की, तब वे बोले – 'महादेवजी ! जब अमृत का कलश दैत्यों के हाथ में चला गया था तब देवताओं का काम बनाने के लिए मैंने स्त्री का रूप धारण किया किन्तु वह रूप तो कामी पुरुषों के लिए ही देखने योग्य है क्योंकि वह काम भाव को उत्तेजित करने वाला है । संयमी व्यक्ति के लिए ऐसे दृश्य देखना ठीक नहीं है ।'

भगवतरसिकजी ने कहा है –

घाट बाट चौपार चुरि देवल हाट मसान ।
भगवत जन बिरमै यहाँ होत भड़ाई निदान ॥

इन जगहों पर बैठकर भजन नहीं करना चाहिए । जैसे किसी नदी या कुण्ड के घाट पर बैठकर माला फेरोगे तो वहाँ स्त्रियाँ स्नान करने आती हैं, तुम्हारी दृष्टि उन पर पड़ेगी । इसलिए घाट पर बैठकर भजन नहीं करना चाहिए । बाट यानी रास्ते पर बैठकर भजन नहीं करना चाहिए क्योंकि वहाँ से भी स्त्रियाँ आती-जाती हैं । वहाँ भजन नहीं हो सकता । चौपाल पर बैठकर भजन नहीं करना चाहिए, सराय

में भजन नहीं करना चाहिए, मन्दिर में भी भजन नहीं करना चाहिए क्योंकि मन्दिर में बहुत से लोग आते-जाते रहते हैं, वहाँ भजन करने पर दृष्टि सेठ-सेठानी और यात्रियों की ओर जाएगी । इसी तरह बाजार और श्मशान में भी भजन नहीं करना चाहिए । भगवत रसिक जी कहते हैं कि इतने स्थानों पर भजन नहीं होता, भड़ैती होती है । फिर कहाँ भजन करें तो वे कहते हैं –

नदी किनारे गिरि शिखर बाग़ इकौसो देख ।
भगवत जन विरमै यहाँ बाढ़ै भजन बिसेख ॥

नदी किनारे जहाँ घाट न हो, वहाँ भजन के लिए बैठो अथवा पर्वत की चोटी पर या एकान्त बगीचे में भजन करो । इन स्थानों पर तुम्हारा भजन बढ़ेगा ।

अस्तु, इधर शिवजी विष्णु भगवान् से जब मोहिनी रूप दिखाने की प्रार्थना करने लगे तो उन्होंने कहा – 'ठीक है, मैं वह रूप आपको दिखाता हूँ ।'

शुकदेवजी कहते हैं – विष्णु भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और शिवजी भवानी के साथ वहीं बैठे रहे और चारों ओर देखने लगे कि मोहिनीजी कहाँ से आ रही हैं ? इतने में उन्होंने देखा कि उपवन की ओर से मोहिनी आ रही है । शिवजी उमा से बोले – 'अरे देखो, मोहिनी वहाँ से आ रही है ।' वह गेंद खेलती हुई आ रही थी, गेंद को ऊपर-नीचे बार-बार उछाल रही थी । वह बड़ी सुन्दर साड़ी पहने हुए थी और उसके नितम्बों पर करधनी सुशोभित हो रही थी । जब वह गेंद को पकड़ने चलती तो उछलने से उसके स्तन हिलने लगते थे और उसकी कटि इतनी पतली थी कि लगता था कि वह टूट जाएगी । जहाँ-जहाँ गेंद जाती, मोहिनी चंचल गति से उसे देखती, उसके चंचल नेत्रों के तारे बड़े सुन्दर लग रहे थे । कपोलों पर कुण्डल झूम

रहे थे और घुँघराली काली अलकें उन पर लटक आती थीं । उसकी चुनरी बार-बार सरकती और गेंद खेलते-खेलते जूड़ा भी खुल गया, तब वह अपने बायें हाथ से उसे सँवारने लगी । उस समय भी वह हाथ से गेंद उछालती हुई समस्त जगत को अपनी माया से मोहित कर रही थी । अब उसने लज्जा से मुस्कुराकर कटाक्षपूर्वक महादेवजी को देखा । अब तो महादेवजी अपने को भूल गये कि मैं कौन हूँ अथवा भवानी मेरे साथ बैठी हुई हैं । वे सब कुछ भूल गये । इतने में गेंद दूर चली गयी और हवा का ऐसा तेज झोंका आया कि मोहिनी का वस्त्र सूत्र सहित उड़ गया । भवानीजी शिवजी को देख रही थीं किन्तु शिवजी मोहिनी के पीछे निर्लज्ज होकर दौड़े । जब मोहिनी ने देखा कि मेरे पीछे शिवजी आ रहे हैं तब वह लजाकर पेड़ों के पीछे छिपने लगी । महादेवजी उसके पीछे दौड़े और भुजाओं में लेकर उसका आलिंगन किया । तब तक मोहिनी उनकी भुजाओं से सरक गयी और उसके बाल बिखर गये, फिर वह बड़े वेग से भागी । भगवान् शंकर भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । उनके शत्रु कामदेव ने उन्हें जीत लिया था । शिवजी का तेज स्खलित हो गया । उनका वीर्य पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ सोने-चाँदी की खानें बन गयीं । इसके बाद मोहिनी अन्तर्धान हो गयी । अब शिवजी को अपनी स्मृति हुई । भगवान् की यह महिमा जानकर शिवजी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ । उसी समय उनके सामने चतुर्भुज रूप से भगवान् प्रकट हो गये । श्री भगवान् ने कहा – 'आप पुनः अपने स्वरूप में स्थित हो गये, यह बड़े सौभाग्य की बात है ।' शिवजी भगवान् को ही तो देखकर एक क्षण को मोहित हुए थे, मोहिनी कोई प्राकृत स्त्री तो थी नहीं, वह तो साक्षात् भगवान् थे । भगवान् को देखकर ऐसा कौन है, जो मोहित नहीं होगा । यही तो मोहिनी अवतार है । इस लीला से शिवजी के प्रति अभाव नहीं

करना चाहिए कि शिवजी भी हम जैसे साधारण पुरुष हैं । वे तो साक्षात् भगवान् की लीला को देखकर मोहित हुए थे, किसी प्राकृत स्त्री को देखकर मोहित नहीं हुए थे । स्वयं भगवान् ने उनसे कहा कि मेरी इस लीला को देखने के बाद भी बहुत शीघ्र आप अपने स्वरूप में स्थित हो गये । इसलिए इस लीला का रहस्य समझना चाहिए, नहीं तो नासमझ लोग बहुत जल्दी आलोचना करने लगते हैं कि महादेवजी भी कामवासना से पीड़ित हो गये ।

भगवान् ने शिवजी से कहा कि आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है जो एक बार मेरी माया के फंदे में फँसकर फिर स्वयं ही उससे निकल सके । मेरी यह माया अब फिर कभी आपको मोहित नहीं करेगी ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् शंकर कैलाश पर्वत पर सती देवी से मोहिनी अवतार के बारे में कहने लगे – 'देवि ! भगवान् की माया कितनी बलवती है, जब मैं उससे मोहित हो गया तो संसार के दूसरे जीवों के बारे में क्या कहना ? जब मैं हजारों वर्ष की समाधि से उठा था तो तुमने मुझसे पूछा था कि आप किसका ध्यान करते हैं तो वे यही भगवान् हैं ।' रामायण में वर्णन आता है –

बीते संबत सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतपति जागे ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ६०)

शिवजी ने सत्तासी हजार वर्ष तक समाधि लगाई और समाधि से उठते ही वे भगवान् का नाम जपते हैं ।

(अपने घर में जब सोकर उठो तो सबसे पहले भगवान् का नाम लो – 'श्रीराधे श्रीकृष्ण' । ऐसा नहीं कि सुबह उठते ही – 'अरे बेटा–अरी बेटी' कहो ।)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जो पुरुष इस कथा को पढ़ता-सुनता है, उसका उद्यम कभी निष्फल नहीं होता है । उसका उद्यम सफल हो जाता है । जो भी भगवान् के चरणों की शरण ग्रहण करता है, वे उसकी समस्त कामनाओं को पूरा कर देते हैं । कपट युवती वेष धारण करने वाले उन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ।

अध्याय – १३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित ! विवस्वान् के पुत्र यशस्वी श्राद्धदेव ही सातवें (वैवस्वत) मनु हैं । यह जो वर्तमान मन्वन्तर है, उनका कार्यकाल है । वैवस्वत मनु के दस पुत्र थे । इस मन्वन्तर में पुरंदर इन्द्र हैं, कश्यप आदि सप्तर्षि हैं । इसी मन्वन्तर में कश्यप जी की पत्नी अदिति के गर्भ से भगवान् वामन ने अवतार ग्रहण किया । जिसमें उन्होंने राजा बलि से भिक्षा माँगी । विवस्वान् (भगवान् सूर्य) की दो पत्नियाँ थीं – संज्ञा और छाया । ये दोनों ही विश्वकर्मा की पुत्रियाँ थीं । कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि सूर्य की एक तीसरी पत्नी बडवा भी थी । परन्तु वह अलग नहीं थी क्योंकि छठे स्कन्ध में उसका प्रसंग कहा जा चुका है –

सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ।

(श्रीभागवतजी - ६/६/४०)

संज्ञा ही वडवा बनी थी । संज्ञा से तीन सन्तानें हुईं – यम, यमी और श्राद्धदेव । छाया के भी तीन सन्तानें हुईं – सावर्णि, शनैश्चर और तपती नाम की कन्या, जो संवरण की पत्नी हुई ।

आठवें मन्वन्तर में सावर्णि मनु होंगे । उस समय बलि इन्द्र बनेंगे । गालव,अश्वत्थामा,व्यास आदि सप्तर्षि होंगे । देवगुह्य की पत्नी सरस्वती के गर्भ से सार्वभौम नामक भगवान् का अवतार होगा । नवें

मनु दक्ष सावर्णि होंगे । आयुष्मान् की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से ऋषभ के रूप में भगवान् का कलावतार होगा । दसवें मनु होंगे – ब्रह्मसावर्णि । उस समय विश्वसृज् की पत्नी विषूचि के गर्भ से विष्वक्सेन के रूप में भगवान् अंशावतार ग्रहण करेंगे । शम्भु नामक इन्द्र से वे मित्रता करेंगे । ग्यारहवें मनु होंगे – धर्मसावर्णि । आर्यक की पत्नी वैधृता के गर्भ से धर्मसेतु के रूप में भगवान् का अंशावतार होगा । बारहवें मन्वन्तर में मनु होंगे – रुद्रसावर्णि । उस मन्वन्तर में सत्यसहा की पत्नी सूनृता के गर्भ से स्वधाम के रूप में भगवान् का अंशावतार होगा । तेरहवें मनु होंगे देवसावर्णि । उस मन्वन्तर में देवहोत्र की पत्नी बृहती के गर्भ से योगेश्वर के रूप में भगवान् का अंशावतार होगा । चौदहवें और अन्तिम मनु होंगे – इन्द्रसावर्णि । इन्द्र का नाम होगा शुचि । उस समय सत्रायण की पत्नी विताना के गर्भ से बृहद् भानु के रूप में भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे ।

अध्याय – १४

राजा परीक्षित् ने पूछा – भगवन् ! आपने इतनी देर से जिनके बारे में वर्णन किया, ये मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि आदि अपने-अपने मन्वन्तर में किसके द्वारा नियुक्त होकर कौन-कौन सा काम किस प्रकार करते हैं, यह आप मुझे बताइये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि और देवता – सबको नियुक्त करने वाले स्वयं भगवान् ही हैं । मनु वेदधर्म का प्रचार करते हैं । देवता और मनुपुत्र मिलकर प्रजा का पालन करते हैं । देवता यज्ञ का भाग स्वीकार करते हैं और मनुपुत्र शासन करते हैं । इन्द्र का मुख्य कार्य वर्षा करना है । ये त्रिलोकी के ऐश्वर्य का भोग करते हैं । सप्तर्षिगण तपस्या से वेद की प्राप्ति करते हैं । हर मन्वन्तर में भगवान् का अंशावतार होता है, उस अवतार में भगवान् कभी ज्ञान का, कभी कर्म का और कभी योग का उपदेश करते हैं ।

अध्याय – १५

राजा परीक्षित् ने पूछा – गुरुदेव ! भगवान् सारे संसार के स्वामी हैं फिर उन्होंने दीन-हीन की तरह राजा बलि से तीन पग पृथ्वी क्यों माँगी, मैं यह जानना चाहता हूँ ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – अमृत पीकर देवता बली हो गये और उन्होंने असुरों को हरा दिया । राजा बलि की इन्द्र के हाथों मृत्यु भी हुई तब शुक्राचार्य ने उन्हें अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया, तब बलि गुरु की सेवा करने लगे । कथा ये है कि जब-जब देवता हारे हैं, गुरुजनों के अपराध से हारे हैं । पहले इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति का अपराध किया, उन्हें प्रणाम नहीं किया तो ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा कि तुम गुरु बनाओ । तब इन्द्र ने विश्वरूपजी को गुरु बनाकर उनकी सेवा की । गुरु से उन्हें नारायण कवच प्राप्त हुआ तब वे जीते । इसके बाद इन्द्र ने विश्वरूप के सिर काट लिए, वह भी गुरु अपराध था । यह दूसरा अपराध था । तब दधीचि ऋषि की हड्डी से वज्र बना, उसके प्रभाव से इन्द्र विजयी हुए । तीसरी बार इन्द्र ने दुर्वासाजी की दी हुई भगवत्प्रसादी माला का तिरस्कार करके अपराध किया, तब उनकी पराजय हुई । उस समय भगवान् ने उनसे समुद्र मन्थन कराकर अमृत पिलाकर विजयी बनाया । इन सभी कथाओं का सारांश यही है कि जीव जब अपराध करता है, तभी उसका पतन होता है । यदि अपराध न करे तो उसका पतन नहीं होगा । इसलिए हर व्यक्ति को बहुत सँभलकर चलना चाहिए । किसी ऋषि-महर्षि का, गुरुजनों का अपराध नहीं करना चाहिए । यह सबसे मुख्य बात है । यदि कोई अपराध करता है तो चाहे वह किसी सम्प्रदाय में है, किसी मार्ग में है, चाहे ज्ञान मार्ग है, योग मार्ग है, भक्ति मार्ग है, रस मार्ग है, सभी में वह गिर जायेगा और कुछ नहीं मिलेगा । रसिक महापुरुष भी कहते हैं – **'कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखै ।'** – कभी कठोर वचन नहीं

बोलना चाहिए । विहारिनदेवजी ने भी कहा है – **'हरि भक्तन सों गर्ब न करिबौ ।'** इसलिए अपराध से हर व्यक्ति को डरना चाहिए किन्तु यहीं जीव भूल कर जाता है । श्रीमद्भागवत की इन कथाओं में यही शिक्षा दी गयी है, इसीलिए इन कथाओं का बहुत महत्त्व है । मनुष्य आगे कैसे बढ़ता है ? एकमात्र जब शील गुण के साथ गुरुजनों की, बड़ों की सेवा करता है, तब वह आगे बढ़ता है और जब उनका अपराध करता है, तब गिर जाता है । यह सब कथाओं का सारांश है । जीव अपराध क्यों करता है ? महादेवजी ने कहा है –

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमान्दुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

(श्रीभागवतजी - ४/३/१७)

यह जीव बड़ा नीच है । वल्लभाचार्य जी ने कहा है – **'जीवः स्वभावतो दुष्टः'** – जीव स्वभाव से ही दुष्ट है । यह थोड़ा-सा पढ़ लेगा, इसकी अवस्था अच्छी हो जाती है, शरीर बढ़िया हो जाता है, धन अधिक हो जाता है, अच्छा कमाने-खाने लगता है, तब वह सबमें दोष देखने लगता है । सबका अपराध करता है, सबकी निन्दा करता है । सबसे ईर्ष्या करता है और इससे उसका पतन हो जाता है । असुर लोग जब पराजित हुए तथा मारे गये तो राजा बलि ने विचार किया कि अमृत पीकर देवता आगे बढ़ गये और भगवान् भी उनके सहायक हैं । इसलिए देवताओं को कोई जीत तो सकता नहीं है क्योंकि एक तो वे अमर हो चुके हैं और दूसरे भगवान् उनके सहायक हैं, वे निष्पक्ष हैं । राजा बलि ने विचार किया कि गुरु ईश्वर हैं और उनकी उपासना करनी चाहिए ।

पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः ।

सर्वात्मना तान् अभजद्भृगून् बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१५/३)

इन्द्र के द्वारा पराजित होने पर और सम्पत्ति के नाश तथा प्राणों के चले जाने पर बलि को शुक्राचार्यजी ने जीवित कर दिया । तब बलि ने सर्वात्मभाव से गुरु की उपासना की । बलि ने कैसे उपासना की, यह ध्यान देने योग्य है – **'महात्मार्थनिवेदनेन'** – अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया । ऐसी भक्ति करनी चाहिए । यह विशेष महत्व की बात है । सर्वात्म अर्पण के द्वारा उपासना करने पर मनुष्य बहुत विशिष्ट पद को प्राप्त कर लेता है । एक आचार्य ने लिखा है –

न केवलं शुष्क भक्त्या धनसमर्पणेन् ।
अर्थनिवेदनेन धनसमर्पणेन न केवलं शुष्कभक्त्येत्यर्थः ।

(वीरराघवाचार्यजी)

श्रीसद्गुरुदेव को सब कुछ समर्पण कर दे । सूखी भक्ति करते हुए केवल मुँह से ही न कहे – 'महाराज ! दण्डवत् ।' अपितु 'आत्मा और अर्थ' का भी समर्पण कर दे । आत्मा अर्थात् अपना देह और अर्थ माने उस जीव के पास जो कुछ भी है, सब सद्गुरु को अर्पण कर दे । यह विवेक रखना पड़ता है कि सद्गुरु को सर्वस्व अर्पण करे । धन लेने वाले गुरु तो बहुत घूमते हैं । बड़े विवेक से चलना पड़ता है । बहुत सँभलकर चलना पड़ता है । इस मार्ग में विवेक की आवश्यकता पहले है । सद्गुरु मिल जाये और फिर उसको सर्वस्व अर्पण न करे तो मूर्ख है । इस तरह 'महात्मार्थ' का आचार्यों ने बहुत अर्थ किया है । किसी ने कहा कि यहाँ महात्मा का अर्थ उदार मन है । उदार मन से बलि ने गुरु को सर्वात्म समर्पण कर दिया । ऐसा करने से गुरुजन बलि पर बहुत प्रसन्न हुए और राजा बलि से महाभिषेक विधि से विश्वजित् नाम

का यज्ञ कराया । उन्होंने कहा कि इन्द्र ने अमृत पी लिया तो क्या हुआ ? भगवान् सहायक हैं तो क्या हानि है ? जब भृगुवंशी ब्राह्मणों ने राजा से यज्ञ कराया तो यज्ञ कुण्ड से सोने की चद्दर से मढ़ा हुआ एक बड़ा दिव्य रथ निकला, घोड़े निकले तथा रथ पर लगाने की ध्वजा निकली अर्थात् अमृत से भी बड़ी वस्तु है उपासना । अमृत कोई बड़ी वस्तु नहीं है । मनुष्य को कभी निराश नहीं होना चाहिए, सदा आराधना में लगे रहना चाहिए । इससे उसका बल, प्रभाव, तेज और पौरुष मरने के समय तक भी कभी घट नहीं सकते । नहीं तो कई धनी पुरुषों की अन्तिम समय में ऐसी हालत हो गयी कि उनके शरीर पर मक्खी भिनका करती थी, तेजहीन होकर उन्होंने शरीर छोड़ा । ऐसे भी पुरुष थे, जो जीवन भर आराधनारत् रहे तो वृद्धावस्था तक, अन्तिम समय तक सूर्य के समान उनका प्रभाव रहा ।

ध्यान से देखने पर यह पता पड़ता है । विचार और विवेक से देखो तो जो आराधक है, भले ही वह रूखा-सूखा खा रहा है, अन्तिम समय तक उसकी कान्ति, उसकी श्री दिव्य बनी रहेगी । जो आराधक नहीं है, वह भले ही अरबपति है, श्रीहीन होकर शरीर छोड़ता है तथा आगे के जन्मों में अन्धकार में, तामिस्र में चला जाता है । अतएव मनुष्य को सदा आराधना में रत रहना चाहिए । राजा बलि ने आराधना के द्वारा प्रगति की । यज्ञकुण्ड से उनके लिए रथ निकला, घोड़े निकले, ध्वज निकला, दिव्य धनुष, कभी खाली न होने वाले दो अक्षय तरकश और दिव्य कवच भी प्रकट हुए । राजा बलि ने ऐसा भजन किया कि उनके दादा प्रह्लादजी ने प्रसन्न होकर उन्हें एक ऐसी माला दी, जिसके फूल कभी कुम्हलाते नहीं थे तथा शुक्राचार्यजी ने एक शंख दिया । सभी बड़ों ने राजा बलि को आशीर्वाद दिया । इस प्रकार से सुसज्जित होकर बलि ने इन्द्र की पुरी अमरावती पर चढ़ाई कर दी ।

आराधना वह शक्ति है कि अमृत उसके सामने कुछ नहीं है । **'प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः'** – राजा बलि ने प्रह्लाद आदि अपने से बड़ों की प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम किया तथा देवताओं की राजधानी अमरावती पर चढ़ाई कर दी । राजा बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों के दिए हुए दिव्य रथ पर सवार हुए, उनके हाथों में शुक्राचार्यजी का शंख था । उनकी भुजाओं में सोने के बाजूबंद, कानों में कुण्डल जगमगा रहे थे । इस प्रकार से सज्जित होकर राजा बलि इन्द्रपुरी अमरावती को कँपाने लगे । इन्द्रपुरी बहुत सुन्दर है । उसके चारों ओर आकाशगंगा की खाई है । इन्द्रपुरी में दस करोड़ विमान सदा विद्यमान रहते हैं ।

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१५/१७)

स्वर्ग में सदा युवावस्था बनी रहती है । यहाँ श्लोक में प्रयुक्त शब्द श्यामा का अर्थ साँवरी नहीं है । शास्त्र में श्यामा की परिभाषा है – **'श्यामा षोडश वार्षिकी'** – सोलह वर्ष की अवस्था को श्यामा कहा जाता है । जैसे – श्रीजी का नाम श्यामा जू है तो इसका मतलब यह नहीं है कि श्रीजी साँवरे रंग की हैं ।

अस्तु, स्वर्ग की स्त्रियाँ सदा सोलह वर्ष की सी रहती हैं, अग्नि की दीपशिखा की तरह वे रूपवती हैं, तेजस्विनी हैं । इस प्रकार शुकदेवजी ने इन्द्रपुरी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है ।

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद् रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१५/२३)

राजा बलि ने इन्द्रपुरी अमरावती को घेरकर अपने गुरु शुक्राचार्य के दिए हुए महान शंख को बजाया । उसे सुनकर इन्द्र की

पत्नियाँ भयभीत हो गयीं और कहने लगीं कि आज तक हमने ऐसी भीषण शंख ध्वनि कभी नहीं सुनी । यह तो कोई विचित्र बात हो गयी है ।

असुरों को हराने के पश्चात् देवता लोग भोग में डूब गये थे । जो मनुष्य आराधना करेगा, वह उन्नति करेगा और जो आराधना से विमुख होगा, वह गिरेगा । हम लोग जब दुःख में होते हैं, बीमार पड़ जाते हैं तब भगवान् को याद करते हैं और जब सुखी हो जाते हैं, स्वस्थ हो जाते हैं तो प्रपंच में फँस जाते हैं, विनाश के रास्ते पर चल पड़ते हैं क्योंकि हम लोग ज्ञानहीन हैं, पशु हैं ।

इन्द्र ने देखा कि बलि ने युद्ध की बहुत बड़ी तैयारी की है, अतः वे भागकर अपने गुरु बृहस्पति के पास गये और बोले – 'भगवन् ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि हम लोग अमृत पान कर चुके हैं, अमर हैं परन्तु हमारे शत्रु बलि का तेज तो सहा नहीं जाता है । किसने इसके अन्दर इतना तेज भर दिया ?'

(मनुष्य के अन्दर तेज ही कीमती वस्तु है)

इन्द्र बोले – 'मैं देखता हूँ कि इस समय इसके सामने कोई खड़ा नहीं हो सकता । ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपने मुख से दसों दिशाओं को पी जायेगा और ऐसा मालूम पड़ता है कि इसकी दृष्टि से संवर्तक प्रलय की अग्नि उठ रही है ।' देवगुरु बृहस्पति ने कहा – 'इन्द्र ! मैं तुम्हारे शत्रु बलि की उन्नति का कारण जानता हूँ । इसके गुरुजन ब्रह्मवादी भृगुवंशियों ने अपने शिष्य बलि में सब तेज भर दिया है ।'

महापुरुष बताते हैं कि जीव में चार शक्तियाँ होती हैं । एक तो सबसे छोटी शक्ति है निज शक्ति, जो संस्कार लेकर जीव आता है । दूसरी होती है माता-पिता की शक्ति, तीसरी शक्ति है गुरु की और चौथी इष्ट शक्ति होती है । जैसे एक खाट के चार पाये होते हैं । इसी

प्रकार जब ये चार शक्तियाँ मिल जाती हैं तब जीव बड़ा बली बन जाता है । उदाहरण के लिए जब युद्ध में लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति लगी तो उन्होंने विचार किया कि मैं पराजित क्यों हुआ ? मैं तो हर तरह से मेघनाद से श्रेष्ठ हूँ । मेरे पिता दशरथजी हैं और ये असुर रावण का पुत्र है । निज स्वरूप से देखा जाये तो मैं शेष हूँ और यह असुर है । मेरे गुरु वसिष्ठ जी हैं, जो ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और इसके गुरु तो दैत्य गुरु शुक्राचार्य हैं । मेरे पास तीन शक्तियाँ मेघनाद से बड़ी हैं किन्तु इष्ट शक्ति में आज मैं चूक गया क्योंकि मैं युद्ध में अपने इष्ट रामजी को प्रणाम करके नहीं गया था । आराधना से जब मनुष्य चूक जाता है तो पराजित होता है ।

बृहस्पतिजी ने इन्द्र से कहा कि आज इसके अन्दर गुरु शक्ति प्रबल रूप से जगमगा रही है ।

भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१५/२९)

भगवान् को छोड़कर तुम या तुम्हारे जैसा और कोई भी व्यक्ति बलि के सामने उसी प्रकार नहीं ठहर सकता जैसे मृत्यु के सामने कोई प्राणी टिक नहीं सकता ।

इन्द्र ने पूछा – 'महाराज ! फिर अब क्या किया जाये ?' बृहस्पति बोले – 'काल की प्रतीक्षा करो । जब यह अपने गुरु का अपमान करेगा तो नष्ट हो जायेगा ।'

तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ।

(श्रीभागवतजी - ८/१५/३१)

भागवत के टीकाकार आचार्यों ने इस पंक्ति का दूसरा अर्थ किया है । वे कहते हैं कि गुरु का अपमान करके नष्ट हो जायेगा, यह तो

बहुत धीमी बात है । बृहस्पति जी कहते हैं कि इसके नाश होने का मतलब है कि इन्द्र, तुमको स्वर्ग मिल जायेगा । आचार्यगण कहते हैं कि वस्तुतः बलि का नाश नहीं हुआ ।

जीव गोस्वामीजी कहते हैं –

यद्यपि भगवतः पक्षपातेन व्यावहारिकगुरूणाम्
वचनादिक्रमरूपोऽवमानो न दोषावहः ।

दो प्रकार के गुरु होते हैं, एक तो वास्तव में सद्गुरु होते हैं जो केवल भगवद् भजन से ही सम्बन्ध रखते हैं । स्वयं भी और शिष्य के लिए भी चाहते हैं कि यह केवल भगवान् का भजन करे । दूसरे गुरु वे हैं जैसे आजकल छोटे-मोटे लोग गुरु बन जाते हैं तो उनको जीव गोस्वामीजी ने व्यावहारिक गुरु बताया है । वे शिष्य से कहते हैं – 'मेरे लिए भोजन लाओ, कपड़ा लाओ, पैसा लाओ, भोग लाओ ।' ये लोकनीति की बातें हैं । जीव गोस्वामीजी कहते हैं कि भगवान् के पक्षपात के कारण व्यावहारिक जो गुरु हैं, उनके वचन को तोड़ना, यह अपमान दोष नहीं करता है ।

ऐसा इसलिए है क्योंकि पाँचवें स्कन्ध में ऋषभ भगवान् ने कहा है –

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥

(श्रीभागवतजी - ५/५/१८)

वह गुरु 'गुरु' नहीं है, जो भवसागर से छूटने के लिए भक्तिमार्ग नहीं सिखाता है । अतः बृहस्पतिजी ने गुरु अपमान से जो बलि के नाश की बात कही है, वह केवल व्यवहार दृष्टि से कही है । चूँकि गुरु का अपमान गम्भीर विषय है अतः सभी आचार्यों ने इस श्लोक

(८/१५/३१) का रहस्य खोला है । दूसरे आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी और आगे बढ़कर कहते हैं –

वस्तुतस्तु विष्णुभक्त्यनुकूलः स विप्रावमानस्तस्य महाकीर्तिस्वर्गाधिकसुतलभोगद्वारपालीकृतविष्णुत्वभाविमन्वंतरेन्द्रत्वाद्यर्थमभूदिति ज्ञेयम् ।

राजा बलि ने जो विप्र गुरु का अपमान किया, वह ठीक किया, विष्णु भक्ति के अनुकूल किया क्योंकि गुरु के अपमान के बाद क्या हुआ, यह विचार करके स्वयं देखो कि राजा बलि की महाकीर्ति हुई । उन्होंने भगवान् को त्रिलोकी का दान किया, स्वर्ग से अधिक वैभवशाली सुतललोक का उन्हें राज्य मिला । इसके साथ ही भगवान् उनके द्वारपाल बन गये । व्यावहारिक गुरु के अपमान से राजा बलि को यह लाभ मिला । इसके अतिरिक्त भावी मन्वन्तर में वे इन्द्र बनेंगे । व्यावहारिक गुरु के अपमान से उन्हें यह लाभ मिला ।

इसलिए व्यवहार दृष्टि से बृहस्पतिजी ने कहा कि बलि के हाथ से स्वर्ग का राज्य चला जायेगा, इतना ही नुकसान होगा । किन्तु यह भी नुकसान कहाँ, भावी मन्वन्तर में वे पुनः इन्द्र बनेंगे तो स्वर्ग का राज्य उन्हें फिर से मिल जायेगा ।

बृहस्पतिजी ने इन्द्र से कहा कि जब तक यह अपने गुरु का अपमान नहीं करेगा तब तक तुम इसे जीत नहीं सकते । अतः स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाले सभी देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये । उन्होंने कहा कि अब तो यहाँ से भाग चलो क्योंकि बलि को कोई जीत नहीं सकता । जब तक यह अपने गुरु का अपमान करेगा तब तक हम लोगों को छिपकर रहना होगा । इस तरह अपना समय व्यतीत करना होगा ।

देवताओं के छिप जाने पर बलि ने स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया तथा तीनों लोकों को फिर से जीत लिया । तब उनके

गुरुओं ने, भृगुवंशियों ने राजा बलि से सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये । उन यज्ञों के प्रभाव से बलि की कीर्ति तीनों लोकों से बाहर भी दसों दिशाओं में फ़ैल गयी और वे नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा के समान शोभित होने लगे ।

अध्याय – १६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! जब देवताओं के हाथ से स्वर्ग का राज्य छिन गया और वे भागकर छिप गये तब देवमाता अदिति को बड़ा दुःख हुआ । एक बार जब बहुत दिनों के बाद उनके पति कश्यप मुनि की समाधि टूटी तब वे अदिति के आश्रम पर आये । उन्होंने देखा कि वहाँ न कोई उत्सव है, न आनन्द है, उदास सा आश्रम पड़ा है, ठीक से उसकी सफाई भी नहीं की गयी है । कश्यपजी ने अदिति से पूछा – 'देवि ! कोई अभद्र तो नहीं है ?'

घर में जो सत्स्त्री होती है, उसे एक तरह का योग माना गया है । लोग कहते हैं कि शास्त्रों में स्त्री की बहुत निन्दा की गयी है किन्तु कई जगह उनकी प्रशंसा भी बहुत की गयी है ।

यहाँ कश्यपजी अदिति से कहते हैं –

अपि वाकुशलं किञ्चिद् गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१६/५)

गृहमेधिनी के संयोग से गृहस्थ में योग की प्राप्ति सहज में हो जाती है । यदि घर में स्त्री भक्त हो, हर समय प्रभु की अनुगामिनी हो तो घर क्या, वह तो मन्दिर बन गया, सारे योग वहीं प्राप्त हो जाते हैं ।

परन्तु ऐसा बड़ा कठिन है क्योंकि अधिकतर स्त्रियाँ मायारूपिणी होती हैं ।

कश्यपजी बोले – 'ऐसा लगता है कि तुमने किसी अतिथि का निरादर किया है या तुमसे अग्निहोत्र आदि में कोई त्रुटि हो गयी है । हे मनस्विनी ! ऐसा लगता है कि अपने पुत्रों के कारण तो तुम्हें कोई शोक नहीं है ?'

अदिति ने कहा – 'महाराज ! सब कुछ ठीक है, मैंने अतिथियों की भी सेवा की है, भिक्षुकों को भी मैं दान देती हूँ । आपने जो धर्म बताया, मैंने उसका पालन किया है । किन्तु दुःख की बात यह है कि मेरे सारे पुत्र ऐश्वर्य, श्री और यश से च्युत हो गये हैं ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब अदिति ने इस प्रकार कहा तो कश्यपजी बोले – 'विष्णुमाया का बल देखो, कौन पुत्र, कौन पिता ? यह शरीर अनात्मा है किन्तु यह जीव शरीर के सम्बन्धों को लेकर ही दुखी होता रहता है । **कस्य के पतिपुत्राद्या** – कौन किसका पति है, कौन किसका बेटा है, देह के सम्बन्ध में ही हर प्राणी फँसा हुआ है । देवि ! जितने भी असम्भव कार्य हैं, वे सब भगवद् भजन से ही होते हैं ।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् – (श्रीभागवतजी - ८/१६/२०)

चाहे भले ही राजा बलि विश्वविजयी होकर इस समय सौ अश्वमेध यज्ञ कर चुके हैं किन्तु तुम सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में विराजमान, अपने भक्तों के दुःख मिटाने वाले जगद्गुरु भगवान् वासुदेव की आराधना करो ।'

कभी भी कोई आपत्ति आये, बीमारी आये, कोई मरे या जिये, भगवान् का भजन करो । रोने- चीखने से क्या होगा ? इससे तो हानि ही होगी, इसके स्थान पर दिन-रात प्रभु का भजन करो । वे भगवान् वासुदेव तुम्हारा मंगल करेंगे ।

अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ।

(श्रीभागवतजी - ८/१६/२१)

चाहे तुम कुछ भी कर लो दुनिया में किन्तु एक ही कार्य अमोघ है, वह है भगवद् भक्ति । जितनी देर हम श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं, वह तो अमोघ है, बाकी सब मोघ है, चाहे बेटा है, चाहे बहू है, चाहे कुछ भी है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'नेतरेति' का अर्थ आचार्यों ने, चाहे वे श्रीधर स्वामी हों तथा राघवाचार्य जी, यही किया है कि जैसे देवान्तर सेवा व्यर्थ हो जाती है, वैसे भगवद्भक्ति व्यर्थ नहीं होती है । अनन्य होकर श्रीकृष्ण भजन करना चाहिए, वह अमोघ है, इतर देवान्तर सेवा मोघ हो जाती है । इसके बहुत से प्रमाण हैं ।

अदितिजी कश्यपजी से बोलीं – 'मैं भगवान् का भजन कैसे करूँ, जिससे वे प्रभु मेरा मनोरथ पूर्ण करें । आप शीघ्र ही मुझे आराधना की वह विधि बताइये, जिससे मेरा कार्य बने क्योंकि मेरे पुत्र तो छिपकर इधर-उधर रह रहे हैं ।'

कश्यपजी ने कहा – देवि ! मैं तुमको बारह दिन का भजन बताता हूँ । इससे शीघ्र ही कार्य सिद्ध हो जायेगा । फाल्गुन अमावस्या के दिन यह व्रत किया जाता है । अमावस्या के दिन वनशूकर की खोदी हुई मिट्टी से अपना शरीर मलकर स्नान करे । उस समय यह मन्त्र कहे । (यह पृथ्वी देवी का मन्त्र है)

'हे देवि ! वराह भगवान् ने रसातल से तुम्हारा उद्धार किया था, तुम्हें मेरा नमस्कार है । तुम मेरे पापों को नष्ट कर दो ।' इसके बाद भगवान् की स्तुति करे –

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१६/२९)

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१६/३०)

इस प्रकार यह भगवान् की स्तुति है ।

हे प्रभो ! आप ही चौबीस तत्त्व हैं । आप यज्ञ रूप हैं । आपके दो सिर हैं – प्रायणीय और उदयनीय ।

आपके तीन पाँव हैं – प्रातः, मध्याह्न और सायं । चार वेद चार सींग हैं ।

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृंगाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१६/३१)

गायत्री आदि सात छन्द ही आपके सात हाथ हैं । आप यज्ञ रूप हैं, आपको नमस्कार है ।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१६/३२)

आप ही लोककल्याणकारी शिव और आप ही प्रलयकारी रुद्र हैं । सब कुछ आप ही हैं । आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ।

नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ।

(श्रीभागवतजी - ८/१६/३४)

आप ही नर-नारायण ऋषि के रूप में प्रकट स्वयं भगवान् हैं । आपको मेरा नमस्कार है ।

आपका श्याम रंग का श्रीविग्रह है । आप ही केशव हैं, पीताम्बरधारी हैं । आपको मेरा बार-बार नमस्कार है । वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ।

इस मन्त्र से अर्चना करके दूध से भगवान् को स्नान करावे । द्वादशाक्षर विद्या का जप करे – ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । गन्ध, माला आदि से पूजा करे और उसके बाद भक्त को भोजन करावे, पीछे स्वयं करे ।

एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करे और स्तुतियों के द्वारा भगवान् का स्तवन करे । इसके बाद देवता का विसर्जन करे, बारह दिन तक ब्रह्मचर्य का पालन करे, यही काम दूसरे दिन भी करे । बारह दिन तक दूध पीकर रहे । इसीलिए इसका नाम पयोव्रत है । यह बारह दिन का व्रत है । फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से लेकर द्वादशी तक यह व्रत करे । इस व्रत को करते समय किसी पर क्रोध न करे । यह आवश्यक है । त्रयोदशी के दिन फिर भगवान् की पूजा करे । इसके बाद ज्ञानसम्पन्न आचार्य को वस्त्र, आभूषण और गौ आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिए । दान तो हर कार्य में आवश्यक है । इसके साथ ही ब्राह्मणों को भी भोजन करावे । भंडारा करे । गुरुजी को दक्षिणा दे और ऐसा नहीं कि केवल ब्राह्मणों को ही भोजन करावे । चाण्डाल आदि जो भी अपने आप आयें हों, उन सबको भोजन देकर सन्तुष्ट करना चाहिए ।

ऐसा भण्डारा न करे, जैसा आजकल साधुओं के यहाँ होता है । जिसको चिट्ठी (निमन्त्रण पत्र) दी गयी, केवल वही भोजन कर सकता है और जिसको चिठ्ठी नहीं मिली, उसे अपमानित करके भगा देते हैं । ये कोई भण्डारे का ढंग नहीं है कि चार आदमी खा रहे हैं और दस का तिरस्कार हो रहा है । पंगत करने की विधि यहाँ दी गयी है –

अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ।

(श्रीभागवतजी - ८/१६/५५)

जो भी वहाँ आ गया हो, चाहे चाण्डाल ही हो, उसे भोजन कराना चाहिए । कुत्ते तक का वहाँ अपमान नहीं होना चाहिये । भण्डारा करने का यह ढंग है । **अन्नाद्येन** – अन्न आदि से मतलब है कि कोई प्यासा है तो उसे जल पिलावे, जिसके पास वस्त्र नहीं है, उसे वस्त्र दे । पैसा क्यों बचाते हो ? जो भण्डारा करा रहा है, वह स्वयं भले न खाए, दूसरों को खिलाता रहे । माँगने वाला जब तक आता रहे तब तक देते जाओ, जब नहीं है तो हाथ जोड़ दो । बचाकर रख रहे हो, दस लोगों को फटकार रहे हो और यदि सौ लोगों को भोजन करा दिया तो इससे क्या लाभ है ? पंगत कराने की विधि कश्यपजी ने यहाँ बताई है कि सबको प्रसन्न करे, कुत्ता तक को तिरस्कृत न करे, जो भी प्राणी वहाँ आये हैं । इसके बाद क्या करें तो कश्यपजी कहते हैं –

'नृत्यवादित्रगीतैश्च' – प्रभु के सामने बाजे-गाजे के साथ नाचे-गाये । इसकी बड़ी महिमा है । भगवान् के सामने नाचो-गाओ, कीर्तन करो । बाजा बजावे, स्तुति करे ।

कश्यपजी ने अदिति से कहा – प्रिये ! इस प्रकार यह पयोव्रत तुम बारह दिन तक करो । राजा बलि ने कई वर्षों तक अपने गुरुजनों की सेवा की है, उसके प्रभाव से उन्होंने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली और तुम्हारे सब पुत्रों को स्वर्ग से भगा दिया । जिनकी कृपा से यह सब हुआ, उन प्रभु को तुम बारह दिन के इस भजन से जीत लोगी । भजन में ऐसी अनन्त शक्ति है ।

इसलिए सबको श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिए । आज सारा संसार दुखी क्यों है ? कृष्ण से विमुख व्यक्ति को कभी सुख नहीं मिल सकता । प्राचीन काल में ब्रज में बहुत अधिक सुख था, इसका कारण यही था कि ब्रजवासी दिन-रात श्रीकृष्ण आराधना करते थे ।

कृष्ण भरोसो छांड़ के करे भरोसो और ।
सुख सम्पति की कहा चली, नरकहु नाहिन ठौर ॥

हम लोग अपने शरीर पर भरोसा करते हैं, अपने स्त्री-पुत्र, कुटुम्ब और धन का भरोसा करते हैं तो सुख-सम्पत्ति की क्या चलाई, नरक में भी ठौर नहीं मिलेगा । इसलिए कृष्ण भरोसा बड़ी चीज है । हम लोग कृष्ण भरोसे से हट चुके हैं । कश्यप जी ने अदिति से कहा – 'तुम मेरी बतायी विधि के अनुसार पयोव्रत करो । भगवान् शीघ्र ही तुम पर प्रसन्न होंगे और वरदान देंगे ।'

अध्याय – १७

शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! अपने पति कश्यपजी के द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर अदिति ने इन्द्रियों का दमन करके बारह दिनों तक इस व्रत का अनुष्ठान किया । तेरहवें दिन भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये । अपनी चार भुजाओं में वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे, शरीर पर सुनहला पीताम्बर था ।

लोग कहते हैं कि स्त्री को साष्टांग प्रणाम नहीं करना चाहिए किन्तु यहाँ शुकदेवजी कहते हैं –

ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ।

(श्रीभागवतजी - ८/१७/५)

प्रभु को देखकर अदिति प्रेम से ऐसी विह्वल हो गयीं कि शरीर से लोटकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया, फिर उठकर खड़ी हुईं और हाथ जोड़ लिए । उनका अंग-अंग पुलकावली से पूर्ण होने के कारण वह चुप हो गयीं और कुछ बोल नहीं सकीं । धीरे-धीरे प्रभु को प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखकर गद्गद् वाणी से उनकी स्तुति करने लगीं ।

अदिति ने कहा – आप यज्ञेश - यज्ञ के स्वामी हैं ।

'श्रवणमङ्गलनामधेय' – आपकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि जो आपका नाम लेता है, वह तो पवित्र होता ही है परन्तु जो नाम का श्रवण करता है, वह भी पवित्र हो जाता है । सबका मूल भगवन्नाम है । भगवन् ! आप दीनों के नाथ हैं, अतः हमारा कल्याण कीजिये ।

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीः
द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१७/१०)

प्रभो ! जब आप प्रसन्न हो जाते हैं तब मनुष्य को ब्रह्माजी की दीर्घ आयु, उनके जैसा दिव्य शरीर, अभीष्ट वस्तु, अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, योग की सभी सिद्धियाँ, अर्थ, धर्म, काम और अनन्त ज्ञान तक प्राप्त हो जाता है, फिर शत्रुओं को जीतना तो छोटी सी बात है ।

शुकदेवजी कहते हैं – जब माता अदिति ने इस प्रकार स्तुति की तो भगवान् ने कहा – हे देवमाता ! मैं तुम्हारी अभिलाषा को जानता हूँ कि शत्रुओं ने तुम्हारे पुत्रों की सम्पत्ति छीनकर उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया है । तुम अपने पुत्रों की विजय देखना चाहती हो परन्तु एक बात अवश्य है कि इस समय तुम्हारे पुत्र असुरों को जीत नहीं सकते हैं क्योंकि – **'यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता'** – इस समय वे ईश्वर और ब्राह्मणों की अनुकूलता के कारण उनसे रक्षित हैं । इस समय यदि उनके साथ लड़ाई की जाएगी तो उन्हें जीता नहीं जा सकता और इससे सुख नहीं मिलेगा । यदि कोई भगवद् भक्ति की आस्था पर स्थित है तो उसको सारा संसार भी जीत नहीं सकता ।

(यह बात अब भी उतनी ही सत्य है, जितनी कि उस काल में थी, किन्तु क्या किया जाए, इस सत्य को देखने हेतु हम लोगों के पास दृष्टि नहीं है, समझने के लिए विवेक नहीं है ।)

ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ।

(श्रीभागवतजी - ८/१७/१७)

इस श्लोक में एक महत्वपूर्ण शब्द है –

'श्रद्धानुरूपम्' – वही कीर्तन हम कर रहे हैं, वही कीर्तन कोई दूसरा व्यक्ति कर रहा है किन्तु उसका फल अलग-अलग मिल रहा है, ऐसा क्यों ? श्रद्धा के अनुरूप अर्चन का फल मिलता है । यह महत्वपूर्ण बात है । श्रद्धा विशेष वस्तु है । जितनी श्रद्धा से सत्कर्म करोगे, उतनी जल्दी आगे बढ़ोगे । अधिक देर तक किया, बारह घंटे किया या ज्यादा जोर से किया, इसका महत्त्व नहीं है, कितनी श्रद्धा से तुमने किया, इसका महत्त्व है । अतः भगवन्नाम कीर्तन श्रद्धा से करो ।

भगवान् ने अदिति से कहा – हे देवि ! तुमने श्रद्धा से मेरा पूजन किया है तो मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा । पुत्र बनकर मैं कोई युक्ति निकालूँगा किन्तु यह बात तुम किसी से कहना नहीं ।

सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् । (श्रीभागवतजी - ८/१७/२०)

गुप्त बात शीघ्र सफल होती है ।

यह बात भगवान् ने सिखाई । संसार में हम लोग अपने पापों को छिपाते हैं और अच्छे कामों को सबको बताते हैं । इसलिए पाप गुप्त रहने के कारण जल्दी फल देता है और पुण्य जिसका हम बाहर प्रचार कर देते हैं, वह फल ही नहीं देता है ।

'सुसंवृतम् सम्पद्यते' – जो चीज ढकी हुई है, गुप्त है, वह फल देती है ।

शुकदेवजी कहते हैं – अदिति से इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । कश्यपजी जान गये कि मेरे अन्दर भगवान् आ गये हैं और मेरे द्वारा अदिति के शरीर में प्रवेश करेंगे । उन्होंने तपस्या के द्वारा चिर-संचित वीर्य का अदिति में आधान कर दिया । भगवान् अब अदिति के गर्भ में प्रवेश कर गये । ब्रह्माजी को जब यह बात मालूम हुई तो वे भगवान् की स्तुति करने के लिए आये । जब भगवान् अवतार लेते हैं तो ब्रह्मादि देव उनकी स्तुति करते हैं ।

ब्रह्माजी ने कहा –

जयोरुगाय भगवन् उरुक्रम नमोऽस्तु ते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१७/२५)

अधिक कीर्ति वाले प्रभु आपकी जय हो । अनन्त शक्तियों के अधिष्ठान ! आपके चरणों में नमस्कार है । ब्रह्मण्यदेव ! त्रिगुणों के नियामक ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१७/२६)

आप पृश्नि के पुत्र हैं । तीनों लोकों से परे वैकुण्ठ में आप निवास करते हैं । यज्ञपशु में भी आप प्रविष्ट हैं । आप ही विष्णु हैं ।

अन्तर्यामी रूप से आप ही काल हैं । जैसे जल में डूबते हुए को नौका का सहारा मिल जाये, वैसे ही हम लोगों के लिए आप ही आश्रय हैं ।

अध्याय – १८

शुकदेवजी कहते हैं – जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की तो अदिति के गर्भ से भगवान् प्रकट हो गये ।

बोलो वामन भगवान् की जय ।

अदिति के सामने भगवान् चतुर्भुज रूप से प्रकट हुए । कमल के समान सुन्दर उनके नेत्र थे, पीताम्बर धारण किये थे । श्याम वर्ण का उनका सुन्दर शरीर था, 'मकराकृति-कुण्डल' उनके मुख की शोभा को और बढ़ा रहे थे, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न, हाथों में कंगन, भुजाओं में बाजूबंद, सिर पर मुकुट, कमर में करधनी और चरणों में सुन्दर नूपुर बज रहे थे । उनके गले में वनमाला थी, जिसके चारों ओर भौंरे गुंजार कर रहे थे । जिस समय भगवान् प्रकट हुए तो प्रजापति कश्यप के घर का अन्धकार नष्ट हो गया और भगवान् की कौस्तुभ मणि के प्रकाश से सारा घर जगमगा उठा । दिशायें निर्मल हो गयीं, नदी और सरोवरों का जल स्वच्छ हो गया । भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को अभिजित मुहूर्त में भगवान् का जन्म हुआ था, उस तिथि को 'विजया द्वादशी' कहते हैं । उनके जन्म के समय सूर्य आकाश के मध्य भाग में स्थित थे । भगवान् के अवतार के समय शंख, ढोल, मृदंग, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे । अप्सराएँ आकाश में नृत्य करने लगीं, गन्धर्व गाने लगे । ऋषि-मुनि भी प्रसन्न हो गये । जब अदिति ने अपने गर्भ से प्रकट हुए भगवान् को देखा तो वे परमानन्दित हो गयीं । प्रजापति कश्यप भी भगवान् को अपनी योगमाया से शरीर धारण किये हुए देखकर आश्चर्यचकित होकर – 'जय हो- जय हो' कहने लगे ।

भगवान् ने अपने उसी चतुर्भुज शरीर से वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया ।

विश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं – **'वामन वपुः'** अर्थात् भगवान् शरीर से बावन अंगुल के, छोटे बन गये । प्रजापति कश्यप ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया । गायत्री के अधिष्ठातृ देवता सविता ने

उन्हें गायत्री का उपदेश दिया, बृहस्पतिजी ने यज्ञोपवीत और कश्यपजी ने मेखला दी । पृथ्वी ने कृष्णमृग का चर्म दिया, चन्द्रमा ने ब्रह्मचारी के लिए दण्ड दिया, माता अदिति ने कौपीन, आकाश ने छत्र, ब्रह्माजी ने कमण्डल, सप्तर्षियों ने कुश और सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला दी, कुबेर ने भिक्षा का पात्र दिया और भगवती उमा ने भिक्षा दी । इस प्रकार भगवान् ब्रह्मतेज से सम्पन्न हो करके अर्थात् उद्धार करके शोभायमान हुए । सम्पन्न तो प्रभु स्वयं ही हैं । इसके बाद भगवान् ने स्थापित और प्रज्वलित अग्नि का कुशों से परिसमूहन और परिस्तरण करके पूजा की और समिधाओं से हवन किया ।

उधर राजा बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों के आदेशानुसार बहुत से अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने सोच लिया कि अब मुझे यज्ञ द्वारा आराधना की दिनचर्या से अलग नहीं होना है ।

जब मनुष्य भजन छोड़ देता है, तभी गिरता है । जब वह भोगों में मस्त होकर प्रभु को भूलता है तभी गिरता है । इसीलिए हमारे शास्त्रों में नित्यकर्म बताया गया है । जो नित्यकर्म नहीं करता, उसे पशु बताया गया है । जो भगवन्नाम जप करके नहीं खाता है, वह शोणित अर्थात् खून पीता है । हम लोग बिना भजन किये जो कुछ भी खाते-पीते हैं, वह चाहे हलुआ है किन्तु वह मल है । इसलिए नित्य नियम करना चाहिए । नित्य नियम करने से नित्य विघ्न टलते हैं । उसी का नाम मनुष्य है, जो नित्य नियम करता है । यह पशु वृत्ति है कि सुबह सोकर उठते ही बिना भजन किये खाना-पीना शुरू कर दिया । इसीलिए तो आजकल सभी लोग तेजहीन हैं । हर मनुष्य को नित्य नियम करना चाहिए । इसीलिए वामन भगवान् भी स्वयं अग्निहोत्र करके चले और वे वहाँ गये, जहाँ राजा बलि यज्ञ कर रहे थे । वामन भगवान् ने सुना कि यजमान बलि बड़ा ही तेजस्वी है और भृगुवंशी ब्राह्मण उससे बहुत से अश्वमेध यज्ञ करा रहे हैं, तब भगवान्

वहीं गये । उनके प्रत्येक कदम से पृथ्वी झुक रही थी । नर्मदा नदी के तट पर 'भृगुकच्छ' नाम का एक बड़ा सुन्दर स्थान है । वहीं राजा बलि यज्ञ कर रहे थे । यज्ञशाला में ऋषि-मुनि और यजमान ने वामन भगवान् को दूर से ही देखा तो उन्हें ऐसा लगा कि बड़ा तेज-पुंज चला आ रहा है । वे लोग ऐसा विचार करने लगे कि ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् सूर्यदेव ही पृथ्वी पर उतरकर यज्ञ देखने आ रहे हैं । दूसरे ऋषि बोले – 'नहीं, ये तो साक्षात् अग्निदेव आ रहे हैं ।' कुछ ऋषि बोले – 'नहीं, ये तो सनत्कुमार आ रहे हैं ।' इस प्रकार वे लोग विचार कर रहे थे क्योंकि भगवान् अद्भुत तेजपुंज को धारण करके वहाँ गये थे । वामन भगवान् यज्ञशाला में प्रवेश कर गये । वहाँ सब लोग उनके तेज से प्रभावित होकर उठकर खड़े हो गये । तेज रुक नहीं सकता है । तेजस्वी व्यक्ति को कोई दुनिया में हरा नहीं सकता है ।

सब लोगों ने देखा कि इस ब्रह्मचारी का जैसा छोटा रूप है, वैसे ही छोटे-छोटे अवयव हैं । उन्हें देखकर बलि को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने वामन भगवान् को एक उत्तम आसन दिया तथा उनके चरण पखारे एवं उनके चरणामृत को मस्तक पर धारण किया, जिसको महादेवजी अपने मस्तक पर धारण करते हैं । राजा बलि ने कहा – 'ब्राह्मण कुमार ! आपका स्वागत है । आप तो साक्षात् तप हैं, आज हमारे पितृश्वर भी तृप्त हो गये, कुल पवित्र हो गया । आज मेरा यज्ञ सफल हो गया । बताइये, मैं आपको क्या दूँ ? मैं समझ रहा हूँ कि आप कुछ लेने के लिए आये हैं । गाय, सोना, हवेली, विवाह के लिए विप्र कन्या, हाथी, घोड़े, रथ – इनमें से जो भी चाहिए, उसे आप ले लीजिये ।'

अध्याय – १९

शुकदेवजी कहते हैं – राजा बलि के वचन सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए ।

श्रीभगवान् ने कहा – 'राजन्! आपकी वाणी बड़ी उत्तम है और आपकी कुल परम्परा के अनुरूप है।'

अब भगवान् प्रशंसा कर रहे हैं। प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? किसी के पास कोई कुछ माँगने जाये तो उससे मीठी बात कहनी चाहिए। भगवान् यह लोक मर्यादा सिखा रहे हैं कि किसी से कुछ लेने जाओ तो कृतघ्नता नहीं करनी चाहिए जैसे बन्दर को कुछ खिलाने के लिए जाओ तो तुम्हीं को काटने दौड़ेगा, यह कृतघ्नता दोष है।

श्रीधरस्वामीजी अपनी टीका में लिखते हैं – **'दातुः स्तुतिः स्वयं तुष्टिः।'**

दाता की स्तुति करने से स्वयं को भी तुष्टि होती है। स्वयं को तुष्टि इसलिए होती है क्योंकि इससे कृतज्ञता आती है। लेकर घुर्राना – यह तो बंदर का लक्षण है। किसी से कोई चीज लो तो उसकी प्रशंसा करो। यह चापलूसी नहीं है। एक अन्य आचार्य लिखते हैं –

'भिक्षुः सुक्षियन् षोडश श्लोकेन आह'

'वामन भगवान्' भिक्षुक को सोलह श्लोकों में शिक्षा दे रहे हैं कि किसी से कुछ लेने जाओ तो ऐसा बोलना सीखो, यह धर्म है।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी लिखते हैं –

दातुः स्तुतिं स्वल्पयाञ्चां सन्तोषव्यञ्जनां धृतिं भिक्षून् बहुतरं लिप्सून् शिक्षयन्नाह वामनः।

वामन भगवान् भिक्षुक को, जो कुछ लेने जा रहा है, तीन-चार बातें सिखा रहे हैं। पहली बात कि दाता की स्तुति करो और थोड़ा माँगो, जैसे वामन भगवान् ने तीन पग पृथ्वी माँगी। थोड़ा लेकर सन्तोष करो जैसे उन्होंने सन्तोष किया।

बहुत माँगने वाले भिक्षुकों को भगवान् सिखा रहे हैं। वामन भगवान् राजा बलि से बोले – 'आपके कुल में ऐसा कोई भी नहीं हुआ,

जिसने किसी याचक को खाली हाथ लौटाया हो । युद्ध से पाँव पीछे हटा लिया हो, ऐसा भी कोई आपके कुल में नहीं हुआ । दान देने से कोई पीछे हटा हो, ऐसा भी आज तक कोई नहीं हुआ । तुम्हारा प्रपितामह हिरण्याक्ष, जिसको विष्णु भगवान् ने शूकर रूप से मारा तो जब-जब उन्हें (विष्णु को) हिरण्याक्ष की याद आती तो वे अपने को विजयी नहीं मानते थे । उसे जीतने के बाद भी अपने को विजयी नहीं मानते थे, वह इतना बली था । तुम्हारे जो निजी परबाबा हिरण्यकशिपु थे, वे एक बार विष्णु को मारने के लिए वैकुण्ठ गये तो विष्णु मायावियों में श्रेष्ठ हैं, वे डर गये और विचार करने लगे कि मैं जहाँ-जहाँ भागूँगा, वहाँ-वहाँ यह मेरा पीछा करेगा, इसलिए मैं इसके हृदय में घुस जाता हूँ क्योंकि यह बहिर्मुखी है, बाहर की वस्तुयें ही देखता है ।

(हम लोग असुर ही हैं । जो इन्द्रियों के भोगों में रमण करते हैं, वे असुर हैं । वे लोग अन्तर्मुख नहीं होते हैं । बाहर तो उनमें बड़ी शक्ति होती है किन्तु अपने भीतर वे नहीं जा पाते ।)

इसीलिए भगवान् ने सोचा कि मैं हिरण्यकशिपु के हृदय में जा बैठता हूँ, ऐसा विचारकर विष्णु अपने को सूक्ष्म बनाकर उसकी साँस के द्वारा नाक में से होकर उसके हृदय में जा बैठे । किन्तु वहाँ भी वे डर रहे थे कि कहीं यहाँ भी कोई गड़बड़ी न हो जाये । हिरण्यकशिपु ने वैकुण्ठ में विष्णु को बहुत ढूँढ़ा किन्तु कहीं भी न मिलने पर वह बहुत क्रोधित हुआ और सिंहनाद करने लगा । उसने विष्णु को सभी लोकों में ढूँढ़ा किन्तु कहीं भी नहीं पा सका । वह बोला – 'मैंने विष्णु को पूरे ब्रह्माण्ड में देख लिया किन्तु ऐसा लगता है कि मेरे भाई को मारने वाला विष्णु उस लोक में चला गया, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं है । वैर तो शरीर से ही होता है, जब उसका शरीर ही समाप्त हो गया तो अब उससे क्या वैर करना ।'

ये बातें वामन भगवान् ने स्वयं कही हैं । इसके ऊपर भागवत के टीकाकार आचार्यों ने टिप्पणी की है । वे कहते हैं कि भगवान् कोई गलत बात तो कहते नहीं हैं । तो क्या विष्णु सच में ही हिरण्यकशिपु से डर गये थे ? श्लोक ८/१९/१० में शब्द है – **'विविग्नचेताः'** – इसका अर्थ आचार्य करते हैं – ऐसा चित्त जो हिल गया हो । **'अतिकम्पितचेताः'** । आचार्य कहते हैं कि क्या विष्णु का चित्त भय के कारण हिल गया था । चित्त उनका हिला अवश्य था किन्तु भय के कारण नहीं ।

अपनी टीका 'अन्वितार्थ प्रकाशिका' में एक आचार्य अर्थ करते हैं –

अनुकम्पितचित्त इति वास्तवोऽर्थः ।

भगवान् का चित्त हिरण्यकशिपु के प्रति भी कृपा से भर रहा था । भगवान् सदा कृपा करते हैं । उन्होंने सोचा कि यह भी मेरा पार्षद है और उधर प्रह्लाद भी मेरा भक्त है । अतः भगवान् का चित्त तो सदा कृपा से ही आन्दोलित होता है । इसलिए भगवान् तो सदा सच ही बोलते हैं, झूठ नहीं बोलते हैं ।

अन्य वैष्णवाचार्य कहते हैं कि बात क्यों बदलते हो, स्पष्ट कह दो कि भगवान् डर गये तो इसमें क्या बुराई है ? यह तो भगवान् की लीला है, भगवान् तो लीला में सब जगह डरते ही हैं । यशोदा मैया ने माटी खाने पर धमकाया तो बोले – **नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।** (श्रीभागवत-१०/८/३५)

'अरी मैया ! मैंने माटी नहीं खायी है । ये सब झूठ बोल रहे हैं ।' ऐसा कहकर वे भय से काँपने लगे । अब इसमें क्या बुराई है, लीला दृष्टि से यहाँ वे डर गये ।

विश्वनाथचक्रवर्तीजी लिखते हैं –

इतिवद्भगवतो मृषोक्तेरपि वास्तवत्वात् ध्यानादिभिस्तत्पदप्राप्तिसाधनत्वादात्मारामैरप्यास्वा द्यमानत्वात् वास्तवार्थव्याचिख्या सा नेष्टा ।

भगवान् ऐसा क्यों करते हैं, इसलिए करते हैं कि उनकी ऐसी लीला को देख-सुनकर आत्मारामगण, जो भक्त होते हैं, वे बड़े आनन्दित होते हैं । जो मूर्ख होते हैं, वे भगवान् की लीला से मोहित हो जाते हैं ।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

भगवान् की भयभीत होने की लीला का आत्माराम भी आस्वादन करते हैं और उसका ध्यान करते हैं –

'वाह-वाह ! यशोदा मैया डंडा लेकर खड़ी हैं और प्रभु डर रहे हैं, उनकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं । भय के कारण ऊपर मुख करके देख भी नहीं रहे हैं ।'

विश्वनाथ चक्रवर्तीजी कह रहे हैं –

मिथ्याभयलोभकामक्रोधादयो दोषा हि जीव एव, भगवति तु भक्तवात्सल्यादिरसपुष्ट्यर्थं महागुणायन्त इत्यतः ।

यहाँ वास्तव में भगवान् में भय नहीं है क्योंकि भय तो जीव में होता है । वही क्रोध, वही भय, जीव में तो दोष हो जाते हैं किन्तु भगवान् की लीला में यही क्रोध व भय आदि रस की पुष्टि करते हैं । ये ही दोष रस बन जाते हैं । चोरी हम लोगों के लिए दोष है किन्तु कन्हैया की माखन चोरी रस बन जाती है । संसार उसको गा-गाकर रस लेता है । इस लीला से भक्त प्रेम में डूब जाते हैं । इसलिए भगवान् भी भय की लीला करते हैं रस के लिए, रस बढ़ाने के लिए ।

अब इधर वामन भगवान् राजा बलि से बोले – 'राजन् ! प्रह्लाद जी के पुत्र और तुम्हारे पिता विरोचन भी कितने बड़े दाता थे कि

उन्होंने अपनी आयु भी माँगने पर देवताओं को दे दी । देवता लोग ब्राह्मण बनकर उनकी आयु माँगने आये थे तो उन्होंने अपनी आयु उन्हें दे दी ।' इस प्रकार जब वामन भगवान् ने राजा बलि की बहुत प्रशंसा की तो उन्होंने पूछा कि आपको क्या चाहिए ? वामन भगवान् बोले – 'मैं तो अपने छोटे-छोटे पाँवों से केवल तीन डग पृथ्वी माँगता हूँ किन्तु ये तीन डग मैं अपने पाँवों से ही नापूँगा, किसी दूसरे के पाँव की नपी हुई भूमि नहीं लूँगा । ऐसा मैं इसलिए माँग रहा हूँ क्योंकि तीन डग में मैं आराम से बैठ लूँगा, उस पर एक छतरी सी तानकर उसके नीचे बैठकर भजन कर सकता हूँ ।

नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ।

(श्रीभागवतजी - ८/१९/१७)

अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु की जो मनुष्य कामना करता है, वह पाप करता है । मैं पाप से डरता हूँ । मुझे तीन डग पृथ्वी की ही आवश्यकता है तो मैं इतनी ही लूँगा । इससे मुझे पाप नहीं लगेगा ।'

राजा बलि ने कहा – 'ब्राह्मण कुमार ! तुम अभी बच्चे ही हो, इसीलिए तुम्हारी बुद्धि अभी नासमझी की ही है । तुम अपने स्वार्थ को नहीं जानते हो । मेरे जैसे दाता को पाकर तुम यदि सारा जम्बू द्वीप माँगते तो वह भी मैं तुम्हें दे देता, कुछ भी माँग लेते । तुम क्या माँग रहे हो, फिर से सोच लो ।'

भगवान् ने कहा –

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठाः त्रिलोक्यां अजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१९/२१)

त्रिलोकी के जितने भी विषय हैं, ये एक मनुष्य को भी तृप्त नहीं कर सकते हैं, यदि वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला सन्तोषी न हो ।

बचपन से ही मनुष्य अपनी जीभ को तृप्त करने में लगा रहता है, खट्टा-मीठा खाता रहता है किन्तु जीभ कभी तृप्त नहीं होती है । ज्यों-ज्यों मनुष्य बूढ़ा होता है, उसकी कामना और अधिक बढ़ती जाती है ।

भगवान् ने कहा – जो थोड़े में सन्तुष्ट नहीं होता है, उसे नौ वर्षों से युक्त एक द्वीप भी दे दिया जाये तो भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता । क्योंकि उसके मन में सातों द्वीप पाने की इच्छा बनी ही रहेगी । उसको सन्तोष नहीं होगा ।

(बहुत से लोग सोचते हैं कि हम बहुत धन संग्रह कर रहे हैं, इसलिए हम बड़े बुद्धिमान हैं ।)

भगवान् कहते हैं कि जितने भी धन का संग्रह करने वाले व्यक्ति हैं, ये तेजस्वी नहीं हो सकते हैं, माल खाकर मोटे हो जाना अलग बात है । तेज तो एक अलग वस्तु है, तेजस्वी होना अलग बात है । संग्रही आदमी के पास तेज नहीं रह सकता । यह निश्चय समझ लो ।

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१९/२४)

प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाए, उसी से सन्तुष्ट रहने वाला पुरुष अपना जीवन सुख से व्यतीत करता है परन्तु अपनी इन्द्रियों को वश में न रखने वाला तीनों लोकों का राज्य पाने पर भी दुखी ही रहता है ।

राजन् ! तृष्णा का कोई अन्त नहीं है और सन्तोष से मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुः असन्तोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/१९/२५)

धन और भोगों से सन्तोष न होना ही जीव के जन्म-मृत्यु के चक्कर में गिरने का कारण है तथा जो कुछ प्राप्त हो जाये, उसी से सन्तुष्ट रहना ही मुक्ति का कारण है ।

ब्राह्मण का तेज तो संतोष है । उसके असंतोषी हो जाने पर उसका तेज वैसे ही शांत हो जाता है जैसे जल से अग्नि । इसलिए मैं आपसे केवल तीन पग भूमि ही माँगता हूँ ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् के इस प्रकार कहने पर राजा बलि हँस पड़े । उन्होंने कहा – 'अच्छी बात है, जितनी तुम्हारी इच्छा हो, उतनी भूमि ले लो ।' ऐसा कहकर वामन भगवान् को तीन पग पृथ्वी का संकल्प करने के लिए उन्होंने जल पात्र उठाया । शुक्राचार्यजी जान गये कि ये भगवान् विष्णु हैं और मेरा शिष्य इनके चक्कर में आ गया है । भगवान् अब इससे ताकत से तो लड़ नहीं सकते, इसलिए भीख माँगने चले आये हैं ।

शुक्राचार्यजी ने कहा – विरोचन कुमार ! ये स्वयं भगवान् विष्णु हैं । ये कश्यप की पत्नी अदिति से उत्पन्न हुए हैं और यहाँ देवताओं का काम बनाने के लिए आये हैं । तुमने यह अनर्थ तो जाना ही नहीं कि मेरा ये सब कुछ छीन लेंगे, इन्हें दान देने की प्रतिज्ञा कर ली है । अब मैं समझ गया कि दैत्यों का कल्याण नहीं होने वाला है । ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और कीर्ति – सब कुछ तुमसे छीनकर इन्द्र को दे देंगे । ये तो अपनी माया से छोटा सा बौना बच्चा बनकर आये हैं । मूर्ख ! जब तुम अपना सब कुछ इनको दे दोगे तो तुम स्वयं कहाँ रहोगे ? अपना जीवन निर्वाह कैसे करोगे ? ये तीन पग पृथ्वी क्यों

माँग रहे हैं ? एक पग से तो ये सारी पृथ्वी नाप लेंगे, दूसरे पाँव से स्वर्ग को नाप लेंगे और आकाश को तो ये अपने शरीर से नाप लेंगे तब इनका तीसरा पाँव कहाँ जायेगा ? इनका तीन पग तो पूरा ही नहीं होगा । ऐसी दशा में तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करने के कारण नरक में ही जाओगे । दान तो ऐसा देना चाहिए जिससे अपना जीवन निर्वाह ठीक-ठीक चलता रहे । शुक्राचार्यजी कह रहे हैं कि मनुष्य को अपने धन को पाँच भाग में बाँटना चाहिए । मान लो तुम्हारी आय एक हजार रुपया मासिक है तो दो सौ रुपए के पाँच भाग बना लो । एक हिस्सा तो घर में लगाओ, एक हिस्सा यश में लगाओ, एक हिस्सा अर्थ पैदा करने में, एक अपने भोग के लिए और एक हिस्सा स्वजनों के लिए लगाओ ।

हालाँकि आजकल के लोग तो अपने माता-पिता की भी सेवा नहीं करते, स्वजन की सेवा कौन करेगा ? यदि कोई बड़भागी पुरुष अपने माता-पिता की सेवा करता भी है तो स्त्री तुरन्त ही विरोध करेगी । अपने भाई-बहनों के लिए पुरुष धन खर्च करता है तब भी स्त्री विरोध करती है । यह अधर्म स्त्रियाँ ही सिखाती हैं ।

शुक्राचार्यजी कहते हैं कि इस प्रकार अपने धन को पाँच भागों में जो बाँट देता है, वही लोक और परलोक में सुखी होता है । कोई दान माँगने आता है तो उसे 'हाँ' कहना सत्य है और दान के लिए 'न' कहना असत्य है । परन्तु अगर वृक्ष जड़ से कट गया तो फल कहाँ से देगा, इसलिए 'हाँ, मैं दूँगा' – यह वाक्य ही धन को दूर हटा देता है । इसलिए इसका उच्चारण ही अपूर्ण अर्थात् धन से खाली कर देने वाला है । यही कारण है कि जो पुरुष 'हाँ, मैं दूँगा' – ऐसा कहता है, वह धन से खाली हो जाता है । जो याचक को सब कुछ देना स्वीकार कर लेता है, वह अपने लिए भोग की कोई सामग्री नहीं रख सकता है । इसके विपरीत 'मैं नहीं दूँगा' – यह जो अस्वीकारात्मक असत्य है, वह अपने धन को सुरक्षित तथा पूर्ण करने वाला है और जो

सबसे अस्वीकार करके 'नहीं दूँगा' - ऐसा वाक्य बोलता है, उसकी अपकीर्ति हो जाती है । वह तो जीवित रहने पर भी मृतक के समान ही है । यह शुक्राचार्य जी ने वेद के हिसाब से बताया है । वेद में ऐसी श्रुतियाँ हैं कि वृत्ति के अनुसार दान दो ।

शुक्राचार्यजी बलि से कहते हैं कि यदि तुम सोचते हो कि मैं इस ब्राह्मण को दान देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, अब झूठ कैसे बोलूँ तो इतनी जगह झूठ बोलना अधर्म नहीं है । स्त्रियों के साथ झूठ बोलना चाहिए क्योंकि पुरुष यदि वेतन लेकर आया है और उसकी स्त्री कहती है कि मेरे लिए सोने के कुण्डल बनवा दो । यदि पुरुष कहता है कि हाँ, मेरे पास पैसा है तो कुण्डल बनवाना ही पड़ेगा । इस तरह महीने भर का वेतन कुण्डल बनवाने में ही खर्च हो जायेगा । इसलिए वहाँ झूठ बोलना पड़ेगा कि मेरे पास पैसा नहीं है क्योंकि स्त्री में विवेक तो होता नहीं है । इसी प्रकार विवाह में, प्राण संकट में, गौ और ब्राह्मण के हित के लिए भी झूठ बोलना चाहिए । जहाँ गौ-वध हो रहा हो, वहाँ गौ की रक्षा के लिए झूठ बोल देना चाहिए । अपनी वृत्ति (जीविका) के लिए भी झूठ बोलना चाहिए, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए, हास-परिहास में भी झूठ बोलना निन्दनीय नहीं है ।

अध्याय – २०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजन् ! जब गुरु शुक्राचार्य ने इस प्रकार कहा तो राजा बलि चुप हो गये कि यह कैसी घड़ी आ गयी, इधर कुआँ, उधर खाई । एक तरफ गुरु, एक तरफ भगवान्, अब मैं क्या करूँ ?

राजा बलि चुप क्यों हो गये तो विश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं –

क्षणं तूष्णीमिति भगवदिच्छाप्रातिकूल्ये कुतो गुरोर्गुरुत्वमतोऽस्याज्ञालङ्घने न दोष इति निश्चकायेति भावः ।

राजा बलि चुप इसलिए हुए क्योंकि वह विचार करने लगे कि इधर तो गुरु की आज्ञा है और उधर भगवद् इच्छा है दान देने की, अब मैं क्या करूँ ? एक क्षण में ही उन्होंने सोच लिया कि यहाँ गुरु की आज्ञा तोड़ने में कोई दोष नहीं है । यह थोड़ी ही देर में उन्होंने निश्चय कर लिया क्योंकि गुरुदेव भगवद् इच्छा के प्रतिकूल चला रहे थे । यह इनका गुरुपन नहीं है । गुरु वही है, जो सदा शिष्य को भगवान् के सम्मुख करे ।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताय ॥

गुरु तो हमेशा यही कहेगा कि गोविन्द की ओर चलो । उसी का नाम गुरु है । इसलिए चुप रहकर थोड़ी देर में राजा बलि ने कुछ सोचा और फिर अपने गुरु से बोले –

'धर्मोऽयं गृहमेधिनाम्' (श्रीभागवतजी - ८/२०/२)

आपने जो धर्म बताया है, यह गृहस्थियों के लिए है । (राजा बलि भागवत धर्म के अनुसार बोल रहे हैं, गृहस्थ धर्म अलग है ।) मैं सब कुछ सह सकता हूँ किन्तु झूठ नहीं सह सकता ।

यद् यद्धास्यति लोकेऽस्मिन् संपरेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२०/६)

ये धनादि आज नहीं तो कल अवश्य छूटेंगे, फिर मैं इन्हें आज ही क्यों न छोड़ दूँ ।

तुलसीदासजी ने भी लिखा है –

अंतहि तोहे तजेंगे पामर, तू न तजे अबही ते ।

अरे नीच ! दुनिया की ये चीजें तुझे छोड़ने वाली हैं, इसलिए तू इन्हें पहले ही क्यों नहीं छोड़ देता ?

राजा बलि कहते हैं – दधीचि, शिबि आदि महापुरुषों ने अपने परम प्रिय प्राणों का दान करके भी प्राणियों की भलाई की है, फिर पृथ्वी आदि वस्तुओं को देने में सोच-विचार करने की क्या आवश्यकता है ?

(यहाँ शिष्य अपने गुरु को ज्ञान दे रहा है) जिन पराक्रमी दैत्यराजों ने इस पृथ्वी का पहले भोग किया है, उनके लोक-परलोक और स्वयं उनको काल खा गया ।

एक बात बलि ने बहुत महत्वपूर्ण कही कि युद्ध में प्राण छोड़ देना आसान है किन्तु सत्पात्र के प्राप्त होने पर उसे श्रद्धापूर्वक दान करना उससे भी अधिक कठिन है । युद्धवीर से दानवीर को बड़ा माना गया है । इसलिए मैं तो इस ब्रह्मचारी को अवश्य ही दान दूँगा, भले ही यह विष्णु है । नरक हो, चाहे स्वर्ग हो, अब तो मैंने दान देने का इन्हें निश्चय कर लिया है । ये मुझे अधर्म से बाँध लेंगे किन्तु मैं इनका अनिष्ट नहीं चाहूँगा क्योंकि ये मेरे सामने ब्राह्मण रूप में आये हैं ।

जब राजा बलि ने इस प्रकार कहा तो गुरुदेव नाराज हो गये और सोचने लगे कि मेरा शिष्य मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है तो उन्होंने राजा बलि को शाप दे दिया – 'तू है तो अज्ञानी परन्तु अपने को पण्डित मानता है, मेरी उपेक्षा करता है । मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है । तू शीघ्र ही अपनी लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जायेगा ।'

गुरु के शाप देने पर भी चूँकि राजा बलि महान थे, अतः वे सत्य से विचलित नहीं हुए ।

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।

(श्रीभागवतजी - ८/२०/१६)

वे बोले – गुरुदेव ! अब तो मैं इस ब्रह्मचारी को दान अवश्य दूँगा ।

वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/२०/१६)

बलि ने वामन भगवान् की विधिपूर्वक पूजा की और हाथ में जल लेकर तीन पग भूमि का संकल्प कर दिया ।

वृहन्नारदीय पुराण में ऐसी कथा आई है कि शुक्राचार्यजी फिर भी नहीं माने और राजा बलि जिस कमण्डल के जल से संकल्प लेने जा रहे थे, उसके भीतर सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर गये ताकि संकल्प का जल नीचे न गिरे तो वामन भगवान् ने कुशा लेकर कमण्डल की टोंटी में घुसा दिया, उससे शुक्राचार्यजी की एक आँख फूट गयी । राजा बलि की स्त्री विन्ध्यावली उनसे कम भक्त नहीं थी, वह उनसे भी आगे थी ।

विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैमं अवनेजन्यपां भृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२०/१७)

विन्ध्यावली, जो दिव्य आभूषणों से सुसज्जित थी, वह अपने हाथों से वामन भगवान् के चरण पखारने के लिए जल से भरा सोने का कलश लेकर आई ।

आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ।

(श्रीभागवतजी - ८/२०/१७)

आचार्य लिखते हैं कि विन्ध्यावली ने सोने का कलशा दासी से नहीं मँगाया, वह महारानी होकर भी स्वयं दौड़कर जल का कलशा भरकर लायीं कि मेरे हाथ का जल सन्तों को अर्पित किया जाए ।

श्लोक '८/२०/१७' में 'विन्ध्यावली' को जालकमालिनी कहा गया है । एक आचार्य ने जालकमालिनी का अर्थ किया है – प्रेम के कारण उनकी आँखों से इतने आँसू गिरे कि आँसुओं का जाल छा गया । उन्होंने सोचा कि हमारे घर स्वयं विष्णु भगवान् भिक्षा माँगने आये, आज तक ऐसी घटना कभी नहीं हुई कि स्वयं भगवान् किसी के घर भीख माँगने जायें । इसलिए उनकी आँखों से इतने आँसू बहे कि आँसुओं की माला बन गयी । सिर पर जल से भरा सोने का घड़ा रखा हुआ है और आँखों में आँसुओं की माला पहने हुए अपने पतिदेव से कहती है – 'यह लीजिये जल और इन ब्रह्मचारीजी के चरणकमल पखारिये ।' वास्तव में स्त्री हो तो उनके जैसी हो । नहीं तो और कोई स्त्री होती तो अपने पति से कहती कि त्रिलोकी का दान किये दे रहे हो, थोड़ा धन अपने बेटा-बेटी के लिए भी तो रखो । तुम कहाँ रहोगे और मैं कहाँ रहूँगी ?

बलि ने स्वयं बड़े आनन्द से भगवान् के सुन्दर छोटे-छोटे चरणों को धोया और उनके चरणों का वह विश्व को पवित्र करने वाला जल अपने सिर पर चढ़ाया । गंगाजी विश्व को बाद में मिलीं, पहले राजा बलि को मिलीं । ब्रह्माजी भगवान् के चरण पीछे धोयेंगे, पहले बलि ने उनके चरणों को धोया । उस समय आकाश में स्थित देवता, गन्धर्व, सिद्ध-चारण आदि सभी लोग इस दृश्य को देख रहे थे और उनकी प्रशंसा करते हुए उन पर दिव्य पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । देवता सोचने लगे चाहे हम इन्द्र हैं या अन्य कोई देव किन्तु यह सौभाग्य तो आज तक हम लोगों को भी नहीं मिला कि भगवान् स्वयं भिक्षुक बनकर खड़े हैं । देवता लोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे और कहने लगे –

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिम्पूरुषकिन्नरा जगुः ।

मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करम्
विद्वानदाद् यद् रिपवे जगत्त्रयम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२०/२०)

राजा बलि की तरह मनस्वी कोई नहीं है, इन्होंने जानबूझकर अपने शत्रु को तीनों लोकों का दान कर दिया ।

जब बलि ने त्रिलोकी दान करने का संकल्प कर लिया, उसी समय वामन भगवान् का रूप बढ़ने लगा । वह यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशायें, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि – सब के सब उसी में समा गये । भगवान् के इस विशाल रूप को सभी लोग आश्चर्य से देखने लगे ।

भगवान् के इस विराट शरीर में रसातल, पृथ्वी, संध्या, आकाश, सातों समुद्र, धर्म, चन्द्रमा, लक्ष्मी, साम आदि वेद और समस्त देवता, बादल, सूर्य, अग्नि, वरुण, काल, दिन-रात आदि सब दिखाई पड़े । भगवान् के समस्त अस्त्र भी उनके पास आ गये । अब भगवान् ने अपना कदम बढ़ाया । एक पग से उन्होंने सारी पृथ्वी नाप ली, शरीर से आकाश नाप लिया, जितनी दिशायें हैं, सब अपनी भुजाओं से नाप लीं । दूसरे पैर से उन्होंने स्वर्ग नाप लिया । भगवान् का वह पग ऊपर की ओर बढ़ता गया । तीसरा पैर रखने के लिए कोई जगह नहीं बची ।

अध्याय – २१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् का चरणकमल सत्यलोक में पहुँच गया । ब्रह्माजी ने उस चरणकमल को देखा । भगवान् के चरणों के नखचन्द्र की छटा से सत्यलोक की आभा फीकी पड़ गयी । सत्य लोक में रहने वाले समस्त ऋषि मरीचि, सनकादि आदि भगवान् के चरणकमल की अगवानी के लिए दौड़े । वेद, उपवेद और पुराण-

संहिताएँ ब्रह्मलोक में मूर्तिमान होकर निवास करते हैं, इन सबने भगवान् के चरण की वन्दना की । ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु से जल निकाला और भगवान् के चरणकमलों को धोया । ब्रह्माजी के कमण्डलु का वही जल भगवान् के पाँव पखारने से पवित्र होने के कारण गंगाजी बन गया । वे ही गंगा आकाश मार्ग से पृथ्वी पर गिरकर तीनों लोकों को पवित्र करती हैं । गंगाजी के तीन नाम हैं – पाताल लोक में इन्हें भोगवती कहा जाता है, स्वर्ग में इनका नाम मन्दाकिनी और पृथ्वी पर इन्हें गंगा कहा जाता है । गंगा का अर्थ क्या है ? 'गम्' धातु से गंगा शब्द बना है । **'गमयति प्रेषयति सर्वान् विष्णुलोकं इति गंगा'** – जो सबको विष्णुलोक भेजती हैं, उन्हें गंगा कहते हैं ।

इधर जाम्बवानजी ने सब दिशाओं में भेरी बजाकर भगवान् की विजय की घोषणा की ।

दैत्य लोग भगवान् से नाराज हो गये । वे बोले कि यह तो ब्राह्मण नहीं, विष्णु है, इसने हमारे स्वामी राजा बलि के साथ छल किया, इसलिए हम लोगों को अपने इस शत्रु को मार डालना चाहिए । ऐसा कहकर असुर भगवान् को मारने के लिए टूट पड़े । तब भगवान् के पार्षदों ने उन्हें रोक दिया । राजा बलि ने असुरों से कहा कि अब समय हमारे अनुकूल नहीं है । काल भगवान् अब हमारे विपरीत हो गये हैं । मनुष्य किसी भी साधन से काल पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता । जब दैव हमारे अनुकूल होगा तब हम लोग विजय प्राप्त करेंगे । इसलिए अब तुम लोग काल की प्रतीक्षा करो । जब राजा बलि ने असुरों को इस प्रकार समझाया तब वे सब रसातल में चले गये ।

अब इधर भगवान् ने गरुड़जी को बुलाया और उनके हृदय की बात जानकर गरुड़जी ने वरुण के पाशों से बलि को बाँध दिया । उस

दिन उनके अश्वमेध यज्ञ में सोमपान होने वाला था । जब भगवान् ने बलि को इस प्रकार बँधवा दिया तो तीनों लोकों में लोग 'हाय-हाय' करने लगे । सब लोग कहने लगे कि यह तो बड़े अन्याय की बात है ।

राजा बलि के इस महान दान के कारण ही 'बलिदान' शब्द बना है । ऐसा दान आज तक किसी ने नहीं दिया । लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने बलिदान कर दिया अर्थात् बलि जैसा दान कर दिया । लोग 'बलिदान' कहते हैं किन्तु इसका अर्थ नहीं जानते । 'बलिदान' का अर्थ है राजा बलि जैसा दान । ऐसा दान न आज तक किसी ने दिया, न भविष्य में कोई देगा । तीनों लोकों के लोग कहने लगे कि इतने बड़े त्रिलोकी के दाता बलि को भगवान् ने वरुणपाश से बँधवा दिया । इसलिए हाहाकार मच गया ।

जब सब जगह हाहाकार मच गया तो भगवान् ने सोचा कि इन लोगों को समझाना पड़ेगा कि मैंने ऐसा दण्ड क्यों दिया ? इसलिए भगवान् सबको सुनाते हुए राजा बलि से बोले – 'असुर ! तुमने मुझे तीन पग पृथ्वी देने की जो प्रतिज्ञा की थी तो मैंने दो पग तो ले लिए, अब मुझे बताओ कि तीसरा पग कहाँ रखूँ ? जहाँ तक सूर्य की गर्मी पहुँचती है, जहाँ तक नक्षत्रों और चन्द्रमा की किरणें पहुँचती हैं और जहाँ तक बादल जाकर बरसते हैं, वहाँ तक की सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकार में थी, उसको मैंने एक पैर से नाप लिया, दूसरे पैर से स्वर्गलोक नाप लिया, अब तीसरे पग को तुम नहीं पूरा कर पा रहे हो, अतः अब तुम नरक में जाओ ।'

इसीलिए प्रतिज्ञा नहीं करना चाहिए । जो मनुष्य देने की प्रतिज्ञा करके फिर नहीं देता है, वह वास्तव में नरक में जाता है ।

आधुनिक काल में नेता लोग सबसे झूठी प्रतिज्ञा करके हाँ-हाँ कर लेते हैं किन्तु काम किसी का नहीं करते हैं, इसलिए वे पक्के नारकीय होते हैं । राजनीति में यही सिखाया जाता है । प्रयाग

विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र पढ़ाते थे । वे कहते थे कि नेता वही है जो कहता है – 'हाँ, मैं काम कर दूँगा, चिन्ता मत करो ।' जबकि उसे काम कुछ नहीं करना है । इसलिए ऐसे नेता नरकगामी होते हैं । ये कोई नेता नहीं हैं ।

जो मनुष्य वादा करके भी काम नहीं करता, वह नारकीय है, उसे नरक में जाना पड़ता है । आज के युग में प्राचीन काल की धर्म और सत्य पर आधारित संस्कृति समाप्त हो गयी है ।

भगवान् ने राजा बलि से कहा कि अब तुम नरक में जाओ ।

अध्याय – २२

शुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार भगवान् ने राजा बलि का बड़ा तिरस्कार किया और उन्हें धैर्य से विचलित करना चाहा किन्तु वह तनिक भी विचलित नहीं हुए । वह बड़े धैर्य से बोले – 'हे प्रभो ! यदि आप मेरी बात को झूठ मानते हैं तो मैं उसे सच कर दिखाता हूँ । अभी मेरा शरीर तो बाकी है, आप अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रख दीजिये ।'

भक्त से भगवान् कहाँ जीत सकते हैं ? भगवान् को तो अपने भक्त से हारना ही पड़ता है । ब्रज में गोपियाँ श्यामसुन्दर को एक चुल्लू छाछ पर नचाया करती थीं,खेल में ग्वालबाल उन्हें पटक देते थे । भक्त से भगवान् जीत नहीं सकते हैं । इसलिए सब लोग भक्ति करो । भक्ति यही है कि भगवन्नाम कीर्तन करो ।

जय श्रीराधे जय नन्दनन्दन ।

एक होता है 'धन' और एक होता है 'धन का स्वामी' । धन का स्वामी 'धन' से बड़ा माना जाता है । जैसे – किसी के पास एक लाख रुपये हैं तो एक लाख रुपये का स्वामी मनुष्य, उसका शरीर, एक लाख रुपये से बड़ा माना जाएगा । यह एक न्याय है । इसीलिए राजा

बलि ने कहा कि आप अपना तीसरा पग मेरे मस्तक पर रखिये । मैं नरक से नहीं डरता हूँ, अपने राज्य से च्युत होने का भी मुझे कोई डर नहीं है, वरुण पाश में बँधने से भी मुझे कोई डर नहीं है । मैं डरता तो केवल अपनी अपकीर्ति से हूँ कि बलि देने की प्रतिज्ञा करके भी उसे पूरा नहीं कर पाया ।

यहाँ उन्होंने एक बहुत अच्छी बात कही है, इसे हर व्यक्ति को, हर बच्चे को तथा हर शिष्य को समझना चाहिए । राजा बलि कहते हैं –

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/४)

गुरुजन जो दण्ड देते हैं, उसी में शिष्य का कल्याण है और उसे ही मैं प्रशंसनीय मानता हूँ ।

उस दण्ड से जो प्रसन्न होता है, वही शिष्य है और उसी का कल्याण होगा । उस दण्ड से जो दुखी होता, उदास होता है, यह समझना चाहिए कि वह तो संसारी है, परमार्थी नहीं है । राजा बलि कहते हैं कि गुरुजनों का दण्ड, उनकी फटकार ही सबसे बड़ी उपलब्धि है । ऐसा दण्ड माता-पिता, भाई और सुहृद नहीं दे पाते हैं । माता-पिता तो अपनी सन्तान को लाड़ करते हैं, वे उसे फटकार नहीं सकते, दण्ड नहीं दे सकते । मैं इस बात को समझता हूँ कि आप हमारे शत्रु नहीं हैं । ऐसा तो नासमझ लोग कहते हैं । आप तो हमारे परम गुरु हैं । हम लोग जब ऐश्वर्य से अन्धे हो जाते हैं तो हमारे ऐश्वर्य को नष्ट करके हमारी आँख खोलने वाले आप गुरु हैं ।

गुरु किसे कहते हैं ? संस्कृत में 'गु' का अर्थ है अन्धकार, 'गुं रौति' – अन्धकार को जो दूर करता है, वही गुरु है । रुद्र रूप धारण करके हर समय शिष्य को फटकारता है, उसका नाम गुरु है ।

बलि ने कहा – 'भगवन् ! मेरे पितामह प्रह्लादजी की कीर्ति संसार में प्रसिद्ध है । आपने उनके पिता को मारा, फिर भी उन्होंने आपकी भक्ति नहीं छोड़ी, उन्होंने यह निश्चय कर लिया था –

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/९)

जो अन्त में साथ छोड़ देता है, ऐसे शरीर से क्या प्रयोजन है ? धन-सम्पत्ति लेने वाले पुत्रादि स्वजन नामक लुटेरों से भी क्या प्रयोजन है ? **'स्वजनाख्यदस्युभिः'** – यह बड़े आश्चर्य की बात है कि संसार में हर जीव अपने परिवार वालों से प्रेम करता है जबकि ये डाकू हैं । **'किं जायया'** – पत्नी से क्या लाभ है, वह तो जन्म-मृत्यु रूप संसार के चक्र में डालने वाली है । पहली डाकू पत्नी है, पुत्रादि भी डाकू हैं, ये डाकू मनुष्य को सदा ही लूटते रहते हैं । मनुष्य अपनी सन्तान की इच्छा पूर्ति न करे तो नाराज हो जाएगी, स्त्री की इच्छा पूरी न करे तो उसका प्रेम समाप्त हो जायेगा । इन सबकी अपेक्षा अविनाशी वस्तु की प्राप्ति करनी चाहिए ।'

शुकदेवजी कहते हैं – जब राजा बलि इस प्रकार कह रहे थे तो उसी समय वहाँ प्रह्लादजी आ पहुँचे । उन्होंने अपने पौत्र को वरुण पाश में जकड़े हुए देखा । बलि ने भी अपने पितामह प्रह्लादजी को देखा । कमल के समान उनके नेत्र, लम्बी-लम्बी भुजायें थीं, सुन्दर ऊँचे और श्यामल शरीर पर पीताम्बर धारण किये हुए थे । पहले जब कभी प्रह्लादजी राजा बलि के पास आते थे तो वे सोलह उपचारों से उनकी पूजा करते थे किन्तु आज कैसे करते क्योंकि वरुण पाश से

उनके हाथों की उँगलियाँ तक बँधी हुई थीं, इसलिए वे प्रह्लादजी की पूजा नहीं कर सके । उनकी आँखों में आँसू भर आये क्योंकि वे प्रह्लादजी की पूजा नहीं कर पाए । ऐसा मत समझना कि उनका त्रिलोकी का राज्य छिन गया, इसलिए उनकी आँखों में आँसू आये । बलि ने प्रह्लादजी को केवल सिर झुकाकर नमस्कार किया । उन्होंने मन में विचार किया कि देखो, आज मैं इनकी पूजा नहीं कर पा रहा हूँ, यह समय की बात है । लज्जा से बलि ने अपना सिर नीचे कर लिया ।

हम लोग चार पैसा कहीं चढ़ा देते हैं तो गर्व से सिर ऊँचा कर लेते हैं । जबकि त्रिलोकी के दाता होकर भी राजा बलि में दातृत्त्व का अहंकार नहीं था ।

प्रह्लादजी ने वहाँ पहुँचकर भगवान् को प्रणाम किया ।

प्रह्लादजी ने कहा – 'प्रभो ! त्रिलोकी का पद आपने ही बलि को दिया था, आपकी आराधना से इसे यह पद मिला था । इसमें इसकी कोई प्रशंसा नहीं है । आज आपने बड़ी कृपा की, जो यह ऐश्वर्य इससे छीन लिया क्योंकि धन ऐसी वस्तु है कि इससे मोहित होकर मनुष्य कुछ समझ नहीं पाता है ।'

जब प्रह्लादजी इस प्रकार कह रहे थे तो उसी समय राजा बलि की पत्नी रानी विन्ध्यावली वहाँ आयीं । वह सती स्त्री थीं किन्तु सतीत्त्व से भी ऊँचा है भागवत धर्म । विन्ध्यावली ने कहा –

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/२०)

प्रभो ! यह संसार तो आपने बनाया है किन्तु खराब बुद्धि के लोग अपने को इसका स्वामी मानते हैं अर्थात् यदि मेरे पति अपने को

त्रिलोकी का स्वामी समझते होंगे तो इनकी खराब बुद्धि है । आप ही इस संसार के कर्त्ता, पालक एवं संहारक हैं । आपको कोई क्या दे सकता है ? कोई यदि कहे कि मैंने प्रभु को दान दिया तो यह झूठी बात है । आपको कोई क्या दे सकता है ? यदि कोई समझता है कि मैंने भगवान् को दान दिया है तो वह निर्लज्ज है, व्यर्थ ही अपने को कर्ता समझ रहा है ।

ऐसा कहकर विन्ध्यावली ने राजा बलि के त्रिलोकी के दान को सारहीन बता दिया । बात तो सही है, भगवान् को कोई क्या दान दे सकता है ? हम जैसे लोग मन्दिर में जाते हैं, पचास रुपये या सौ रुपये चढ़ाते हैं तो दूसरों को बताते हैं कि हमने भगवान् को पचास रुपये चढ़ाये, सौ रुपये चढ़ाये, जबकि भक्ति यह है कि प्रभु को सर्वस्व अर्पित करने के बाद भी यही कहे कि प्रभु को कोई क्या दे सकता है ?

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

सारी वस्तु गोविन्द की ही है, उन्हें कोई क्या दे सकता है ? केवल अज्ञान के कारण जीव ऐसा सोचता है कि मैंने प्रभु को इतना चढ़ाया ।

उसी समय वहाँ ब्रह्माजी आये, मन में वह सोच रहे थे कि राजा बलि वरुण पाश में बँधने योग्य तो नहीं है, इसने तो भगवान् को त्रिलोकी का दान किया था, फिर भी उन्होंने इसे वरुण पाश में बाँध दिया ।

ब्रह्माजी ने भगवान् से कहा – 'प्रभो ! अब आप बलि को छोड़ दीजिये, आपने इसका सर्वस्व तो ले लिया, यह दण्ड के योग्य तो नहीं है । त्रिलोकी का इसने आपको दान कर दिया ।

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।

अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/२३)

जब आपको कोई थोड़ा सा जल भी चढ़ा देता है, एक पत्ता चढ़ाकर आपकी पूजा करता है तो वह उत्तम गति को प्राप्त करता है, फिर बलि ने धैर्य और स्थिर मन से आपको त्रिलोकी का दान किया है, तब इसको कष्ट कैसे मिल रहा है, यह मेरा प्रश्न है ?

ब्रह्माजी राजा बलि की ओर से वकील बने हैं और न्यायाधीश भगवान् पर ही आरोप लगा दिया है ।

किसी व्यक्ति से पूछो कि क्या हाल है तो कहता है – 'भगवान् की बड़ी कृपा है, हमारे घर में किसी चीज की कमी नहीं है, धन की कोई कमी नहीं है ।' सांसारिक व्यक्ति धन की समृद्धि को भगवान् की कृपा मानता है किन्तु भगवान् कह रहे हैं –

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/२४)

ब्रह्माजी ! मैं जिस पर कृपा करता हूँ, उसके धन को पहले ही नष्ट कर देता हूँ क्योंकि धन के मद से मनुष्य मतवाला होकर मेरा तथा संसार के लोगों का तिरस्कार करने लगता है ।

जिस मनुष्य को धन पाकर भी अहंकार न हो तो इसे मेरी कृपा समझना चाहिए । इस दानव ने तो मेरी वैष्णवी माया को जीत लिया है । मैं इसकी स्थिति को समझता हूँ । मैंने इसका धन छीन लिया, इसको राजपद से अलग कर दिया, शत्रु की तरह इसे बाँध दिया, इसके कुटुम्बी असुर इसको छोड़कर चले गये, यह अब यातना (कष्ट) को पा रहा है, गुरु ने भी इसका तिरस्कार किया और इसे शाप तक दे

दिया, इतने अधिक कष्ट इसे मिले किन्तु **'जहौ सत्यं न सुव्रतः'** – यह राजा बलि दृढ़व्रती है, सुव्रत है, इसने अपने सत्य को, धर्म को नहीं छोड़ा । आगे चलकर यह इन्द्र बनेगा । तब तक यह सुतल लोक में रहे, जहाँ किसी प्रकार की कोई आधि-व्याधि नहीं है ।

अब भगवान् ने आदरपूर्वक राजा बलि से बात की । इससे पहले जो उन्होंने बलि को डाँटा –फटकारा कि तू नरक में जायेगा और वरुण पाश में बँधवाया, यह सब तो उनका नाटक था, यह भगवान् का ढोंग था । अब सच्चाई सामने आई । भगवान् बड़े प्रेम और आदरपूर्वक राजा बलि से कहते हैं –

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२२/३३)

हे महाराज इन्द्रसेन ! तुम्हारा मंगल हो । तुमको नरक नहीं होगा । अब तुम अपने भाई-बन्धुओं के साथ सुतल लोक में जाओ, जिसे स्वर्ग के देवता भी चाहते रहते हैं और जो स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर है । बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकेंगे । जो दैत्य तुम्हारा विरोध करेंगे, मेरा चक्र उन्हें काट डालेगा । मैं तुम्हारी और तुम्हारे अनुचरों की सब प्रकार से रक्षा करूँगा । रक्षा करने का मतलब कि मैं तुम्हारा द्वारपाल बन जाऊँगा, तुम्हारे दरवाजे का चौकीदार बन जाऊँगा ।

एक आचार्य ने अपनी टीका में मजाक में लिखा है कि भगवान् ने कपटी बनकर राजा बलि को बाँधा, जो निरपराध थे तो कपटी को भी कुछ न कुछ दण्ड मिलना चाहिए । इसलिए भगवान् राजा बलि के द्वार पर द्वारपाल बन गये । फिर इसका उत्तर भी दिया कि भगवान् ने राजा बलि के प्रेमपाश में बँधकर यह कपट लीला की थी । सबका मूल है प्रेम ।

अध्याय – २३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब भगवान् ने इस प्रकार कहा तो महाराज बलि की आँखों में आँसू भर आये और प्रेम से उनका गला भर आया ।

बलि ने कहा –

'अहो ! प्रणामाय कृतः समुद्यमः' (श्रीभागवतजी - ८/२३/२)

'प्रभो ! जब आप हमारे यहाँ आये तो मैंने तो आपको प्रणाम भी नहीं किया । प्रणाम करने का केवल प्रयास किया ।'

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं –

गुरोर्भयादेव प्रणामो न कृतः केवलः उद्यमः कृतः ।

बलि ने कहा कि गुरुजी के भय से मैं प्रणाम नहीं कर पाया, प्रणाम करने की सोचता रहा किन्तु गुरुजी की आँखों की ओर देख रहा था । इतना भय था गुरुजी का । परन्तु फिर भी आपने मुझे ऐसा दान दिया, आप हमारे द्वारपाल बनने जा रहे हैं । जो आपकी कृपा बड़े-बड़े लोकपालों और देवताओं को भी नहीं प्राप्त हुई, वही मुझ नीच असुर को प्राप्त हो गयी ।

शुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार कहते ही राजा बलि वरुण के पाशों से मुक्त हो गये । तब उन्होंने भगवान्, ब्रह्माजी और शंकर जी को प्रणाम किया तथा बड़ी प्रसन्नता से असुरों के साथ सुतल लोक को चले गये । उस समय प्रह्लाद जी ने भगवान् से कहा – 'प्रभो ! ऐसा कृपा प्रसाद आज तक न तो कभी ब्रह्माजी को मिला, न लक्ष्मीजी को मिला, और न ही महादेवजी को मिला कि आप हम असुरों के द्वारपाल (चौकीदार) हो गये । हम लोग तो जन्म से ही दुष्ट योनि के असुर हैं, हम आपके कृपापात्र कैसे बन गये ? वस्तुतः आप समदर्शी हैं ।'

'भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः' (श्रीभागवतजी - ८/२३/८)

आप कल्पवृक्ष हैं, जो भी आपकी शरण में जाता है, आप उसकी कामनाओं को पूरा करते हैं । आप अपने भक्तों से अत्यन्त प्रेम करते हैं ।'

भगवान् ने कहा – 'बेटा प्रह्लाद ! अब तुम भी अपने पौत्र के साथ सुतल लोक चले जाओ और वहाँ आनन्दपूर्वक रहो ।'

प्रह्लादजी बलि के साथ भगवान् की परिक्रमा करके सुतल लोक चले गये, अब भगवान् ने शुक्राचार्य जी से कहा – 'हे ब्रह्मन् ! आपका शिष्य यज्ञ कर रहा था, उसमें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण कीजिये ।'

शुक्राचार्यजी बोले –

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२३/१६)

भगवन् ! दुनिया में जितने भी यज्ञ हैं, उनमें कोई न कोई कमी रह जाती है, चाहे मन्त्र की कोई गड़बड़ी रह गयी, तन्त्र की रह गयी, कभी कोई देश अशुद्ध होता है, काल का दोष होता है, पात्र की कमी, वस्तु की कमी होती है (आजकल घी भी मिलावटी होते हैं) । इसलिए प्रत्येक यज्ञ में कोई न कोई कमी रह जाती है । यज्ञ की उन कमियों को आपका नाम कीर्तन पूर्ण कर देता है । वही आप जब स्वयं यहाँ आ गये हैं तो यज्ञ में क्या कमी रह सकती है ? जितने भी यज्ञ हैं, बिना नाम संकीर्तन के वे अधूरे हैं । सबसे बड़ा यज्ञ नाम यज्ञ है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की आज्ञा से शुक्राचार्यजी ने राजा बलि के यज्ञ में जो कमी रह गयी, उसे पूरा किया । इसके बाद ब्रह्माजी ने वामन भगवान् का समस्त लोक और लोकपालों के पद पर

अभिषेक कर दिया । इन्द्र उनको अपना अगुवा बनाकर स्वर्गलोक को ले गये ।

अध्याय – २४

राजा परीक्षित ने पूछा – एक बार भगवान् ने मत्स्यावतार धारण करके बड़ी सुन्दर लीला की थी, वह कथा आप मुझे सुनाइए । मछली का शरीर तो लोक में अच्छा नहीं माना जाता है । वह तमोगुणी जीव है फिर भगवान् ने कर्मबन्धन में बँधे जीव की तरह मत्स्य का रूप क्यों धारण किया ?

शुकदेवजी कहते हैं – भगवान् गाय, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थ की रक्षा के लिए अवतार धारण करते हैं । भगवान् वायु की तरह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी प्राणियों में लीला करते हैं परन्तु उन प्राणियों के गुणों से वे छोटे-बड़े या ऊँचे-नीचे नहीं हो जाते क्योंकि वे प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण हैं ।

सत्यव्रत नाम के एक बड़े उदार और भगवत्परायण राजा थे । वही सत्यव्रत वर्तमान महाकल्प में विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेव के नाम से विख्यात हुए और भगवान् ने उन्हें वैवस्वत मनु बना दिया । एक बार वे जल में तर्पण कर रहे थे, उसी समय उनकी अंजलि के जल में एक छोटी-सी मछली आ गयी, उसे उन्होंने फिर से जल में छोड़ दिया । तब वह मछली राजा सत्यव्रत से बोली – 'अरे राजन् ! आप मुझे इस नदी में क्यों छोड़ रहे हैं, इस नदी में दूसरी बड़ी मछलियाँ मुझे खा जाएँगी, मुझे इस नदी में बड़ा भय लग रहा है ।' राजा सत्यव्रत ने सोचा कि यह मछली तो बोल रही है, फिर उन्होंने दया करके उसे एक कलश में रख दिया किन्तु एक ही रात में वह मछली बढ़ गयी तो उसको एक बड़े घड़े में रखा गया, उसमें भी वह बढ़ गयी । राजा सत्यव्रत ने उस मछली को सरोवर में डाला तो इतनी

बढ़ गयी कि सारा सरोवर घिर गया । जहाँ भी उसको डाला जाता, वह यही कहती कि यह स्थान मेरे लिए पर्याप्त नहीं है, इससे बड़े स्थान में रखिये । राजा सत्यव्रत ने उसको और बड़े सरोवर में डाला किन्तु एक ही रात में जितना बड़ा सरोवर था, उतनी ही बड़ी वह बन गयी । अन्त में राजा ने उसे समुद्र में डाल दिया तो वह बोली – 'समुद्र में बड़े-बड़े बलवान मगर आदि जीव रहते हैं, वे मुझे खा जायेंगे । इसलिए आप मुझे समुद्र के जल में मत छोड़िये ।' राजा सत्यव्रत ने कहा – 'मछली का रूप धारण करके मुझे मोहित करने वाले आप कौन हैं ? आपने एक दिन में चार सौ कोस का शरीर बना लिया, आपको समुद्र में कौन खा सकता है ? मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि आप साक्षात् श्रीभगवान् हैं, आपको नमस्कार है । आपने यह मछली का रूप क्यों धारण किया है, यह मुझे बताइये ।'

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणम्
मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।

(श्रीभागवतजी - ८/२४/३०)

संसार में सभी चीजें झूठी पड़ जाती हैं परन्तु प्रभु की शरणागति झूठी नहीं पड़ती है ।

चाहे गृहस्थ हो अथवा विरक्त, झूठमूठ की भी भगवान् की शरण ली जाए तो मनुष्य सदा सुखी रहता है ।

राजा सत्यव्रत भगवान् से कहते हैं – प्रभो ! आपकी शरण कभी झूठी नहीं हो सकती है ।

थोड़े समय के लिए यदि मनुष्य घबराये न, धैर्य रखे तो भगवान् की शरण में जाने से बहुत सुन्दर फल मिलता है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजा सत्यव्रत की बात सुनकर श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा – 'सत्यव्रत ! आज से सातवें दिन तीनों

लोक प्रलय के समुद्र में डूब जायेंगे । उस समय तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नाव आयेगी । उस समय तुम सप्तर्षियों को साथ लेकर उस नाव पर चढ़ जाना । उस समय चारों ओर एकमात्र समुद्र ही लहराता होगा । प्रकाश नहीं होगा । केवल ऋषियों की दिव्य ज्योति के सहारे तुम उसी बड़ी नाव पर चढ़कर चारो ओर विचरण करना । जब प्रचण्ड आँधी चलने के कारण नाव डगमगाने लगेगी तब मैं इसी रूप में वहाँ आ जाऊँगा और तुम लोग वासुकि नाग के द्वारा उस नाव को मेरे सींग में बाँध देना । इसके बाद जब तक ब्रह्माजी की रात रहेगी तब तक मैं ऋषियों के साथ तुम्हें उस नाव में बैठाकर उसे खींचता हुआ समुद्र में घूमूँगा । उस समय मैं तुम्हें ज्ञान का उपदेश करूँगा । भगवान् राजा सत्यव्रत से ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये । सातवें दिन भगवान् का बताया हुआ समय आ गया । समुद्र बड़े जोर से आगे बढ़ने लगा । प्रलय काल के भयंकर बादल वर्षा करने लगे । सारी पृथ्वी समुद्र में डूबने लगी । उस समय नाव भी आ गयी । राजा सप्तर्षियों के साथ उस पर सवार हो गये । सप्तर्षियों की आज्ञा से राजा ने भगवान् का ध्यान किया । उस समय भगवान् चार लाख कोस विस्तार वाले मत्स्य के रूप में प्रकट हुए । उनके शरीर में एक बहुत बड़ा सींग था । राजा सत्यव्रत ने वासुकि नाग के द्वारा वह नाव भगवान् के सींग में बाँध दी । उस समय राजा सत्यव्रत ने भगवान् की स्तुति की –

प्रभो ! आप ही परम गुरु हैं ।

'नः परमो गुरुर्भवान्' (श्रीभागवतजी - ८/२४/४६)

ऐसा क्यों तो कहते हैं –

'ग्रन्थिं स भिन्द्याद् धृदयं स नो गुरुः'

(श्रीभागवतजी - ८/२४/४७)

जो हृदय की गाँठ को काट दे, वही तो परम गुरु है ।

न यत्प्रसादायुतभागलेशम्
अन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसः
तं ईश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२४/४९)

संसार के सारे देवता और गुरु यदि एक साथ मिलकर कृपा करें तो भी आपकी कृपा के दस हजारवें अंश के अंश की भी बराबरी नहीं कर सकते । इसीलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

सत्यव्रतजी ने कहा है कि वस्तुतः कृपा तो भगवान् करते हैं, उनकी कृपा का दस हजारवाँ हिस्सा कृपा भी संसार के सम्पूर्ण देवता और समस्त गुरु मिलकर नहीं कर सकते अर्थात् कहीं न कहीं स्वार्थ रहता ही है । ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं कि अमुक गुरु ने रुष्ट होकर अपने शिष्य का त्याग कर दिया, अपने सम्प्रदाय से निकाल दिया । ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि संसार के समस्त गुरु मिलकर भी भगवान् की कृपा का दस हजारवाँ हिस्सा नहीं पा सकते । प्रश्न है कि गुरु शिष्य को निकालता क्यों है तो इसका उत्तर सत्यव्रतजी ने आगे के श्लोक में दिया है –

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतः
तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वं अर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२४/५०)

संसार में प्रायः अन्धा अन्धे का गुरु बन जाता है । कोई अन्धा जा रहा था, उसने कहा कि कोई मुझे रास्ता बता दो । इतने में उसे

एक दूसरा अन्धा मिला । वह बोला कि मैं तुझे रास्ता बताता हूँ, जबकि उसके चेहरे पर आँख का चिन्ह भी नहीं था किन्तु वह गुरु बन गया । अरे, उससे तो दूसरा अन्धा अच्छा है क्योंकि उसके चेहरे पर आँख का चिन्ह तो है । संसार में अधिकतर यही होता है कि हम जैसे आदमी गुरु बन जाते हैं, जो स्वयं मोहान्धकार में हैं और दूसरे को भी ले जाते हैं । इसीलिए सत्यव्रतजी कहते हैं कि ऐसे अन्धे गुरुओं को छोड़कर हम भगवान् को गुरु मानते हैं । इस संसार में नेत्र वाले को दृष्टि (देखने की शक्ति, प्रकाश) भी चाहिए क्योंकि बिना नेत्र ज्योति के नेत्र वाला कैसे देखेगा ? इसलिए भगवान् ही प्रकाश हैं और भगवान् ही नेत्र हैं । उनको गुरु मानने के बाद फिर किसी अन्य गुरु से प्रकाश लेने की आवश्यकता नहीं है । अतः सत्यव्रतजी ने कहा कि हम अपनी वास्तविक गति को जानने के लिए इन नकली गुरुओं (अज्ञान में अंधों) को छोड़कर आपको गुरु मानते हैं अर्थात् हमको अन्यत्र कहीं प्रकाश नहीं मिल सकता है क्योंकि समाज में विवेकहीन लोग अधिक हैं । ऐसी स्थिति में भगवान् को ही गुरु के रूप में वरण करना चाहिए, यह श्रीमद्भागवत का प्रमाण है । वास्तविकता क्या है ?

लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में ठेलम-ठेला ।

सत्यव्रतजी आगे कहते हैं –

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिम्
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२४/५१)

अज्ञानी गुरु अज्ञानी शिष्यों को जिस ज्ञान का उपदेश करता है, उसके द्वारा वे ऐसे घोर अंधकार में पहुँच जाते हैं, जहाँ से फिर कभी

निकल नहीं सकते । परन्तु आप सच्चे गुरु हैं, आप उस अविनाशी और अमोघ ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य अनायास ही अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।

हम जैसे लोग गुरु बन जाते हैं, जो समाज में विवेकहीनता का उपदेश करते हैं, संकीर्णता सिखाते हैं कि इतना ही सही है, अन्यत्र सब गलत है । हम सही हैं और संसार के लोग गलत हैं । यह असत्य मति (दुष्ट बुद्धि) है, इससे शिष्य दुरत्यय अन्धकार में पड़ जाता है । 'दुरत्यय' उस अँधेरे को कहते हैं, जहाँ से मनुष्य कभी पार नहीं जा सकेगा । संकीर्ण बुद्धि (साम्प्रदायिक द्वेष) होने से वह भक्तापराध करेगा और पतन की ओर अग्रसर होता जायेगा ।

अतएव सत्यव्रतजी भगवान् से कहते हैं कि इससे अच्छा है कि हम आपको गुरु मानें क्योंकि श्रीभगवान् को गुरु मानने से अमोघ ज्ञान उपलब्ध होगा, जिससे निज पद (भगवच्चरणों) की प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार से सत्यव्रतजी ने मत्स्य भगवान् की स्तुति की, तब मत्स्य भगवान् ने प्रलय के समुद्र में विहार करते हुए उन्हें 'मत्स्य पुराण' का उपदेश दिया । जब प्रलय का अंत हो गया और ब्रह्माजी की नींद टूटी तब भगवान् ने हयग्रीव असुर को मारकर उससे वेद छीन लिए और ब्रह्माजी को दिए । वही राजा सत्यदेव इस कल्प में सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हुए ।

यहाँ यह बात समझने की है कि सृष्टि के बीच में ही प्रलय कहाँ से आ गयी ? क्योंकि अन्य पुराणों में भी ऐसा वर्णन नहीं आता कि प्रलयकालीन समुद्र में नाव आ जाये, ब्रह्माजी के नैमित्तिक प्रलय के समय भी नाव नहीं आती है । इसके अतिरिक्त चाक्षुष मन्वन्तर के बाद प्रलय होती ही नहीं है । चौदह मन्वन्तरों के बीत जाने के बाद प्रलय माना जाये तो ठीक भी है, फिर बीच में ही प्रलय कैसे आ गयी तो इसका समाधान ये है कि यह प्रलय भगवान् ने अपनी माया से केवल

राजा सत्यव्रत को ज्ञान देने के लिए प्रकट की जैसे एक बार उन्होंने सृष्टि के बीच में ही मार्कण्डेय जी को प्रलय का दर्शन कराया था । इस प्रकार यह आठवाँ स्कन्ध समाप्त हुआ ।

नवम स्कन्ध

अध्याय – १

राजा परीक्षित् ने पूछा – भगवन् ! आपने बताया कि पिछले कल्प के अन्त में जो राजा सत्यव्रत हुए, वही इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए । अब आप उनके वंश के बारे में बताइए ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – परीक्षित ! तुम मनु वंश का वर्णन संक्षेप में सुनो । विस्तार से तो उसका वर्णन कोई कर ही नहीं सकता । प्रलय के समय भगवान् की नाभि से कमल प्रकट हुआ और उसी कमल में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । ब्रह्माजी के मन से मरीचि तथा मरीचि के पुत्र कश्यप हुए । कश्यप की पत्नी अदिति से विवस्वान् (सूर्य) का जन्म हुआ । विवस्वान् की पत्नी संज्ञा से श्राद्ध देव का जन्म हुआ, जो पिछले कल्प में सत्यव्रत थे । श्राद्धदेव मनु की पत्नी श्रद्धा से दस पुत्र हुए – इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि । पहले वैवस्वत मनु के कोई सन्तान नहीं थी । उस समय भगवान् वसिष्ठ ने उनसे सन्तान प्राप्ति के लिए यज्ञ कराया था । उनके मन में पुत्र की कामना थी किन्तु यज्ञ के बाद पुत्र के स्थान पर कन्या हुई । श्राद्धदेव मनु ने सोचा कि ऐसा कैसे हो गया ? उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठ से पूछा कि मैंने तो पुत्र की कामना से यज्ञ किया था फिर कन्या कैसे उत्पन्न हो गयी ? वसिष्ठजी ने उन्हें बताया कि तुम्हारी रानी ने होता से प्रार्थना की थी कि मुझे कन्या प्राप्त हो, इसलिए उन्होंने कन्या का संकल्प लेकर यज्ञ कुण्ड में आहुति दी, जिसके प्रभाव से पुत्र के

स्थान पर कन्या का जन्म हुआ । वसिष्ठजी ने मनु से कहा कि मैं तुम्हारी कन्या को ही पुरुष बना दूँगा । उन्होंने इसी उद्देश्य से भगवान् की स्तुति की तो भगवान् ने उन्हें वर दिया, जिसके प्रभाव से वह कन्या ही सुद्युम्न नामक पुत्र बन गयी । एक बार राजा सुद्युम्न कुछ मन्त्रियों के साथ शिकार खेलने वन में गए । वे मेरुपर्वत की तलहटी के एक वन में चले गये । उस वन में पहुँचने पर वे स्त्री हो गये और उनका घोड़ा घोड़ी हो गया । इसका कारण यह है कि एक दिन भगवान् शंकर पार्वतीजी के साथ उस वन में विहार कर रहे थे । एक बार बड़े-बड़े ऋषि उस वन में शिवजी का दर्शन करने पहुँचे । उस समय पार्वतीजी वस्त्रहीन थीं, ऋषियों को देखकर तुरन्त उन्होंने वस्त्र पहन लिया । शिवजी ने पार्वतीजी को यह वर दिया कि मेरे अतिरिक्त जो भी इस स्थान में प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायेगा । इसीलिए राजा सुद्युम्न के साथ उनके सब अनुचर भी स्त्री हो गये । उसी समय चन्द्रमा के पुत्र बुध वहाँ पहुँचे । उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री वहाँ विचर रही है तो उन्होंने उसे अपनी पत्नी बना लिया । उनसे पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । सुद्युम्न ने एक बार अपने स्त्रीपने से दुखी होकर अपने गुरुदेव वसिष्ठजी का स्मरण किया । वसिष्ठजी वहाँ आये और सुद्युम्न को स्त्री रूप में देखकर उन्हें बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने भगवान् शंकर की आराधना की । भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और बोले – 'वसिष्ठ ! तुम्हारा यह यजमान एक महीने तक पुरुष रहेगा और एक महीने तक स्त्री ।' इस व्यवस्था से सुद्युम्न पृथ्वी का पालन करने लगे । परन्तु प्रजा उन्हें पसन्द नहीं करती थी क्योंकि वह एक महीने तक स्त्री रूप में रहते और एक महीने तक पुरुष रूप में रहते थे । उनके तीन पुत्र हुए । सुद्युम्न प्रतिष्ठान पुरी के राजा थे । वृद्धावस्था आने पर सुद्युम्न अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर तपस्या करने के लिए वन को चले गये ।

अध्याय – २

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – जब सुद्युम्न तपस्या करने के लिए वन में चले गये तब वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से यमुना के तट पर सौ वर्ष तक तपस्या की । श्रीहरि की आराधना के प्रभाव से उनके दस पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े इक्ष्वाकु थे । उन मनु पुत्रों में से एक का नाम था पृषध्र । वह गुरु वसिष्ठ की सेवा में गायों की रक्षा करता था । एक दिन रात को गायों के झुण्ड में एक बाघ घुस आया । उसे देखकर गायें भागने लगीं । बाघ ने एक गाय को पकड़ लिया, अत्यन्त भयभीत होकर गाय चिल्लाने लगी । उसका क्रन्दन सुनकर पृषध्र गाय के पास दौड़कर गया । अँधेरी रात में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । उसने हाथ में तलवार लेकर गाय को बाघ समझकर उसका सिर काट दिया । बाघ का कान कट गया और वह भाग गया । पृषध्र ने यही समझा कि मैंने बाघ को मार डाला है परन्तु सुबह गाय को मरा देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ । गुरु वसिष्ठ ने उसे शाप दे दिया – 'जा, तू शूद्र हो जा ।' पृषध्र ब्रह्मचारी हो गये, उन्हें ब्रह्मज्ञान हो गया और वह जंगल में विचरण करते रहे । एक बार वह वन में गये तो वहाँ दावानल धधक रहा था, पृषध्र ने दावानल में प्रवेश करके शरीर को भस्म कर दिया और परमात्मा की प्राप्ति की । मनु का सबसे छोटा पुत्र था कवि । वह विषयों से विरक्त होकर साधु बन गया और वन में भगवान् की आराधना करके परम पद को प्राप्त हो गया । मनु पुत्र करूष से कारूष नामक क्षत्रिय उत्पन्न हुए । ध्रष्ट के धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए जो इस शरीर से ही ब्राह्मण बन गये । पाँचवें पुत्र थे नृग । उनके वंश में ओघवान् हुआ । छठे मनुपुत्र थे नरिष्यन्त, उनके पुत्र हुए चित्रसेन, आगे चलकर इनके वंश का पुत्र भी ब्राह्मण बन गया । सातवें मनुपुत्र दिष्ट के पुत्र का नाम था नाभाग । आगे चलकर उनके

वंश में खनित्र का जन्म हुआ । खनित्र के वंश में मरुत्त नामक चक्रवर्ती राजा हुए । उन्होंने बहुत बड़ा यज्ञ किया था । मरुत्त जैसा यज्ञ आज तक किसी ने नहीं किया । उस यज्ञ के समस्त पात्र सोने के बने हुए थे । मरुत्त के पुत्र का नाम था दम । इन्हीं के वंश में आगे तृणबिंदु का जन्म हुआ । अलम्बुषा नामक अप्सरा ने इन्हें अपना पति बनाया । इनसे कई पुत्र और इडविडा नामक कन्या उत्पन्न हुई । इडविडा से विश्रवा मुनि ने विवाह किया और उनसे कुबेर का जन्म हुआ । तृणबिन्दु के अपनी धर्मपत्नी से तीन पुत्र हुए ।

अध्याय – ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – मनु के आठवें पुत्र का नाम था शर्याति । इनकी कन्या का नाम था सुकन्या । एक दिन वह अपने पिता के साथ वन में गयी । वे लोग घूमते-घूमते च्यवन ऋषि के आश्रम में पहुँचे । वहाँ च्यवन ऋषि ऐसी तपस्या कर रहे थे कि उनके शरीर पर बाँबी चढ़ गयी । सुकन्या अपनी सखियों के साथ वहाँ पहुँची तो उसने देखा कि बाँबी के छेद में से दो ज्योतियाँ चमक रहीं थीं । वे च्यवन ऋषि की आँखें थीं । सुकन्या ने काँटे से उन ज्योतियों को चुभो दिया तो ऋषि की आँखें फूट गयीं और उनसे बहुत सा खून बह गया । महात्मा का अपराध होने के कारण राजा शर्याति के सैनिकों का मल-मूत्र रुक गया । उनके पेट फूल गये, मरने की हालत हो गयी । राजा शर्याति ने कहा – 'तुम लोगों ने अवश्य महात्मा च्यवन का अपराध किया है ।' तब सुकन्या ने डरते-डरते बताया कि मैंने दो ज्योतियों में काँटा चुभो दिया था । च्यवन ऋषि के पास राजा गये और उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न कर लिया । राजा ने अपनी पुत्री सुकन्या 'ऋषि' को समर्पित कर दी । ऋषि बड़े क्रोधी थे परन्तु सुकन्या उनकी सेवा करने लगी । एक बार उनके आश्रम पर दोनों अश्विनी कुमार

आये । उन्होंने च्यवन ऋषि से कहा कि हम आपको युवा और सुन्दर बना देंगे, आप हमें यज्ञ में सोमरस का भाग दिला दीजिये । अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि को एक सरोवर दिखाया और कहा कि आप इसमें स्नान कर लीजिये । अश्विनी कुमार च्यवन ऋषि को लेकर कुण्ड में प्रवेश कर गये । कुण्ड से जब बाहर निकले तो तीनों का एक सा रूप था । वे तीनों ही बड़े सुन्दर थे । अश्विनी कुमारों ने सुकन्या से कहा कि तुम हममें से अपने पति को वरण कर लो । सुकन्या अपने पति च्यवन को नहीं पहचान पायी क्योंकि तीनों का एक सा रूप था । मन ही मन वह अश्विनी कुमारों की शरण में गयी और बोली – 'आप मेरा पातिव्रत नष्ट मत कीजिये ।' तब अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि की ओर संकेत किया, जिससे कि वह उन्हें पहचान गयी ।

एक बार सुकन्या के पिता राजा शर्याति च्यवन ऋषि के आश्रम गये । वहाँ उन्होंने देखा कि सुकन्या किसी सुन्दर नवयुवक के साथ बैठी है । च्यवन ऋषि को जब राजा ने अपनी कन्या सौंपी थी, उस समय वे बूढ़े थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ने और बाल पकने के कारण वे देखने में बहुत भद्दे लगते थे । अब उनके रूप में हुए अद्भुत परिवर्तन को न जानकर शर्याति अपनी कन्या पर बहुत क्रोधित हुए और बोले – 'कुलटा ! अपने पूज्य पति महामुनि च्यवन को छोड़कर तूने किस जार पुरुष को अपना पति बना लिया है ? तू निर्लज्ज हो गयी है, तूने च्यवन ऋषि को बूढ़ा समझकर छोड़ दिया ।' च्यवन मुनि राजा शर्याति का क्रोध देखकर मुस्कुरा रहे थे । अन्त में सुकन्या ने कहा – 'पिताजी ! ये आपके जामाता च्यवन मुनि ही हैं ।' ऐसा कहकर सुकन्या ने च्यवन मुनि के रूप परिवर्तन की सब बात अपने पिता को बताई । सब बात सुनकर राजा शर्याति बड़े आश्चर्यचकित हुए और अपनी कन्या को गले से लगाया । महर्षि च्यवन ने एक बार इन्द्र को वज्र के सहित

स्तम्भित कर दिया था, जिस समय राजा शर्याति के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को उन्होंने सोमपान कराया था । शर्याति के तीन पुत्र थे – उत्तानबर्हि,आनर्त और भूरिषेण । इनमें आनर्त से रेवत हुए, जिन्होंने समुद्र के भीतर नगरी बसाई । उनके सौ पुत्र थे । जिनमें ककुद्मी सबसे बड़े थे । इनकी कन्या का नाम था रेवती । एक बार ये अपनी पुत्री को लेकर ब्रह्मलोक गये । ब्रह्माजी से उन्होंने कहा कि मेरी पुत्री के लिए कोई वर बताइए । यह सतयुग की घटना है । उस समय ब्रह्मलोक में गन्धर्व लोग गीत गा रहे थे । ककुद्मी को ब्रह्माजी से बात करने का अवसर नहीं मिला तो वे कुछ समय वहाँ ठहर गये । जब गीत का कार्यक्रम समाप्त हुआ और उन्होंने ब्रह्माजी से अपनी कन्या के योग्य वर पूछा तो उन्होंने कहा – 'अब मैं तुम्हें क्या वर बताऊँ, इस समय पृथ्वी पर सत्ताईस चतुर्युगी का समय बीत चुका है । यहाँ का एक क्षण पृथ्वी के कई सौ वर्षों के बराबर है । तुम्हारे समय के जितने भी राजा और उनके वंश थे, वे इस समय मृत्यु को प्राप्त हो गये । इस समय पृथ्वी पर द्वापर युग चल रहा है । भगवान् कृष्ण-बलराम का अवतार हुआ है, तुम बलरामजी को अपनी कन्या समर्पित कर दो ।'

सतयुग के मनुष्य २१ हाथ ऊँचे होते थे, त्रेता के १४ और द्वापर के ७ हाथ ऊँचे होते थे तथा कलियुग के मनुष्य साढ़े तीन हाथ ऊँचे होते हैं । बलरामजी सात हाथ ऊँचे थे और रेवती इक्कीस हाथ ऊँची थीं । ककुद्मी अपनी पुत्री को लेकर बलरामजी के पास पहुँचे । बलरामजी ने पूछा – 'क्या बात है ?' ककुद्मी बोले – 'ब्रह्माजी की आज्ञा से मैं अपनी पुत्री आपको समर्पित करने आया हूँ । इसे आप अपनी वधू के रूप में स्वीकार कीजिये ।' बलरामजी ने अपने हल से खींचकर रेवती को अपने बराबर कर लिया, फिर उसके साथ विवाह किया ।

अध्याय – ४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – मनुपुत्र नभग का पुत्र था नाभाग । नभग अपने अन्य पुत्रों को राज्य सौपकर वन में तपस्या करने चले गए थे । नाभाग जब दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन करके लौटे तो उन्होंने बड़े भाइयों से अपना हिस्सा माँगा । बड़े भाई बोले कि तेरे हिस्से में पिता जी हैं, उन्हें ले ले । कितना अन्याय था यह । सारा धन तो बड़े भाइयों ने ले लिया और छोटे भाई को बूढ़े पिता को दे दिया । नाभाग अपने पिताजी के पास गए और बोले कि बड़े भाईयों ने मुझे सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं दिया । मेरे हिस्से में उन्होंने आपको दिया है । नभग बोले – 'कोई बात नहीं, देखो, ये आंगिरस गोत्र के ब्राह्मण एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं किन्तु छठे दिन ये अपने कर्म में भूलकर बैठते हैं । तुम उनके पास जाकर वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्त बता आओ, जब वे स्वर्ग जाने लगेंगे तब यज्ञ से बचा अपना सारा धन तुम्हे दे देंगे ।' नाभाग ने पिता के आज्ञानुसार ऐसा ही किया । उन ब्राह्मणों ने भी यज्ञ का बचा हुआ धन उसे दे दिया और स्वर्ग में चले गए । जब नाभाग उस धन को लेने लगा तो एक काले रंग का पुरुष आया । वे रुद्र थे । वे बोले – 'यह धन तो मेरा है क्योंकि यज्ञभूमि में जो कुछ बचता है, वह धन मेरा होता है ।' नाभाग फिर से अपने पिता के पास गया और बोला कि वहाँ रुद्रदेव आये हैं और कह रहे हैं कि यज्ञ से बचा हुआ धन मेरा होता है । पिता जी बोले – 'हाँ बेटा, बात तो सही है, वह धन रुद्र का है ।' तब नाभाग रुद्र के पास गया और बोला – 'भगवन् ! मेरे पिता जी ने कहा कि यज्ञ भूमि की सभी वस्तुयें आपकी हैं, अतः आप यह धन ले लीजिये ।' रुद्र भगवान् प्रसन्न हो गए और बोले – 'सत्य का जो आचरण करता है, उसे धन भी मिलता है और ज्ञान भी मिलता है । असत्य के आचरण से थोड़े समय के लिये धन मिलता है किन्तु अन्त में नरक ही मिलता है । तुम यज्ञ से बचा यह सारा धन भी ले लो और

मैं तुम्हे सनातन ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करता हूँ ।' इतना कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गए ।

इसीलिये शास्त्र में कहा गया है –

'यथा अन्नं तथा मनम्' – शुद्ध अन्न खाओगे तो शुद्ध बुद्धि बनेगी । अशुद्ध अन्न खाओगे तो बुद्धि अशुद्ध हो जायेगी । इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी कथायें हैं ।

शुकदेव जी ने कहा – इन्ही नाभाग से अम्बरीष जी का जन्म हुआ ।

परीक्षित जी ने पूछा – भगवन् ! मैं अम्बरीष जी का चरित्र सुनना चाहता हूँ । उनके सामने ब्राह्मण का दण्ड भी व्यर्थ हो गया, ऐसा कैसे हुआ ?

श्रीशुकदेव जी ने कहा –

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/१५)

अम्बरीषजी बहुत बड़े भक्त थे । पृथ्वी के सातों द्वीप, अव्यय लक्ष्मी और अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था, फिर भी वे इन्हें स्वप्न के समान मानते थे ।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः
वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/१८)

इन्होंने अपने मन को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में लगा रखा था । वाणी से वे सदा भगवान् का कीर्तन किया करते थे, उनके

गुणों का गान करते थे । स्वयं अपने हाथों से भगवान् के मन्दिर में बुहारी लगाते थे । कानों से वे भगवान् की कथा सुना करते थे । नेत्रों से भगवान् की मूर्ति और उनके मंदिरों का दर्शन करते थे ।

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत् तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/१९)

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे भगवान् के भक्तों के शरीर का स्पर्श करके अपना शरीर पवित्र करते थे । भगवान् के भक्तों का शरीर दिव्य माना जाता है । नाक से वे भगवान् के चरणों में अर्पित तुलसी की गन्ध लेते थे, रसना से भगवान् का प्रसाद ग्रहण करते थे । उनके पैर पैदल ही भगवान् के धाम की यात्रा करने में लगे रहते, सिर से वे भगवान् के चरणकमलों की वन्दना करते थे । सरस्वती नदी के किनारे अनेकों अश्वमेध यज्ञ भी उन्होंने किये थे । उनकी प्रजा में एक भी व्यक्ति स्वर्ग की इच्छा नहीं करता था । सारी प्रजा भगवान् की भक्ति में तल्लीन रहती थी । जब राजा भक्त होगा तब प्रजा भी भक्त होगी । अम्बरीषजी के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति 'स्त्री, पुत्र, धन आदि' को मिथ्या समझता था, भक्ति के अतिरिक्त मायिक (भवबन्धनकारी) कार्य कोई नहीं करता था । अम्बरीषजी की अनन्य भक्ति से प्रभावित होकर भगवान् ने उनकी रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था । **'महिष्या तुल्यशीलया'** - इनकी रानी भी भक्ति में इनसे कम नहीं थी, उनकी कथा भक्तमाल में विस्तार से वर्णित है । भक्तमाल के अनुसार तो वह भक्ति में अम्बरीषजी से भी आगे चली गयी थीं । अम्बरीषजी राजा होकर के स्वयं भगवान् की सेवा में चक्की चलाया करते थे । एक दिन चक्की चलाते समय उन्हें शीतल हवा का स्पर्श हुआ तो उन्होंने देखा कि स्वयं प्रभु

श्यामसुन्दर अपने पीताम्बर से उन पर हवा कर रहे थे। अम्बरीषजी यह देखकर रोने लगे और बोले – 'हे नाथ ! आप मेरे लिये इतना कष्ट क्यों करते हैं ?' भगवान् बोले – 'जब तुम मेरे लिये इतना कष्ट करते हो तो क्या मैं तुम्हारी सेवा के लिये थोड़ा भी नहीं कर सकता ?'

इसलिये प्रभु की सेवा भी हम लोगों को स्वयं करना चाहिए। एक बार अम्बरीषजी भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना हेतु एक वर्ष तक एकादशी व्रत करने के लिये मधुवन (ब्रज) में आये। व्रत की समाप्ति पर कार्तिक महीने में उन्होंने तीन रात का उपवास किया और एक दिन यमुना जी में स्नान करके मधुवन में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें साठ करोड़ गायें दान दी। उसी समय वहाँ दुर्वासा जी अतिथि के रूप में आये। अम्बरीष जी ने उनसे कहा – 'आज मेरा द्वादशी का पारण है, आप हमारे यहाँ ही भोजन कीजिये।' दुर्वासा जी ने अम्बरीष जी की प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे यमुना जी में स्नान करने चले गए। वे ब्रह्म का ध्यान करते हुये यमुना जी के पवित्र जल में स्नान करने लगे। अन्य पुराणों में ऐसी कथा है कि वे अम्बरीष जी की परीक्षा लेने के लिये ही आये थे। इधर द्वादशी घड़ी भर शेष रह गयी थी किन्तु दुर्वासा जी नहीं आये। समय पर यदि द्वादशी का पारण न किया जाय तो एकादशी का फल नष्ट हो जाता है और यदि दुर्वासा जी को बिना खिलाये पारण कर लें तो अतिथि धर्म नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि ऐसी स्थिति में आप प्रभु का चरणामृत पी लीजिये, उससे आपका पारण भी हो जायेगा तथा अतिथि को खिलाये बिना भोजन नहीं करना चाहिए, यह अतिथि धर्म भी निभ जायेगा। ब्राह्मणों के परामर्श से अम्बरीष जी ने चरणामृत पी लिया। उधर दुर्वासा जी को ध्यान में पता चल गया कि अम्बरीष जी ने चरणामृत पी लिया है। उसी समय वे यमुना स्नान करके वापस आ गए और अम्बरीष जी के प्रति अत्यधिक क्रोधित हो

गए । उन्होंने अम्बरीष जी से डाँटकर कहा – 'तू बड़ा क्रूर है, धन के मद में मतवाला हो गयाहै । इसके अन्दर भक्ति बिल्कुल भी नहीं है । यह अभक्त है, भक्ति का ढोंग करता है, अपने को बड़ा मानता है, मुझ जैसे अतिथि को भोजन का निमन्त्रण देकर मुझे खिलाये बिना इसने स्वयं खालिया । अच्छा देख, अब मैं तुझे इसका दण्ड देता हूँ ।' ऐसा कहकर दुर्वासाजी ने अपनी एक जटा उखाड़ी और उसे कृत्या बनाकर अम्बरीषजी को मार डालने के लिये उनकी ओर छोड़ा । वह कृत्या तलवार लेकर अम्बरीष जी को मारने के लिये दौड़ी । भगवान् ने सुदर्शन चक्र को अम्बरीषजी की रक्षा के लिये पहले से ही नियुक्त कर रखा था । जो भगवान् की भक्ति करता है, सुदर्शन चक्र उसकी रक्षा करते हैं ।

कृष्ण कृष्ण कहो बारम्बारा,
चक्र सुदर्शन है रखवारा ।

सुदर्शन चक्र जी अम्बरीषजी की रक्षा के लिये चल दिए । वे देख रहे थे कि अम्बरीषजी को नष्ट करने के लिये कृत्या आ रही है । चक्र ने आकर उस कृत्या को जलाकर राख का ढेर कर दिया, इस प्रकार जलाया जैसे आग क्रोधित सर्प को जलाकर राख कर देती है । कृत्या को जलाकर अब चक्र दुर्वासाजी के पीछे दौड़ा । दुर्वासाजी चक्र से भयभीत होकर भागे, वे दिशाओं में भागे, समुद्र के भीतर गए, गुफाओं में गए, अतल-वितल आदि नीचे के लोकों में गए, स्वर्ग तक गए किन्तु जहाँ-जहाँ भी वे जाते, सुदर्शन चक्र को अपने पीछे लगा देखते । इस प्रकार एक वर्ष तक दुर्वासा जी भागते रहे ।

दुर्वासा जी को ऐसा कष्ट क्यों भोगना पड़ा, यह कथा भागवत में तो नहीं है किन्तु अन्य पुराणों में वर्णित है । दुर्वासा जी का जब विवाह हुआ तो इनकी स्त्री कर्कशा थीं, कड़वा बोलतीं थीं । इनके श्वसुर ने दुर्वासा जी से कहा था कि मेरी पुत्री में एक ही दोष है कटु वाणी बोलने का, तुम इसके दोष को सदा क्षमा करते रहना ।

दुर्वासा जी ने कहा – 'मैं इसकी सौ गलतियाँ क्षमा कर दूँगा, इसके आगे की गलतियाँ क्षमा नहीं करूँगा ।' इनके श्वसुर ने कहा 'ठीक है ।' इस प्रकार दुर्वासाजी का विवाह हो गया । विवाह होने के बाद ही दुर्वासाजी ने अपनी स्त्री की गलतियों को गिनना शुरू कर दिया । एक बार उन्होंने स्त्री से कहा – 'जल लाओ ।' वह बोली – 'लाऊँगी ।' दुर्वासा जी ने इसे गिन लिया – 'गलती नम्बर एक ।' दुर्वासा जी कड़ाई से बोले – 'नहीं लाती है जल ।' स्त्री बोली – 'अरे, जोर से क्यों बोलते हो ?' दुर्वासा जी ने गिन लिया – 'गलती नम्बर दो ।' वे बोले – 'जवाब देती है, मेरी बात नहीं मानती है ।'

स्त्री बोली – 'अरे लाती हूँ, धीरज रखो ।' दुर्वासाजी ने इसे भी गलती मानकर गिन लिया । इस प्रकार एक ही दिन में स्त्री की छोटी-छोटी गलतियाँ गिनकर उन्होंने सौ तक की गिनती पूरी कर ली तथा इससे आगे की गलती करने पर वे बोले – 'जा भस्म हो जा ।' इतना कहने पर स्त्री जलकर भस्म हो गयी । जब दुर्वासा जी के श्वसुर को पता चला तो वे उनके पास आकर बोले – 'दुर्वासा ! तुमने मेरी पुत्री के साथ बड़ा अन्याय किया । तुम्हें स्त्री और पति के धर्म का ज्ञान नहीं है । मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि जिस प्रकार तुमने मेरी बेटी को जलाया है, इसी प्रकार तुम्हें भी वर्ष भर तक जलना पड़ेगा । तुम्हारी इतनी अपकीर्ति होगी कि लोग युगों तक तुम्हारी अपकीर्ति का वर्णन करेंगे ।'

इसलिये स्त्री हो या पुरुष हो, क्रोध करना सभी के लिये अत्यन्त हानिकारक है । सबको क्षमाशील होना चाहिए, नहीं तो दुर्वासा जैसा तेजस्वी होने पर भी क्रोधी व्यक्ति को पछताना पड़ेगा ।

इसीलिये दुर्वासा जी अपने श्वसुर के इसी शाप के कारण एक वर्ष तक चक्र की अग्नि में जलते रहे और लोक-लोकान्तरों में भागते फिरे । जब उन्हें कहीं भी कोई रक्षक न मिला तो अन्त में वे ब्रह्माजी के पास

ब्रह्मलोक में पहुँचे और बोले – 'पितामह ! विष्णु भगवान् के इस चक्र से मेरी रक्षा कीजिये ।'

ब्रह्माजी ने कहा – 'दुर्वासाजी ! जल्दी ही आप मेरे ब्रह्मलोक से चले जाइये । जब भगवान् अपनी सृष्टि लीला समेटने लगेंगे तब द्विपरार्ध नामक यह मेरा स्थान भी समाप्त हो जायेगा । मैं, शंकरजी, दक्ष-भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि उन्हीं प्रभु की शरण में हैं और उनके बनाये नियमों में बँधे हैं । कहीं इस चक्र की अग्नि से मैं और मेरा लोक न जल जाएँ, इसलिये आप यहाँ से जाइये ।' जब ब्रह्मा जी ने इस प्रकार जवाब दिया तो दुर्वासा जी भागकर महादेव जी के पास गए और चक्र से बचाने की प्रार्थना की । महादेव जी ने कहा – 'दुर्वासा जी ! जिन अनन्त परमेश्वर में हमारे जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं, उन प्रभु के सम्बन्ध में हम लोग कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं रखते । मैं, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा, आदि भगवान् की माया को नहीं जान सकते, यह चक्र उन्ही प्रभु का शस्त्र है, हम लोग इसका सामना नहीं कर सकते । फिर भी तुमको उपाय बताता हूँ कि तुम उन्हीं भगवान् की शरण में जाओ । वे ही तुम्हारा मंगल करेंगे जिनका यह हथियार है ।' महादेव जी के कहने से दुर्वासा जी वैकुण्ठ की और दौड़े । वे वैकुण्ठ में जाकर भगवान् के चरणों में गिर पड़े । उन्होंने कहा – 'हे अच्युत ! हे अनन्त ! मैंने अपराध किया है । हे विश्वभावन ! आप मेरी रक्षा कीजिये ।'

अजानता ते परमानुभावम्
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ।
विधेहि तस्यापचितिं विधातः
मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/६२)

'हे दीनानाथ ! आपके तो नाम का ही उच्चारण करने से नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है ।' जब दुर्वासा जी ने इस प्रकार भगवान् से

रक्षा करने की प्रार्थना की और उनके नाम की महिमा बतायी तो भगवान् ने कहा – 'हे ब्राह्मण देवता ! (भगवान् तो ब्राह्मणों से बड़ी नम्रता से बोलते हैं)

अहं भक्तपराधीनो हि अस्वतंत्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/६३)

मैं भक्तों के बन्धन में हूँ । मैं बिल्कुल भी स्वतन्त्र नहीं हूँ । भक्तों ने मेरे हृदय को जकड़ रखा है । वे मुझे प्यार करते हैं और मैं उन्हें ।

नाहं आत्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिः अहं परा ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/६४)

अपने साधु स्वभाव भक्तों को छोड़कर मैं न तो अपने आपको चाहता हूँ और न ही लक्ष्मी जी को ।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तान् त्यक्तुमुत्सहे ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/६५)

जो भक्त अपनी स्त्री, मकान, पुत्र, प्राण, धन आदि को छोड़कर मेरी शरण में आ गये हैं, मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूँ ?'

प्रभु के लिए छोड़ना सीखो । प्रभु के लिए तुम एक कौड़ी भी छोड़ोगे तो वे ऋणी हो जायेंगे । किन्तु प्रभु के लिए छोड़ो, दुनिया को दिखाने के लिए नहीं । कुछ लोग चार पैसे मंदिर में चढ़ाते हैं तो देखते हैं कि कोई देख रहा है या नहीं । यह छोड़ना तो दुनिया के लिए छोड़ना हुआ । प्रभु के लिए त्याग करो । पाँच सौ रूपया दान मत करो, पाँच रुपये दान करो किन्तु उसे कोई न जाने, केवल प्रभु जाने । पाँच सौ रुपये यदि तुमने दूसरों को दिखाने के लिए दान दिए तो वह वेश्या की

तरह है । वेश्या की तरह दुनिया को प्रसन्न करने के लिए कोई काम मत करो ।

भगवान् कहते हैं – **'हित्वा माम्'** मेरे लिए छोड़ो । ऐसे भक्त मुझे इस तरह वश में कर लेते हैं जैसे अच्छी सती स्त्रियाँ अच्छे पति को वश में कर लेती हैं । साधु मेरे हृदय में रहते हैं, मैं साधुओं का हृदय हूँ । वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं भी उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता । दुर्वासाजी, मैं आपको एक उपाय बता सकता हूँ, जिनका अपराध करने से आपको इस संकट का सामना करना पड़ रहा है, आप उन्हीं अम्बरीषजी की शरण में जाइए क्योंकि

साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् । (श्रीभागवतजी - ९/४/६९)

वैष्णव साधुओं के विरुद्ध यदि कोई अपनी ताकत का प्रयोग करता है तो उससे उसकी सारी ताकत जल जाती है । ताकत प्रयोग करने वाले को स्वयं उसका विपरीत फल भोगना पड़ता है । इसलिए साधु भक्तों से कभी अटकना नहीं चाहिए ।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(श्रीभागवतजी - ९/४/७०)

तपस्या और विद्या दोनों ही ब्राह्मणों का कल्याण करने वाली हैं किन्तु उद्दण्ड ब्राह्मण को ये दोनों ही विपरीत फल देती हैं ।

अध्याय – ५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार भगवान् के आदेश देने पर सुदर्शन चक्र की ज्वाला से तपाये गये दुर्वासा जी अम्बरीष जी के पास आये और उनके चरणों को पकड़ लिया । उनकी यह चेष्टा देखकर

अम्बरीष जी लज्जा से काँप गये और सोचने लगे कि ये तो ऋषि हैं, ब्राह्मण हैं, ये मेरे चरणों में क्यों पड़ रहे हैं ? दुर्वासाजी ने कहा – 'मैं सुदर्शन चक्र की ज्वाला से जल रहा हूँ । इससे बचने के लिए भगवान् ने मुझे आपके पास भेजा है, कृपा करके आप मेरी रक्षा कीजिये ।'

अम्बरीषजी भगवान् के चक्र की स्तुति करने लगे – 'प्रभो ! आप अग्नि, भगवान् सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, आकाश आदि हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आपका तेज त्रिलोकी की रक्षा के लिए है । सूर्य आदि तो आपके अंश हैं । आप दैत्य-दानवों की सेना में घुसकर काट-काटकर उनका वध कर देते हैं । यदि मैंने कुछ भी दान किया है, यज्ञ किया है अथवा अपने धर्म का सुन्दर रीति से अनुष्ठान किया है तो मैं यही चाहता हूँ कि ब्राह्मण दुर्वासा जी का संकट मिट जाए ।'

इस तरह अम्बरीषजी ने अपनी भक्ति को दाँव पर लगा दिया । शुकदेवजी कहते हैं – जब राजा अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र की इस प्रकार स्तुति की और अपनी भक्ति को भी दाँव पर लगा दिया तब सुदर्शन चक्र शांत हो गये । चक्र के शांत होते ही दुर्वासाजी का सारा कष्ट दूर हो गया । दुर्वासाजी एक वर्ष तक चक्र की अग्नि से जलते हुए दौड़ते रहे थे । अब जाकर उन्होंने राहत की साँस ली ।

दुर्वासाजी ने कहा –

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे ॥

(श्रीभागवतजी - ९/५/१४)

'अरे, आज मैंने भगवान् के भक्तों का महत्व देखा । हे राजन् ! मैंने आपका अपराध किया, फिर भी आप मेरी मंगल कामना कर रहे हैं ।'

इसे कहते हैं भगवद्भक्त । जो बदला लेता है, वह भक्त नहीं है । यह नपी-तुली बात है । किसी ने हमसे कहा – 'उल्लू' और बदले में हम उसको गधा कहें तो यह भक्ति नहीं है । चाहे कोई कितना भी पढ़ा-लिखा है, विद्वान् है, ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, यदि वह अपने प्रति किये अपकार का बदला लेता है तो भक्त नहीं है । जो अनन्त भगवान् का दास होता है, उसका यही लक्षण है कि वह अपना अनिष्ट करने वाले का भी हित ही चाहता है । बदला लेना धोखा है, यह भक्ति नहीं है ।

तस्य तीर्थपदः किं वा दासानां अवशिष्यते ॥ (श्रीभागवतजी - ९/५/१६)

दुर्वासाजी कहते हैं – जिन प्रभु का नाम सुनने मात्र से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है तो फिर उनके दास में ऐसा गुण क्यों नहीं होगा ?

भगवान् का नाम सुनने से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है, तभी तो गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है –

राम एक तापस तिय तारी ।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥

नाम की ही महिमा है कि इसके प्रभाव से अब तक करोड़ों जीव सुधर गये और अभी भी सुधर रहे हैं । जो लोग नाम जप, नाम कीर्तन करते हैं, वे हिंसा नहीं करते हैं । जबकि संसार में कितने ही लोग हिंसा करते हैं ।

जब से दुर्वासा जी भागे थे तब से अब तक एक वर्ष का समय हो चुका था । एक वर्ष तक राजा अम्बरीष ने अन्न ग्रहण नहीं किया था । अब उन्होंने दुर्वासा जी के चरण पकड़ लिए और उन्हें प्रसन्न करके भोजन कराया । भोजन करके जब वे तृप्त हो गये तो उन्होंने अम्बरीष जी से कहा – 'राजन् ! अब आप भी भोजन कीजिये ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – **'द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत्'**

अम्बरीषजी ने दुर्वासा जी के भोजन से बचे हुए अन्न अर्थात उनके जूठन को खाया । भागवत के टीकाकार श्रीराघवाचार्य जी लिखते हैं – **'द्विजभुक्तावशेषणाद्'** - दुर्वासाजी के खाए हुए भोजन से बचे हुए अन्न अर्थात् उनकी जूठन को अम्बरीषजी ने खाया ।

बहुत से लोग संतों-भक्तों की जूठन से घबराते हैं और कहते हैं कि किसी का जूठन नहीं खाना चाहिए । किन्तु नहीं, साधु-ब्राह्मण की जूठन खाने का विधान है । श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

भगवत्प्रधानानामुपयोगेन श्रीभगवतः प्रीत्यतिशयात् ।

भक्तों की जूठन खाने से भक्ति आती है ।

सांसारिक पुरुष अपनी स्त्री और बच्चों की जूठन खा लेते हैं किन्तु सन्तों की जूठन नहीं खाते हैं ।

अस्तु, दुर्वासा ऋषि के मोक्ष को देखकर अम्बरीषजी ने इसे भगवान् की कृपा माना ।

शुकदेवजी कहते हैं – महाराज अम्बरीष के इस पवित्र आख्यान का जो संकीर्तन और स्मरण करता है, वह भगवान् का भक्त हो जाता है ।

अध्याय – ६

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – अम्बरीषजी के तीन पुत्र थे – विरूप,केतुमान और शम्भु । विरूप का पुत्र पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर हुआ । रथीतर के कोई संतान नहीं थी, अतः वंश परम्परा की रक्षा हेतु उसने अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की । उन्होंने उसकी पत्नी से ब्रह्म तेज से सम्पन्न कई पुत्र उत्पन्न किये । ये आंगिरस गोत्र के क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहलाये । अभी तक मनुजी के नौ पुत्रों के वंश का वर्णन किया जा चुका है । मनु जी के दसवें पुत्र थे इक्ष्वाकु । मनु जी के छींकने पर

उनकी नासिका से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ था । इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे । उनमें सबसे बड़े तीन थे – विकुक्षि, निमि और दण्डक । उनसे छोटे पच्चीस पुत्र आर्यावर्त के पूर्व भाग के राजा हुए, पच्चीस पश्चिम भाग के तथा सैंतालीस दक्षिण आदि अन्य प्रान्तों के राजा हुए । बाकी तीन मध्य भाग के राजा हुए । इक्ष्वाकु के तीन पुत्रों में दण्डक का वंश नहीं चला । पद्म पुराण में ऐसी कथा है कि दण्डकजी एक बार शुक्राचार्यजी के आश्रम में गये और उनकी बड़ी पुत्री अरजा के साथ अनुचित व्यवहार किया तो शुक्राचार्यजी ने दण्डक को शाप दे दिया, जिसके कारण उनके राज्य में सात दिनों तक आग की वर्षा होती रही । राजा के पाप से सारी प्रजा जल गयी और उनका राज्य जंगल बन गया, जिसका नाम हुआ दण्डकारण्य । लोगों ने दण्डकारण्य को फिर से सम्पन्न बनाने की प्रार्थना की तो यह वरदान मिला कि दण्डकारण्य तब पावन होगा जब भगवान् राम आयेंगे । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी संकेत में इस कथा का उल्लेख किया है – **दण्डकवन प्रभु कीन्ह सुहावन ।** श्रीमद्भागवत में इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि और निमि के वंश का वर्णन मिलता है किन्तु दण्डक के वंश का वर्णन नहीं किया गया है । विकुक्षि का चरित्र संक्षेप में इस प्रकार है कि एक बार राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका – श्राद्ध के समय विकुक्षि को आज्ञा दी कि श्राद्ध के योग्य पवित्र पशुओं का माँस लाओ । विकुक्षि पिता की आज्ञा से वन में गये और वहाँ श्राद्ध के योग्य बहुत से पशुओं का शिकार किया किन्तु भूख बहुत लगी तो एक पशु को खा लिया, शेष माँस गुरुजी को लाकर दिया तो उसकी करतूत को गुरुदेव जान गये । तब इक्ष्वाकु ने क्रोधित होकर विकुक्षि को देश से निकाल दिया । पिता का देहान्त होने पर विकुक्षि अपनी राजधानी में लौट आया और पृथ्वी का शासन करने लगा । उसने बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा भगवान् की आराधना की और संसार में शशाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ । विकुक्षि के पुत्र का नाम था 'पुरञ्जय' । उसी को कोई 'इन्द्रवाह' और कोई 'ककुस्त्थ' कहते हैं । सतयुग के अन्त में देवता और दानवों का युद्ध हुआ । उसमें सारे

देवता दैत्यों से हार गये । पुरञ्जय ने देवताओं की सहायता की और युद्ध में देवराज इन्द्र पुरञ्जय के वाहन बैल बने । इन्द्र के ऊपर सवार होकर पुरञ्जय ने दैत्यों का वध कर दिया और देवताओं को विजय दिला दी । इसी से इनके तीन नाम हो गये । पुरञ्जय का पुत्र था अनेना । उसका पुत्र हुआ पृथु । पृथु का विश्वरन्धि, उसका चन्द्र और चन्द्र का पुत्र हुआ युवनाश्व । युवनाश्व का पुत्र शाबस्त हुआ, शाबस्त का बृहदश्व और उसका कुवलयाश्व हुआ । इनके इक्कीस हजार पुत्र थे । उनको साथ लेकर इन्होंने धुन्धु नामक दैत्य का वध किया था । इसी से उनका नाम हुआ 'धुन्धुमार' । धुन्धु दैत्य के मुख की आग से उनके सब पुत्र जल गये । केवल तीन ही बचे थे । बचे हुए पुत्रों के नाम थे – दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व । आगे चलकर इनके वंश में युवनाश्व नामक राजा हुए । उनके कोई सन्तान नहीं थी । ऋषियों ने बड़ी कृपा करके युवनाश्व से पुत्र प्राप्ति के लिए इन्द्र देवता का यज्ञ कराया । एक बार रात को राजा युवनाश्व को बहुत प्यास लगी । वह यज्ञशाला में गये, वहाँ ऋषि लोग सो रहे थे । तब वहाँ उन्होंने कहीं जल न देखकर मन्त्र से अभिमन्त्रित जल को पी लिया । पुत्र उत्पन्न करने वाला जल पीने के कारण उन्हें गर्भ रह गया । प्रसव का समय आने पर युवनाश्व की दाहिनी कोख फाड़कर एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसे रोते देखकर ऋषियों ने कहा – 'यह किसका दूध पिएगा ?' पिता तो बच्चे को स्तन पान करा नहीं सकते थे, अतः वहाँ इन्द्र आये और बोले – 'मेरा पियेगा' - ' (मां धाता)' । इन्द्र ने अपनी अँगुली उस बालक के मुख में डाल दी । अतः उस बच्चे का नाम हुआ 'मान्धाता' । इन्द्र ने इनका नाम त्रसद्दस्यु भी रखा क्योंकि रावण आदि इनसे डरते थे । मान्धाता चक्रवर्ती राजा हुए । राजा मान्धाता की पत्नी शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती थी । उसके गर्भ से इनके तीन पुत्र हुए – पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द तथा पचास कन्यायें हुई । पचासों कन्याओं का सौभरि ऋषि के साथ विवाह हुआ था ।

सौभरि ऋषि एक बार यमुना जल के भीतर तपस्या कर रहे थे । वहाँ उन्होंने नर-मादा मछलियों का विहार देखा, उसे देखकर इनके मन में भोग की इच्छा जागृत हो गयी । तब उन्होंने राजा मान्धाता के पास जाकर पचास कन्याओं में से एक कन्या विवाह हेतु माँगी । राजा ने विचार किया कि ये मुनि तो इतने वृद्ध हो चुके हैं, ये कन्या के साथ विवाह करने योग्य तो नहीं हैं । फिर भी उन्होंने मुनि से कहा कि भीतर अन्तःपुर में चले जाइये, वहाँ मेरी पचास पुत्रियों में जो आपको वरण कर ले, उससे आप विवाह कर लीजिये । सौभरि ऋषि समझ गये कि राजा चतुराई कर रहे हैं । उन्होंने अपने तपोबल से देवताओं जैसा सुन्दर रूप बना लिया और महल के भीतर गये । पचासों कन्यायें इन्हें देखकर इस प्रकार मोहित हुईं कि इनको पति बनाने के लिए आपस का स्नेह छोड़कर परस्पर कलह करने लगीं और इनसे कहने लगीं – 'तुम मेरे पति हो, तुम मेरे योग्य हो ।' सौभरि ऋषि ने कहा कि मैं तुम सभी से विवाह करूँगा । इन्होंने पचासों रूप बनाकर पचास कन्याओं के साथ विवाह किया । राजा मान्धाता देखते ही रह गये । सौभरि ऋषि इतने बड़े तपस्वी थे कि एक बार इन्होने गरुड़ जी को शाप दे दिया था, जो भगवान् के पार्षद, उनके वाहन हैं । उसी अपराध के कारण तपस्या करते समय भी इनके मन में विवाह करने की कामना जाग्रत हो गयी थी । भगवद्भक्त महापुरुषों को शाप नहीं देना चाहिए । उनके प्रति अपराध से बहुत सावधान रहना चाहिए । विवाह करके सौभरि ऋषि अपनी स्त्रियों के साथ विहार करने लगे, उनकी पाँच हजार सन्तानें हुईं । अन्त में इन्हें गृहस्थ के भोगों से वैराग्य हो गया और उन्होंने कहा –

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः ।
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ॥

(श्रीभागवतजी - ९/६/५१)

जिस मनुष्य को भवसागर पार करने की इच्छा है, उसे चाहिए कि मिथुनव्रती (भोगी) लोगों का संग सर्वथा छोड़ दे । अपनी इन्द्रियों को एक क्षण के लिए भी बहिर्मुख न होने दो ।

परमार्थ में यह स्पष्ट बात है – जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम । भोग का लक्ष्य जहाँ है, वहाँ धोखा है । इस प्रकार विचार करते हुए सौभरि ऋषि ने विरक्त होकर सन्यास ले लिया और वन में चले गये । इनकी पत्नियाँ भी इनके साथ वन में गयीं । वन में सौभरि मुनि ने घोर तपस्या करके अपने आप को परमात्मा में लीन कर दिया । उनकी पत्नियाँ भी सती होकर उन्हीं की गति को प्राप्त हुई ।

अध्याय – ७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – मान्धाता के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ अम्बरीष थे । उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व और यौवनाश्व का हारीत हुआ । मान्धाता के दूसरे पुत्र थे पुरुकुत्स । नागों ने अपनी बहन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से कर दिया । नागराज वासुकि की आज्ञा से नर्मदा अपने पति को रसातल में ले गयी । वहाँ भगवान् की शक्ति से सम्पन्न होकर इन्होंने वध करने योग्य गन्धर्वों को मार डाला । इस पर नागराज ने प्रसन्न होकर पुरुकुत्स को वर दिया कि जो इस प्रसंग का स्मरण करेगा, उसे सर्पों से कोई भय नहीं रहेगा । इनके वंश में आगे चलकर सत्यव्रत हुए । यही सत्यव्रत त्रिशंकु के नाम से विख्यात हुए । ये अपने पिता और गुरु के शाप से चाण्डाल बन गये थे । तीन दोषों के कारण इनका नाम त्रिशंकु पड़ा था । एक बार किसी ब्राह्मण की कन्या का विवाह होने वाला था, उसे ये अपनी युवावस्था में हर लाये थे तो इनके पिता ने इनको चाण्डाल होने का शाप दे दिया । प्राचीन काल के पिता इतने कट्टर होते थे कि पुत्र के कुमार्ग पर चलने पर उसे कठोर दण्ड दिया

करते थे । एक बार बहुत बड़ा दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ा । उस समय इन्होंने विश्वामित्र जी के परिवार वालों की रक्षा की थी, तब विश्वामित्रजी ने प्रसन्न होकर इन्हें सशरीर स्वर्ग भेजने का आश्वासन दिया था । एक बार इनसे अनजान में गुरुदेव की गाय का वध हो गया था, तब गुरुदेव ने इन्हें शाप दे दिया था । विश्वामित्रजी के प्रभाव से ये सशरीर स्वर्ग में चले गये । देवताओं ने उन्हें वहाँ से धक्का दे दिया तो वह नीचे को सिर किये गिर पड़े परन्तु विश्वामित्रजी ने इन्हें अपने तपोबल से आकाश में ही स्थिर कर दिया । वह अब भी आकाश में लटके हुए दीखते हैं । त्रिशंकु के पुत्र थे हरिश्चन्द्र, जिनके लिए विश्वामित्र और वसिष्ठ एक दूसरे को शाप देकर पक्षी हो गये और बहुत वर्षों तक लड़ते रहे । राजा हरिश्चन्द्र जी की कथा सभी जानते हैं । सत्य के प्रति इनकी दृढ़ता को देखकर विश्वामित्रजी ने इनकी कठोर परीक्षा लेकर इन्हें बहुत परेशान किया । इन्होंने अपनी स्त्री व पुत्र को चाण्डाल को बेच दिया । वसिष्ठजी ने विश्वामित्र को शाप दे दिया कि तुमने हरिश्चन्द्र को इतना परेशान किया, अतः तुम बलाका पक्षी बन जाओ । विश्वामित्र वसिष्ठ से बोले – 'आप नहीं जानते, मैं इसको परेशान नहीं कर रहा हूँ, अपितु इसके यश को बढ़ा रहा हूँ, व्यर्थ ही आपने मुझे शाप दिया इसलिए आप बक (बगुला) बन जाइये ।' दोनों ऋषि एक दूसरे को शाप देकर पक्षी बनकर लड़ने लगे । हजारों वर्षों तक ये आपस में लड़ते रहे ।

हरिश्चन्द्रजी के कोई सन्तान नहीं थी । नारदजी के उपदेश से वरुण देवता की शरण में जाकर इन्होंने प्रार्थना की – 'प्रभो ! मुझे पुत्र प्राप्त हो । यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसी से आपका यज्ञ करूँगा ।' वरुण की कृपा से इनके रोहित नामक पुत्र हुआ । इतने में ही इनके पास वरुण देव आये और बोले – 'तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया, अब इसे मुझे अर्पित करो ।' हरिश्चन्द्र ने कहा – 'जब यह दस दिन से अधिक का हो जायेगा,

तब यज्ञ के योग्य होगा ।' दस दिन बीतने पर फिर वरुण आये तो हरिश्चन्द्र ने कहा – 'जब इसके मुख में दाँत निकल आयेंगे, तब यज्ञ करूँगा ।' दाँत निकलने पर फिर वरुण आये तो हरिश्चन्द्र ने कहा कि जब इसके दूध के दाँत गिर जायेंगे, तब यह यज्ञ के योग्य होगा । इसके बाद जब वरुण आये तो हरिश्चन्द्र ने कहा कि जब इसके दुबारा दाँत आ जायेंगे, तब यज्ञ के योग्य होगा । इसके बाद जब वरुण आये तो हरिश्चन्द्र बोले – 'जब यह कवच पहनने योग्य हो जायेगा तब यज्ञ के योग्य होगा ।' इस प्रकार वरुण के बार-बार आने पर हरिश्चन्द्र पुत्र प्रेम के कारण उन्हें टालते रहे । जब रोहित को इस बात का चला कि पिताजी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं तब वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए हाथ में धनुष लेकर वन में चला गया । कुछ दिनों के बाद उसे पता चला कि वरुणदेव ने मेरे पिता पर आक्रमण किया है, जिससे वे महोदर रोग से पीड़ित हो रहे हैं । तब रोहित जब-जब वन से अपने पिता के पास आने का प्रयास करता तो इन्द्र उसे बहका देते थे । इस प्रकार छः वर्ष बीत गये । सातवें वर्ष उसने अजीगर्त से उनके मझले पुत्र को खरीदकर उसे यज्ञपशु बनाने के लिए अपने पिता को दिया । जब हरिश्चन्द्र यज्ञ करने चले तो विश्वामित्र ने स्तुति करके उसे मुक्त करा दिया । विश्वामित्र जी हरिश्चन्द्र जी पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अविहत गति प्रदान की ।

अध्याय – ८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – रोहित का पुत्र था हरित । हरित से चम्प हुआ । उसी ने चम्पापुरी बसाई थी । इनके वंश में आगे चलकर बाहुक नामक राजा हुए । शत्रुओं ने इनके राज्य को छीन लिया, तब वह अपनी पत्नी के साथ वन में चले गये, वन में बाहुक की मृत्यु हो गयी । इनकी पत्नी सती होने को तैयार हुई तो महर्षि और्व ने रोक दिया और कहा कि

तेरे गर्भ में बालक है, वही आगे वंश चलाएगा, इसलिए तू सती मत हो । जब उसकी सौतों को पता चला कि इसे गर्भ है तो उन्होंने भोजन के साथ उसे गर(विष) दे दिया । परन्तु **जाको राखे साँइया मार सकै न कोय ।** गर्भ के बालक पर उस विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ बल्कि उस विष के साथ ही बालक का जन्म हुआ । गर अर्थात् विष के साथ पैदा होने के कारण उसका नाम हुआ सगर । सगर बड़े यशस्वी राजा हुए । एक बार इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया तो यज्ञ के घोड़े को इन्द्र ने चुरा लिया । इनकी दो रानियाँ थीं । पहली रानी सुमति थीं । सुमति के गर्भ से उत्पन्न सगर के पुत्र अपने पिता की आज्ञा से सारी पृथ्वी पर घोड़े को ढूँढने गये । इन्द्र ने घोड़ा ले जाकर कपिल मुनि के पास बाँध दिया । सगर पुत्रों ने घोड़े की खोज में सब ओर से पृथ्वी को खोद डाला । खोदते-खोदते उन्हें कपिल मुनि के पास अपना घोड़ा दिखाई दिया । वे लोग कपिल मुनि पर बड़े नाराज हुए और बोले कि यही चोर है । इसे मार डालो, यह पापी है । ऐसा कहकर वे शस्त्र उठाकर कपिल मुनि को मारने दौड़े, इस अपराध के कारण उनके शरीरों में अपने आप ही आग जल उठी और वे क्षण भर में ही जलकर खाक हो गये । कपिल मुनि ने उन्हें नहीं जलाया था । सगर की दूसरी पत्नी का नाम था केशिनी । उससे असमञ्जस नामक पुत्र हुआ । असमञ्जस के पुत्र का नाम था अंशुमान् । असमञ्जसजी बड़े ज्ञानी थे, वे पूर्व जन्म के योगी थे । संग के कारण वे योग से विचलित हो गये थे, इस जन्म में भी उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण बना हुआ था । वे राजा नहीं बनना चाहते थे । इसलिए वे ऐसे काम किया करते थे, जिससे भाई-बन्धु उनसे प्रेम न करें । कभी-कभी वे खेलते हुए बच्चों को सरयू में डाल देते । पिता ने उनका त्याग कर दिया । असमञ्जस ने इसे बहुत अच्छा समझा । उन्होंने कहा कि मैं यही चाहता था । संसार में रहकर मैं क्या करूँगा,

मनुष्य जीवन का मुख्य लाभ तो यही है कि भगवान् का भजन करना चाहिए। पिताजी मुझे ऐसे तो निकालते नहीं। पिता के त्यागने के बाद असमञ्जस ने उन बालकों को जीवित कर दिया, जिन्हें उन्होंने सरयू में डाल दिया था।

इसके बाद राजा सगर की आज्ञा से अंशुमान घोड़े को ढूँढने के लिए निकले। उन्होंने अपने चाचाओं द्वारा खोदे हुए समुद्र के किनारे चलकर उनके शरीर के भस्म के पास ही घोड़े को देखा। वहीं भगवान् के अवतार कपिल मुनि को भी उन्होंने देखा। उन्हें देखकर अंशुमान ने उनके चरणों में प्रणाम कर स्तुति की। अंशुमान ने कहा – 'भगवन्! आप ज्ञानघन हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' श्रीकपिल भगवान् ने कहा – 'बेटा! यह तुम्हारा घोड़ा है, इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओं का उद्धार गंगाजल से होगा, इसलिए तुम गंगाजी को पृथ्वी पर लाओ।'

अध्याय – ९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित! अंशुमान ने गंगाजी को पृथ्वी पर लाने की कामना से बहुत वर्षों तक घोर तप किया किन्तु तप करते-करते उनकी मृत्यु हो गयी, गंगाजी पृथ्वी पर नहीं आ सकीं। अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी तपस्या की परन्तु वे भी असफल रहे और समय पर उनकी भी मृत्यु हो गयी। दिलीप के पुत्र थे भगीरथ, उन्होंने संकल्प लिया कि मैं गंगाजी को पृथ्वी पर लाऊँगा। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। गंगा मैया ने सोचा कि इनकी तो कई पीढ़ी मेरे लिए तपस्या कर रही है। इसलिए वे प्रसन्न हो गयीं और भगीरथ को उन्होंने दर्शन दिया एवं कहा – 'वरदान माँगो।' भगीरथ बोले – 'माँ! पृथ्वी पर आओ, मेरे पुरखों की राख पड़ी है, ऐसी कृपा करो कि उनका उद्धार हो जाए।' गंगाजी ने कहा – 'मैं पृथ्वी पर आ तो जाऊँगी किन्तु जब मैं स्वर्ग से

नीचे गिरूँगी, उस समय मेरे वेग को कौन धारण करेगा ? ऐसा न होने पर मैं रसातल में चली जाऊँगी । इसके अतिरिक्त एक बात और है कि मैं पृथ्वी पर जाना भी नहीं चाहती क्योंकि पापी लोग आकर मेरे जल में अपने पाप धोयेंगे, अपने सारे पाप मुझमें छोड़ जायेंगे फिर मैं उन पापों को कहाँ धोऊँगी ?' भगीरथजी ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया –

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्ति अघं ते अऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभित् हरिः ॥

(श्रीभागवतजी - ९/९/६)

हे गंगा मैया ! ऐसे साधु-सन्यासी जो शान्त हैं, भगवान् में निष्ठ हैं, संसार को पवित्र करने वाले हैं, वे जब तुम्हारे जल में स्नान करेंगे तो तुम्हारे भीतर पापियों द्वारा छोड़े हुए पाप को नष्ट कर देंगे । कैसे नष्ट करेंगे ? **तेष्वास्ते ह्यघभित् हरिः** – क्योंकि उनके हृदय में पापों को नष्ट करने वाले भगवान् सदा निवास करते हैं । भगवान् अपने भक्तों के हृदय में सदा विराजते हैं ।

विचार करो, भक्तों की कैसी महिमा है ? तभी तो व्यासजी ने लिखा है –

जो सुख होत भगत घर आये ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हें,
कोटिक तीरथ न्हाये ॥

भगवद्भक्त के दर्शन कर लो, करोड़ों गंगा, करोड़ों तीर्थ स्नान से अधिक फल मिलेगा । व्यासजी कहते हैं – **'कोटिक गंग समान ।'** किसी भगवान् के भक्त की चरण रज में जाकर स्नान कर लो, करोड़ों गंगा में स्नान करने का फल मिल जायेगा क्योंकि भक्त तो गंगाजी को भी पवित्र करते हैं । गंगाजी तो भगवान् के चरणों की धोवन हैं जबकि भक्तों के हृदय में तो साक्षात् भगवान् रहते हैं । भगीरथजी ने गंगाजी से

यह भी कहा – 'माता ! तुम्हारे वेग को महादेवजी धारण करेंगे ।' गंगाजी से इस प्रकार कहकर भगीरथजी ने तपस्या के द्वारा महादेवजी को प्रसन्न कर लिया । महादेवजी उनके सामने प्रकट हुए । भगीरथ ने कहा – 'भगवन् ! गंगाजी को आप अपने मस्तक पर धारण कर लीजिये ।' भगवान् शंकर बोले – 'ठीक है ।' इसके बाद शिवजी अपनी जटाओं को फैलाकर खड़े हो गये । गंगाजी आकाश से हर-हर करती हुई तीव्र वेग से गिरीं । भगवान् शिव ने उन्हें अपने शीश पर धारण कर लिया । इसीलिए उनका एक नाम गंगाधर भी है । महादेवजी गंगाजी को अपनी जटाओं में बाँधकर बैठ गये । भगीरथ ने फिर से तपस्या की, तब भोले बाबा ने अपनी जटाओं से गंगाजी को उन्हें प्रदान किया । इसीलिए गंगाजी का एक नाम भागीरथी भी है क्योंकि राजा भगीरथ ही गंगाजी को पृथ्वी पर लाये । भगीरथजी गंगाजी को वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरों के शरीर राख के ढेर बने पड़े थे । गंगाजी ने सगर के जले हुए पुत्रों को अपने जल में डुबो दिया । गंगाजल का स्पर्श होने से उनका उद्धार हो गया, फिर जो लोग श्रद्धा के साथ गंगा जी में स्नान करते हैं, उनके सम्बन्ध में तो क्या कहा जाए ?

भगीरथ के पुत्र का नाम था श्रुत, श्रुत का पुत्र हुआ नाभ । नाभ का पुत्र था सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का अयुतायु । अयुतायु के पुत्र का नाम था ऋतुपर्ण । वह नल का मित्र था, उसने राजा नल को पासा फेंकने की विद्या सिखाई थी । ऋतुपर्ण का पुत्र हुआ सर्वकाम । सर्वकाम का पुत्र था सुदास । सुदास के पुत्र का नाम था सौदास । उसकी पत्नी का नाम था मदयन्ती । सौदास के अन्य नाम मित्रसह और कल्माषपाद भी हैं । वह वसिष्ठ के शाप से राक्षस हो गया था ।

राजा परीक्षित ने पूछा – गुरुदेव ! सौदास को वसिष्ठजी ने शाप क्यों दिया था ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – एक बार राजा सौदास शिकार खेलने वन में गये थे । वहाँ उन्होंने किसी राक्षस को मार डाला और उसके भाई

को छोड़ दिया । उसने अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए एक रसोइये का रूप बनाया और सौदास के घर गया । जब एक दिन भोजन करने के लिए गुरु वसिष्ठ राजा सौदास के यहाँ आये तब उस राक्षस के भाई ने मनुष्य का माँस पकाकर उन्हें परोस दिया । जब गुरुजी को इस बात का पता चला तब उन्होंने राजा को राक्षस होने का शाप दे दिया, जबकि सौदास की कोई गलती नहीं थी । जब गुरुदेव को इस बात का पता चला कि वह निन्दनीय कार्य तो राक्षस ने किया था, सौदास ने नहीं, तब उन्होंने उस शाप को बारह वर्ष का कर दिया । उस समय राजा सौदास ने भी गुरुजी को शाप देने के लिए जल उठाया कि मेरी कोई गलती नहीं थी, फिर भी इन्होंने मुझे व्यर्थ ही शाप दे दिया । किन्तु इनकी पत्नी मदयन्ती ने इन्हें शाप देने से रोका और कहा कि गुरु को शाप नहीं देना चाहिए । मदयन्ती रोने लगीं और अपने पति के पाँवों में लिपटकर उन्हें शाप देने से रोका । फिर सौदास ने विचार किया कि शाप देने के लिए जो जल मैंने उठाया था, इसे कहाँ डालूँ तब उन्होंने उस जल को अपने पैरों पर डाल दिया । इससे उनके पैर काले पड़ गये । अब वह बारह वर्ष के लिए राक्षस बन गये । एक दिन राक्षस बने सौदास ने वन में देखा कि एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी विहार कर रहे हैं तब सौदास ने ब्राह्मण को खाने के लिए पकड़ लिया । ब्राह्मणी ने इनसे कहा कि आप मेरे पति को मत खाइए । आप तो राजा सौदास हैं । आपको राक्षस होने का शाप मिला है, तब भी आप ब्राह्मण को मत खाइए । परन्तु शाप से मोहित होने के कारण सौदास ने ब्राह्मण को खा ही लिया । तब ब्राह्मणी ने इन्हें शाप दे दिया – 'मेरी पति से सहवास करने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी, इसलिए तू भी जब अपनी स्त्री से सहवास करेगा तो तेरी मृत्यु हो जाएगी ।' इस प्रकार शाप देकर ब्राह्मणी अपने पति के साथ सती हो गयी । बारह वर्ष बीतने पर सौदास शाप से मुक्त हो गये । जब वह सहवास के लिए अपनी पत्नी के पास

गये तब उसने इन्हें रोक दिया क्योंकि उसे ब्राह्मणी के शाप का पता था । अब आगे वंश कैसे चले, इसके लिए गुरु वसिष्ठ को बुलाया गया तब उन्होंने रानी मदयन्ती से सन्तान उत्पन्न की । मदयन्ती सात वर्षों तक गर्भ धारण किये रही, परन्तु शिशु का जन्म नहीं हुआ । तब वसिष्ठजी ने पत्थर से उसके पेट पर आघात किया, ऐसा करने पर जो बालक पैदा हुआ, वह अश्म (पत्थर) की चोट से पैदा होने के कारण 'अश्मक' कहलाया । अश्मक से मूलक का जन्म हुआ । जब परशुराम जी क्षत्रियों का संहार कर रहे थे तब स्त्रियों ने उसे छिपाकर रख दिया था, इसी से उसका एक नाम 'नारी कवच' भी हुआ । पृथ्वी के क्षत्रिय विहीन हो जाने पर वह उस वंश का मूल (प्रवर्तक) बना, इसलिए उसे मूलक भी कहा जाता है । मूलक के पुत्र हुए दशरथ, दशरथ के ऐडविड और ऐडविड के राजा विश्वसह हुए । विश्वसह के पुत्र हुए खटवाङ्ग । ये बड़े वीर थे । जब देवताओं का दैत्यों के साथ युद्ध हुआ तो देवता उन्हें युद्ध के लिए बुला ले गये थे कि असुरों को मारो, हमारी रक्षा करो । इनका दैत्यों के साथ घमासान युद्ध हुआ और अन्त में इन्होंने दैत्यों को परास्त कर देवताओं को विजयी बना दिया । देवताओं ने इनसे कहा कि अब हम युद्ध जीत चुके हैं, आप जाइये । खट्वाङ्ग ने देवताओं से पूछा कि मेरी आयु कितनी शेष रह गयी है ? देवताओं ने बताया कि आपकी एक मुहूर्त (लगभग पौने घंटा या पैंतालीस मिनट) की आयु शेष बची है ।

यदि मनुष्य चाहे तो थोड़ी देर में ही उसका कल्याण हो सकता है । देवताओं ने खट्वाङ्ग से वर माँगने को कहा तो वे बोले कि जब इतनी कम आयु है तो मैं आप लोगों से वरदान लेकर क्या करूँगा, मैं तो प्रभु की शरण में जाता हूँ । **'भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये'** – (श्रीभागवतजी - ९/९/४७) क्योंकि यह संसार मिथ्या है । इस प्रकार वे भगवान् की शरण में गये तो एक मुहूर्त (पौने घंटे) की भक्ति में ही उनका कल्याण हो गया ।

अध्याय – १०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघु के पुत्र अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए। दशरथजी के पुत्र हुए भगवान् राम।

बोलो राजा रामचन्द्र की जय।

देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् भगवान् श्री हरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे – राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। ये चारों भाई थे। भगवान् श्री राम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा के लिए राजपाट छोड़ दिया और वन-वन में घूमते रहे।

'पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्'

(श्रीभागवतजी - ९/१०/४)

उनके चरणकमल इतने कोमल थे कि सीताजी जब उन्हें दबातीं तो उन चरणकमलों को स्पर्श करने से भी डरती थीं और पिता की आज्ञा से उन्हीं सुकुमार चरणों से प्रभु श्री राम वन-वन में घूमे। उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में मारीच, सुबाहु आदि राक्षसों को मारा। सीताजी के लिए स्वयंवर में गये। वहाँ शिवजी का भयंकर धनुष तोड़ा। धनुष तोड़कर उन्होंने सीताजी का पाणिग्रहण किया। अयोध्या लौटते समय रास्ते में परशुराम जी मिल गये, भगवान् ने उनके गर्व को नष्ट किया। इसके बाद पिता के वचन को सत्य करने के लिए उन्होंने वनवास स्वीकार किया। वन में उन्होंने रावण की बहन शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए, खर-दूषण आदि राक्षस, जो संख्या में चौदह हजार थे, उनको नष्ट किया। रावण जानकीजी का हरण करके ले गया तो उनके वियोग में रामजी रोये। क्यों रोये ?

स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार – (श्रीभागवतजी - ९/१०/११)

उन्होंने यह शिक्षा दी कि जो लोग स्त्रियों में आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है । इसके बाद उन्होंने जटायु का पिता की तरह दाह-संस्कार किया । फिर सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके बालि का वध किया और वानरों की सहायता से सीता जी का पता लगवाया तथा वानर सेना के साथ समुद्र तट पर पहुँचे । भगवान् ने जब रोष के साथ टेढ़ी नजर से समुद्र को देखा तो वह जलने लगा, समुद्री जीव-जन्तु व्याकुल हो उठे । तब समुद्र भगवान् की शरण में आया, उनकी स्तुति की – 'प्रभो ! मैं मूर्ख हूँ, इसलिए आपकी महिमा को जान नहीं सका । मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझ पर एक पुल बाँध दीजिये, इससे आपके यश का विस्तार होगा ।'

इसके बाद भगवान् राम अपनी सेना के साथ लंका गये, जिसे हनुमानजी पहले ही जला आये थे । रामजी ने लंका में रहने वाले कुम्भकर्ण आदि अनेकों शक्तिशाली दैत्यों का वध किया । उनका मरना स्वाभाविक ही था क्योंकि –

'सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान्' (श्रीभागवतजी - ९/१०/२०)

वे उसी रावण में आसक्ति रखते थे, जिसका मंगल सीताजी को स्पर्श करने के कारण पहले ही नष्ट हो चुका था । जब रावण के सभी प्रधान असुर मारे गये तो वह स्वयं प्रभु श्रीराम से लड़ने के लिए आया तो उन्होंने उससे कहा – 'नीच राक्षस ! तू मेरी अनुपस्थिति में मेरी प्रिया का कुत्ते की तरह हरण कर लाया, अब मैं तुझे इसका फल देता हूँ ।' इस प्रकार रावण को फटकारते हुए भगवान् राम ने ऐसा बाण मारा कि उसका हृदय फट गया । वह अपने दसों मुखों से खून उगलता हुआ गिर पड़ा । रावण के मरने पर मन्दोदरी विलाप करने लगी और कहने लगी – 'स्वामी ! यह सब तुम्हारी कामुकता का फल है, तुमने सीताजी के तेज को नहीं पहचाना । तुम्हारी यही भूल तुम्हारी दुर्दशा का कारण

बन गयी ।' इसके बाद भगवान् राम ने विभीषण को लंका का राजा बना दिया और वे अशोक वाटिका में गये । वहाँ उन्होंने सीताजी को देखा । भगवान् का दर्शन पाकर सीताजी का हृदय प्रेम और आनन्द से भर गया । भगवान् ने विभीषण को लंका का राज्य और एक कल्प की आयु दी तथा पुष्पक विमान पर सीताजी, लक्ष्मणजी और सुग्रीव एवं हनुमान जी के साथ सवार होकर अयोध्या आ गये । भरत जी केवल गो मूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते थे, वल्कल पहनते और पृथ्वी पर सोते थे । नन्दिग्राम में भरत जी राम जी की चरण पादुका रखते थे । भगवान् को देखते ही भरतजी के हृदय में प्रेम की बाढ़ आ गयी, वे भगवान् के चरणों में गिर पड़े । भगवान् ने अपनी भुजाओं में भरकर बहुत देर तक भरत जी को हृदय से लगाये रखा । इसके बाद भरतजी ने पादुकायें लीं, विभीषण ने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीव ने पंखा और श्री हनुमान जी ने श्वेत छत्र लिया तथा वे लोग रामजी को राजसिंहासन की ओर ले गये । भगवान् ने अयोध्या पुरी में प्रवेश किया । राजमहल में उन्होंने अपनी माता कौशल्या तथा अन्य माताओं का सम्मान किया । इसके बाद वसिष्ठजी ने विधिपूर्वक भगवान् की जटा उतरवायी तथा समुद्र के जल से उनका अभिषेक किया । भगवान् श्रीराम पिता के समान प्रजा का पालन करने लगे । जब वे राजा बने तब था त्रेता युग किन्तु वह सतयुग बन गया । बिना इच्छा के राम जी के राज्य में किसी की मृत्यु नहीं होती थी । जब किसी की इच्छा होती तभी उसकी मृत्यु होती थी । **'एकपत्नीव्रतधरो'** – रामजी ने एक पत्नी का व्रत धारण किया था ।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥

रघुवंशियों का यह सहज स्वभाव था कि इस वंश के किसी भी व्यक्ति का मन कभी कुपंथ की ओर नहीं गया ।

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥

रामजी ने कहा है कि यह अत्यधिक विश्वास की बात है कि स्वप्न में भी मेरा मन कभी परस्त्री की ओर नहीं गया ।

एक साथ दो बातें नहीं हो सकतीं । मनुष्य एकपत्नीव्रत हो जाए तभी वह भक्ति के, धर्म के मार्ग पर चल सकता है । स्त्री लम्पट बनकर भक्ति रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता । सती शिरोमणि सीताजी प्रेम से, सेवा से, अत्यधिक विनय, लज्जा, बुद्धि आदि दिव्य गुणों से अपने पति भगवान् श्रीरामजी का मन हरती थीं ।

अध्याय – ११

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीराम ने कई यज्ञ किये । सारी पृथ्वी का उन्होंने ब्राह्मणों को दान कर दिया । अपने शरीर के वस्त्र और अलंकार ही अपने पास रखे तथा सीताजी के पास भी केवल सुहाग के चिह्न बचे, बाकी सब कुछ उन्होंने भी दान कर दिया । ब्राह्मणों ने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते हैं तब उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान् को ही लौटा दी और कहा कि इसका पालन आप ही कीजिये ।

एक बार अपनी प्रजा की स्थिति जानने के लिए श्रीरामजी रात के समय गुप्त रूप से घूम रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक धोबी की पत्नी रूठ कर चली गयी थी । रात को वह किसी दूसरे के घर रही । जब सुबह वह घर लौटकर आई तो धोबी उससे कह रहा था – 'तू मेरे घर में कैसे घुस आई ?'

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।

(श्रीभागवतजी - ९/११/९)

'तू दुष्ट स्त्री है, असती है, दूसरे के घर में रही है ।'

स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ।

'मैं स्त्री लोभी राम की तरह नहीं हूँ, जो तुझे अपने घर में रखूँ ।'

भगवान् राम ने यह बात सुनी । यह संसार कैसा है ? **'दुराराध्यादसंविदः'** – यह संसार दुराराध्य है । सब लोगों को प्रसन्न करना बड़ा कठिन है । विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने संसार के लोगों के बारे में लिखा है – **'ज्ञानशून्यात्'** अर्थात् संसार में अधिकांश लोग ज्ञानशून्य यानी मूर्ख होते हैं । अंग्रेजी में एक कहावत है - majority consists of fools अर्थात् समाज में अधिकतर लोग मूर्ख होते हैं । मनोविज्ञान में कहा गया है कि साधारण जनता का स्तर निम्न होता है । इसीलिए प्रजातन्त्र को अच्छा राज्य नहीं माना गया है । श्रीधरस्वामी भी कहते हैं कि लोग अज्ञ होते हैं । यह मूर्ख समाज है ।

अस्तु, जब भगवान् श्रीराम ने बहुत से लोगों के मुख से अपनी निन्दा की बात सुनी तो वे लोक निन्दा से भयभीत हो गये तथा सीताजी का त्याग कर दिया । श्रीराम द्वारा अयोध्या से निष्कासित किये जाने पर सीताजी वन में वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहने लगीं । जानकी जी उस समय गर्भवती थीं । समय आने पर उनके एक ही साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे कुश और लव । अन्त में अपने पति श्रीरामजी द्वारा निर्वासित सीताजी अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि को सौंपकर श्रीरामजी जी के चरणों का ध्यान करती हुई विवर अर्थात् पाताल लोक में प्रवेश कर गयीं, संसार को शिक्षा देने के लिए कि स्त्री और पुरुष का प्रसंग इसी प्रकार दुःखद होता है ।

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ।

(श्रीभागवतजी - ९/११/१७)

इसके बाद भगवान् राम ने तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया ।

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ।

(श्रीभागवतजी - ९/११/१८)

श्रीरामजी का ब्रह्मचर्य अखण्ड रहा ।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥

(श्रीभागवतजी - ९/११/१९)

इसके अनन्तर अपने भक्तों के हृदय में अपने उन चरणकमलों को स्थापित कर, जो दण्डक वन के काँटों से बिंध गये थे, प्रभु श्रीराम अपने ज्योतिर्मय साकेत धाम को चले गये ।

उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से यह लीला शरीर धारण किया था, उन्हें शत्रुओं को मारने के लिए बन्दरों की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं थी । यह सब केवल उनकी लीला है । उन प्रभु श्रीराम की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जो मनुष्य अपने कानों से भगवान् श्रीराम का चरित्र सुनता है, उसे सरलता, कोमलता आदि गुणों की प्राप्ति होती है तथा वह समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है । राजा परीक्षित ने पूछा – भगवान् श्रीराम अपनी प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करते थे तथा उनकी प्रजा का समय कैसा बीता ? श्रीशुकदेव जी कहते हैं – प्रजा श्रीराम को देखकर बड़ी प्रसन्न रहती तथा अतृप्त नयनों से उन्हें देखा करती थी । श्रीरामजी प्रजा का पिता के समान पालन करते थे और उनकी प्रजा भी उन्हें पिता समझती थी ।

अध्याय – १२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीराम के पुत्र कुश का पुत्र हुआ अतिथि, उसका पुत्र था निषध । इसी वंश में आगे चलकर हिरण्यनाभ

हुए। वे जैमिनी के शिष्य तथा योगाचार्य थे। याज्ञवल्क्य ऋषि ने उनकी शिष्यता स्वीकार करके उनसे अध्यात्म योग की शिक्षा ग्रहण की थी। हिरण्यनाभ के वंश में सुदर्शन हुआ तथा सुदर्शन के वंश में आगे चलकर मरु का जन्म हुआ। मरु ने योगसाधना में सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वे इस समय भी कलाप नामक ग्राम में हैं। कलियुग के अन्त में सूर्य वंश के नष्ट हो जाने पर वे फिर से उसे चलायेंगे। शुकदेवजी ने मरु से लेकर आगे आने वाले वंश का विस्तार से वर्णन किया, फिर बताया कि इक्ष्वाकुजी का वंश सुमित्र तक ही रहेगा। क्योंकि सुमित्र के राजा होने पर कलियुग में यह वंश समाप्त हो जायेगा।

अध्याय – १३

इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि और उनके वंश का वर्णन तो हो गया। अब इक्ष्वाकु के दूसरे प्रधान पुत्र निमि और उनके वंश के बारे में शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने यज्ञ आरम्भ करके वसिष्ठ को ऋत्विज के रूप में वरण किया। वसिष्ठजी ने कहा कि इन्द्र मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं, मैं उनका यज्ञ अभी करा रहा हूँ, उनका यज्ञ कराकर जब आऊँगा तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करना। ऐसा कहकर वसिष्ठ जी स्वर्ग चले गये। राजा निमि ने सोचा कि पता नहीं कब गुरु जी आयेंगे, यह जीवन तो क्षणभंगुर है, आयु बीती जा रही है। गुरुजी लोभ में दूसरी जगह चले गये। गुरु कोई भी हो, लोभ बुरी चीज है। निमि ने विलम्ब करना उचित न जानकर, दूसरे ऋत्विजों के द्वारा, जब तक गुरु वसिष्ठ न लौटें, तब तक के लिए यज्ञ आरम्भ कर दिया। गुरु वसिष्ठ जब इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न कराकर लौटे तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमि ने उनकी बात न मानकर यज्ञ आरम्भ कर दिया है। कुपित होकर वसिष्ठजी ने निमि को शाप दे दिया – 'तुझे अपने पाण्डित्य का घमण्ड है, इसलिए तेरा शरीर छूट जाये।' शिष्य निमि ने

उनसे कहा – **'गुरवेऽधर्मवर्तिने'** – 'आप गुरु नहीं हैं, अधर्मवर्ती हैं क्योंकि – **'लोभाद्'** – आपमें लोभ है ।'

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी ने लिखा है – **'इन्द्रतो मत्तोऽपि दक्षिणाकांक्षारूपात् ।'**

निमि ने वसिष्ठजी से कहा – 'आप इन्द्र से भी दक्षिणा पाना चाहते हैं और मुझसे भी चाहते हैं ।' यह गुरु का लक्षण नहीं है । गुरु की दृष्टि तो सतत् भगवान् पर होनी चाहिए । भक्त तो वह है जो भगवान् के लिए त्रिलोकी का राज्य भी छोड़ देता है ।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

(श्रीभागवतजी - ६/११/२५)

वह कैसा गुरु है, जो दक्षिणा के लिए पैसा टटोलता है । ऐसा आचार्यों ने लिखा है । इसीलिए वसिष्ठ के शाप देने पर निमि ने भी उनको शाप दे दिया कि आपका भी शरीर छूट जाये । निमि के शाप से वसिष्ठ ने अपना शरीर त्यागकर दूसरा जन्म लिया । राजा निमि के यज्ञ में आये हुए मुनियों ने उनके मृतक शरीर को सुगन्धित वस्तुओं में रख दिया और यज्ञ की समाप्ति होने पर वहाँ आये देवताओं से कहा – 'यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो राजा निमि का यह शरीर जीवित हो जाए ।' देवताओं ने कहा – 'ऐसा ही हो ।' राजा निमि ने कहा – 'मैं शरीर का बन्धन नहीं चाहता । (निमि अपने लिंग शरीर के द्वारा बोले) भगवान् में बुद्धि को लगाने वाले मुनिजन उन्हीं के चरणकमलों का भजन करते रहते हैं । एक दिन यह शरीर अवश्य ही छूटेगा, इस भय से अधीर होकर वे शरीर का सम्बन्ध नहीं चाहते हैं । अतः दुःख, शोक और भय को देने वाले शरीर को मैं धारण नहीं करना चाहता हूँ । इस शरीर के लिए सब जगह मृत्यु का अवसर है जैसे जल में मछलियों के लिए सदा मृत्यु का भयहै ।' देवताओं ने कहा – 'ठीक है, राजा निमि बिना शरीर

के अपनी इच्छानुसार प्राणियों के नेत्र में निवास करें । पलक उठने-गिरने से इनके अस्तित्त्व का पता चलेगा ।' इसके बाद निमि के शरीर का मन्थन किया गया तो उससे जनकजी उत्पन्न हुए । जन्म लेने के कारण उनका नाम हुआ जनक, बिना शरीर वाले विदेह से उत्पन्न होने के कारण वैदेह, मथने से उत्पन्न होने के कारण ये मिथिल कहलाये । इन्होंने मिथिला पुरी बसाई थी । इनके वंश में आगे चलकर महाराज सीरध्वज उत्पन्न हुए । वे जब यज्ञ के लिए धरती जोत रहे थे तब उनके हल के अग्रभाग से सीताजी उत्पन्न हुईं । सीरध्वज के पुत्र हुए कुशध्वज, कुशध्वज के धर्मध्वज तथा धर्मध्वज के दो पुत्र हुए – कृतध्वज और मितध्वज । कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज और मितध्वज के खाण्डिक्य हुए । केशिध्वज अध्यात्म विद्या में निपुण हुए । खाण्डिक्य कर्मवेत्ता था, वह केशिध्वज से डरकर भाग गया । शुकदेवजी ने इनके वंश के राजाओं का वर्णन करते हुए अन्त में बताया कि मिथिल के वंश में उत्पन्न सभी राजा ब्रह्मज्ञानी थे ।

अध्याय – १४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित ! अब चन्द्रमा के वंश के बारे में सुनो, इसी में भगवान् श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए । इस वंश के बारे में सुनने से पाप नष्ट होता है ।

सबसे पहले भगवान् के नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । ब्रह्माजी के पुत्र हुए अत्रि । अत्रि मुनि के नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ । एक बार चन्द्रमा ने तीनों लोक जीत लिए, इससे उनको मद हो गया और अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी, जो कि चन्द्रमा की गुरुमाता थीं, उनका हरण कर लिया । बृहस्पति ने अपनी पत्नी तारा को लौटा देने की चन्द्रमा से बार-बार प्रार्थना की किन्तु उन्होंने नहीं लौटाया । इस कारण से देवताओं और असुरों में युद्ध छिड़ गया । असुरों ने चन्द्रमा का साथ दिया । शुक्राचार्यजी ने भी चन्द्रमा का पक्ष लिया । महादेवजी

ने बृहस्पति का पक्ष लिया । ब्रह्माजी ने आकर दोनों पक्षों में समझौता कराया । ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को बहुत डाँटा-फटकारा और तारा को उसके पति बृहस्पति के हवाले कर दिया । तारा को गर्भवती जानकर बृहस्पतिजी ने उससे कहा – 'दुष्टे ! यह किसी दूसरे का गर्भ है, इसे तू अभी त्याग दे ।' तारा ने बालक को अपने गर्भ से अलग कर दिया । देवी-देवता कभी भी गर्भ से बालक को निकाल सकते हैं । तारा के द्वारा छोड़ा हुआ वह बालक बहुत सुन्दर था । उसको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो गये और कहने लगे कि यह बालक मेरा है । ऋषियों और देवताओं ने तारा से पूछा कि यह किसका पुत्र है ? तारा ने लज्जा के कारण कोई उत्तर नहीं दिया । वह बालक क्रोधित होकर अपनी माता से बोला – 'दुष्टे ! तू क्यों नहीं बताती कि मैं किसका बालक हूँ ?' ब्रह्माजी ने तारा को एकांत में ले जाकर पूछा कि यह बालक किसका है ? तब तारा ने बताया कि चन्द्रमा का है । चन्द्रमा ने उस बालक को ले लिया और ब्रह्माजी ने उस बालक का नाम रखा – 'बुध ।' बुध के द्वारा इला के गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ । इला मनु की पुत्री थी । आगे चलकर पुरुरवा और उर्वशी का सम्बन्ध हुआ । मित्रावरुण ऋषि के द्वारा उर्वशी को शाप मिला था । इसीलिए उसे मृत्यु लोक में आना पड़ा था । उर्वशी राजा पुरुरवा के पास आई तो उन्होंने उसका स्वागत किया । उर्वशी ने कहा – 'राजन् ! मैं आपके पास तीन शर्तों पर रहूँगी । एक तो आपको भेंड के दो बच्चे रखकर इनकी रक्षा करना होगा । मैं केवल घी खाऊँगी तथा मैथुन के अतिरिक्त किसी भी समय आपको नग्न नहीं देख सकती ।' पुरुरवा ने उर्वशी की शर्त स्वीकार कर ली । उर्वशी बहुत लम्बे समय तक पुरुरवा के साथ रही । स्वर्ग में इन्द्र उर्वशी के बिना व्याकुल हो गये । उन्होंने गन्धर्वों को उर्वशी को लाने के लिए भेजा । रात के समय गन्धर्व उर्वशी के दोनों भेड़ों को चुराकर ले गये । जब उर्वशी ने भेड़ों के क्रन्दन की आवाज सुनी तो वह पुरुरवा के सामने रोने लगी और उन्हें बहुत कटु वचन कहे । राजा नग्न

ही हाथ में तलवार लेकर भेड़ों को छुड़ाने के लिए दौड़ पड़े । उन्हें देखकर गन्धर्वों ने भेड़ों को छोड़ दिया । उसी समय बिजली बनकर गन्धर्व चमकने लगे, उस प्रकाश में भेड़ों को लाते हुए नंगे पुरुरवा को देखकर उर्वशी उसी समय उन्हें छोड़कर चली गयी । उर्वशी के चले जाने पर पुरुरवा उसके विरह से व्यथित होकर रोने लगे । एक दिन उर्वशी प्रकट होकर उनसे बोली – 'राजन्! स्त्रियों और भेड़ियों का किसी से प्रेम नहीं होता है । फिर भी वर्ष में एक बार मैं तुम्हारे पास आया करूँगी । आप गन्धर्वों की उपासना करिए ।' राजा पुरुरवा ने गन्धर्वों की उपासना की । उसी समय त्रेता युग का प्रारम्भ हुआ और तब पुरुरवा के हृदय में तीनों वेद प्रकट हुए । त्रेता के प्रारम्भ में पुरुरवा से ही वेदत्रयी और अग्नित्रयी का आविर्भाव हुआ ।

अध्याय – १५

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – पुरुरवा द्वारा उर्वशी के गर्भ से छः पुत्र हुए – आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय । इनमें विजय का पुत्र भीम हुआ, भीम का काञ्चन, काञ्चन का होत्रक फिर उसका पुत्र जह्नु हुआ । जह्नु गंगा को अंजलि में लेकर पी गये थे । जह्नु के वंश में आगे चलकर कुश हुए । कुश के चार पुत्र थे – कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ । इनमें कुशाम्बु के पुत्र गाधि हुए । गाधि के सत्यवती नामक एक कन्या थी । ऋचीक नामक ऋषि ने गाधि से उनकी कन्या माँगी । गाधि ने कहा – 'मुझे आप एक हजार श्यामकर्ण घोड़े (जिनका कान श्याम वर्ण का हो) लाकर दीजिये ।' ऋचीक मुनि वरुण के पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आये और उन्हें गाधि को देकर उनकी पुत्री सत्यवती से विवाह कर लिया । गाधि के कोई पुत्र नहीं था । उन्होंने अपनी पुत्री से कहा कि तू अपने पति से यज्ञ कराकर स्वयं भी पुत्र प्राप्त कर और मुझे भी एक पुत्र दे । ऋचीक मुनि ने दोनों के लिए अलग-अलग मन्त्रों से चरु पकाया । सत्यवती की माँ ने यह समझा कि ऋषि ने अपनी पत्नी

के लिए बढ़िया चरु पकाया होगा और मेरे लिए साधारण । अतः उसने अपनी पुत्री से उसके हिस्से का चरु माँग लिया । सत्यवती ने अपना चरु माँ को दे दिया और माँ का चरु स्वयं खा लिया । इसका परिणाम यह हुआ कि सत्यवती के पुत्र में क्षत्रिय अंश आ गया और उसकी माँ के पुत्र में ब्राह्मण अंश आ गया । ऋचीक मुनि ने सत्यवती से कहा कि तुम्हारा पुत्र घोर दण्ड देने वाला होगा और तेरी माता का पुत्र ब्रह्म तेजस्वी होगा । सत्यवती ने ऋचीक मुनि से प्रार्थना की – 'महाराज ! ऐसा नहीं होना चाहिए ।' ऋचीक मुनि ने कहा – 'अच्छा, तब तुम्हारा पौत्र घोर प्रकृति का होगा ।' आगे चलकर सत्यवती से जमदग्नि उत्पन्न हुए । रेणु ऋषि की कन्या रेणुका से जमदग्नि ने विवाह किया । रेणुका के गर्भ से वसुमान आदि कई पुत्र हुए । उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे । जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था ।

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! क्षत्रियों ने परशुरामजी का क्या अपराध किया था ? (अभी पुरुरवा पुत्र श्रुतायु के वंश का वर्णन चल रहा है, भगवान् श्रीकृष्ण के वंश का वर्णन आगे होगा, जो आयु से चला था ।) महाभारत में ऐसी कथा है कि जब त्रेता और द्वापर के मेल का समय आया तभी परशुरामजी ने क्षत्रियों का विनाश किया था ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – हैहय वंश के अधिपति अर्जुन ने दत्तात्रेय भगवान् की उपासना से एक हजार भुजायें तथा युद्ध में शत्रुओं से पराजित न होने का वरदान प्राप्त किया था । एक हजार भुजायें होने के कारण उसको सहस्त्रबाहु अर्जुन भी कहा जाता है । एक बार वह बहुत सी सुन्दरी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जल विहार कर रहा था । उसने अपनी हजारों भुजाओं से नदी के प्रवाह को रोक दिया । रावण भी वहाँ आया था, उसका शिविर भी पास में था । नदी की धारा उलटी बहने से उसका शिविर डूबने लगा । रावण ने सोचा कि यह कौन है ? वह सहस्त्रबाहु अर्जुन के पास गया तो उसने रावण को खिलौने की तरह पकड़ लिया और अपनी राजधानी में ले जाकर बंदी बना लिया ।

पुलस्त्य मुनि ने जाकर सहस्त्रबाहु अर्जुन की कैद से रावण को मुक्त कराया । एक दिन अर्जुन शिकार खेलने के लिए जंगल में गया था । वहाँ वह जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचा । उनके आश्रम में कामधेनु रहती थी । उसके प्रभाव से मुनि ने सहस्त्रबाहु अर्जुन और उसकी पूरी सेना का बढ़िया भोजन के साथ खूब आतिथ्य-सत्कार किया । कामधेनु के प्रताप से अर्जुन और उसके सैनिकों के रहने के लिए दिव्य महल बन गये । सहस्त्रबाहु अर्जुन ने सोचा कि ऐसी उत्तम गाय तो मेरे पास होनी चाहिए । इन ऋषि के पास तो कामधेनु के कारण राजा से बढ़कर ऐश्वर्य है । इसलिए उसने अपने सेवकों को कामधेनु को छीनकर ले चलने की आज्ञा दी । उसकी आज्ञा से सेवक लोग कामधेनु को बलपूर्वक सहस्त्रबाहु की राजधानी में ले गये । जब परशुरामजी आश्रम पर आये और उन्होंने सुना कि एक दुष्ट राजा मेरे पिता की कामधेनु को बलपूर्वक छीनकर ले गया है तो वे उसके पीछे दौड़े । वे अपने हाथ में धनुष-बाण और फरसा लिए हुए थे । उन्होंने अकेले ही सहस्त्रबाहु की सत्रह अक्षौहिणी सेना को काट डाला । इसके बाद उनसे लड़ने के लिए सहस्त्रबाहु अर्जुन आया । उसने अपनी एक हजार भुजाओं से पाँच सौ धनुषों द्वारा एक साथ ही परशुरामजी पर बाणों की वर्षा की । उन्होंने अपने फरसे से सहस्त्रबाहु अर्जुन की एक हजार भुजाओं को काट डाला । इसके बाद उसका सिर भी धड़ से अलग कर दिया । इस प्रकार सहस्त्रबाहु अर्जुन का वध करके परशुरामजी कामधेनु को लेकर अपने पिताजी के पास आये । वैसे तो परशुरामजी भगवान् हैं किन्तु उनके पिता ने उनके इस कर्म की निन्दा करते हुए क्षमा करने की शिक्षा दी । जमदग्नि जी ने कहा – 'बेटा परशुराम ! तुमने बड़ा पाप किया ।'

ऐसे पिता आजकल कहाँ हैं ? आजकल का पिता तो बेटे को सिखाएगा – 'अरे, उसने तुझे चाँटा मारा तो तूने उसको घूँसा क्यों नहीं मारा ?' किन्तु जमदग्निजी ने कहा –

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥

(श्रीभागवतजी - ९/१५/४०)

'ब्राह्मण का तेज तो क्षमा करने से बढ़ता है । क्षमा करने वाले पर ही भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ।'

इसलिए सब लोग क्षमा करना सीखो । बदला लेना नहीं सीखो । बदला लेना असुरों का काम है । जमदग्निजी ने परशुराम जी से कहा – 'सार्वभौम राजा का वध ब्राह्मण की हत्या से बढ़कर है । इसलिए तीर्थों का सेवन करके अपने पापों को नष्ट करो ।'

अध्याय – १६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अपने पिता की शिक्षा को स्वीकार कर परशुरामजी तीर्थयात्रा करने चले गये । एक वर्ष तक तीर्थयात्रा करके फिर अपने आश्रम पर लौट आये । एक दिन की बात है, परशुरामजी की माता रेणुका जी गंगा जल लेने के लिए गंगा जी के तट पर गयी थीं । वहाँ उन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ जल क्रीड़ा करते हुए देखा । उस समय वह भूल गयीं कि पतिदेव के हवन का समय हो गया है और चित्रसेन को ही देखती रहीं । थोड़ी देर बाद जल का कलश लेकर वह अपने आश्रम पर चली आयीं । उनके मन की स्थिति जानकर ऋषि जमदग्नि नाराज हो गये और उन्होंने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि अपनी माता को मार डालो । परन्तु किसी भी पुत्र ने माता को नहीं मारा । इसके बाद जमदग्निजी ने परशुरामजी को अपनी माता सहित भाइयों को मार डालने की आज्ञा दी । पिता की आज्ञा से परशुरामजी ने माता तथा भाइयों को मार डाला । परशुरामजी के इस आज्ञा पालन से जमदग्निजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा – 'बेटा, वरदान माँगो ।' परशुरामजी ने कहा – 'पिता जी ! मेरी माता तथा सब

भाई जीवित हो जाएँ और उन्हें यह कभी न याद रहे कि मैंने उन्हें मारा था ।' परशुरामजी के ऐसा कहते ही जमदग्निजी के तपो बल से रेणुका जी और उनके मरे हुए पुत्र जीवित हो गये ।

एक दिन की बात है, परशुराम जी अपने भाइयों के साथ बाहर गये हुए थे । उसी समय सहस्त्रबाहु के पुत्र अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए वहाँ आये और भगवान् के ध्यान में बैठे जमदग्नि जी का सिर काट दिया । रेणुका जी दीनता से रोती-चिल्लाती रहीं किन्तु उन सबने उनकी ओर कोई ध्यान नही दिया । जब परशुरामजी आश्रम पर आये और पिताजी का कटा हुआ गला देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने कहा कि ये क्षत्रिय बहुत पापी हो गये हैं और तभी उन्होंने हाथ में फरसा उठाकर क्षत्रियों के संहार करने का निश्चय किया । इसीलिए उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया और कुरुक्षेत्र में उनके रक्त के जल से भरे हुए पाँच तालाब बना दिए । उन्होंने अपने पिताजी का सिर लाकर उसे उनके धड़ से जोड़ दिया और यज्ञ किया । महर्षि जमदग्नि को स्मृतिरूप सङ्कल्प शरीर की प्राप्ति हो गयी । वे सप्तर्षियों के मण्डल में सातवें ऋषि हो गये । परशुरामजी आज भी महेन्द्र पर्वत पर निवास कर रहे हैं ।

महाराज गाधि के पुत्र हुए विश्वामित्रजी । इन्होंने अपने तपो बल से क्षत्रियत्व का त्याग करके ब्रह्म तेज प्राप्त कर लिया । इनके सौ पुत्र थे । उनमें बीच के पुत्र का नाम था – 'मधुच्छन्दा' । इसलिए विश्वामित्रजी के सभी पुत्र 'मधुच्छन्दा' ही कहलाये । विश्वामित्रजी ने भृगुवंशी अजीगर्त के पुत्र अपने भानजे शुनःशेप को अपना पुत्र बनाया तथा अपने पुत्रों से कहा कि तुम लोग इसे अपना बड़ा भाई मानो । विश्वामित्रजी के पुत्रों में जो बड़े थे, उन्होंने उनकी बात नहीं मानी तो विश्वामित्रजी ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम लोग म्लेच्छ हो जाओ । इस प्रकार इनके उनचास पुत्र म्लेच्छ हो गये । जिन पुत्रों ने विश्वामित्रजी की

बात मान ली, उनको उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे पुत्र अच्छे होंगे, सुपुत्र होंगे ।

अध्याय – १७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजा पुरुरवा का एक पुत्र था आयु । उसके पाँच पुत्र थे – नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना ।

शुकदेवजी ने पहले क्षत्रवृद्ध के वंश का वर्णन किया । इसी वंश में आगे चलकर धन्वन्तरि जी हुए । धन्वन्तरि का पुत्र हुआ केतुमान और केतुमान का भीमरथ हुआ । भीमरथ का पुत्र हुआ दिवोदास और दिवोदास का पुत्र हुआ – द्युमान् । द्युमान् के छः नाम हुए हैं । द्युमान् के ही पुत्र अलर्क आदि हुए । अलर्क ने छाछठ हजार (६६,०००) वर्ष तक युवा रहकर पृथ्वी का राज्य भोगा । इसके बाद शुकदेवजी ने रम्भ, अनेना और रजि के वंश बताये । रजि के अत्यन्त तेजस्वी पाँच सौ पुत्र थे । ये सब क्षत्रवृद्ध की वंश परम्परा के राजा थे ।

अध्याय – १८

पुरुरवा पुत्र आयु भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्वज थे । आयु के पुत्र थे नहुष । उनके छः पुत्र हुए – यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति । नहुष अपने पुत्र यति को राज्य देना चाहते थे किन्तु उसने राज्य स्वीकार नहीं किया । उसने कहा कि राज्य बेकार की वस्तु है । तब ययाति राजा बने । उन्होंने अपने चार छोटे भाइयों को चार दिशाओं में राज्य दे दिया । ययाति का विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के साथ हुआ था ।

राजा परीक्षित ने पूछा – शुक्राचार्य जी तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय थे फिर उन्होंने ब्राह्मण कन्या से कैसे विवाह किया ?

श्रीशुकदेव जी ने कहा – दानवराज वृषपर्वा की एक कन्या थी, उसका नाम था शर्मिष्ठा । वह एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और हजारों सखियों के साथ बगीचे में खेलने गयी । उसमें एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर था । वे दोनों कन्यायें निर्वस्त्र होकर सरोवर में स्नान करने लगीं । उसी समय वहाँ पार्वतीजी के साथ शंकर जी बैल पर सवार होकर निकले । उनको देखकर इन कन्याओं ने लज्जा के कारण जल्दी से सरोवर के बाहर निकलकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिए । जल्दी-जल्दी में शर्मिष्ठा ने देवयानी के वस्त्र को अपना समझकर पहन लिया । यह देखकर देवयानी क्रोधित होकर शर्मिष्ठा से कहने लगी – 'जैसे कुतिया यज्ञ के भाग को चाट जाये, वैसे ही इसने मेरे वस्त्र पहन लिए ।' तब शर्मिष्ठा ने भी देवयानी को फटकारा – 'भिखमंगी ! बढ़-बढ़कर बात मत बना, तू तो हमारा दिया खा रही है । हमारे घर की ओर कुत्ते और कौए के समान क्या तू प्रतीक्षा नहीं करती ?' इस तरह देवयानी का तिरस्कार करके शर्मिष्ठा ने उसके वस्त्र छीनकर उसे कुँए में ढकेल दिया । संयोग वश राजा ययाति शिकार खेलते हुए उधर ही आ निकले । उन्हें प्यास लगी तो कुँए में पड़ी हुई देवयानी को देखा । उन्होंने उसे अपना दुपट्टा दिया और अपने हाथ से उसका हाथ पकड़कर कुँए के बाहर निकाला । देवयानी ने ययाति से कहा – 'आपने मेरा हाथ पकड़ा है, इसलिए अब आप ही मेरे पति बन जाइए ।' ययाति ने कहा – 'ऐसा कैसे हो सकता है ?' देवयानी बोली – 'देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच के शाप के कारण कोई ब्राह्मण मुझे पत्नी रूप में स्वीकार नही करेगा ।'

इसके पीछे कथा है कि बृहस्पतिजी का पुत्र कच शुक्राचार्यजी से मृत संजीवनी विद्या पढ़ता था । देवयानी उसको देखकर मोहित हो गयी । जब अध्ययन समाप्त करके वह अपने घर जाने लगा तो देवयानी

ने उससे कहा कि तुम मेरे पति बन जाओ । कच ने कहा – 'नहीं, तू मेरे गुरु की पुत्री है अर्थात् मेरी गुरुबहिन है, इसलिए मैं तुम्हारा पति नहीं बन सकता ।' इस पर देवयानी ने उसे शाप दे दिया कि तेरी पढ़ी हुई सारी विद्या व्यर्थ हो जाएगी । कच ने भी उसे शाप दे दिया कि कोई ब्राह्मण तुम्हें पत्नी रूप में वरण नहीं करेगा । इसीलिए देवयानी ने ययाति से कहा कि शाप के कारण मेरा तो क्षत्रिय ही पति हो सकता है । ययाति ने उसकी बात मान ली । इसके बाद जब ययाति चले गये तो देवयानी अपने पिता शुक्राचार्य के पास जाकर बहुत रोई और बताया कि राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने मेरे साथ कितना बड़ा अन्याय किया । अपनी बेटी की बात सुनकर शुक्राचार्यजी राजा वृषपर्वा के राज्य को छोड़कर चले गये । वृषपर्वा को पता चला तो अपने गुरु के पीछे दौड़कर पहुँचे और उन्हें मनाने लगे । शुक्राचार्य ने वृषपर्वा से कहा – 'तुम पहले मेरी बेटी को प्रसन्न करो ।' देवयानी ने राजा से कहा – 'जहाँ मेरा विवाह हो, वहाँ तुम्हारी पुत्री अपनी सहेलियों के साथ मेरी दासी बनकर रहे ।' राजा वृषपर्वा ने देवयानी की बात स्वीकार कर ली । इसके बाद शुक्राचार्य जी ने अपनी पुत्री का विवाह राजा ययाति से कर दिया । शर्मिष्ठा भी दासी बनकर देवयानी की सेवा करने लगी । देवयानी के दो पुत्र हुए – यदु और तुर्वसु । यदु भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्वज थे । उन्हीं से यदुवंश चला है । आगे चलकर शर्मिष्ठा के भी तीन पुत्र हुए । जबकि विवाह से पहले शुक्राचार्य ने ययाति से कह दिया था कि शर्मिष्ठा केवल मेरी पुत्री की दासी के रूप में रहेगी, तुम कभी उससे सम्पर्क मत करना । जब देवयानी को पता चला कि शर्मिष्ठा के तीनों पुत्र मेरे पति के द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं और वे शर्मिष्ठा से एकान्त में मिलते भी हैं, तब वह नाराज होकर अपने पिता के पास चली गयी । शुक्राचार्यजी ने क्रोध में भरकर ययाति को शाप दे दिया – 'जा, तू वृद्ध हो जा ।' ययाति ने कहा – 'मेरे वृद्ध होने से तो आपकी पुत्री का भी नुकसान

होगा ।' शुक्राचार्यजी ने कहा – 'तुम्हारे पुत्रों में जो तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उसको तुम अपना बुढापा दे देना ।' जब शुक्राचार्यजी ने ऐसा कहा तो ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से कहा – 'बेटा ! तुम मुझे अपनी जवानी दे दो और मेरा बुढापा स्वीकार कर लो ।' यदु ने पिता की बात नहीं मानी, इसी प्रकार अन्य पुत्रों ने भी अपने पिता की आज्ञा स्वीकार नहीं की । अन्त में ययाति के सबसे छोटे पुत्र पुरु ने पिताजी की आज्ञा स्वीकार कर ली । प्रसन्न होकर ययाति ने पुरु को आशीर्वाद दिया कि तू ही राजा बनेगा । इस प्रकार पुरु से जवानी लेकर राजा ययाति ने एक हजार वर्ष तक भोग भोगे परन्तु इतने पर भी भोगों से उनकी तृप्ति नहीं हो सकी ।

अध्याय – १९

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – विषयों का भोग करते रहने पर एक दिन जब ययाति की दृष्टि अपने पतन पर गयी तब उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ और अपनी पत्नी देवयानी से उन्होंने कहा – 'एक बकरा था, वह कहीं जा रहा था तो उसने देखा कि एक बकरी कुएँ में गिर पड़ी है । उसने अपने सींग से कुएं के पास की धरती खोदकर रास्ता तैयार किया और बकरी को कुएँ से निकाला और फिर दोनों भोग भोगने लगे । जब दूसरी बकरियों ने देखा कि कुएं में गिरी बकरी इससे प्रेम करती है तब उन्होंने भी उसे अपना पति बना लिया । वह बकरा बड़ा कामी था, अब तो वह बहुत सी बकरियों के साथ भोग भोगने लगा । कुएं में से निकली हुई उसकी बकरी ने जब देखा कि मेरा पति तो दूसरी बकरियों के साथ रमण कर रहा है । यह तो बड़ा कामी है, इसके प्रेम का कोई भरोसा नहीं है । अतः वह बकरी उस बकरे को छोड़कर अपने पालने वाले स्वामी के पास चली गयी । बकरी के स्वामी ने क्रोध में भरकर उस बकरे का अण्डकोष काट दिया परन्तु उस बकरी का ही भला करने के लिए फिर

से उसे जोड़ भी दिया । अण्डकोष जुड जाने पर वह बकरा उस बकरी के साथ फिर बहुत दिनों तक विषय भोग करता रहा परन्तु उसे कभी संतोष नहीं हुआ ।' इस कथा को अपने ऊपर घटाते हुए ययाति ने देवयानी से कहा कि मेरी भी ऐसी ही दशा है ।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥

(श्रीभागवतजी - ९/१९/१३)

पृथ्वी में जितने भी धान्य (चावल,जौ आदि खाद्य पदार्थ), सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सभी कामनाओं के प्रहार से जर्जर किये हुए पुरुष के मन को सन्तुष्ट नहीं कर सकते हैं ।

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

(श्रीभागवतजी - ९/१९/१४)

भोग वासना विषयों के उपभोग से कभी भी शान्त नहीं हो सकती, जैसे घी की आहुति डालने पर आग पुनः बढ़ती ही जाती है, वैसे ही भोग वासनायें भी भोगों के सेवन से बढ़ती ही रहती हैं ।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिः जीर्यतो या न जीर्यते ।
तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥

(श्रीभागवतजी - ९/१९/१६)

विषयों की तृष्णा से ही सारे दुःख उत्पन्न होते हैं । मन्दबुद्धि लोग बड़ी कठिनाई से उसका त्याग कर पाते हैं । शरीर के बूढ़ा हो जाने पर भी तृष्णा बूढ़ी नहीं होती, यह सदा जवान बनी रहती है । इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को शीघ्र से शीघ्र इस तृष्णा का त्याग कर देना चाहिए ।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

(श्रीभागवतजी - ९/१९/१७)

अपनी माता, बहिन और बेटी के साथ भी अकेले एक आसन पर नहीं बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान हैं कि विद्वान् मनुष्य को भी विषयों की ओर खींच लेती हैं ।

अपनी पत्नी से इस प्रकार कहकर ययाति ने अपनी जवानी पुरु को लौटा दी तथा उससे अपना बुढापा ले लिया और अपने चित्त से विषयों की वासना का त्याग कर दिया । इसके बाद वे अपने पुत्र पुरु को राज्य देकर वन में चले गये तथा **लेभे गतिं भागवतीं** – भगवान् को प्राप्त कर लिया । देवयानी ने भी संसार की आसक्ति त्याग दी और **कृष्णे मनः समावेश्य** – कृष्ण में मन लगाकर उन्हीं भगवान् को प्राप्त हो गयी ।

अध्याय – २०

इसके बाद शुकदेवजी ने पुरु वंश का वर्णन किया, जिसमें पाण्डव उत्पन्न हुए । पुरु के वंश में आगे चलकर रौद्राश्व हुए, जिनके ऋतेयु आदि दस पुत्र हुए । ऋतेयु का पुत्र रन्तिभार हुआ । उसी के वंश में मेधातिथि का जन्म हुआ । मेधातिथि से प्रस्कण्व आदि ब्राह्मणों की जाति उत्पन्न हुई । इन्हीं के वंश में दुष्यन्त का जन्म हुआ । दुष्यन्त एक बार शिकार खेलते हुए वन में कण्व मुनि के आश्रम में पहुँचे, वहाँ शकुन्तला अकेली बैठी थी, उसे देखकर दुष्यन्त मोहित हो गये और आगे चलकर गान्धर्व विधि से शकुन्तला के साथ उन्होंने विवाह किया । शकुन्तला भी विश्वामित्र और मेनका अप्सरा की पुत्री थी । समय आने पर शकुन्तला से भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । शकुन्तला अपने पुत्र को लेकर दुष्यन्त के पास गयी किन्तु दुष्यन्त ने शकुन्तला को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया । उसी समय

आकाशवाणी ने दुष्यन्त को बताया कि शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है और यह बालक तुम्हारा पुत्र है । तब दुष्यन्त ने उन्हें स्वीकार कर लिया । दुष्यन्त की मृत्यु के बाद भरत ही चक्रवर्ती सम्राट बने । उन्होंने एक सौ तैंतीस यज्ञ किये । पचपन यज्ञ उन्होंने गंगा तट पर किये तथा अठहत्तर यज्ञ यमुना तट पर किये । पहले युग में असुरों ने देवताओं को पराजित कर उनकी स्त्रियों का हरण कर लिया तथा रसातल को ले गये । राजा भरत ने उन्हें फिर से छुडवाया । भरत की तीन पत्नियाँ थीं । एक बार उन्होंने अपनी पत्नियों से कहा कि तुम्हारे पुत्र मेरे योग्य नहीं हैं तब उन्होंने अपने बच्चों को मार डाला । भरत जी ने सन्तान के लिए यज्ञ किया । इससे प्रसन्न होकर मरुद्गणों ने भरत को भरद्वाज नामक पुत्र दिया । भरद्वाज की उत्पत्ति का प्रसंग यह है कि बृहस्पति के भाई उतथ्य की पत्नी थी ममता, वह गर्भवती थी । उसके गर्भ में दीर्घतमा नामक ऋषि थे । एक बार बृहस्पति ममता से मैथुन करने चले तो दीर्घतमा ने गर्भ के भीतर से उन्हें ऐसा करने से मना किया । तब बृहस्पति ने गर्भ के उस बालक को शाप दे दिया कि तू अंधा हो जा । ऐसा शाप देकर बृहस्पति ने अपना वीर्य ममता के गर्भ में स्थापित कर दिया । ममता ने बृहस्पति के द्वारा होने वाले बालक का त्याग कर दिया । इस प्रकार ममता के दो पुत्र हुए । एक तो दीर्घतमा और दूसरे बृहस्पति के वीर्य से उत्पन्न भरद्वाज । माता-पिता ने भरद्वाज का त्याग कर दिया । मरुद्गणों ने उसका पालन किया और जब राजा भरत का वंश नष्ट होने लगा तो उन्होंने उस बालक को भरत को दे दिया । भरद्वाज का दूसरा नाम वितथ था ।

अध्याय – २१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – वितथ अथवा भरद्वाज का पुत्र था मन्यु । उसके पाँच पुत्र हुए – बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग । नर का पुत्र था संकृति । संकृति के दो पुत्र हुए – गुरु और रन्तिदेव ।

रन्तिदेवजी अतिथि की सेवा करते थे । इन्हें जो कुछ मिलता, उसे भी दूसरे को दे देते और स्वयं भूखे रहते थे । एक बार अड़तालीस दिनों तक इन्हें कुछ भी खाने-पीने को नहीं मिला । उनचासवें दिन इन्हें कुछ खाने को मिला । इनके परिवार के लोग भी भूखे-प्यासे थे । उसी समय एक ब्राह्मण आया तो उन्होंने खाद्य-पदार्थ ब्राह्मण को खाने के लिए दे दिया । केवल राजा ही नहीं बल्कि उनके स्त्री-बच्चे भी भूखे बैठे रहे । उसी समय एक शूद्र आया तो उन्होंने बचे हुए अन्न में से भी कुछ भाग शूद्र अतिथि को खिला दिया । जब वह चला गया तब कुत्तों को लिए हुए एक और अतिथि आ गया । रन्तिदेवजी ने जो कुछ बच रहा था, सब का सब उसे दे दिया । रन्तिदेव जी सबमें भगवान् के ही दर्शन करते थे । अतः जो भी अतिथि आता, उसमें वे भगवान् का ही दर्शन करते और उसे नमस्कार करते थे । अब उनके पास पीने के लिए केवल जल ही बचा था, वह भी केवल एक ही मनुष्य के पीने का । वे उसे अपने परिवार के साथ बाँटकर पीना ही चाहते थे कि उसी समय एक चाण्डाल और आ गया । उसने कहा – 'मैं अत्यंत नीच हूँ । मुझे जल पिला दीजिये ।' उस चाण्डाल की कष्ट से भरी वाणी सुनकर रन्तिदेव जी दया से भर गये और कहने लगे – 'मैं भगवान् से कुछ भी नहीं चाहता, यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि मैं सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे किसी भी प्राणी को दुःख न हो और सभी सुखी हो जाएँ ।' इस प्रकार कहकर रन्तिदेव ने बचा हुआ जल भी चाण्डाल को पिला दिया । वास्तव में इन अतिथियों के रूप में भगवान् उनकी परीक्षा ले रहे थे । इस परीक्षा में रन्तिदेव जी उत्तीर्ण हो गये तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश उनके सामने प्रकट हो गये । रन्तिदेव जी ने उनके चरणों में नमस्कार किया । मन्यु पुत्र गर्ग के वंश में आगे चलकर अजमीढ राजा हुए । इनके वंश का शुकदेव जी ने वर्णन किया । अजमीढ की दूसरी पत्नी नलिनी के गर्भ से नील का जन्म हुआ । नील का पुत्र था शांति । इनके

वंश में आगे हुए भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल से 'मौद्गल्य' नामक ब्राह्मण गोत्र चला । मुद्गल के जुड़वाँ संतान हुई । उनमें पुत्र का नाम था दिवोदास और कन्या का अहल्या । अहल्या का विवाह महर्षि गौतम से हुआ । गौतम के पुत्र थे शतानन्द । शतानन्द के पुत्र थे सत्यधृति, सत्यधृति के शरद्वान । एक दिन उर्वशी को देखने से शरद्वान का वीर्य मूंज के झाड़ पर गिर पड़ा, उससे एक पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ । महाराज शन्तनु ने इन दोनों को उठा लिया । पुत्र का नाम हुआ कृपाचार्य और कन्या का नाम हुआ कृपी । कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी हुई ।

अध्याय – २२

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – दिवोदास का पुत्र था मित्रेयु । इनके वंश में आगे पृषत हुए । पृषत के पुत्र थे द्रुपद । द्रुपद के द्रौपदी नाम की पुत्री तथा धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए । द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हुआ था । अजमीढ के दूसरे पुत्र का नाम था ऋक्ष । उनका पुत्र था संवरण । संवरण का विवाह सूर्य की कन्या तपती से हुआ । उन्हीं के गर्भ से कुरुक्षेत्र के स्वामी कुरु का जन्म हुआ । कुरु के चार पुत्रों में एक का नाम था जह्नु । इनके वंश में आगे चलकर प्रतीप हुआ । प्रतीप के तीन पुत्र थे – देवापि, शन्तनु और बाह्लीक । देवापि वन में चले गये । इसलिए उसके छोटे भाई शन्तनु राजा हुए । ये जिसे छू देते थे, वह बूढ़े से जवान हो जाता था । एक बार इनके राज्य में बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई । ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा कि तुमने अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह कर लिया, अग्निहोत्र और राजपद को स्वीकार कर लिया, इसी से तुम्हारे राज्य में वर्षा नहीं होती । इस समस्या के समाधान के लिए शन्तनु के बड़े भाई को भ्रष्ट कराया गया तब इनके राज्य में वर्षा हुई । देवापि इस समय भी कलापग्राम में रहते हैं । जब कलियुग में चन्द्र वंश का नाश हो जायेगा तब सतयुग के प्रारम्भ में वे फिर इसकी स्थापना करेंगे । शन्तनु के छोटे भाई बाह्लीक का पुत्र हुआ सोमदत्त । सोमदत्त

के तीन पुत्र हुए – भूरि, भूरिश्रवा और शल । शन्तनु के द्वारा गंगाजी के गर्भ से भीष्म का जन्म हुआ । उन्होंने अपने गुरु परशुरामजी को भी युद्ध में प्रसन्न कर दिया था । आगे चलकर शन्तनु के द्वारा दाशराज की कन्या सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र हुए – चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य । इसी दाशराज की कन्या सत्यवती से पहले पराशर जी के द्वारा भगवान् वेदव्यास जी का जन्म हुआ था । आगे चलकर विचित्रवीर्य की मृत्यु होने पर सत्यवती के कहने से भगवान् व्यास जी ने विचित्रवीर्य की पत्नियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा उनकी दासी से तीसरे पुत्र विदुरजी उत्पन्न किये । धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, जो कौरव कहलाये । पाण्डु के पाँच पुत्र पाण्डव कहलाये । इसके बाद शुकदेवजी ने पाण्डवों के पुत्रों का वर्णन किया, अनन्तर परीक्षित के वंश का वर्णन किया और उसके बाद जरासन्ध के वंश का वर्णन किया ।

अध्याय – २३

इस अध्याय में शुकदेवजी ययाति के पुत्रों के वंश का वर्णन करते हैं । सबसे पहले शुकदेवजी ययाति नन्दन अनु के वंश का वर्णन करते हैं । इसी वंश में आगे चलकर महाराज शिबि हुए हैं, जो बहुत बड़े दानी थे । अनु के ही वंश में आगे चलकर रोमपादजी हुए, जो अयोध्याधिपति महाराज दशरथ के मित्र थे । रोमपाद के कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए दशरथजी ने अपनी शान्ता नामक कन्या इन्हें गोद दे दी थी । शान्ता का विवाह ऋष्यश्रृङ्ग मुनि से हुआ । उन्होंने ही इन्द्र देवता का यज्ञ कराया, तब सन्तानहीन राजा रोमपाद को भी पुत्र हुआ और पुत्रहीन दशरथ ने भी उन्हीं के प्रयत्न से चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न प्राप्त किये । इसके बाद शुकदेवजी ने ययाति के पुत्र द्रह्यु के वंश का वर्णन किया । तदनन्तर उन्होंने यदुवंश का वर्णन करना प्रारम्भ किया ।

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – यदुवंश का वर्णन सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। सर्वप्रथम भगवान् नारायण से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उनके पुत्र अत्रि थे, अत्रि के पुत्र थे चन्द्रमा, चन्द्रमा के बुध, बुध के पुरुरवा, पुरुरवा के आयु, आयु के नहुष, नहुष के ययाति तथा ययाति के पुत्र थे यदु। यदु के चार पुत्र थे – सहस्त्रजित, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्त्रजित के वंश में सहस्त्रबाहु अर्जुन का जन्म हुआ। उसने पचासी हजार वर्षों तक विषयों का भोग किया। यदुनन्दन क्रोष्टु के पुत्र का नाम था वृजिनवान्। वृजिनवान् का पुत्र शवाहि, शवाहि का रुशेकु, रुशेकु का चित्ररथ और चित्ररथ के पुत्र का नाम था शशबिन्दु। शशबिन्दु की दस हजार पत्नियों से प्रत्येक के लाख-लाख सन्तान हुई थीं। इस प्रकार उसके सौ करोड़(एक अरब) सन्तानें हुई। उनमें पृथुश्रवा सबसे प्रमुख था। पृथुश्रवा के पुत्र का नाम था धर्म। धर्म का पुत्र था उशना, उशना का पुत्र हुआ रुचक। रुचक के पाँच पुत्र थे – पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ। ज्यामघ की पत्नी का नाम था शैब्या। शैब्या के कोई सन्तान नहीं थी। जब बहुत दिन बीत गये तो ज्यामघ अपने शत्रु के घर से भोज्या नामक कन्या को हर लाये। उन्होंने सोचा कि इसे मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा, हो सकता है कि इसके सन्तान हो जाए। जब ज्यामघ रथ पर उस कन्या को बिठाकर लाये तो इनकी पत्नी ने चिढ़कर इनसे कहा – 'अरे कपटी ! मेरे बैठने की जगह पर आज किसे बैठाकर लाये हो ?' ज्यामघ अपनी पत्नी से बहुत डरते थे, इसलिए भय के कारण उनके मुख से निकल गया – 'यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है।' शैब्या ने हँसते हुए कहा – 'मैं तो बाँझ हूँ, फिर यह मेरी पुत्रवधू कहाँ से आ गयी ?' डर के कारण ज्यामघ बोले – 'रानी ! भविष्य में जो तुम्हारे पुत्र होगा, उसके लिए मैं अभी से पत्नी लाया हूँ।' इनके इस भोलेपन पर सब देवता मोहित हो गये। इनके बारे में भागवत के टीकाकार आचार्यों तथा ऋषियों ने लिखा है –

"भार्यावश्यास्तु ये केचिद्भविष्यन्त्यथवा मृताः । तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठः शैब्यापतिरभून्नृपः" इति ।

अपनी पत्नी के अधीन रहने वाले पुरुष आज तक जितने भी हुए हैं और भविष्य में होंगे, उनमें सबसे अधिक श्रेष्ठ ज्यामघजी हुए हैं क्योंकि ये अपनी पत्नी के बड़े गुलाम थे । गुलाम तो थे किन्तु इन्होंने भगवान् का बहुत भजन किया था ।

'पूर्वं तेन बहुश आराधिता' (विश्वनाथ चक्रवर्तीजी)

इनके भजन के कारण देवता इन पर मोहित हो गये और बोले कि इनकी बात सच करो । इस तरह कुछ दिनों बाद शैब्या ने बहुत ही सुन्दर बालक उत्पन्न किया । उसका नाम हुआ विदर्भ । उसी ने ज्यामघ द्वारा लायी गयी शैब्या की पुत्रवधू के साथ विवाह किया ।

अध्याय – २४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजा विदर्भ की भोज्या नामक पत्नी से तीन पुत्र हुए – कुश, कृथ और रोमपाद । कृथ का पुत्र हुआ कुन्ति, कुन्ति का धृष्टि, धृष्टि का निर्वृति, निर्वृति का दशार्ह और दशार्ह का व्योम । व्योम का जीमूत, जीमूत का विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ और नवरथ का दशरथ हुआ । दशरथ से शकुनि, शकुनि से करम्भि, करम्भि से देवरात, देवरात से देवक्षत्र, देवक्षत्र से मधु, मधु से कुरुवश और कुरुवश से अनु हुए । अनु से पुरुहोत्र, पुरु से आयु और आयु से सात्वत का जन्म हुआ । सात्वत के भजमान, अन्धक आदि सात पुत्र हुए ।

इसी वंश में बहुत आगे चलकर देवमीढ़ हुए । देवमीढ़ की दो पत्नियाँ थीं । क्षत्राणी से शूरसेन और वैश्यानी(वैश्य कन्या) से परजन्य जी हुए । शूरसेन से वसुदेव जी तथा परजन्य से नन्द जी हुए । वसुदेवजी के यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुत्र रूप से उत्पन्न हुए ।

बोलो कृष्ण कन्हैया लाल की जय ।

श्रीकृष्ण के पूर्वजों की वंशावली बहुत लम्बी है, यहाँ तो इसे संक्षेप में ही बताया गया है । कथावाचक लोग इस वंशावली को छोड़ देते हैं । मैंने तो इसलिए नहीं छोड़ी क्योंकि ये सब भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्वज हैं, इनके नाम सुनने से पाप नष्ट हो जाते हैं ।

वसुदेवजी की अट्ठारह पत्नियाँ थीं । पृथा (कुन्ती), श्रुतदेवा आदि वसुदेवजी की पाँच बहनें भी थीं । पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ था । वसुदेवजी के सभी भाइयों का विवाह कंस की बहनों के साथ हुआ था । वसुदेवजी की पत्नी देवकी के आठ पुत्र व एक कन्या सुभद्रा थी । संक्षेप में ही शुकदेवजी ने भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र के बारे में बताकर कहा कि वे अन्त में उद्धवजी को ज्ञानोपदेश करके अपने परम धाम को चले गये ।

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

अध्याय – १

जब शुकदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र के बारे में अत्यन्त संक्षेप में बताया तो राजा परीक्षित ने पूछा –

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः । (श्रीभागवतजी - १०/१/१)

भगवन् ! आपने सूर्य वंश और चन्द्रवंश का वर्णन तो कर दिया किन्तु असली मक्खन तो आपने छोड़ ही दिया । श्रीकृष्ण के पूर्वजों की वंशावली का वर्णन करने से क्या लाभ है, श्रीकृष्ण के चरित्र भी तो सुनाइए ।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१/४)

श्रीकृष्ण का चरित्र तीन प्रकार के लोग गाते हैं । एक तो आत्माराम जीवन्मुक्त महापुरुष श्रीकृष्ण यश का गान करते हैं । दूसरे, मुमुक्षु जन, जो भवसागर से पार होना चाहते हैं, वे भी श्रीकृष्ण गुणगान करते हैं । तीसरे, विषयी लोग (जैसे आजकल सिनेमा के गायक-गायिकायें) भी श्रीकृष्ण चरित्र को गाते हैं । श्रीकृष्ण का गुणगान किसी भी प्रकार से किया जाए, उससे मनुष्य का कल्याण ही होता है ।

गुरुदेव ! आप मुझे विस्तार से भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र सुनाइए । आपने बलरामजी को रोहिणी का पुत्र बताया तथा देवकी का भी पुत्र बताया तो उनके दो माताएँ एक साथ कैसे थीं ? भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिता वसुदेवजी का घर छोड़कर ब्रज में क्यों गये ? ब्रज में उन्होंने कौन-कौन सी लीलायें कीं, कितने दिन वहाँ रहे, ये सब आप मुझे बताइए । मैंने अन्न तो क्या जल का भी त्याग कर दिया है किन्तु मुझे भूख-प्यास बिलकुल भी नहीं सता रही है क्योंकि मैं आपके मुखकमल से झरती हुई भगवान् की अमृतमयी लीला कथा का पान कर रहा हूँ ।

सूतजी कहते हैं – शुकदेवजी राजा परीक्षित का प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना प्रारम्भ किया ।

श्रीशुकदेव जी ने कहा – भगवान् श्रीकृष्ण की कथा के सम्बन्ध में प्रश्न करने से ही वक्ता, प्रश्न करने वाला और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं – जैसे गंगाजी का जल या भगवान् शालग्राम का चरणामृत सभी को पवित्र कर देता है ।

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१/१६)

एक बार लाखों दैत्यों के दल ने घमण्डी राजाओं का रूप धारण करके अपने पापों के भार से पृथ्वी को रौंद डाला था, उससे छूटने के

लिए वह सुमेरु पर्वत पर ब्रह्माजी की शरण में गयी । उस समय पृथ्वी ने गाय का रूप धारण कर रखा था । ब्रह्माजी को उसने अपना सारा कष्ट सुनाया । उसके कष्ट को सुनकर ब्रह्माजी भगवान् शंकर, स्वर्ग के अन्य प्रमुख देवताओं तथा गो रूपा पृथ्वी को लेकर क्षीर सागर के तट पर गये । वहाँ पहुँचकर ब्रह्मादि देवताओं ने भगवान् की स्तुति की । स्तुति करते-करते ब्रह्माजी को समाधि लग गयी । समाधि में ब्रह्माजी ने आकाशवाणी सुनी । भगवान् ने कहा – 'मैं पृथ्वी पर अवतार लूँगा, तब तक तुम लोग भी पृथ्वी पर यदुवंश में जन्म लो । देवताओं की स्त्रियाँ भी मेरी प्रिया जी की सेवा के लिए जन्म ग्रहण करें । सहस्त्रमुख शेष जी भी अवतार ग्रहण करेंगे, मेरी योगमाया भी अवतार लेगी ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – ब्रह्माजी ने आकाशवाणी के द्वारा जो कुछ सुना, वह सब देवताओं को बता दिया । मथुरा में भगवान् श्रीहरि नित्य विराजमान रहते हैं ।

मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः – (श्रीभागवतजी - १०/१/२८)

एक बार मथुरा में वसुदेवजी का देवकी के साथ विवाह हुआ । उस समय उग्रसेन का पुत्र कंस, जो अपनी चचेरी बहन देवकी से बहुत प्रेम करता था, रथ पर देवकी-वसुदेव को बैठाकर स्वयं ही रथ को हाँककर देवकी को विदा करने के लिए चला । देवकी के पिता देवक कंस के चाचा थे । जब कंस इस प्रकार रथ को हाँक रहा था, उसी समय कंस को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी ने कहा – 'अरे मूर्ख ! जिसे तू रथ में बैठाकर ले जा रहा है, इसी देवकी का आठवाँ गर्भ तेरा काल होगा, वह तुझे मारने वाला होगा ।' कंस बड़ा पापी था । आकाशवाणी सुनते ही उस दुष्ट ने देवकी के बाल पकड़ लिए और उसे मारने के लिए अपनी तलवार निकाल ली । उस समय वसुदेवजी ने उससे कहा – 'राजकुमार ! आप तो अत्यन्त प्रशंसनीय गुणों वाले हैं । आप अपनी

बहन को विवाह के शुभ अवसर पर क्यों मारते हैं ?' वसुदेवजी ने कंस को बहुत ज्ञान दिया । उन्होंने कहा – 'जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर आगे जमा लेता है तब दूसरा पैर उठाता है, उसी प्रकार जब शरीर का अन्त हो जाता है तो जीव दूसरे शरीर को ग्रहण करके तब अपने पहले शरीर को छोड़ता है ।'

शरीर में अधिक राग करने से मनुष्य को उससे मोह हो जाता है और फिर उससे उसका नाश हो जाता है । **'द्रोग्धुर्वै परतो भयम्'** – (श्रीभागवतजी - १०/१/४४) इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को किसी से द्रोह नहीं करना चाहिए । क्योंकि द्रोह करने वाले को इस जीवन में तथा परलोक में भी भयभीत होना पड़ेगा ।

वसुदेवजी के समझाने पर भी कंस अपने निन्दित कर्म से पीछे नहीं हटा, तब वसुदेवजी ने विचार किया कि बुद्धिमान मनुष्य को जहाँ तक हो सके मृत्यु को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए । सम्भव है इससे मृत्यु टल जाये अथवा मारने वाला ही स्वयं मर जाए । उन्होंने कंस से कहा कि आपको देवकी से तो कोई भय है नहीं, भय इसके पुत्रों से है तो मैं इसके पुत्रों को लाकर आपको दे दूँगा । कंस ने वसुदेवजी की यह बात स्वीकार कर ली क्योंकि वह जानता था कि वसुदेव जी कभी झूठ नहीं बोलते हैं । समय आने पर देवकी के गर्भ से जो भी पुत्र होते, वे उसे लाकर कंस को सौंप देते थे । जब देवकी के पहला पुत्र हुआ तो उन्होंने उसे लाकर कंस को दे दिया । वसुदेवजी की ऐसी सत्य निष्ठा को देखकर कंस बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि आप इस बालक को ले जाइये, मुझे तो आठवें बालक से भय है । आठवें बालक को ही आप मुझे दीजियेगा । नारद जी ने विचार किया कि इस पापी कंस के पाप का घड़ा जब तक नहीं भरेगा तब तक यह नहीं मरेगा । इसलिए नारद जी कंस के पास उसे उल्टा ज्ञान देने के लिए पहुँचे और बोले – 'ब्रज में रहने वाले नन्द आदि गोप, वृष्णि वंश के वसुदेव आदि यादव, देवकी आदि

यदुवंश की स्त्रियाँ – ये सबके सब देवता हैं, दैत्यों को मारने के लिए उत्पन्न हुए हैं। देवकी के गर्भ से तो साक्षात् विष्णु भगवान् ही तुझे मारने के लिए आ रहे हैं।' जब इस प्रकार नारद जी ने कंस को भड़का दिया तो कंस ने देवकी-वसुदेव को हथकड़ी-बेड़ी से जकड़कर कैद में डाल दिया। कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णु ने मुझे मार डाला था। इसलिए वह उनसे द्रोह करता था तथा उसने यदुवंशियों को भी बहुत सताया।

अध्याय – २

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब कंस ने एक-एक करके देवकी के छः बालक मार डाले तब देवकी के गर्भ में श्रीशेष जी पधारे। इधर भगवान् ने अपनी योगमाया को आदेश दिया – 'हे देवि ! तुम शेषजी को देवकी के गर्भ से खींचकर गोकुल में रोहिणीजी के गर्भ में स्थापित कर कर दो। तुम नन्दबाबा की पत्नी यशोदाजी के गर्भ से जन्म लेना। पृथ्वी में लोग तुम्हें दुर्गा, भद्रकाली, वैष्णवी, शारदा, अम्बिका आदि नामों से पुकारेंगे और तुम्हारी पूजा करेंगे।'

एक बात यहाँ भागवत के टीकाकार आचार्यों ने लिखी है, जो भागवत में नहीं लिखी है। श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

प्रागेव श्रीवसुदेवाहितगर्भायाः श्रीरोहिण्याः पश्चाद्गोकुलं गतायाः

पहले ही वसुदेवजी के द्वारा रोहिणीजी में गर्भ स्थापित किया जा चुका था। उसके बाद वह गोकुल गयी थीं। इसके लिए जीव गोस्वामीजी ने हरिवंश पुराण का प्रमाण भी दिया है –

सार्द्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला ।
निद्रया सहसाविष्टा पपात धरणीतले ।

योगमाया ने रोहिणीजी से कहा –

तामाह निद्रासम्विग्नां नैशे तमसि रोहिणीम्
कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वर्गेम चाहितस्य वै ।
सङ्कर्षणो नाम शुभे तव पुत्रो भविष्यति ॥

'तुम्हारे गर्भ में संकर्षण(शेष जी) हैं ।' रोहिणी के गर्भ में पहले से स्थापित बालक को योगमाया ने गायब कर दिया । यदि ऐसा न किया जाता तो अचानक ही यदि रोहिणीजी के पुत्र होता तो लोग शंका करते । यदि पहले से ही वसुदेवजी द्वारा रोहिणी में गर्भ स्थापित न किया जाता तो लोग शंका करते । किसी स्त्री के अचानक ही सन्तान उत्पन्न हो जाए तो लोग शंका करेंगे कि पति तो साथ में है नहीं, फिर सन्तान कहाँ से उत्पन्न हो गयी । इसीलिए आचार्यों ने इस कथा के विषय में आवश्यक रूप से अपनी टीका में लिखा कि जब रोहिणीजी नन्दबाबा के घर में गोकुल आयीं तो उनके पहले से ही गर्भ था, इस बात को यशोदाजी और नन्दबाबा जानते थे । उस गर्भ को योगमाया ने आकर गिरा दिया तथा देवकीजी के गर्भ में जो शेषजी थे, उन्हें लाकर रोहिणीजी के गर्भ में स्थापित कर दिया और फिर जब बलरामजी का जन्म हुआ तो किसी ने रोहिणी जी के प्रति शंका नहीं की । इसके बाद भगवान् देवकीजी के गर्भ में आये । कंस ने देवकीजी को देखा तब वह मन ही मन सोचने लगा कि अभी तक तो देवकी इतनी रूपवती नहीं थी और न ही ऐसा विलक्षण तेज था, जैसा अब है । अवश्य ही अब इसके गर्भ में मेरा शत्रु आ गया है ।

देवकी के गर्भ में भगवान् के आने से ब्रह्माजी, शंकर आदि समस्त देवता कंस के कारागार में आये और भगवान् की स्तुति करने लगे ।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२/२६)

हे सत्यसंकल्प ! सत्य ही आपकी प्राप्ति का साधन है । सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में भी आप ही सत्य हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश – इन पाँच दृश्यमान सत्यों के आप ही कारण हैं और उनमें सत्यरूप से स्थित हैं, आप ही परमार्थ सत्य हैं । हे सत्यस्वरूप परमात्मा ! हम आपकी शरण में आये हैं ।

इस स्तुति में भगवान् का नाम, उनका स्वरूप – सब कुछ सत्य ही बताया गया है अर्थात् सत्यनिष्ठ व्यक्ति को ही भगवान् मिलते हैं । बेईमान और झूठे व्यक्ति को भगवान् नहीं मिल सकते ।

'पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः' (श्रीभागवतजी - १०/२/३२)

आपके चरणकमलों का आश्रय जो छोड़ देते हैं, वे ज्ञानी भी होंगे तब भी नष्ट हो जायेंगे ।

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२/३३)

आपके भक्त कभी भी अपने साधन मार्ग से गिरते नहीं हैं । वे बड़े-बड़े विघ्नों के, संकटों के उस पार चले जाते हैं ।

'सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ' (श्रीभागवतजी - १०/२/३४)

आप संसार की स्थिति के लिए जो अवतार विग्रह धारण करते हैं, वह विशुद्ध सत्त्वमय होता है ।

भगवान् का शरीर हमारे जैसा नहीं होता है । यहाँ विशुद्ध सत्त्व का अर्थ सतोगुण नहीं लगाना चाहिए । आचार्यों ने लिखा है कि भगवान् का शरीर कैसा होता है ? वे लिखते हैं –

'ज्ञानमयं मायातीतं चिन्मयम्'

भगवान् का शरीर ज्ञानमय, चिन्मय और मायातीत है ।

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करने के बाद देवताओं ने माता देवकी से कहा – 'हे माता ! आपके गर्भ में तो भगवान् हैं, इसलिए आप घबराइए नहीं । कंस तो कुछ दिनों में मरने वाला है । आपका पुत्र यदुवंश की रक्षा करेगा ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – ब्रह्मादि देवताओं ने भगवान् की इस प्रकार स्तुति की । इसके बाद वे वहाँ से चले गये ।

अध्याय – ३

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – परीक्षित ! अब समस्त शुभ गुणों से युक्त बहुत सुहावना समय आया । दिशायें सुन्दर और प्रसन्न हो गयीं । पृथ्वी मंगलमयी हो गयी । रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे । परम पवित्र और शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहने लगी । भाद्रपद (भादों) मास की अष्टमी तिथि थी । सबके मन प्रसन्न हो गये । भगवान् के अवतार के समय स्वर्ग में देवता लोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे । किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वर में गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं । देवता और ऋषि-मुनि आनन्द से पुष्पों की वर्षा करने लगे । बादल सागर के पास जाकर गरजने लगे, मानो उससे कह रहे हों कि भगवान् आ रहे हैं, तुम्हारे भीतर द्वारिका पुरी बसाकर रहेंगे तो तुम्हें भी आनन्द मिलेगा ।

मध्य रात्रि के समय भगवान् देवकी के गर्भ से इस प्रकार प्रकट हुए जैसे पूर्व दिशा में पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित हुआ हो ।

वसुदेवजी ने अपने सामने अत्यधिक सुन्दर चतुर्भुज बालक देखा तो वे स्तुति करने लगे ।

वसुदेवजी ने कहा – प्रभो ! आप अनुभव-आनन्द स्वरूप हैं । यह कंस बड़ा दुष्ट है । इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर

होने वाला है तो इसने आपके बड़े भाइयों को मार डाला । अभी अपने दूतों से आपके जन्म का समाचार सुनकर वह हाथ में शस्त्र लेकर दौड़ा आएगा और पता नहीं क्या-क्या करेगा ?

इधर देवकीजी भी भगवान् की स्तुति करने लगीं – प्रभो ! आपकी माया को कौन जान सकता है ? आप मेरे गर्भ में आये, यह तो आपकी विचित्र लीला है – **'नृलोकस्य विडम्बनम् ।'** आप अपने इस चतुर्भुज रूप को छिपा लीजिये । आपके लिए मैं कंस से बहुत डर रही हूँ ।

भगवान् ने कहा – स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब आपका पहला जन्म हुआ था, उस समय आपका नाम था पृश्नि और वसुदेव का नाम था सुतपा । जब ब्रह्माजी ने आप दोनों को सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी, तब आप लोगों ने कठोर तप किया । घोर तप करते-करते दिव्य बारह हजार वर्ष बीत गये । उस समय मैं आप लोगों के सामने इसी रूप से प्रकट हुआ था । मैंने जब आप लोगों से वर माँगने को कहा तो मेरी माया से मोहित होने के कारण आपने मोक्ष नहीं माँगा, मेरे जैसा पुत्र माँगा । तब मैं आप दोनों का पुत्र बना और मेरा नाम हुआ – 'पृश्निगर्भ' । दूसरे जन्म में आप लोग अदिति और कश्यप बने, उस समय भी मैं आपका पुत्र बना । मेरा नाम था उपेन्द्र या वामन । तीसरे जन्म में भी मैं अब आपका पुत्र बना हूँ । मैंने आपको अपना यह रूप इसलिए दिखाया, जिससे कि पूर्व जन्मों का आपको स्मरण हो जाए ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इतना कहकर भगवान् चुप हो गये और अपनी माया से उन्होंने एक प्राकृत शिशु का रूप धारण कर लिया और वसुदेवजी से कहा कि आप मुझे गोकुल में पहुँचा दीजिये । वहाँ ब्रज में श्रीजी की छत्रछाया में मुझे कंस से भय नहीं रहेगा ।

श्यामसुन्दर प्रकट लीला में जब गोकुल से नन्दगाँव आ गये तो बरसाने के आसपास कंस नहीं आ सकता था । वसुदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से कारागृह के बाहर जाने के बारे में सोचा । उधर

यशोदाजी के गर्भ से योगमाया का प्राकट्य हुआ । कंस के सभी द्वारपाल सो गये । ऐसा कैसे हुआ ? विष्णु पुराण में लिखा है –

मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया ।

योगमाया के प्रभाव से सैकड़ों प्रहरी जो हाथों में हथियार लेकर पहरा दे रहे थे, वे सब के सब सो गये । कंस की जेल में बड़े-बड़े द्वार थे, वे दुरत्यय थे । उनके दरवाजे बन्द थे । भागवत के टीकाकार लिखते हैं कि दरवाजे किस प्रकार बन्द थे ? केवल साँकर, कुंडा-ताला से दरवाजे बंद नहीं थे । वे मन्त्र से जकड़े हुए थे । ऐसी विषाक्त औषधियों का उन पर लेप किया गया था कि उनको छूते ही मनुष्य की मृत्यु हो जाती थी । इसीलिए इन्हें दुरत्यय कहा गया । कोई भी सेना अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से बंदीगृह के दरवाजों को तोड़ नहीं सकती थी । सेना अस्त्र-शस्त्र से लड़ सकती है किन्तु मन्त्र से नहीं लड़ सकती । यह एक विचित्र बात है । कंस ने बड़े-बड़े मन्त्र-तन्त्रों द्वारा कारागार के दरवाजों को बन्द कराकर, उन पर अत्यन्त विषाक्त औषधियों का लेप करवा दिया था ।

'मन्त्रौषधादिभिर्दुरत्ययाः सर्वा द्वारश्च बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः' –

(श्रीविजयध्वजतीर्थजी)

इसीलिए श्रीभागवत '१०/३/४८' में इन दरवाजों के बारे में लिखा है – **'दुरत्यया ।'** दुरत्यय दरवाजे थे । उनके किवाड़ों को कोई छू भी नहीं सकता था, तोड़ना तो दूर रहा ।

श्रीकृष्ण ने वसुदेवजी से कहा कि आप कारागृह के बाहर चले जाइये, ये सब दरवाजे अपने-आप खुल जायेंगे । अपनी गोद में श्रीकृष्ण को लेकर वसुदेवजी दरवाजे के पास पहुँचे, वसुदेवजी कैसे हैं तो शुकदेवजी कहते हैं – **'कृष्णवाहे'** – जो कृष्ण को ले जा रहे थे । वसुदेवजी कृष्ण को गोद में लेकर जैसे ही दरवाजे के निकट पहुँचे, वैसे

ही वे सब दरवाजे, उनके ताले, जंजीरें, किवाड़ें आदि अपने आप ही खुल गये। बड़े-बड़े मन्त्र-तन्त्र, कवच और विषाक्त औषधियों का प्रभाव समाप्त हो गया, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयं ही हट जाता है। सूर्यदेव अन्धकार को हटाने के लिए बुहारी नहीं लगाते हैं। उसी समय वर्षा होने लगी। क्यों होने लगी ? योगमाया ने ऐसा नाटक इसलिए रचा, जिससे कि वर्षा के कारण कोई घर के बाहर न जाए, किसी को पता न लग जाए कि वसुदेवजी अपने बालक को लेकर कहीं और रख आये। परन्तु भगवान् शेषजी अपने सहस्र फनों से भगवान् के ऊपर छाया करते हुए, वर्षा के जल से उनको बचाते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। बड़े जोर से वर्षा हो रही थी। यमुनाजी यमानुजा (यमराज की बहन) के स्वरूप में आ गयी थीं, उनके जल में भयंकर बाढ़ आ रही थी। विष्णुपुराण में लिखा है –

'वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्बणं निशि।'

वर्षा भी साधारण नहीं हो रही थी, मूसलाधार वर्षा, जिसमें जल की मोटी-मोटी धाराएँ तीव्र वेग से गिर रही थीं। इस भयंकर वर्षा के कारण घर से बाहर निकलना तो दूर, कोई अपनी खिड़की से भी बाहर नहीं झाँक सका। यमुनाजी में सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे। ऐसे में शेषजी अपने फनों के द्वारा वर्षा के जल से प्रभु को बचाते हुए उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, साथ ही वसुदेवजी को भी उन्होंने अपने फनों की छाया से ढक रखा था। भयंकर वर्षा की एक बूँद भी भगवान् और वसुदेवजी के ऊपर नहीं पड़ी। यमुनाजी में इतने भीषण वेग से जल प्रवाहित हो रहा था कि हाथी भी बह जाये। यमुना की लहरों के फेन में झाग इस प्रकार निकल रहा था जैसे दूध में उबाल आ रहा हो। झाग ऊपर तक जा रहे थे। इसीलिए श्लोक '१०/३/५०' में यमुना को 'यमानुजा' अर्थात् यमराज की बहन की संज्ञा दी गयी है किन्तु जिस प्रकार समुद्र

ने भगवान् राम को मार्ग दे दिया, उसी प्रकार यमुनाजी ने भी वसुदेवजी को मार्ग दे दिया । ब्रजवासी ऐसा कहते हैं कि भयंकर लहरों के माध्यम से यमुनाजी श्रीकृष्ण का चरण स्पर्श करना चाह रही थीं । जब यमुनाजी का जल ऊपर बढ़ने लगा तो वसुदेवजी घबरा गये और समझ गये कि अब तो मैं डूब जाऊँगा किन्तु यमुनाजी नहीं मान रही थीं, वे कह रही थीं कि मेरे कान्त मेरे जल के ऊपर से होकर जा रहे हैं तो मैं इनका चरण तो अवश्य ही स्पर्श करूँगी । यह स्वाभाविक भी है क्योंकि प्रभु आयें और उनका चरण स्पर्श न करे, ऐसा कौन है ? यमुनाजी श्रीकृष्ण चरण स्पर्श करने के लिए जोर से उछलीं तो वसुदेवजी को लगा कि अब तो मैं और मेरा बालक दोनों ही डूब जायेंगे तो वे जोर से चिल्लाये – 'कोई ले, कोई ले' अर्थात् कोई मेरे बालक को बचा ले । वसुदेवजी के इस प्रकार 'कोई ले' कहने से वहाँ यमुना तट पर 'कोयलो' नामक एक गाँव बस गया है । यमुनाजी के किनारे एक छोटा सा मन्दिर है । उसमें बालकृष्ण को ले जाते हुए वसुदेव जी की प्रतिमा है ।

(श्रीबाबा – एक बार ब्रज परिक्रमा करते समय मैं भी उस स्थान पर पहुँचा और रात को सो गया तो बहुत सुन्दर स्वप्न दिखाई पड़ा । स्वप्न में मुझे यमुनाजी का दर्शन हुआ । यह लीला स्थल का प्रभाव है । स्वप्न में यमुनाजी का बहुत बड़ा वेग दिखाई दिया, जबकि उस समय गर्मियों का मौसम था, यमुनाजी में अधिक जल नहीं था । स्वप्न देखकर मैंने विचार किया कि यह वही स्थान है, जहाँ यमुनाजी श्रीकृष्ण चरण स्पर्श के लिए बड़े वेग से ऊपर उठी थीं और अपने बालक को बचाने के लिए वसुदेवजी – 'कोई लो, कोई लो' कहकर चिल्लाये थे । यमुनाजी ने मुझ पर दया करके इस तरह स्वप्न में दर्शन दिया ।)

यमुनाजी के जल को ऊपर उठते देख श्यामसुन्दर समझ गये कि ये बिना मेरे चरण स्पर्श किये नहीं मानेंगी और मेरे पिता वसुदेवजी घबरा रहे हैं तो उन्होंने अपने चरण नीचे लटका दिए और यमुनाजी ने प्रभु के चरण स्पर्श कर लिए और फिर –

'मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः' (श्रीभागवतजी - १०/३/५०)

जैसे सीतापति भगवान् श्रीराम को समुद्र ने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजी ने भी प्रभु को मार्ग दे दिया ।

इसके बाद वसुदेवजी नन्दबाबा के गोकुल में पहुँचे तो देखा कि वहाँ सभी लोग गहरी निद्रा में अचेत पड़े हुए हैं । उन्होंने यशोदाजी की शैय्या पर अपने बालक को लिटा दिया और यशोदाजी की कन्या को लेकर मथुरा के बंदीगृह में लौट आये । जेल के अन्दर प्रवेश करते ही किवाड़ें अपने आप बंद हो गयीं, ताले लग गये । मन्त्र-तन्त्र और औषधियों का उन पर पहले जैसा प्रभाव हो गया ।

अध्याय – ४

वसुदेवजी के बंदीगृह के भीतर प्रवेश करने और दरवाजों के अपने आप बंद होने के बाद द्वारपालों की नींद टूटी और वे खड़े हो गये । उनको यह पता ही नहीं पड़ा कि हम लोग कब सोये और वसुदेवजी कब बाहर निकले व भीतर आ गये । वे तो यही सोच रहे थे कि हम लोग बहुत बढ़िया पहरा दे रहे हैं और मक्खी तक जेल के भीतर नहीं घुस सकती । द्वारपाल अपने हाथों में हथियार लेकर आवाज लगाने लगे – 'सावधान, होशियार ।' इसके बाद वसुदेवजी के द्वारा लायी हुई बालिका बड़े जोर से रोने लगी । उसके रोने की ध्वनि सुनकर द्वारपाल दौड़कर कंस के पास गये क्योंकि कंस ने उन्हें आज्ञा दे रखी थी कि जैसे ही शिशु का जन्म हो तुरंत उसी समय मुझे खबर करना, नहीं तो सबका सिर काट दिया जायेगा । इसीलिए द्वारपालों ने कंस से कहा – 'महाराज ! सावधान हो जाइये, आपके काल ने जन्म ले लिया है ।' कंस को नींद तो नहीं आ रही थी, वह तो इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा था । बालक के जन्म का समाचार पाते ही वह बड़े जोर से कारागृह की ओर चला । हड़बड़ाहट में वह धरती पर गिर पड़ा, उसके बाल बिखर गये । शीघ्रता से वह देवकीजी के पास पहुँचा । उसे देखकर देवकीजी ने कहा –

'भैया ! यह तो कन्या है, तुम्हारी पुत्रवधू के समान है । तुमने मेरे सभी बालक मार डाले । अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ।'

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – देवकीजी ने कन्या को अपनी गोद में चिपका लिया और बड़ी ही दीनता के साथ रोते हुए उन्होंने कंस से उस कन्या को छोड़ देने की प्रार्थना की किन्तु कंस बड़ा दुष्ट था । उसने देवकी को झिड़ककर उनके हाथ से वह कन्या छीन ली । उस कन्या के पैर पकड़कर उसने बड़े जोर से एक चट्टान पर उसे दे मारा परन्तु वह कोई साधारण कन्या तो थी नहीं, वह तो देवी थी, वह कंस के हाथ से छूटकर तुरंत ही आकाश में चली गयी । श्रीमद्भागवत में तो इतना ही लिखा है कि वह कन्या कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी किन्तु भविष्योत्तर पुराण में लिखा है –

'कंसासुरस्योत्तमांगे पादं दत्वा गता दिवम् ।'

कन्या ने आकाश में जाते-जाते कंस की खोपड़ी पर इतनी तेजी से अपने पाँव से प्रहार किया कि वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा । जब कंस गिर पड़ा तो वह चारों ओर देखने लगा कि मेरे सिर पर इतनी तेजी से प्रहार किसने किया, यहाँ तो ऐसा कोई मनुष्य है नहीं, जो मेरे भय से मेरे सामने अपना सिर भी उठा सके तो मुझे मारा किसने ? क्रोध में वह इधर-उधर देखने लगा तो उसकी दृष्टि आकाश पर गयी । उसने देखा कि अष्टभुजा देवी आकाश में खड़ी हैं । उनके हाथों में धनुष, त्रिशूल,बाण,ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा थे । बड़े-बड़े सिद्ध, चारण, गन्धर्व और अप्सरा देवी माँ की स्तुति कर रहे थे । उस समय देवी ने कंस से कहा – 'अरे मूर्ख ! मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा ? तेरा काल तो पैदा हो चुका है, वह तो तेरा पुराना वैरी है । अब तू व्यर्थ में बालकों की हत्या मत किया कर ।'

कंस से इस प्रकार कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं । कंस आँख खोलकर देखता ही रह गया कि यह क्या हो गया ? उसको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने उसी समय देवकी और वसुदेव के हथकड़ियों और बेड़ियों को खोला तथा उन्हें कैद से मुक्त कर दिया । उसने मन में सोचा कि मेरा काल तो कहीं और पैदा हुआ है, फिर भी मैंने व्यर्थ देवकी-वसुदेव को कष्ट पहुँचाया । देवताओं ने मुझे खूब मूर्ख बनाया, आकाशवाणी के माध्यम से कहा कि तेरी बहन का आठवाँ गर्भ तुझे मारेगा किन्तु ऐसा तो हुआ नहीं । बड़े ही दुःख की बात है, देवताओं ने मुझे बड़ा धोखा दिया और मैंने अपनी निरपराध बहन के बच्चों को मार डाला । इस तरह मन में दुखी होकर वह देवकी और वसुदेव को ज्ञान देने लगा और बड़ी विनम्रता से बोला – 'अरी बहन और जीजाजी !'

(अब वसुदेवजी को जीजाजी कह रहा है क्योंकि उनका साला है । इसीलिए ब्रज में 'साला' शब्द गाली के लिए प्रयुक्त होता है । ब्रजवासी कहते हैं – साला, जाने कहाँ से चला आया ? साला या ब्रज में सारा भी कहते हैं, यह गाली इसीलिए चली है क्योंकि साले के ऐसे ही काम होते हैं । ब्रजवासी किसी पर नाराज होते हैं तो कहते हैं – सारे, दे दऊँगो अभी तोकूँ अर्थात् साले अभी तुझे मारूँगा ।)

इसीलिए साला होने के कारण कंस वसुदेव जी से कहता है – 'अरे जीजाजी, मैं बड़ा पापी हूँ, मैं तो क्रूर असुर हूँ, ब्रह्महत्यारे की तरह मैं जीवित होने पर भी मुर्दा हूँ । ये देवता भी बड़ा झूठ बोलते हैं, केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते । उन्हीं पर विश्वास करके मैंने अपनी बहिन के बच्चे मार डाले । पता नहीं, अब मुझे किस लोक में जाना पड़ेगा ? अपने पुत्रों के लिए तुम दोनों शोक मत करो । कोई किसी को दुःख नहीं देता, अपने ही कर्म का फल भोगना पड़ता है । तुम्हारे पुत्रों को भी अपने ही कर्म का फल मिला है । सभी प्राणी सदा एक साथ नहीं रह सकते । वे दैव के अधीन हैं जैसे मिट्टी के बने हुए पदार्थ बनते-

बिगड़ते रहते हैं परन्तु मिट्टी में कोई परिवर्तन नहीं होता, वैसे ही शरीर तो पैदा होता और मर जाता है किन्तु आत्मा पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।'

इस प्रकार कंस देवकी और वसुदेव को वेदांत की बातें बताकर समझाने लगा । इसके बाद उसने उनके चरण पकड़ लिए और उनसे क्षमा माँगने लगा । उसने उन दोनों को कारागार से छोड़ दिया । देवकीजी ने देखा कि कंस को अपने पापों का पश्चात्ताप हो रहा है तो उन्होंने उसे क्षमा कर दिया – **'क्षान्त्वा रोषं च देवकी ।'** उन्होंने सोचा कि यह मेरा भाई ही तो है और इसकी गलती भी क्या है, यह तो आकाशवाणी की ही गलती थी, जो इसे गलत सूचना दी ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – प्रसन्न होकर देवकी-वसुदेव ने निष्कपट भाव से कंस के साथ बातचीत की तब वह उनसे अनुमति लेकर अपने महल में चला गया । रात भर उसे नींद नहीं आई, वह सोचने लगा कि अब समस्या यह आ गयी है कि मेरा काल पैदा हो गया है किन्तु वह कहाँ है, इसका कोई पता नहीं है । सबेरे कंस ने अपने मंत्रियों को बुलाया । उसके बुलाने पर सभी विभागों के बड़े-बड़े मन्त्री आये । देवी ने कंस से जो कुछ कहा था, वह सब उसने अपने मंत्रियों को बताया । दैत्य स्वभाव के वे मन्त्री बोले – 'महाराज ! दस दिन के आगे-पीछे जितने भी बच्चे हुए हों, उन सबको मार डालना चाहिए । उस देवी ने यही तो कहा है कि काल अभी ही पैदा हुआ है तो उसका सीधा उपाय यही है ।' कंस बोला – 'हाँ, ये बात तो सही है ।' मंत्रियों ने कहा – 'आप देवताओं से क्यों आशंकित हैं, ये देवता तो बड़े ही डरपोक हैं । वे तो आपके धनुष की टंकार सुनकर ही घबरा जाते हैं । हमें उनसे कोई भय नहीं है । विष्णु तो एकांत में पड़ा रहता है, शंकर वनवासी है । इन्द्र बेचारे में तो कोई ताकत ही नहीं है, ब्रह्मा बूढ़ा हो चुका है, वह सदा तपस्या करता रहता है । ऐसी स्थिति में युद्ध में आपका सामना करने वाला तो कोई है ही नहीं । फिर भी देवता हमारे शत्रु हैं, इसलिए उनकी

उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । हमें उनकी जड़ ही उखाड़ फेंकनी चाहिए । देवताओं की जड़ है विष्णु तथा विष्णु की जड़ है सनातन धर्म और सनातन धर्म की जड़ है – वेद, गौ, ब्राह्मण और साधु जो भजन करते हैं । इन्हीं से विष्णु पुष्ट होता है ।'

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४/४१)

ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रिय दमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ विष्णु के शरीर हैं । इसलिए हम लोग ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और गायों का सब प्रकार से विनाश कर डालेंगे । जब जड़ ही नहीं रहेगी तो पेड़ कहाँ से होगा ?
श्रीशुकदेवजी कहते हैं – **'ब्रह्महिंसां हितं मेने'** – (श्रीभागवतजी - १०/४/४३)

दुष्ट मन्त्रियों की सलाह से कंस की बुद्धि ऐसी विपरीत हो गयी कि उसने हिंसा करना ही ठीक समझा । उसने राक्षसों को संत पुरुषों की हिंसा करने का आदेश दे दिया । इच्छानुसार रूप धारण करने वाले जितने भी असुर थे, वे संसार में सभी को कष्ट देने लगे ।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४/४६)

जो महापुरुषों, भक्तों, साधुओं का अपमान करता है, उसकी आयु, श्री, यश, धर्म, लोक-परलोक, विषय-भोग और कल्याण के सब साधन नष्ट हो जाते हैं ।

कंस और उसके अनुयायी असुर संतों-महापुरुषों का अनिष्ट करने में लग गये, इसलिए उनका शीघ्र ही नाश होगा । उनकी मृत्यु समीप ही आ गयी थी, इसीलिए उन्होंने सन्तों से द्वेष किया ।

अध्याय – ५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं –

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१)

नन्दबाबा पुत्र का जन्म होने पर आनन्द से भर गये । उन्होंने स्नान करके वस्त्राभूषण धारण किये तथा वेदों के जानकार ब्राह्मणों को बुलाया ।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि श्रीकृष्ण के परबाबा देवमीढ़जी से दो शाखायें हो जाती हैं । देवमीढ़जी की दो पत्नियाँ थीं । उनकी एक पत्नी तो क्षत्राणी थी और दूसरी पत्नी वैश्यानी (वैश्य कन्या) थी । क्षत्राणी स्त्री से तो शूरसेनजी उत्पन्न हुए और वैश्य स्त्री से परजन्यजी का जन्म हुआ । इसको ऐसे समझो कि वसुदेवजी के पिता और नन्दबाबा के पिता सौतेले भाई थे । शूरसेन के पुत्र हुए वसुदेव तथा परजन्य के पुत्र हुए नन्दबाबा । ये भी भाई-भाई हुए । जब दोनों के पिता आपस में भाई थे तो उनके पुत्र भी भाई कहलायेंगे । वसुदेव के भी पुत्र कृष्ण थे और नन्दबाबा के भी पुत्र कृष्ण थे । महापुरुषों के पदों में कहीं-कहीं तो ऐसा वर्णन मिलता है कि नन्दबाबा पाँच भाई थे और कुछ पदों में ऐसा वर्णन मिलता है कि नन्दबाबा आपस में नौ भाई थे । दोनों प्रकार के पद मिलते हैं । परजन्यजी की भी दो पत्नियाँ थीं । एक पत्नी के पाँच पुत्र थे और दूसरी पत्नी के चार पुत्र थे । नन्दबाबा की माता वरीयसी जी के पाँच पुत्र थे – उपनन्द, नन्द, अभिनन्द, सुनन्द और नन्दन । इनके अतिरिक्त परजन्य जी की दूसरी पत्नी के चार पुत्र अलग थे । ये सब मिलाकर नौ नन्द हुए । इन नौ नन्दों में नन्दबाबा सबसे अधिक बड़भागी थे क्योंकि नन्दबाबा के पिता परजन्यजी पहले

सन्तानहीन थे। एक दिन उनके पास नारद जी आये और उनसे परजन्य जी ने उपासना सीखी। नारद जी ने इनसे कहा – 'तुम भगवान् नारायण की उपासना करो तो तुमको शीघ्र ही सन्तान का लाभ होगा।' इसलिए नारदजी की कृपा से परजन्य जी को शीघ्र ही उपासना में सिद्धि प्राप्त हुई। एक दिन वे भजन करने बैठे थे तो आकाशवाणी हुई कि तुम्हें सन्तान की प्राप्ति होगी। तुम्हारे पाँच पुत्र होंगे, उनमें से एक के साक्षात् परब्रह्म ही पुत्र बनेंगे। इसलिए यह भी एक प्रमाण है कि नन्द जी के घर पुत्र के रूप में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ क्योंकि आकाशवाणी मिथ्या नहीं हो सकती, वह भगवद् वाणी है। इस प्रकार से यह इतिहास महापुरुषों ने लिखा है। नन्दबाबा के घर पुत्र रूप से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, इसके कई प्रमाण हैं। आदिपुराण में ऐसा उल्लेख है –

'नन्दपत्न्यां यशोदायां मिथुनं समजायत्।'

नन्दपत्नी यशोदाजी के केवल कन्या ही नहीं उत्पन्न हुई थी, एक कन्या और एक पुत्र दोनों उत्पन्न हुए थे।

गोविन्दाख्या पुमान् कन्याह्यम्बिका मथुरां गता।

जो पुत्र था, वह गोविन्द (नन्द लाला) था और जो कन्या थी, वह मथुरा चली गयी। जब वसुदेवजी देवकीनन्दन को ले आये तो वे नन्दनन्दन में लीन हो गये जैसे बादल में दामिनी(बिजली) लीन हो जाती है और अक्रूरजी के आने पर वसुदेवनन्दन मथुरा और द्वारका लीला करने चले गये। नन्दनन्दन नित्य रूप से ब्रज में लीला करते हैं, प्रकट लीला में अवश्य विरह भी होता है। इसीलिए ब्रजवासी गाते हैं कि श्रीकृष्ण ने यह सौगन्ध ली थी कि मैं ब्रज को छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगा।

ब्रजवासी वल्लभ सदा, मेरे जीवन प्राण।
ब्रज तजि अनत न जाइहौं, मोहे नंदबाबा की आन॥

'भूतल भार उतारिहौं धरि-धरि रूप अनेक ।'

ऐसा महात्माओं ने लिखा है, यह सब सही है । टीकाकार आचार्यों ने लिखा है कि स्वयं भागवत में ही इसके प्रमाण हैं कि श्रीकृष्ण नन्दबाबा के पुत्र थे जैसे कि श्लोक '१०/५/१' में शुकदेवजी ने कहा **'नन्दस्त्वात्मज'** अर्थात् नन्दस्तु आत्मज – इसमें 'तु' शब्द है, इसका अर्थ हुआ कि नन्द के भी तो पुत्र हुआ । 'तु' माने तो । भागवत में 'तु' का बड़ा महत्व है । जैसे प्रथम स्कन्ध में कहा गया –

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (श्रीभागवतजी - १/३/२८)

भागवत में 'तु' का विशेष प्रयोग है । आचार्य लोग लिखते हैं कि **'नन्दस्त्वात्मज = नन्दस्तु + आत्मज'** 'तु' का तात्पर्य है कि नन्द के घर में भी पुत्रोत्पत्ति हुई है । अब देवकीनन्दन और यशोदानन्दन में अन्तर यह है कि नन्दबाबा के यहाँ पर – **सम्पूर्णवात्सल्यवैशिष्ट्यात्मरत्त्वम् ।** यशोदानन्दन तो सम्पूर्ण वात्सल्य से युक्त हैं । केवल यहाँ शुद्ध वात्सल्य प्रेम है । नन्द-यशोदा श्रीकृष्ण को केवल अपना पुत्र ही मानते हैं, उनमें भगवद् भाव नहीं रखते हैं किन्तु मथुरा में – **'देवकीवसुदेवयोः ऐश्वर्यज्ञानाच्छन्नम् ।'**

देवकी-वसुदेव श्रीकृष्ण को केवल अपना पुत्र ही नहीं मानते हैं, उनको यह भी प्रतीति होती है कि ये भगवान् हैं । अतः यशोदानन्दन और देवकीनन्दन में यह रस-सम्बन्धी अन्तर है । टीकाकार आचार्य कहते हैं कि यदि तुम ऐसा नहीं मानोगे तो भागवत में कई जगह जो शब्द आये हैं – आत्मज(बेटा), वे सब कैसे सच होंगे ? जैसे जब श्रीकृष्ण के नामकरण संस्कार के अवसर पर गर्गाचार्य जी आये तो उन्होंने कहा – **'प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः'** (श्रीभागवतजी - १०/८/१४) उन्होंने यहाँ 'तवात्मज' शब्द कहा है अर्थात् हे नन्दबाबा ! यह जो तुम्हारा निजी (तुम्हारे द्वारा उत्पन्न) पुत्र है, यह कभी

पहले वसुदेवजी के यहाँ उत्पन्न हो चुका है । इसी प्रकार ब्रह्ममोह-लीला में ब्रह्माजी गोपालजी की स्तुति में कहते हैं –

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१४/१)

इस श्लोक में अन्त में ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण को पशुपाङ्गज कहा है । ब्रह्माजी की बात झूठी नहीं हो सकती । पशुप किसे कहते हैं ? पशुप माने ग्वारिया नन्दबाबा । **'पशुः पालयति इति पशुपः'** – जो पशुओं का पालन करता है, उसे पशुप कहते हैं । नन्दबाबा गायों का पालन करते थे, इसलिए उन्हें पशुप कहा गया । यदि यह कहा जाए कि वसुदेवजी अपने पुत्र को यशोदाजी के पास लिटा आये, इसलिए वे नन्द-यशोदा के पुत्र भी कहलाये तो नहीं, ब्रह्माजी कहते हैं – पशुपाङ्गज – 'पशुप' अर्थात् नन्दबाबा के अंगज हैं 'श्रीकृष्ण' । 'अंगज' अर्थात् नन्दबाबा के अंग से उत्पन्न हैं । यह बात बहुत ध्यान से समझने योग्य है । इसे केवल आचार्यों ने ही लिखा है, हम लोग इसे सामान्य तरीके से नहीं जान सकते हैं । यह रहस्य तो आचार्यों ने ही खोला है । इसलिए जब ब्रह्माजी ने गोपाल को 'पशुपाङ्गजाय' कहा अर्थात् वे नन्द के अंग से उत्पन्न हैं । इसका मतलब यही है कि नन्द-यशोदा के अंग से उत्पन्न हुए बालक हैं, तभी तो अंगज कहा जायेगा । अगर श्यामसुंदर वसुदेव के पुत्र होते, जैसा कि दुनिया के लोग यही जानते हैं कि वसुदेवजी अपने बालक को नन्दबाबा के घर में लिटा आये अर्थात् यही कृष्ण केवल वसुदेवजी के ही पुत्र होते तो ब्रह्माजी उन्हें 'पशुपाङ्गज' अर्थात् नन्दबाबा के अंगज क्यों कहते, अंगज का अर्थ हुआ कि नन्द-यशोदा के शरीर से उत्पन्न हुए । इसका आशय यही हुआ कि यशोदाजी के भी एक बालक उत्पन्न हुआ था, उसी में वसुदेव के पुत्र आकर लीन हो गये । भागवत

में ऊखल बन्धन लीला के प्रसंग में भी शुकदेवजी ने कहा है – **'नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।'** (श्रीभागवतजी - १०/९/२१) यह गोपिका- सुत है । 'सुत' उसे कहते हैं, जिसे माता प्रसव के द्वारा उत्पन्न करती है । 'गोपिका-सुत' का अर्थ हुआ कि गोपी यशोदा ने इसे प्रसव के द्वारा जन्म दिया है । जब गोपी यशोदाजी कन्हैया को जन्म देंगी तभी तो वे गोपिकसुत कहे जायेंगे । इसी प्रकार जब कंस के हाथ से छूटकर बालिका आकाश में चली गयी तो उसके बारे में शुकदेवजी ने कहा – **'अदृश्यतानुजा विष्णोः'** – (श्रीभागवतजी - १०/४/९)

यह विष्णु (कृष्ण) की अनुजा है अर्थात् वह नन्दलाला की अनुजा थी, 'अनुजा' माने पीछे पैदा होने वाली उसी गर्भ से । एक ही माता के गर्भ से जो पहले पैदा होता है, उसे 'अग्रज' कहते हैं और जो बाद में पैदा होता है, उसे 'अनुज' कहते हैं । **'अग्रं जायते अग्रजः पश्चात् जायते अनुजः'** स्त्रीलिंग में – **'पश्चात् जायते अनुजा सा'** – अतः नन्दलाला के साथ कोई कन्या भी हुई, तभी तो उसे अनुजा कहा जायेगा । अगर कृष्ण वसुदेव के पुत्र होते और यशोदाजी के केवल कन्या पैदा होती तो वह 'कन्या' कृष्ण की अनुजा नहीं हो सकती । क्योंकि यशोदा की कूँख दूसरी है और देवकी की भी कूँख अलग है । अतः यशोदाजी की कूँख से जो कन्या हुई, वह देवकी जी की कूँख से उत्पन्न होने वाले देवकीनन्दन कृष्ण की अनुजा कैसे हो सकती है ? यह प्रमाण भी भागवत के टीकाकार आचार्यों ने दिया है । रसिक महापुरुष भी लिखते हैं जैसा कि व्यासजी ने लिखा –

जद्यपि कान्ह कुँवर की भगिनी, यशुदा माँ ने जाई ।

कान्ह कुँवर की भगिनी अर्थात् सगी बहन है, उसे यशोदा माँ ने पैदा किया है । इसका मतलब यह हुआ कि यशोदा मैया ने एक पुत्र भी पैदा किया और एक कन्या को भी जन्म दिया । इसीलिए व्यास जी कहते

हैं कि योगमाया रूपी कृष्ण की बहन अपने भतीजों अर्थात् भगवान् के भक्तों, साधु-संतों को बहुत धन देती है । उनको बहुत प्यार करती है । एक और बहुत अच्छी बात आचार्यों ने लिखी है कि वास्तव में जो पुत्र हुआ, वह यशोदाजी के हुआ । आचार्य लोग लिखते हैं – **'भावं विना पुत्रत्वं न ।'** जब तक वात्सल्य-रस नहीं होगा, तब तक पुत्र कैसा ? जैसे भागवत में वर्णन आता है कि 'वराह भगवान्' ब्रह्माजी की नाक से उत्पन्न हुए तो क्या वे ब्रह्माजी के पुत्र कहलाये ? जब हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को समुद्र में डाल दिया था और ब्रह्माजी सोच रहे थे कि पृथ्वी को बाहर कैसे निकाला जाये, उसी समय उनकी नाक से एक शूकर निकला और बाहर आकर वह बहुत बड़ा हो गया । क्या वह शूकर ब्रह्माजी का पुत्र बोला गया, उत्तर है नहीं बोला गया । जबकि है बेटा ही क्योंकि वराह जी की स्तुति में उनके लिए 'घ्राणज' शब्द का प्रयोग किया गया है । अतः ब्रह्माजी के अंग से उत्पन्न होने पर भी वराह भगवान् को ब्रह्माजी का पुत्र नहीं कहा गया क्योंकि ब्रह्माजी का उनके प्रति वात्सल्य भाव नहीं था । दूसरी बात, बालक परीक्षित की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा करने के लिए भगवान् उत्तरा के गर्भ में भी गये, फिर उन्हें उत्तरा का पुत्र क्यों नहीं कहा गया ? इसलिए बिना वात्सल्य के कोई बेटा कैसे हो सकता है ?

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।

(श्रीभागवतजी - १०/५/२)

नन्दबाबा ने वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार करवाया । जातकर्म क्या है ? जब बच्चा पैदा होता है तब नालछेदन किया जाता है । नालछेदन के बाद सूतक लगता है । नालछेदन के पहले बहुत दान किया जाता है और वह अक्षय माना जाता है । पुत्र का जन्म होने पर नन्दबाबा ने जातकर्म करवाया अर्थात्

नालछेदन के पहले दान किया । नालछेदन के पहले ही जातकर्म किया जाता है । नाल आप्यायनी नाड़ी होती है, माता के गर्भ में बालक को उसके द्वारा ही भोजन का रस मिलता है, जीवन मिलता है । अब यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि यशोदा के पुत्र न उत्पन्न होता तो जातकर्म कैसे किया जाता क्योंकि जातकर्म के बाद ही नाल छेदन किया जाता है और भागवत के इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि नन्दबाबा ने जातकर्म करवाया । इसका मतलब है कि यशोदाजी के पुत्र उत्पन्न हुआ क्योंकि जातकर्म के बाद ही तो नाल छेदन होता है । जब तक श्रीकृष्ण यशोदा के गर्भ से नहीं पैदा होते तब तक नाल छेदन कैसे किया जा सकता था, इसलिए भी स्पष्ट है कि यशोदाजी के गर्भ से ही नन्दनन्दन का प्राकट्य हुआ, उसके बाद ही नाल-छेदन किया गया । ब्रज के पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के सन्त-कवियों ने भी नन्दलाला की जन्म-लीला का वर्णन किया है, उनका अनुभव भी सत्य है । उन्होंने लीला मन से सोचकर नहीं लिखी । इन्होंने कन्हैया की जन्मलीला को देखा है और देखने के बाद अपने पदों में उसका वर्णन किया है । इन महापुरुषों ने लिखा है कि यशोदाजी से साक्षात् लाला का जन्म हुआ ।

भागवत में कर्दमजी ने कहा है –

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२४/३१)

हे प्रभो ! आपके भक्तों को आपका जो रूप अच्छा लगता है, वही रूप उपासना के योग्य है ।

इस श्लोक में निर्णय कर दिया गया है । सूरदासजी आदि से बड़ा भक्त और कौन होगा ? उनको नन्दनन्दन रूप अच्छा लगा तो वह रूप

उपास्य है, वह लीला हुई है और उसे अक्षरशः सत्य मानना चाहिए। यह भागवत का प्रमाण है। सूरदासजी ने एक पद लिखा है। नन्दगाँव और बरसाने के समाज में इसे 'दाई के पद' के नाम से गाया जाता है –

पौढ़ी भवन नन्द घरनी जगत जस करनी कृष्ण उर धरनी।

नन्दरानी यशोदाजी अपने भवन में कृष्ण को गर्भ में धारण करके लेटी हुई हैं अर्थात् कृष्ण यशोदाजी के गर्भ में हैं, वसुदेवजी के द्वारा मथुरा से नहीं लाये गये हैं।

भाग्य बड़ बरनी अहो सुपने अचरज देखि सखि जगाई।

यशोदा रानी सपना देख रही हैं और अपनी सखी से कह रही हैं कि पुत्र के पैदा होने का समय आ गया है –

सुन री भटू हितकारी कहा द्यों कहा री,
अहो या सुपनो सखि साँचो उठि आलस छाँड़।

यशोदाजी कहती हैं – 'सखि ! यह सच्चा सपना है, तू आलस्य छोड़ दे, मेरे लाला उत्पन्न होने ही वाला है। अब देर नहीं है।'

गोकुल में कोलाहल होने लगा।

जगे नर नारी रैन अंधियारी दामिनी कौंधे न्यारी।

बिजली चमक रही है।

अहो ऊँचे चढ़ि टेरैं दाई बुलाओ री।

लोग कह रहे हैं कि दाई को बुलाओ।

दाई मन्दिर आई सुकूँख सिरानी ।

नन्दभवन में दाई आई और उसने यशोदाजी की कूँख मलना शुरू किया।

भई मन भाई भवन छबि छाई,
अहो मिलि दस पाँच
गहे री मंगल गाइयो ।

मन भाई बात होने लगी । सब समझ गये कि बालक का जन्म होने ही वाला है । बात बिलकुल सच है, यशोदाजी का सपना झूठा नहीं है । सबने सोहर (मंगल गीत) गाना शुरू कर दिया ।

दाई ने कहा कि बात बिल्कुल सही है, अब बालक का जन्म होने ही वाला है ।

दाई को पता पड़ जाता है कि बालक कब होने वाला है ? जब बालक का जन्म हुआ तो यशोदाजी को दर्शन बाद में हुआ, पहले दाई को कृष्ण का दर्शन हुआ ।

बोलो कन्हैया लाल की जय ।

यह महापुरुषों का अनुभव है । इसको कोई असत्य नहीं कह सकता । जो इसे असत्य कहता है, वह भक्त नहीं है । जो भक्तों-महापुरुषों की वाणी को असत्य बताता है, वह भक्त नहीं है । वह तो श्रद्धाहीन और नास्तिक है ।

अस्तु, दाई ने कन्हैया का पहले दर्शन किया ।

तेई छिन ऊग्यो है चन्दा अरु प्रगटे नंदनन्दा ।

उसी समय चन्द्रमा निकला और नन्द के लाला प्रकट हो गये ।

बोलो नन्द के लाला की जय ।

नन्द के आनन्द भये जय कन्हैया लाल की ।
हाथी दीने घोड़ा दीने और दीनी पालकी ।
ज्वानन को हाथी घोड़ा बूढ़न को पालकी ।

शाल दिए दुशाला दिए ये भी सवा लाख की ।
ये भी सवा लाख की और वो भी सवा लाख की ।
प्रगटे नन्दनन्दा सकल सुख कन्दा ।

सबको सुख देने वाले नन्दनन्दन प्रकट हो गये ।

तिमिर भयो मन्दा ।
सोवत नन्द जगाये पुत्र ढिंग आये लाल अन्हवाये ।

नन्दबाबा को पुत्र होने का समाचार मिला तो वे दौड़कर आये ...

'परम सचु पाए रतननि खपरा भरायो ।'

नन्दबाबा ने दाई का खपरा रत्नों से भर दिया ।

सूरदासजी ने यशोदाजी के नाल-छेदन के बारे में बहुत सुन्दर लीला लिखी है ।

यशोदाजी दाई से कहती हैं कि नालछेदन कर, तो दाई कहती है –

यशोदा नाल न छेदन दइहौं ।

'यशोदा, मैं नाल छेदने नहीं दूँगी ।'

अब दाई के नेग लेने का समय आ गया है ।

मणिमय जटित हार ग्रीवा को,
वहै आज हौं लइहौं ।

दाई कहती है – 'यशोदा ! आज तो मैं तुम्हारा नौलखा हार लेने के बाद ही नाल छेदन करूँगी ।'

बहुत दिनन की आशा लागी झगरन झगरो कीन्हो ।
मन में बिहँसि तबै नन्दरानी हार हिये को दीन्हो ।

यशोदाजी ने कहा – 'तू नाल छेदन कर । ले, तू हार ही तो लेगी और क्या करेगी ? बड़ी कठिनाई से तो मेरे लाला हुआ है ।' कन्हैयाजी पालने में पड़े हैं और इधर दाई झगड़ा कर रही है कि पहले मैं हार लूँगी, तब नाल छेदन करूँगी । सूरदास जी कहते हैं –

जाकी नाल आदि ब्रह्मादिक सकल विश्व आधार ।

जिस भगवान् की नाभि से कमल पैदा होता है और जिससे सारे विश्व की सृष्टि होती है । सारा संसार जिस भगवान् की नाभि के नाल से प्रकट होता है,

सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मेटन को भुवि भार ।

आज वही भगवान् यशोदाजी की नाल में बँधे हुए पड़े हैं । दाई कहती है कि मैं नाल नहीं छेदूँगी, पहले मुझे हार दो ।

यह महापुरुषों का अनुभव है कि वास्तव में यशोदाजी के गर्भ से लाला का जन्म हुआ । यदि यशोदा के द्वारा पुत्र न उत्पन्न होता तो महापुरुष इस लीला को कैसे गाते ? इस प्रकार पुराणों के आधार पर, श्रीमद्भागवत पर आचार्यों की टीका के द्वारा तथा ब्रज के रसिक महापुरुषों की वाणी के द्वारा इस बात को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया कि वास्तव में यशोदाजी के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ था । इन सब प्रमाणों को कोई गलत नहीं बता सकता । इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि सच में यशोदाजी से पुत्र का जन्म हुआ और उस नन्दनन्दन में वसुदेवनन्दन आकर लीन हो गये । यहाँ तो बहुत संक्षेप में वर्णन किया गया, नहीं तो प्रमाण तो बहुत से हैं ।

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१)

इस प्रकार नन्दजी के वास्तव में आत्मज (पुत्र) का जन्म हुआ । नन्दजी को बहुत आनन्द हुआ । वे बड़े ही उदार थे । उन्होंने स्नान किया और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये । इसके बाद नन्दबाबा ने ब्राह्मणों को बुलवाया ।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/२)

नन्दबाबा ने ब्राह्मणों से कहा कि आप लोग मन्त्रों का उच्चारण करिये । ब्राह्मण लोग नन्द के लाला को आशीर्वाद देने लगे, स्वस्तिवाचन करने लग गये ।

भगवान् श्यामसुन्दर के अनेक रूप हैं । गर्गाचार्यजी ने भी कहा कि यह केवल वसुदेव का ही पुत्र नहीं है ।

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते । (श्रीभागवतजी - १०/८/१५)

नन्दबाबा जी, तुम्हारे पुत्र के अनेक नाम और अनेक रूप हैं । इसलिए इन सब बातों से सिद्ध होता है कि यशोदाजी के पुत्र का जन्म हुआ था ।

'नन्दस्त्वात्मज = नन्दस्तु आत्मज' -

आचार्यों ने बताया है कि यदि यहाँ 'तु' न लगाते तब भी श्लोक की पादपूर्ति हो जाती परन्तु बिना 'तु' के श्लोक की पादपूर्ति होने पर भी 'तु' लगाया गया तो इससे पता पड़ता है कि वसुदेवनन्दन के होते हुए भी नन्दनन्दन उत्पन्न हुए । यह 'तु' शब्द का अर्थ है । इसके अतिरिक्त इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'जाताह्लादो' का अर्थ आचार्यों ने किया है कि नन्दजी के केवल पुत्र ही पैदा नहीं हुआ बल्कि आह्लाद (आनन्द) भी पैदा हुआ अर्थात् यहाँ वात्सल्य-रस से युक्त भगवान् पैदा हुए ।

नन्दबाबा ने ब्राह्मणों के द्वारा अपने पुत्र का विधिवत् जातकर्म संस्कार करवाया । पितरों के लिए श्राद्ध किया गया, देवताओं की भी पूजा करवाई । नान्दीश्राद्ध भी किया । लाला को घी मिश्रित मधु चटाया गया । नन्दबाबा ने ब्राह्मणों को दो लाख गायें दान कीं । रत्नों से मिले हुए तथा सोने के वस्त्रों से ढके हुए तिल के सात पहाड़ दान किये । तिल के सात पहाड़ क्यों बनाये जाते हैं ?

ऐसा करने से सुमेरु पर्वत के दान के समान फल मिलता है । सुमेरु आदि पर्वतों के भाव से यह दान किया जाता है । नन्दबाबा ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिए क्योंकि द्रव्य की शुद्धि दान से होती है । यहाँ शुद्धि के बहुत से उपाय बताये गये हैं जैसे समय से भूमि आदि, स्नान से शरीर आदि, संस्कारों से गर्भादि, संतोष से मन आदि । इस तरह अनेक तरह की शुद्धि यहाँ बताई गयी है । ब्राह्मण लोग मंगलमय वाणी बोलने लगे । सूत, मागध और वन्दीजन आये । सूत पुराणों का गायन करते हैं, मागध वंशावली गाते हैं, वन्दी वे होते हैं, जो समय के अनुसार स्तुति करते हैं । गायक लोग गाने लगे । भेरी और दुन्दुभियाँ बिना बजाये अपने आप बजने लगीं । भेरी तो उत्सवों पर बजती है तथा दुन्दुभियाँ मंगलमय अवसर पर बजती हैं । सारे ब्रजमण्डल को अच्छी तरह झाड़ा-बुहारा गया, इत्र से सींचा गया । सभी घरों के द्वार, आँगन और घर के कोने-कोने अच्छी तरह पिचकारियों द्वारा सींचे गये । अनेकों प्रकार की ध्वजा-पताका, पुष्पों की माला, तोरनवार, आम के पल्लव आदि बाँधे गये । गाय, बैल और बछड़ों के अंगों में हल्दी-तेल का लेप किया गया, उन्हें अनेक प्रकार की सोने की मालायें पहनायीं गयीं । इतना सोना ब्रज में कहाँ से आ गया ? भगवान् जब से ब्रज में आये, तभी से समस्त ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्तियाँ ब्रज में विचरण करने लगीं । सभी गोप सुन्दर-सुन्दर कंचुक, पाग, आभूषण आदि से सजकर तथा लाला के लिए भेंट लेकर

नन्दबाबा के घर आये । गोपियाँ भी सुन्दर साड़ी और आभूषणों को पहनकर आयीं । ब्रजदेवियों ने अपने मुख पर कुंकुम का लेप किया और भेंट की सामग्री लेकर जल्दी-जल्दी नन्दभवन की ओर चलीं ।

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१०)

उनके नितम्ब स्थूल थे और स्तन हिल रहे थे । इसका भाव यह है कि स्थूल नितम्ब और स्तनों के कारण जल्दी चलने में कष्ट होता है परन्तु आनन्द के कारण सभी ब्रजदेवियाँ जल्दी-जल्दी नन्द लाला के दर्शन के लिए चली जा रही थीं ।

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठय -
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।

गोपियों के कानों में मणियों के कुण्डल एवं गले में सोने के हार हैं । वे अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने हैं । चलते समय उनकी चोटियों में गुंथे हुए फूल रास्ते में गिरते जा रहे थे । ब्रजगोपियों की चोटियों से फूल क्यों गिर रहे हैं, इस छटा का बहुत सुन्दर वर्णन नन्ददासजी ने किया है । यह पद नन्दगाँव में गाया जाता है ।

ए हो थकि थकि परत कुसुम सीतन पे
उपमा कौन बखानो ।

गोपियाँ नन्दभवन को जा रही हैं, उनकी चोटियों से फूल गिर रहे हैं, उसकी क्या उपमा दें, मानो जो चरण नन्दभवन में जा रहे हैं, उन पर रीझकर केशपाश फूल बरसा रहे हैं कि धन्य हैं ये चरण, जो आज नन्दभवन में लाला की बधाई देने जा रहे हैं ।

इस प्रकार गोपिकायें नन्दभवन में जा रही हैं, हाथों में खनखनाते हुए कंकण हैं, कानों के कुण्डल हिल रहे हैं, कुंकुम लगे हुए पयोधर हिल रहे हैं। ये केवल चलने के कारण नहीं हिल रहे हैं, यह हृदय में आनन्द और प्रेम की हिलोर है कि अनादि काल से हम लोग नन्दनन्दन के लिए प्यासे थे, आज वे प्रकट हो गये। (इसलिए हिलकर अपनी प्रसन्नता को प्रकट कर रहे हैं) इस प्रकार नन्द भवन को जाती हुई ब्रजगोपियों की अलौकिक शोभा थी। यशोदा जी के पास जाकर वे नन्दलाला को आशीर्वाद देती थीं – 'यशोदा का लाल चिरजीवी हो।'

ब्रज में लाड़ली-लाल को आशीर्वाद देने की यह सुन्दर प्रथा है। ब्रजवासी होली खेलते हैं तो लाली-लाला को आशीर्वाद देंगे – 'चिर जियो होली के रसिया।' कोई भी उत्सव हो तो ब्रज में श्यामसुंदर और श्रीजी को आशीर्वाद दिया जाता है। ऐसी परम्परा ब्रज के बाहर और कहीं नहीं है। इसीलिए ब्रजगोपिकाएं नन्द लाला को आशीर्वाद दे रही थीं। वात्सल्य रस में तो आशीर्वाद दिया ही जाता है। श्रृंगार रस में भी सखी-सहचरियाँ श्रीजी-श्यामसुंदर को आशीर्वाद देती हैं, सख्य रस में सखा भी कन्हैया को आशीर्वाद देते हैं। ब्रज में सब कन्हैया को आशीर्वाद देते हैं।

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१२)

ब्रजगोपियाँ नन्द भवन में आये लोगों पर हल्दी का चूर्ण, तेल और जल मिलाकर छिड़क देती थीं। ऐसा क्यों ? इसका भाव वल्लभाचार्यजी ने अपनी टीका में लिखा है कि नन्द भवन में सम्बद्ध, असम्बद्ध, उभयविध और अन्य – चार प्रकार की गोपियाँ गयी हैं। वल्लभाचार्यजी लिखते हैं – **'हरिद्राचूर्णयोर्मेलने आरक्तो भवति तैलेन च संपृक्तं न कदापि त्यजति।'**

हल्दी और चूना मिलाने से लाल रंग हो जाता है और तेल मिलाने से वह छूटता नहीं है । इसमें जल मिलाकर कितना भी फेंको, घटता नहीं है । गोपियाँ बड़ी चतुर हैं, इसीलिए हल्दी, तेल और चूना के साथ जल मिलाकर सभी पर छिड़क रही हैं ।

नन्दभवन जाती हुई ब्रजगोपिकाओं के बारे में वल्लभाचार्यजी ने अपनी श्रीमद्भागवत की टीका में बड़े सुन्दर भाव लिखे हैं ।

जाते समय उनके स्थूल नितम्ब और स्तन हिल रहे हैं तो इसका भाव वे लिखते हैं –

'त्वरागमनन्तासामत्यशक्यम्'

जिनके स्थूल नितम्ब और स्थूल स्तन होते हैं, वे जल्दी नहीं दौड़ सकती हैं ।

'पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः' (श्रीभागवतजी - १०/५/१०) – इसकी टीका में वल्लभाचार्यजी लिखते हैं –

'पृथुश्रोण्यः चलत् कुचाः अत्युच्चतया कुचयोः चलनं गमनप्रतिबन्धकं भवति ।'

ब्रजाङ्गनाओं के बहुत ऊँचे स्तन हैं, वे चलने में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं तो वल्लभाचार्यजी आगे लिखते हैं –

'यत्राशक्यं ताः सम्पादयन्ति तत्र शक्ये कः सन्देह ।'

जब कठिन काम भी सरल हो गया है, स्थूल स्तन वाली गोपियाँ भी बड़े तीव्र वेग से नन्दभवन पहुँच गयी हैं तो जो छरहरी गोपियाँ हैं, उनका क्या कहना ।

ऐसा अद्भुत नन्दोत्सव हुआ कि गोपियाँ कृष्ण के लिए मंगल गीत गा-गाकर सबके ऊपर हल्दी-तेल मिश्रित जल छिड़क रही थीं । बड़े-बड़े मंगलमय और विचित्र बाजे बजाये जाने लगे । चार प्रकार के वाद्य

होते हैं – तन्तु, सुषिर, अवनद्ध और घन । श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं कि नन्दोत्सव में चारों प्रकार के वाद्य बज रहे हैं, क्यों ? क्योंकि अनन्त जो भगवान् हैं, वे नन्द के ब्रज में आये हैं ।

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१४)

गोपगण बड़े प्रसन्न हो रहे हैं । नन्द भवन में बहुत से सिद्ध गोप आये हैं, जो आयु में बहुत बड़े हैं । मधुमंगल आदि ग्वाल तो आयु में बलराम जी से भी बड़े हैं और श्रीकृष्ण के नित्य सखा हैं । ये समझ गये कि हमारा सखा आ गया है । अतः ये दही, दूध और घी के माट भरकर लाये, कोई-कोई ग्वाल जल के माट लाये क्योंकि ये अलग प्रकार का खेल रचाएंगे । इन ग्वालबालों ने पहले तो दूध, दही और घी के सैकड़ों माटों को एक दूसरे पर उड़ेलकर दूध-दही की होली खेली । इसके बाद **नवनीतैश्च चिक्षिपुः** - माखन की लौनी एक दूसरे के ऊपर गेंद की तरह फेंकने लगे । उन्होंने कहा कि आज नन्द के लाला का जन्म हुआ है तो खूब खेल खेलो, चाहे नन्दबाबा हों, चाहे कोई बड़ा-बूढ़ा हो, सबके ऊपर माखन की लौनी फेंको । भीड़-भाड़ में बड़े-बूढ़े दूर खड़े थे क्योंकि बच्चों के बीच में कौन घुसेगा ? एक बुढ़िया दूर खड़ी होकर देख रही थी, उससे एक गोप ने कहा – 'अरी दादी ! आगे चलकर देख, वहाँ बड़ा आनन्द हो रहा है । वहाँ सभी लोग नाच-गा रहे हैं ।' बुढ़िया बोली – 'अच्छा भैया ।' ऐसा कहने पर उसका मुख खुला तब तक किसी ग्वालबाल ने माखन का लौना फेंका तो वह बुढ़िया के मुख में घुस गया और वह अपना मुँह चलाकर माखन का स्वाद लेने लगी और कहने लगी – 'बड़ा आनन्द है ।'नन्द के आनन्द भयो कहने लगी । इस प्रकार ग्वालबाल एक दूसरे के मुख पर माखन के लौंदे फेंकने लगे । इसके बाद ग्वारिया बोले कि आज कुछ नया कौतुक रचो ।

नन्दबाबा पाँच सगे भाई थे । दूसरे चार भाई सौतेली माता से थे । इस प्रकार ये नौ नन्द थे । इनमें उपनन्द जी सबसे बड़े थे । उनकी पत्नी बड़ी मोटी थीं, स्त्रियों में सबसे अधिक मोटी वे ही थीं और पुरुषों में नन्दजी के छोटे भाई सुनन्दजी सबसे अधिक मोटे थे । सभी ग्वारिया सुनन्दजी से बोले कि बाबा ! आज तो तुम्हें नाचना पड़ेगा । वे बड़े प्रसन्न थे, इसलिए बोले – 'अच्छा भैया ! अवश्य नाचूँगा ।' दूसरी ओर से ग्वारिया उपनन्दजी की पत्नी को ले आये जो सबसे अधिक मोटी थीं । उनसे ग्वारिया बोले – 'दादी ! आज तुझे भी नाचना पड़ेगा ।' वे बोलीं – 'ठीक है, आज मैं भी नाचूँगी ।' अब नन्दबाबा के आँगन में यह तमाशा होने लगा कि ऐसे मोटे स्त्री-पुरुष, जिनको चलना भी मुश्किल, उन्हें नचाने के लिए लाया गया । अब सुनन्दजी और उपनन्दजी की पत्नी का नृत्य आरम्भ हुआ । सुनन्दजी सबसे मोटे थे, जब उन्होंने ठुमका लगाया तो एक ग्वारिया ने उनके पाँव के नीचे पिघले माखन का चिकना गोला रख दिया । ग्वालबाल बोले – 'अरे बाबा ! जोर से नाचो ।' सुनन्दजी बोले – 'हाँ, जोर से ठुमका मारूँगा ।' जब उन्होंने जोर से ठुमका मारा, तुरन्त ही ग्वारिया ने उनके पाँव के नीचे माखन का गोला रख दिया । जब उनका पाँव उस गोले पर पड़ा तो सुनन्दजी धड़ाम से नीचे गिर पड़े और उनके ऊपर उनके साथ ही नाचती हुई उपनन्दजी की पत्नी भी गिर पड़ीं क्योंकि किसी ग्वारिया ने उनके नितम्ब पर धक्का मार दिया था । अब नीचे तो सुनन्दबाबा और उनके ऊपर उपनन्द जी की पत्नी तथा सब ग्वारिया उनके ऊपर दही और पानी के मटके उड़ेलने लगे और जोर-जोर से कहने लगे – 'नन्द के आनन्द भयो जय कन्हैया लाल की ।' इस प्रकार से ब्रजवासियों ने बड़ी धूमधाम से नन्दोत्सव मनाया ।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१५)

नन्दबाबा दूर से यह उत्सव देख रहे थे । वे बड़े उदार थे । उन्होंने सबको भेंट दी । सूत-मागध और वन्दी जनों को भी भेंट की वस्तुएं दीं । **'येऽन्ये विद्योपजीविनः'** – अन्य विद्योपजीवियों को भी भेंट दी । आचार्य लोग विद्योपजीवी का अर्थ करते हैं – **'भरतशास्त्रादिविद्ययोपजीवी ।'** 'विद्योपजीवी' का अर्थ है कि नन्दभवन में बहुत से नाटकों का आयोजन किया गया । इन नाटक आदि विद्याओं से जीवन निर्वाह करने वाले विद्योपजीवियों को भी नन्दबाबा ने उनकी मुँहमाँगी वस्तुयें दीं ।

बाजे बाजे री बधाई मैया तेरे अँगना ।
मात जसोदा लाला जायो, सुनि-सुनि लोग भये मँगना ॥
उमगि-उमगि नन्द दान देत हैं, बाँह भरा बाजूबंद कँगना ।

नन्दबाबा आभूषण लुटा रहे हैं ।

सूरदास आसीष देत हैं, चिरजीवो छँगना-मँगना ॥

सभी लोग आशीर्वाद दे रहे हैं कि नन्द-यशोदा का यह छगन-मगन चिरजीवी हो ।

नन्दबाबा ने भगवान् विष्णु की आराधना के लिए और अपने पुत्र के अभ्युदय के लिए बहुत सा दान दिया । परन्तु उन्होंने देखा कि रोहिणीजी इस उत्सव में नहीं आयी हैं । उनके बारे में शुकदेवजी ने कहा – **'रोहिणी च महाभागा'** (श्रीभागवतजी - १०/५/१७)

रोहिणीजी महाभाग्यशालिनी थीं क्योंकि वसुदेवजी की जितनी भी पत्नियाँ थीं, उनमें केवल रोहिणीजी को ही ब्रज लीला देखने का अवसर मिला था, इसलिए वे वसुदेवजी की समस्त पत्नियों में सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी थीं । जीव गोस्वामीजी अपनी टीका में लिखते हैं कि उनका नाम रोहिणी क्यों पड़ा ?

'रोहयति जनयति व्रजसुखं तत्छीलेति'

जो ब्रजसुख की उत्पत्ति कराती हैं, वे रोहिणी हैं इसलिए श्लोक '१०/५/१७' में उन्हें महाभागा कहा गया है । जीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

श्रीवसुदेवपत्नीभ्यः श्रीदेवकीतश्च भाग्यविशेषवती ।

रोहिणीजी देवकीजी से भी अधिक भाग्यशालिनी हैं क्योंकि 'जनयति व्रजसुखम् ।' 'रोहयति' का अर्थ है जनयति अर्थात् जो ब्रजसुख को पैदा करती हैं, 'तत्छीलं यस्याः' ऐसा शील है जिनका ।

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१७)

इस श्लोक में 'व्यचरद्' क्यों लिखा है तो श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

स्वगृहान्तःशायितस्य तदीयाभिनवबालकस्यात्रानुक्ति ।

वे अपने पुत्र बलरामजी को भीतर सुला आयी थीं क्योंकि नन्दभवन में बहुत भीड़ थी । 'व्यचरद्' का अर्थ है कि विशेष रूप से नन्दोत्सव में आकर उन्होंने नृत्य किया और गीत गाया ।

महापुरुष लोग बताते हैं कि परजन्यजी की पुत्रियाँ अर्थात् नन्दबाबा की बहनें नन्दा और सुनन्दा आयीं, उनसे यशोदाजी कहने लगीं –

विपुल बधावो वीर घर,
वीर तुम्हारो देस बटी ।

'हे वीर ! यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है, कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है । तुम अपने सब नेग करो ।' तब नन्दाजी यशोदाजी से कहती हैं – **'धनि तेरी पटुला माँय ।'**

'भाभी ! तुम्हारी माँ पटुला धन्य है जो उसने तुम्हारे जैसी पुत्री को उत्पन्न किया और जब हमारे पिता परजन्य बाबा से नन्दजी उत्पन्न हुए तो देवमीढ़ राजा की पुत्री अर्थात् परजन्य की बहिन यानी नन्दबाबा की बुआ को सौ छकड़े साड़ियाँ मिली थीं ।

देवमीढ़ नृप की सुता,
लिए हैं सकट सत चीर ।

किन्तु मैं तो उनसे चौगुना लूँगी, तब मेरा नेग पूरा होगा, इसलिए सोच लो ।' यशोदाजी कहती हैं – 'अरे, ये तुमने क्या माँगा ?'

अहो बेटी इतने को कहा माँगनो,
ब्रजपति प्रबल प्रकाश ।

तुमने तो बहुत थोड़ा ही माँगा ।

अहो बेटी खोल बड़े नग कोश ।

यशोदा जी ने रत्नों के खजाने खोल दिए कि जितने चाहो उतने रत्न ले लो ।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून् नृप ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/१८)

अब कोई सोचे कि ब्रज में इतना अधिक धन कहाँ से आ गया तो उसके उत्तर में इस श्लोक में शुकदेवजी कह रहे हैं –

'नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिवान'

ब्रज में समस्त ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ गली-गली डोलने लगीं । रत्न पड़े रहते थे और कोई ब्रजवासी उन्हें उठाता नहीं था । ऐसा क्यों ?

हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ।

(श्रीभागवतजी - १०/५/१८)

सर्वप्रियता आदि गुणों के कारण भगवान् का निवास-स्थान 'ब्रज' लक्ष्मी के खेलने का स्थान बन गया था । यहाँ पर कुछ आचार्य अपनी टीका में लिखते हैं कि रमाक्रीडम् का मतलब है कि ब्रज श्रीजी (राधारानी) के खेलने का स्थान बन गया क्योंकि भागवत में आगे के प्रसंग में बताया गया है कि यह तो लक्ष्मीजी के लिए अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है ।

'नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः'

(श्रीभागवतजी - १०/४७/६०)

इसीलिए ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि जब से श्यामसुन्दर ब्रज में आये, किशोरीजी भी यहाँ खेलने लगीं । 'रमाक्रीडम' का ही विस्तार महापुरुषों ने किया है कि श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर समस्त रावल अथवा बरसानावासी उमंग के साथ गोकुल गये । वृषभानु बाबा और कीर्ति मैया भी गये तथा नन्दबाबा व यशोदा मैया को कान्हा के जन्म की बधाई दी ।

सब सुख छाये परम धाम ।
सुख धाम श्याम अभिराम जू गोकुल आए,
मिट गये द्वंद्व नन्द दासन के भये सब मंगल काम ।

भगवान् के आने से अनन्त सुख-समृद्धि ब्रज के घर-घर में बिखरी पड़ रही है ।

कुछ दिनों के बाद नन्दबाबा गोकुल की रक्षा में गोपों को नियुक्त करके कंस को कर देने के लिए मथुरा गये । वहाँ जाकर वे वसुदेवजी से मिले । उन्होंने वसुदेवजी का आलिंगन किया, नमस्कार नहीं किया ।

टीकाकार आचार्य लिखते हैं कि वसुदेवजी आयु में नन्दबाबा से छोटे थे, यद्यपि वर्ण में वसुदेव जी बड़े थे क्योंकि देवमीढ़जी की क्षत्राणी पत्नी से वसुदेवजी का वंश अलग हुआ और देवमीढ़जी की वैश्य स्त्री से नन्दबाबा का वंश अलग हुआ। देवमीढ़जी से वंश अलग हुआ। इस बात को स्मरण रखना चाहिए। उनकी क्षत्रिय पत्नी से शूरसेनजी पैदा हुए तथा वैश्य पत्नी से परजन्यजी हुए। फिर शूरसेन के वसुदेवजी तथा परजन्य के नन्दबाबा हुए। वसुदेवजी क्षत्रिय होने के कारण वैश्य नन्दबाबा से वर्ण में बड़े थे। नन्दबाबा ने अपने वैश्य वर्ण के अनुसार गोपालन किया। किन्तु फिर भी आयु में नन्दबाबा बड़े थे, इसीलिए उन्होंने वसुदेवजी का आलिंगन किया। वसुदेवजी ने नन्दबाबा से कहा – 'अरे नन्दजी ! आपको बड़ी अवस्था में पुत्र पैदा हुआ।'

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/२३)

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'प्रवयस' का अर्थ करते हुए ब्रजवासी कहते हैं कि नन्दबाबा पचासी (८५) वर्ष के हो चुके थे, तब पुत्र का जन्म हुआ। यह झूठ नहीं है। 'प्रवयस' का अर्थ है कि नन्दबाबा की आयु बहुत अधिक हो गयी थी। उन्हें सन्तान होने की कोई सम्भावना नहीं थी। भगवत् आराधना और कृपा से उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई। वसुदेवजी ने उनसे यहाँ तक कहा कि – **'प्रजाशाया निवृत्तस्य'** – आपको सन्तान की आशा हट गयी थी।

स्त्रियों को जब तक मासिक धर्म होता है तभी तक सन्तान की आशा रहती है। मासिक धर्म बन्द होने के बाद सन्तान की आशा हट जाती है।

कुछ आचार्य लोग लिखते हैं कि बिलकुल अनहोनी बात हुई – **'प्रजाशाया निवृत्तस्य'** आशा भी हट गयी कि इतनी अधिक अवस्था में अब सन्तान नहीं होगी।

इसलिए ब्रजवासियों ने नन्दबाबा से कहा – 'बाबा ! तेरी पचासी वर्ष की आयु में बेटा हुआ ।'

तो यह बात सही है ।

इसके बाद वसुदेवजी ने कहा कि मेरा पुत्र बलराम आपको ही अपना पिता मानता होगा ।

दाऊजी के जन्म के विषय में भी मतभेद है । कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि दाऊजी का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को हुआ था । जीव गोस्वामीजी का मत है कि बलरामजी श्रीकृष्ण से आठ महीने बड़े थे । कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि भाद्रपद शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में बुधवार को दोपहर में बलरामजी का जन्म हुआ । इस हिसाब से ये श्रीकृष्ण से साढ़े ग्यारह महीने बड़े हैं । एक मत से बलरामजी आठ महीने बड़े तथा दूसरे मत से साढ़े ग्यारह महीने बड़े हैं । कुछ आचार्य जैसे चाचा वृन्दावनदासजी के अनुसार श्रावण शुक्ल पंचमी (जिसे नाग पंचमी भी कहते हैं) को बलरामजी का प्राकट्य हुआ था । इस तरह देखा जाये तो हर स्थिति में बलदाऊजी आयु में श्रीकृष्ण से बड़े हैं ।

नन्दबाबा ने वसुदेवजी से कहा कि तुम्हारे कई पुत्र कंस ने मार डाले । इस प्रकार बातचीत करने के बाद वसुदेवजी ने नन्दबाबा से कहा कि आपने अपना वार्षिक कर कंस को दे दिया । अब आप शीघ्र ही गोकुल चले जाइये क्योंकि वहाँ उत्पात होने की सम्भावना है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – वसुदेवजी की बात सुनकर नन्दबाबा गोकुल की ओर चल दिए ।

अध्याय – ६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब नन्दबाबा मथुरा से गोकुल की ओर जा रहे थे तो रास्ते में वे विचार करने लगे कि वसुदेवजी की बात झूठी नहीं हो सकती, इसलिए वे उत्पात होने की आशंका से मन ही मन भगवान् की शरण में गये ।

इधर कंस ने पूतना नाम की राक्षसी को गोकुल भेजा । वह बालघातिनी थी । उसको कंस ने आदेश दिया था कि आजकल थोड़े समय में जितने भी बच्चे पैदा हुए हैं, उन सबको समाप्त कर दो । शुकदेवजी कहते हैं कि ऐसी राक्षसियों का बल कहाँ चलता है ?

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुः यातुधान्यश्च तत्र हि ॥

(श्रीभागवतजी - १०/६/३)

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'सात्वत' का अर्थ श्रीधरस्वामीजी ने दिया है – कृष्ण नाम - जहाँ पर कृष्ण नाम का श्रवण और कीर्तन नहीं किया जाता अर्थात् जिस घर में नित्य कृष्ण नाम का श्रवण और कीर्तन नहीं किया जाता है, वहाँ भूत-प्रेत आदि की बाधायें आती हैं । सबसे बड़ा कवच यही है कि सभी लोग कृष्ण नाम का कीर्तन करो । जहाँ पर कृष्ण नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है, वहाँ पर भूत-प्रेत आदि बाधा देते हैं । इसलिए सबके घरों में कृष्ण नाम कीर्तन गुंजरित होना चाहिए, कृष्ण नाम की झनकार होनी चाहिए । ये महापुरुष लोग हमारे कल्याण के लिए ऐसा लिख गये हैं ।

सा खेचर्यैकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा मायया ऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥

(श्रीभागवतजी - १०/६/४)

वह पूतना एक बार आकाश मार्ग से उड़कर गोकुल में आई । 'एकदा' का अर्थ आचार्यों ने लिखा है कि वह रात में उड़कर आयी । वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थी । उसने बड़ा ही सुन्दर रूप बना लिया । वह बालघातिनी थी, छोटे-छोटे बच्चों की हत्या कर देती थी । विष्णुपुराण में उल्लेख है कि वह रात में ही बच्चों को

चुपचाप विष लगा हुआ स्तन पिला देती थी । उसी समय बच्चों के अंग टूटकर नष्ट हो जाते थे । वह अपने स्तनों में ऐसा भयंकर विष लगाती थी कि बच्चों के होठों का स्पर्श करते ही उनके हाथ, पैर, सिर, पेट आदि सभी अंग अलग-अलग हो जाते थे । जीव गोस्वामीजी श्लोक '१०/६/४' में प्रयुक्त शब्द 'एकदा' का अर्थ करते हैं – 'रात्रौ' अर्थात् रात में ही पूतना आई । यही पराशर ऋषि का मत है और यही वैशम्पायन ऋषि का भी मत है । इसलिए वह पूतना रात्रि में उड़कर गोकुल में आई । उसने बहुत से बच्चों को मारा । अब यहाँ सोचा जा सकता है कि उसके द्वारा बहुत से ब्रजवासी मारे गये । तो इस बात की शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका उत्तर आचार्यों ने दिया है कि उसके द्वारा कंस पक्षीय बालक मारे गये, जो कंस का पक्ष करते थे । यह कंस की मूर्खता देखो कि अपने ही पक्ष के लोग उसने मरवा दिए । ऐसा कैसे हुआ, यह लीला शक्ति की विचित्रता है कि वह उन्हीं घरों में घुसती थी, जहाँ कृष्ण नाम का कीर्तन नहीं होता था । यह भागवत का प्रमाण है – **न यत्र श्रवणादीनि.....**(श्रीभागवतजी - १०/६/३) । जो लोग कृष्ण नाम नहीं लेते थे, पूतना ने उन्हीं घरों के बच्चों को मारा । यह लीला शक्ति की विचित्रता है । जब वह गोकुल पहुँची तो अपनी माया से बड़ा ही सुन्दर रूप बना लिया । बड़ी सुन्दर साड़ी वह पहने थी, उसकी चोटी में बेले के फूल गुंथे हुए थे । मुख की ओर लटकी हुई अलकें बड़ी सुन्दर लगतीं थीं । उसके सुन्दर रूप को देखकर सभी ब्रजवासी मोहित हो गये । गोपियाँ उसे देखकर आपस में कहने लगीं कि यह तो लक्ष्मी हैं, अपने पति का दर्शन करने आयी हैं ।

यहाँ आचार्य लिखते हैं कि क्या असुरों की माया भक्तों को भी मोहित कर लेती है क्योंकि पूतना को देखकर गोपियाँ उसे लक्ष्मी समझ रही थीं तो क्या पूतना की माया ऐसी थी ? आचार्य लोग लिखते हैं कि ऐसी बात नहीं है, यहाँ आसुरी शक्ति काम नहीं कर रही है । वे लिखते हैं –

'यद्यपि पूतना सिद्धभक्तान् मोहितुं न शक्यते ।' पूतना सिद्ध भक्तों को मोहित नहीं कर सकती थी । तथापि भगवान् की लीला शक्ति लीला के लिए कभी-कभी ऐसा भी दिखा देती है कि सिद्ध भक्त भी मोहित हो गये ।

यद्यपि जगन्मोहिनी भगवन्मायापि तान् सिद्धभक्तान्मोहयितुं नोत्सहते तदपि कृष्णलीलाशोभासिद्धयर्थम् ऐन्द्रजालिकमायेव तानपि पूतनादिमाया मोहयति – भगवदिच्छावशादिति ज्ञेयम् ।

(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी)

पद्म पुराण में उत्तर खण्ड में श्री शक्ति, लीला शक्ति और भू शक्ति का वर्णन किया गया है । उसमें लीला शक्ति को वृन्दा देवी बताया गया है, जो वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी हैं ।

अस्तु, पूतना नन्द भवन पहुँच गयी और उसने दूर से एक बालक को देखा । वह उसके पास गयी । बालकृष्ण पलना में लेटे हुए थे । सद्योजात बड़ा छोटा-सा शिशु है । नवनीत (माखन का लौंदा) के समान अत्यंत कोमल नीलमणि पलना में लेटे हुए हैं । पूतना को देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र बन्द कर लिए – **'निमीलितेक्षणः ।'** इस पर आचार्यों ने अनेकों भाव व्यक्त किये हैं कि पूतना के आते ही श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र क्यों बन्द कर लिए ? वल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में लिखा है कि अविद्या ही पूतना है । भगवान् श्रीकृष्ण ने सोचा कि मेरी दृष्टि के सामने अविद्या टिक नहीं सकती, ऐसे में लीला कैसे होगी इसलिए उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए । पूतना ने बालकृष्ण को अपनी गोद में छोटा बच्चा समझकर इस तरह उठा लिया जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति सोये हुए सर्प को रस्सी समझकर उठा ले । पास में यशोदा मैया और रोहिणी मैया खड़ी थीं किन्तु वे पूतना को रोक नहीं पायीं, चुपचाप उसे देखती रह गयीं । पूतना ने बालकृष्ण को अपनी गोद में लिटाकर भीषण विष लगे

हुए स्तन को उनके मुख में दे दिया । उस समय बालकृष्ण ने अपने नेत्र इसलिए भी बन्द कर लिए थे क्योंकि नवजात शिशु जब प्रारम्भिक अवस्था में स्तनपान करता है तो नेत्र बन्द करके माता के वात्सल्य का आस्वादन करता है । नवजात शिशु सदा नेत्र बन्द करके ही माता का स्तनपान करता है, उसे माता के वात्सल्य में अत्यधिक आनन्द का अनुभव होता है । नेत्र बन्द करने के पीछे अन्य भाव तो हैं ही, एक भाव यह भी है कि बालकृष्ण यहाँ वात्सल्य रस का आस्वादन कर रहे हैं । भगवान् कृष्ण पूतना के स्तनों को जोर से पकड़कर रोष के साथ उसके दूध को पीने लगे क्योंकि जानते थे कि इसका संहार करना है, नहीं तो जीवित रहकर यह अन्य बालकों को मारेगी । महात्मा लोग भाव बताते हैं कि रोष के साथ भगवान् स्तनपान क्यों कर रहे हैं, रोष के रूप में रोष के अधिष्ठातृ देवता शिवजी हैं, उन्होंने पूतना के स्तन में लगे विष का पान किया । बालक तो विष पीता नहीं है । बालकृष्ण पूतना के प्राणों को पीने लगे । प्राण निकलते समय बड़ा कष्ट होता है, अतः पूतना बालकृष्ण से अपने को छुड़ाने लगी किन्तु छोटा सा कन्हैया उसे छोड़ ही नहीं रहा था । मन ही मन कन्हैया कह रहे थे कि जिसको मैं पकड़ लेता हूँ फिर उसे छोड़ता नहीं हूँ । पूतना के प्राण निकल रहे थे, अतः कष्ट के कारण वह चिल्लाने लगी – 'अरे छोड़, छोड़, छोड़' किन्तु बालक तो दूध पीता ही रहा, बालक नहीं छोड़ता है । कष्ट के कारण पूतना के नेत्र पलट गये, वह अपने हाथ-पाँव पटकने लगी, उसके शरीर से पसीना बहने लगा और वह बुरी तरह रोने लगी । उसके रोने-चिल्लाने की अत्यन्त भयंकर ध्वनि से सारा आकाश भर गया, पहाड़ों के साथ पृथ्वी डगमगा उठी । उसके प्राण निकल गये और अपने राक्षसी रूप में प्रकट होकर वह बाहर गोष्ठ में आकर गिर पड़ी । गिरते-गिरते भी पूतना के शरीर ने छः कोस तक के वृक्षों को कुचल डाला । इस प्रकार छः कोस के शरीर वाली पूतना पृथ्वी पर गिर पड़ी और बाल कृष्ण निर्भय होकर उसके स्तनों पर खेल रहे थे । गोपियाँ दौड़कर वहाँ पहुँचीं

और बालकृष्ण को उठा लिया । इसके बाद यशोदा और रोहिणी ने गोपियों के साथ गाय की पूँछ को बालक कृष्ण के ऊपर घुमाया क्योंकि गाय की पूँछ में समस्त देवताओं का निवास है । उन्होंने गोमूत्र से बालकृष्ण को स्नान कराया फिर उनके अंगों में गो रज और गोबर लगाकर कवच से भगवान् के नामों को पढ़कर स्वयं भगवान् की रक्षा करने लगीं । इसका भाव यह है कि भगवान् का नाम तो स्वयं भगवान् की भी रक्षा करता है तो फिर हम लोगों की रक्षा क्यों नहीं करेगा ? इसलिए सभी लोगों को चाहिए कि अपने घरों में नित्यप्रति भगवान् के नामों का कीर्तन करें । यदि निष्ठा से नाम कीर्तन करोगे तो कोई संकट नहीं आयेगा ।

इस प्रकार गोपियों ने बाल कृष्ण के सभी अंगों की भगवन्नाम के द्वारा रक्षा की । ऐसा क्यों किया ? इसका उत्तर वे स्वयं देती हैं –

सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ।

(श्रीभागवतजी - १०/६/२९)

सभी अनिष्ट भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करने से भयभीत होकर नष्ट हो जाएँ ।

इसलिए सभी लोग कृष्ण नाम लो, तुम्हारी समस्त ग्रह बाधायें नष्ट हो जाएँगी । गोपियों द्वारा बालकृष्ण की रक्षा करने के लिए जो कवच का पाठ किया गया, उसका सारांश, उसका मूल १०/६/२९ में ही उन्होंने कह दिया है कि समस्त उत्पात भगवन्नाम के उच्चारण से नष्ट हो जाते हैं । इसलिए जोर-जोर से भगवान् का नाम लो और जितने भी उत्पात हैं – डाकिनी, राक्षसी, भूत-प्रेत, पिशाच,यक्ष, राक्षस, वृद्ध ग्रह, बालग्रह आदि ये सभी नष्ट हो जायेंगे ।

ब्रज के रसिक संत नवग्रह आदि को नहीं मानते हैं । इनका अस्तित्त्व तो मानते हैं किन्तु जैसा कि गोपियों द्वारा पाठ किये गये कवच में कहा गया है –

'सर्वग्रहभयङ्करः' (श्रीभागवतजी - १०/६/२६)

भगवान् सभी ग्रहों के लिए भयंकर हैं । उनका नाम रक्षा करे । वे भगवान् तभी रक्षा करेंगे, जब हम उनका नाम लेंगे, चाहे शनि चढ़े, चाहे राहु चढ़े, चाहे केतु चढ़े । ये नौ ग्रह हैं जो हमेशा मनुष्य के ऊपर चढ़ते-उतरते रहते हैं । इनसे रक्षा का उपाय एकमात्र भगवन्नाम है । वैष्णवों को चाहिए कि ग्रहों की बाधा से बचने के लिए भगवन्नाम के अतिरिक्त दूसरे साधनों के चक्कर में न पड़े । यदि पंडित के पास ग्रह बाधा को दूर कराने के लिए जाओगे तो आजकल कोई भी पंडित ठीक से कार्य नहीं करता है । ऐसा देखने में आता है कि बड़े-बड़े भागवत सप्ताह कथा के कार्यक्रम में एक सौ आठ पंडित बैठते हैं, दक्षिणा पूरी ले लेते हैं किन्तु ठीक से मूल पाठ भी नहीं करते हैं । इसीलिए आज हमारा समाज तेजहीन हो गया है । आज ब्राह्मणों में तेज नहीं रह गया है क्योंकि उनमें बेईमानी आ गयी है । ग्रह बाधा दूर करने के लिए तुम पंडित को पैसा दे दोगे तो सब पैसा वे रख लेंगे किन्तु ठीक से जप नहीं करेंगे । इसलिए समस्त ग्रहों को शांत करने का सबसे बढ़िया उपाय है भगवन्नाम । चाहे राहु चढ़े, चाहे केतु चढ़े, बैठकर दिन-रात अखण्ड कीर्तन करो । यह शास्त्र की बात है । इसलिए ब्रज रसिकों ने लिखा है –

हरिदासन के निकट न आवें,
प्रेत पितर ग्रह लेश ।

ब्रज रसिक कहते हैं कि हम लोग ग्रह आदि की पूजा नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि आजकल न मन्त्र शुद्ध रहे, न व्यक्ति शुद्ध रहे । इसलिए स्वयं बैठकर भगवन्नाम कीर्तन करो ।

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
'सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः'

(श्रीभागवतजी - १०/६/२९)

जितने भी उत्पात ग्रह आदि हैं, अनन्य निष्ठा यही है कि भगवन्नाम लो, ये ग्रहादि जितने भी अनिष्ट हैं, सब भाग जायेंगे । इसलिए गाँठ बाँध लो, डटकर कीर्तन करो ।

जय श्रीराधे जय नन्दनन्दन ।
जय श्री श्यामा नैनन अंजन,
जय बरसानो जय गह्वर वन,
जय वृन्दावन जय गोवर्धन ।

भागवत सप्ताह में यही सीखने की बात है कि जो गोपीजन कर रही हैं, वही हम लोग भी करें ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार ब्रजगोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के अनिष्टों-अरिष्टों की शांति भगवन्नाम के द्वारा की । इसके बाद यशोदा मैया ने अपने लाला को स्तन पान कराया । तब तक नन्दबाबा अपने साथी गोपों के साथ मथुरा से गोकुल में आ गये । पूतना के भयंकर शरीर को देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये । ब्रजवासियों ने कुल्हाड़ी से पूतना के विशाल शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके लकड़ियों पर रखकर जला दिया । जब उसका शरीर जलने लगा तब उसके धुएँ से अगर की सुगन्ध आ रही थी क्योंकि भगवान् ने उसका स्तनपान किया था । पूतना एक राक्षसी थी, बच्चों को मारकर वह उनका खून पी जाती थी । भगवान् को भी उसने मार डालने की इच्छा से स्तन पिलाया था, फिर भी उसे परम गति मिली, फिर जो लोग प्रेम से उनकी पूजा करते हैं और उनको प्रिय लगने वाली वस्तुएँ समर्पित करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? जिन माताओं और गायों ने ब्रह्ममोह लीला में प्रभु को प्रेम से अपना दूध पिलाया, वे क्यों न प्रभु को पायेंगी ?

जो मनुष्य श्रद्धा से इस कथा को सुनता है, उसे भगवान् के प्रति प्रेम की प्राप्ति होती है ।

गर्ग संहिता में पूतना के पूर्व जन्म की कथा लिखी है । राजा बलि की कन्या थी रत्नमाला । जब छोटे से वामन भगवान् राजा बलि की यज्ञशाला में आये तो रत्नमाला उनको देखकर सोचने लगी कि ऐसा बालक मुझे मिले तो मैं उसको गोद में बैठाकर स्तन पान कराऊँगी । इस प्रकार का वात्सल्य भाव उसके हृदय में आ गया किन्तु जब वामन भगवान् ने अपने पाँव बढ़ाकर बलि का त्रिलोकी का राज्य छीन लिया और उन्हें वरुण पाश में बाँध दिया तो वह मन में सोचने लगी कि यदि मेरा बालक ऐसा होता तो मैं उसे जहर पिला देती । प्रभु अन्तर्यामी हैं, उसके मन की बात जानकर बोले कि तेरी दोनों ही कामनाएं पूरी होंगी, तू मुझे स्तन पान भी कराएगी और जहर भी पिलाएगी ।

इस कथा का अभिप्राय यही है कि जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि होती है । इसलिए हम लोगों को सदा पवित्र भावना ही करनी चाहिए । राग-द्वेष नहीं करना चाहिए, नहीं तो ऐसे व्यक्ति को पूतना ही बनना पड़ेगा, चाहे कितनी ही भागवत सप्ताह सुन ले । मन के संकल्प को सदा शुद्ध रखो, प्रेममय रखो । छोटी-छोटी बातों पर खीझोगे तो फिर पूतना बनने की स्थिति आ जाएगी । सदा प्रसन्न रहो । इस कथा से यही शिक्षा मिलती है । थोड़ा भी हम किसी से चिढ़ रहे हैं, अशुभ सोच रहे हैं तो उसका फल अशुभ ही मिलेगा । इसलिए संकल्प अच्छा रखो । यही संकल्प करो कि सभी को दूध पिलाओ, सभी का मंगल चाहो और जो चिढ़ने का, द्वेष का संकल्प है, वह मत रखो, नहीं तो यह विचार करो कि रत्नमाला वामन भगवान् के प्रति वात्सल्य भाव आने के कारण अगले जन्म में यशोदाजी की तरह बनने जा रही थी किन्तु द्वेष करने के कारण उसको पूतना बनना पड़ गया । इसलिए सहनशील बनो । रत्नमाला की माँ विन्ध्यावलीजी पूज्य मानी गयीं क्योंकि उन्होंने कहा कि भगवान् ही सारे संसार के स्वामी हैं, अगर उन्होंने मेरे पति से त्रिलोकी का राज्य छीन लिया तो क्या हुआ, इस

संसार के बनाने, पालन करने और संहार करने वाले तो भगवान् ही हैं । यह उन्हीं का है । किन्तु इसके विपरीत रत्नमाला वामन भगवान् द्वारा त्रिलोकी का राज्य छीनने से चिढ़ गयी, इसीलिए पूतना बनी । अतः चिढ़ने वाली, द्वेष करने वाली स्त्रियाँ पूतना ही हैं ।

अध्याय – ७

राजा परीक्षित ने कहा – महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी बाल-लीलाओं का भी वर्णन कीजिये, जिनको सुनने से संसार से प्रेम हट जाता है, विषयों की तृष्णा भी भाग जाती है ।

शुकदेवजी कहते हैं – एक बार की बात है जब श्यामसुन्दर दो महीने बीस दिन के हो गये थे, उस समय तक बच्चा करवट बदलना सीखता है । बहुत धीरे-धीरे बच्चा सीखता है । पहले तो शय्या पर पड़ा ही रहता है, फिर करवट बदलना सीखता है, तदनन्तर धीरे-धीरे उठना-बैठना सीखता है, फिर धीरे-धीरे खड़ा होना सीखता है । बालकृष्ण भी यही लीला कर रहे थे । अभी तक वे करवट ही नहीं बदल पा रहे थे, बिस्तर पर सीधे पड़े रहते थे । अब दो महीने बीस दिन के हो जाने पर कन्हैया ने पहली बार करवट बदली । मैया प्रसन्न होकर बोलीं – 'वाह ! अब तो मेरा लाला करवट बदलने लगा है ।' मैया ने बड़ा उत्सव मनाया । कृष्ण के जन्म नक्षत्र योग पर उन्हें स्नान कराया और वस्त्र पहनाकर उन्हें सुला दिया । छोटा बच्चा सोता बहुत है, हाथ-पाँव चलाता रहता है, उससे थककर सो जाता है । उसके दो ही काम होते हैं । माँ का दूध पीकर खूब हाथ-पाँव चलाता रहता है और फिर सो जाता है । जब कन्हैया को नींद आई तो यशोदा मैया ने उन्हें सुला दिया और घर पर आयी हुई स्त्रियों का स्वागत-सत्कार करने लगीं । थोड़ी देर में श्यामसुन्दर की आँखें खुलीं और वे रोने लग गये । यशोदाजी उत्सव में आये ब्रजवासियों को तरह-तरह के उपहार दे रही

थीं, उन्हीं के सत्कार में तन्मय होकर वे अपने बालक का रोना नहीं सुन सकीं। श्यामसुन्दर क्यों रो रहे थे ? **'रुदन् स्तनार्थी'** – वे स्तनार्थी थे, मैया का स्तन पान करना चाहते थे। जब मैया नहीं आयीं तो श्यामसुन्दर ने अपना हाथ-पाँव पटकना शुरू किया। उस समय बाल कृष्ण एक छकड़े के नीचे लेटे थे। उन्होंने पाँव पटकना इसलिए शुरू किया क्योंकि उनके ऊपर जो छकड़ा था, उसमें एक असुर आविष्ट हो गया था। उसको देखकर श्रीकृष्ण ने अपना पाँव फैलाकर जोर से प्रहार किया। दो-तीन महीने के छोटे से श्यामसुंदर थे और उनके चरण भी छोटे-छोटे थे किन्तु जब उन्होंने चरण बढ़ाया तो छोटे चरणों से लम्बा चरण निकला और जोर से छकड़े पर प्रहार किया तो वह उलट गया। उस छकड़े पर दूध-दही से भरी हुई मटकियाँ और दूसरे पात्र रखे थे। वे सब टूट-फूट गये। छकड़े के पहिये-धुरे आदि अस्त व्यस्त हो गये। इतने में वहाँ यशोदा मैया, रोहिणी जी और अन्य गोप-गोपी भी आ गये। वे सब आपस में कहने लगे कि इतना बड़ा छकड़ा अपने आप कैसे उलट गया ? छकड़े के पास कुछ गोप बालक खेल रहे थे, उन्होंने कहा – 'अरी यशोदा मैया ! नन्दबाबा ! ये छकड़ा अपने आप नहीं उलटा है। पालने में जो कन्हैया लेटा है, इसी ने अपना पाँव बढ़ाकर छकड़े पर ऐसा मारा कि वह उलट गया।' बच्चों की बात सुनकर सभी लोग कहने लगे – 'छोटा सा ये लाला है और छकड़ा इतना ऊपर था, ये अपने छोटे से पाँव से इतने बड़े छकड़े को कैसे पलट देगा ?' ऐसा कहकर वे उन बालकों को फटकारने लगे। बालकों ने बहुत कहा कि हमने अपनी आँखों से देखा है, कन्हैया ने ही अपने पाँव की ठोकर से छकड़ा उलटा है किन्तु **'न ते श्रद्दधिरे गोपा'** (श्रीभागवतजी - १०/७/१०) गोपों ने बालकों की बात पर ध्यान नहीं दिया। वे सच बोल रहे थे फिर भी सबने उन्हें फटकार दिया। छकड़ा के गिरने से उसमें घुसकर बैठा असुर

भी छकड़े के नीचे दबकर मर गया । यह कंस का भेजा असुर था जो बालकृष्ण को मारने के लिए आया था । इस असुर के पूर्व जन्म की कथा यह है कि दैत्य हिरण्याक्ष का पुत्र था उत्कच । एक बार वह लोमश ऋषि के आश्रम पर गया और वहाँ बहुत से हरे-भरे वृक्षों को तोड़ने लगा । उसकी इस दुष्टता को देखकर लोमश ऋषि ने उसे शाप दे दिया – 'दुष्ट ! तू देह रहित हो जा ।' अब तो उस असुर ने लोमश ऋषि के चरणों पर गिरकर उनसे क्षमा माँगी । उन्होंने कहा – 'वैवस्वत मन्वन्तर में श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से तेरी मुक्ति हो जाएगी ।'

इसीलिए कहा जाता है कि हरे वृक्षों को काटना नहीं चाहिए । हरे वृक्ष काटोगे तो असुर ही बनोगे । ब्रज के वृक्षों को काटने से करोड़ों गायों और ब्राह्मणों की हत्या के समान पाप लगता है ।

कोटि गाय बामन हत शाखा,
तोड़त हरि ही बिदूख ।
धनि-धनि वृन्दावन के रूख ।

ब्रज की लताओं-वृक्षों को तोड़ने से भगवान् को भी कष्ट होता है ।

अस्तु, छकड़ा गिरने के बाद यशोदा जी ने अपने लाला को स्तन पान कराया । ब्राह्मणों ने बालकृष्ण को आशीर्वाद दिया । ब्राह्मणों के आशीर्वाद झूठे नहीं होते हैं ।

एक दिन की बात है, यशोदा रानी अपने प्यारे लाल को गोद में लेकर लाड़ कर रही थीं, उसके गालों पर अपना हाथ फेर रही थीं । इतने में ही छोटे से कन्हैया भारी हो गये, उनका बोझ इतना ज्यादा बढ़ा कि मैया उस बोझ को सहन नहीं कर पायीं और बालकृष्ण को पृथ्वी पर बैठा दिया । यशोदा मैया सोचने लगीं कि यह क्या हो गया, मेरे छोटे

से लाला का शरीर इतना भारी कैसे हो गया ? श्यामसुन्दर ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि कंस का भेजा हुआ असुर तृणावर्त मथुरा से गोकुल बवंडर बनकर आ रहा था । वे समझ गये कि तृणावर्त आ रहा है और मुझे आकाश में उड़ा ले जायेगा एवं मेरे साथ ही मैया को भी उड़ा ले जायेगा, इसलिए उन्होंने अपना भार बढ़ा लिया ताकि मैया मुझे अलग रख दे और तृणावर्त मैया को न उड़ा सके । उधर तृणावर्त आया और बैठे हुए बालक कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया । यशोदा मैया अपने लाला के भारी बोझ के कारण उसे जमीन पर बिठाकर घर के काम में लग गयी थीं । जब वे वहाँ लौटकर आईं तो देखा कि कृष्ण नहीं थे । उस समय तृणावर्त ने बवंडर रूप से इतनी धूल और बालू उड़ाई कि सभी लोग व्याकुल हो गये । उस जोर की आँधी और धूल की वर्षा में किसी को कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । यशोदाजी अपने बालक को न देखकर दुखी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं । बवंडर के शान्त होने पर जब धूल की वर्षा का वेग कम हो गया तब यशोदाजी के रोने की आवाज सुनकर गोपियाँ दौड़कर उनके पास आयीं । गोपियाँ यशोदाजी के आँगन में और आसपास सब जगह हाथों से कृष्ण को टटोलने लगीं । आँखों में तो धूल की वर्षा के कारण कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । इधर तृणावर्त श्रीकृष्ण को बवंडर रूप से आकाश में उड़ा ले गया, उन्होंने कहा कि थोड़ी दूर चलकर मैं तुझे देखूँगा, अभी नीचे तो ब्रजवासी बहुत परेशान हो रहे हैं । इसलिए कृष्ण हल्के बने रहे और तृणावर्त आसानी से उन्हें ऊपर उड़ाये ले जा रहा था । जब वह उन्हें और दूर उड़ाने लगा तो कृष्ण ने सोचा कि ज्यादा दूर जाना भी ठीक नहीं है क्योंकि मुझे तो अभी यहीं गोकुल में ही उतरना है । अब छोटे से कन्हैया ने अपना बोझ बढ़ाना चालू किया । जब उन्होंने अपना बोझ बहुत ज्यादा बढ़ा लिया तो तृणावर्त की चाल धीमी पड़ गयी । वह

सोचने लगा कि क्या मैं किसी पत्थर की बड़ी शिला को उठा लाया हूँ या यह कोई पहाड़ का टुकड़ा है, जो इसमें इतना बोझ है । तब तक कृष्ण ने उसका गला पकड़ लिया, तृणावर्त ने सोचा कि अब यह मुझे छोड़ेगा किन्तु कन्हैया ने तो अपने दोनों हाथों से कसकर उसका गला ऐसा पकड़ा कि वह उन्हें छोड़ भी नहीं पाया । इसके बाद उन्होंने उसका गला इतनी जोर से दबाया कि उस असुर की आँखें बाहर निकल आयीं, उसके प्राण निकल गये और वह बड़ी सी चट्टान पर गिर पड़ा । उसका शरीर चकनाचूर हो गया, खोपड़ी अलग हो गयी । पाँव अलग गिरा, सब अंग अलग-अलग हो गये । वहाँ पर जो स्त्रियाँ कृष्ण के न दिखने पर रो रही थीं, उन्होंने देखा कि विशाल दैत्य की छाती पर छोटा सा कन्हैया खेल रहा है, अपनी शिशु की बोली में आंय-आंय करके कुछ बोल रहा है और असुर की छाती पर अपना हाथ पटक रहा है । उसे देखकर गोपियाँ आश्चर्यचकित होकर बोलीं – 'अरे, यह बालक तो जीवित है ।' गोपियाँ दौड़कर गयीं, कन्हैया को उठाकर लायीं और यशोदा मैया की गोद में दे दिया । यहाँ पर एक सूक्ति है, जिसे ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण के तृणावर्त के चंगुल से सकुशल लौट आने पर कहा –

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ।

(श्रीभागवतजी - १०/७/३१)

उस हिंसक दुष्ट को उसके पाप ही खा गये । साधु पुरुष अपनी समता से ही सम्पूर्ण भयों से मुक्त हो जाता है ।

इसलिए तुमको कोई गाली दे अथवा वैर करे तो उस पर क्रोध मत करो, वह अपने पाप से स्वयं ही नष्ट हो जायेगा । तुम तो समान बने रहो । साधु-भक्त का यही काम है । बड़े-बड़े ऋषियों ने अपराध

करने पर, गलती करने पर जो शाप दिए तो कल्याण के लिए दिए । वे हमारे जैसे नहीं थे । ये मत समझ लेना कि वे हमारी तरह थे और पराशर ऋषि सत्यवती को देखकर मोहित हो गये तो ये मत सोच लेना कि हम भी किसी स्त्री को देखकर मोहित हो जाएँ । ऐसा नहीं सोचना चाहिए । वल्लभाचार्यजी ने लिखा है – **'जीवः स्वभावतो दुष्टः ।'** जीव स्वभाव से दुष्ट है । अतः सदा प्रतिकूल तर्क की ओर जाता है । ब्रह्मसूत्र में कहा गया है – **'तर्काप्रतिष्ठानात्'** – तर्क से उस परम तत्त्व की अप्रतिष्ठा हो जाती है । साधु पुरुष समत्व के द्वारा समस्त भयों से छूट जाता है । इससे उसका चित्त रसीला बना रहेगा और चित्त के रसीला बनने का सबसे बड़ा उपाय है – समत्व बुद्धि । वृन्दावन के रसिकों ने भी यही कहा है –

सब सौं हित निष्काम मति वृन्दावन विश्राम ।
राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम ॥

श्रीहितहरिवंशजीमहाराज कहते हैं – सबसे हित (प्रेम) ही करना, चाहे कोई वैरी है, तब तुम रसिक बनोगे । ब्रजवासियों ने भागवत (१०/७/३१) में बहुत सुन्दर सूक्ति बताई कि सदा समत्व रखो, फिर भय से छूट जाओगे । यदि समत्व से अलग जाओगे तो भक्तिमार्ग से रहित हो जाओगे ।

आगे ब्रजवासी कहने लगे कि हमने ऐसे कौन से पुण्य कर्म किये हैं, जिनके फलस्वरूप हमारा यह बालक मरकर भी फिर से लौट आया ।

एक बार यशोदा मैया अपने प्यारे बालक को गोद में बैठाकर बड़े प्रेम से स्तन पान करा रही थीं । माता जब स्तन पान कराती है तो उस समय अपने बच्चे का मुख अवश्य देखती है क्योंकि उस समय माँ का दूध पीकर बच्चे का पेट भरता है तो वह बड़ा प्रसन्न होता है । उस समय

माता को जिस वात्सल्य सुख की अनुभूति होती है, उसे हम लोग नहीं समझ सकते। इसी तरह यशोदा मैया भी स्तन पान कराते समय अपने लाड़ले लाल का मुख देख रही थीं। दूध पीते-पीते जब बच्चे को नींद आती है तो वह बड़े जोर से जँभाई लेता है। इसी प्रकार बालकृष्ण भी जँभाई लेने लगे। मैया उनके मुख के भीतर देखने लगीं कि दूध इसके मुख में है कि नहीं, अभी इसके दाँत निकले कि नहीं। इस तरह जब मैया अपने कन्हैया के मुख में देख रही थीं तो इन लीलाविहारी ने अपने मुख में सारा विश्व दिखा दिया। उसमें आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, समुद्र, वायु, वन, पहाड़, नदियाँ और समस्त चराचर प्राणी दिखा दिए। यह क्या है, यह है ऐश्वर्य शक्ति। भगवान् के साथ उनकी ऐश्वर्य शक्ति सदा चलती है। समय-समय पर जब वह भगवान् का ऐश्वर्य दिखाती है तो प्रेम शक्ति आकर उसे धक्का देकर निकाल देती है। ऐश्वर्य, भक्ति या प्रेम के पीछे चलता है। इस प्रसंग में जीव गोस्वामीजी ने नारद पाञ्चरात्र का एक श्लोक लिखा है –

"हरिभक्तिमहादेव्या- सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः ।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः ॥"

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णव तोषिणी)

भाई, तुम लोग भक्ति करो, वे महादेवी हैं। इनके पीछे भुक्ति-मुक्ति और सिद्धियाँ चींटी की तरह चलती हैं, जैसे कहीं गुड़ डाल दिया जाये तो हजारों चीटियाँ वहाँ आ जाती हैं। ऐसे ही जहाँ भगवद्भक्ति है, वहाँ ऋद्धि-सिद्धि चींटी की तरह आ जाती हैं। इसलिए अपने मन को समत्व में लाकर कृष्ण में लगाओ। राग-द्वेष में मन को नष्ट मत करो। मन को सदा सुन्दर कृष्ण रस से युक्त रसीला बनाओ। ऐसा करने से कृष्ण का अनन्त ऐश्वर्य तुम्हारे पास आयेगा।

अस्तु, जब यशोदा मैया अपने पुत्र के मुख में सारा जगत देखकर डर गयीं तो झट उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी ने लिखा है कि भगवान् की ऐसी माधुर्य रस भरी लीलाओं में ऐश्वर्य शक्ति बार-बार क्यों आ जाती है तो वे लिखते हैं –

"प्रेमदेव्याः परीक्षार्थमागच्छन्त्यन्तरान्तरा ।
शक्तिरेषा हरेः किन्तु तया दासी कृता भवेत् ॥"

(विश्वनाथ चक्रवर्ती, सारार्थदर्शिनी)

विश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं कि प्रेम देवी की परीक्षा के लिए ऐश्वर्य आता है। यदि ऐश्वर्य से प्रेम दब जाये तो वह प्रेम नहीं है।

(दो पैसे का सरकारी नौकर कोई दरोगा यदि वारंट लेकर आ जाये तो हम लोग तथा अन्य बड़े-बड़े लोग डर जायेंगे।)

ऐश्वर्य शक्ति प्रेम की परीक्षा लेने के लिए आती है, अपनी धौंस जमाने के लिए आती है परन्तु प्रेम शक्ति उसे दो धक्के लगाती है तो ऐश्वर्य शक्ति भाग जाती है क्योंकि प्रेम शक्ति बलवती है।

अध्याय – ८

बहुत से वक्ता श्रीमद्भागवत की कथा तो कहते हैं किन्तु वे कृष्णलीला कम कहते हैं, छोड़ देते हैं या माखन चोरीलीला, रासलीला आदि को कम कहते हैं। ये बात आचार्यों की शिक्षा के विरुद्ध है। आचार्यगण कहते हैं कि श्रीमद्भागवत का फल यही है कि माधुर्य की भक्ति मिले क्योंकि ऐश्वर्य की भक्ति तो भगवान् के बहुत से अवतारों में है। 'भगवान्' वराह बने, नृसिंह बने, वामन बने, राम बने – तो ऐश्वर्य की भक्ति तो उनके सभी अवतारों में है किन्तु कृष्ण भक्ति में विशेषता है माधुर्य की और यदि कोई कृष्ण भक्ति में भी आकर माधुर्य को छोड़ दे

और भगवान्-भगवान् ही कहता रहे ऐश्वर्य के भाव से तो यह कृष्ण भक्ति नहीं है । वह श्रीमद्भागवत को समझा नहीं है । वेदव्यासजी ने तो केवल माधुर्य लीला के प्रतिपादन के लिये ही कृष्ण लीला कही है । यदि हम कृष्ण लीला कहते हैं किन्तु माधुर्य लीला को कम कहते हैं या कुछ लोग कृष्ण लीला को दूसरा ही रूप दे देते हैं, अध्यात्म का रूप दे देते हैं, यह आचार्यों के सिद्धान्त के विरुद्ध है । कोई वक्ता यदि यह सोचे कि माखन चोरी लीला नहीं कहना चाहिए क्योंकि इससे लोग चोरी सीख जायेंगे, रास लीला भी नहीं कहनी चाहिए, नहीं तो लोग कामुकता सीखेंगे तो यह ठीक नहीं है । आचार्यजन कहते हैं कि उपासक के लिए तो ये ही लीलायें ध्यान करने के लिए हैं । इन्हीं लीलाओं को यदि नहीं कहोगे तो बेचारा उपासक तो ठनठन पाल मदन गोपाल रह जायेगा । दुनिया के लोगों को मर्यादा सिखाने के लिए यदि माधुर्य रस से भरी माखन चोरी लीला, रास लीला आदि को छोड़ दोगे तो वे तो वैसे भी मधुर नहीं होंगे, चाहे तुम कितना भी प्रयास कर लो । उनके लिए भक्तों की उपेक्षा क्यों की जाये ? अब तक तो भगवान् ने ऐश्वर्य मिश्रा लीलायें कीं, अब भगवान् की माधुर्य रस से युक्त लीलाओं का प्रसंग आ रहा है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – गर्गाचार्यजी यदुवंशियों के पुरोहित थे । एक बार वसुदेवजी ने उनसे कहा कि आप नन्दबाबा के गोकुल में जाइए, वहाँ मेरे दो बालक रहते हैं । वसुदेवजी की प्रेरणा से गर्गाचार्य जी गोकुल में आये । नन्दबाबा उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी भगवद्भाव से पूजा की । पूजा करने के बाद नन्दबाबा ने उनसे कहा – 'महाराज ! आप तो बड़ी कृपा करके हमारे यहाँ पधारे हैं । आप ज्योतिष शास्त्र के बड़े ज्ञाता हैं तथा पूर्व जन्म एवं वर्तमान जन्म की बातों को भी जानते हैं । इसलिए आप मेरे इन दोनों बालकों के नामकरणादि संस्कार कर दीजिये ।' गर्गाचार्यजी ने कहा – 'नन्दजी ! मैं तो

यदुवंशियों का पुरोहित हूँ । यदि मैं तुम्हारे बालक का नामकरण संस्कार करूँगा तो सब लोग समझेंगे कि यह वसुदेव का पुत्र है और कंस को इस बात का पता लगने पर वह तुम्हें परेशान करेगा ।'

नन्दबाबा ने कहा – 'आचार्यजी ! आप चुपचाप खिरक (गोशाला) में नामकरण संस्कार कर दीजिये, कोई उत्सव नहीं किया जायेगा, किसी को इसका पता भी नहीं चलेगा ।' गर्गाचार्य जी बोले – 'ठीक है, एकान्त में छिपकर नामकरण संस्कार मैं करूँगा, किसी को भी इसका पता नहीं चलना चाहिए ।'

नन्दबाबा बोले – 'ऐसा ही होगा ।' नन्दबाबा गर्गाचार्यजी को एकान्त में ले गये, जिससे किसी ब्रजवासी को इस बात का पता न लगे । गर्गाचार्यजी आसन पर बैठ गये । वहाँ रोहिणी माता और यशोदा मैया भी अपने पुत्रों को गोद में लेकर बैठ गयीं । गर्गाचार्यजी ने बलरामजी को देखकर कहा – 'यह रोहिणी का पुत्र है, इसका नाम होगा 'राम' । क्योंकि **रमयन् सुहृदो गुणैः** – यह अपने सगे सम्बन्धी और मित्रों को रमण कराएगा, उन्हें आनन्दित करेगा ।'

श्रीजीव गोस्वामीजी ने लिखा है – **आत्मारामादीन् रमयन् रामः** यह बड़े-बड़े आत्माराम मुनियों को भी रमण कराएगा, उन्हें आनन्दित करेगा, इसलिए इसका नाम रखा गया – 'राम' । गर्गाचार्य जी ने आगे कहा – 'इसके बल की कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'बल' भी होगा । यदुवंशियों में और तुम लोगों में यह कोई भेदभाव नहीं रखेगा और फूट पड़ने पर इनको खींचकर लायेगा, उनमें मेल कराएगा । इसलिए इसका एक नाम 'संकर्षण' भी होगा । यह जो छोटा सा नीले रंग का बालक है, यह बड़ा चंचल है, मुझको देख-देख करके यह अभी से हाथ-पैर उछाल रहा है । पिछले युगों में इसने श्वेत, रक्त और पीत वर्णों को स्वीकार किया था । यह तुम्हारा आत्मज, तुम्हारे शरीर से उत्पन्न तुम्हारा पुत्र है । इसे वासुदेव भी कहते हैं, यह पहले कभी

वसुदेवजी के घर भी पैदा हुआ था । इसके बहुत से नाम, रूप हैं, जिन्हें मैं जानता हूँ परन्तु तुम नहीं जानते ।'

वल्लभाचार्यजी कहते हैं कि गर्गाचार्यजी ने जो इनके तीन वर्ण बताये, वे युग धर्म के अनुसार हैं । इन्हें ग्यारहवें स्कन्ध में भी बताया गया है । विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने इन्हीं श्लोकों का प्रमाण दिया है ।

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुः जटिलो वल्कलाम्बरः ।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू ॥

(श्रीभागवतजी - ११/५/२१)

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।
हिरण्यकेशः त्रय्यात्मा स्रुक् स्रुवादि उपलक्षणः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/५/२४)

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिः अङ्कैश्च लक्षणैः उपलक्षितः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/५/२७)

जीव गोस्वामीजी ने लिखा है कि इनका नाम कृष्ण क्यों है, कृष्ण नाम का अर्थ वे बताते हैं –

सर्वांशमेवादाय स्वयमवतीर्णत्वात् अतः स्वयं कृष्णत्वात् सर्वनिजांशस्य कृष्णीकर्तृत्वात् सर्वाकर्षकत्वाच्च मुख्यं तावत् कृष्णेति नाम अतः "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" – (जीव गोस्वामीजी, वैष्णव तोषिणी)

यह समस्त अवतारों का मूल अवतारी पुरुष कृष्ण है, अपने समस्त अवतारों के अंश को लेकर यह सबको आकर्षित करता है । कृष्ण का अर्थ है, जो सबको अपनी ओर खींचे, कृष् धातु माने खींचना, क्या खींचते हैं ? जितने भी उनके अवतार हैं, सबकी मधुरता उन्होंने

इकठ्ठा की । वे माखन खायेंगे तो माखन कैसे बनता है ? सारा दही एकत्रित करके उसे मथा जाता है, मथने पर उसमें से माखन निकलता है । वैसे ही जीवगोस्वामीजी यह भाव दे रहे हैं कि अब तक कृष्ण के जितने भी अवतार हुए, उन्होंने सबकी मधुरता इकठ्ठा की और सबको खींच करके, मिला करके माखन बना करके कृष्ण बन गये और माखन खाने लग गये । इसलिए उनका नाम कृष्ण है ।

गर्गाचार्यजी ने नन्दबाबा से कहा – 'यह तुम लोगों का बड़ा कल्याण करेगा । इसकी सहायता से तुम लोग बड़ी-बड़ी विपत्तियों को बड़ी आसानी से पार कर लोगे । तुम्हारे पुत्र ने सज्जन पुरुषों की पहले भी कई बार रक्षा की है ।'

इस प्रकार कृष्ण-बलराम का नामकरण संस्कार करके गर्गाचार्यजी अपने आश्रम को चले गये । उनकी बात सुनकर नन्दबाबा को बड़ा आनन्द हुआ ।

शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित ! कुछ ही दिनों में राम-केशव (कृष्ण-बलराम) घुटनों के बल चलने लगे । अब इनकी प्रगति हो गयी । दोनों भाई घुटनों के बल अपने नन्हे-नन्हे पाँवों को घसीटते हुए चलते । वे दोनों अपने आभूषणों को छम-छम करते चलते थे क्योंकि उनके चरणों में यशोदाजी ने मणियों के ऐसे नूपुर पहना दिए थे कि उनकी ध्वनि बहुत दूर तक जाती थी ।

'घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु' (श्रीभागवतजी - १०/८/२२)

वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि घोष-प्रघोष का मतलब है कि कृष्ण-बलराम जल्दी चलते थे, छुन -छुन करके चलते थे ।

जीवगोस्वामीजी लिखते हैं – घोष माने नुपुर और प्रघोष माने किंकिणी । यशोदाजी ने कन्हैया की कमर में किंकिणी बाँध दी थी । ये दोनों बालक कहाँ चलते थे, ब्रज की कीचड़ में चलते थे ।

जीवगोस्वामीजी कहते हैं कि ब्रज की कीचड़ को ऐसा मत समझना, जैसे प्राकृत संसार में होती है । वे कहते हैं कि ब्रजभूमि दिव्य है । जीव गोस्वामी जी ने यहाँ अपनी टीका में कालिदासजी का भी श्लोक उद्धृत किया है –

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्"

यह श्लोक उस प्रसंग का है, जब शकुन्तला वल्कल लेकर खड़ी है और दुष्यन्त कह रहे हैं कि यह सुन्दर वस्त्र नहीं पहने है, तब भी कितनी सुन्दर लग रही है ।

जो सुन्दर है, वह किसी भी अवस्था में, कहीं भी चला जाये, सदा सुन्दर ही लगेगा और जो असुंदर है, बड़े-बड़े दाँत हैं जिसके, वह चाहे कितना भी क्रीम-पाउडर लगा ले किन्तु उसके लम्बे दाँत तो छिपेंगे नहीं ।

जीव गोस्वामीजी कह रहे हैं कि कृष्ण-बलराम के अंगों में ब्रज की कीच लगी है, तब भी वे सुन्दर लग रहे हैं । कीच (कीचड़) का भाव उन्होंने लिखा है कि ब्रज की भूमि बड़ी सुन्दर, दिव्य है । यहाँ की रज दिव्य है । यहाँ की कीच भी दिव्य है, उसे प्राकृत संसार की गंदी कीच मत समझ लेना ।

बाल गोपाल के नूपुरों की छुम-छुम ध्वनि सुनकर उनके पीछे-पीछे सारी गोपियाँ चल रही हैं । वे एक दूसरे से कह रही हैं –

लाला की पैंजनिया बाजे रे ।

सखियाँ कहती हैं – अरी देखो ! कृष्ण की पैंजनिया कैसे बज रही है –

छुम छुम छुम छुम छननननन,
यशुमति सुत को चलनो सिखावैं ।

मैया अपने लाला को चलना सिखा रही हैं । पाँवों में पैंजनिया बज रही है । गोपियाँ कृष्ण के पीछे-पीछे चल रही हैं और आपस में कह रही हैं कि लाला की पैंजनिया कैसी मीठी बज रही है । उधर से कोई नया ब्रजवासी जा रहा था । छोटा बच्चा किसी नये व्यक्ति को भोलेपन से घूर-घूर कर देखता है कि यह कौन है ? इसी तरह छोटे से कृष्ण-बलराम भी नये ब्रजवासी को मुग्ध होकर बड़े भोलेपन से देखने लगे कि कोई नया व्यक्ति आया है । वह व्यक्ति उनको बुलाने लगा । जब कृष्ण-बलराम उसके पास पहुँचे और ध्यान से उसका मुख देखने लगे कि यह हमारी यशोदा मैया है कि नन्दबाबा है कि रोहिणी मैया है । फिर जब और ध्यान से देखा तो उन्हें समझ में आ गया कि यह न तो नन्दबाबा हैं, न यशोदा मैया हैं, और न ही रोहिणी मैया हैं । यह तो कोई और है तो तुरन्त ही दोनों भाग गये । डर से दोनों भागे कि ये तो पता नहीं कौन है और भागकर अपनी माताओं के पास चले गये ।

'मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः' – (श्रीभागवतजी - १०/८/२२)

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी, जो कि वात्सल्य लीला के आचार्य हैं, वे अपनी टीका सुबोधिनी में उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'उपयेतु' का अर्थ करते हैं कि दोनों बालक कृष्ण-बलराम भय से घबराकर, भागकर अपनी माताओं के ऊपर गिर पड़े । यशोदाजी व रोहिणीजी ने अपने बालकों को गोद में ले लिया और पूछने लगीं कि तुम लोग बाहर क्यों गये, यहीं अपने घर में ही खेला करो । दोनों चंचल हैं, इसलिए बाहर चले जाते हैं । दोनों बालक जब भयभीत होकर अपनी माताओं के पास आ गये तो वे अपने बालकों को स्तन पान कराने लगीं ।

वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि दोनों बालक अपनी माताओं के पास कैसे आते हैं ? वे लिखते हैं कि कभी तो ये बालक नाचते-नाचते आते

हैं । उन्होंने पाँच प्रकार के नृत्य लिखे हैं । श्यामसुन्दर पाँच प्रकार से नृत्य करते हुए यशोदा मैया के पास आते हैं और उनके ऊपर गिर पड़ते हैं । वे बड़े कौतुकी हैं, बाल लीला का इस तरह से विस्तार करते हैं ।

'पङ्काङ्गरागरुचिरा' – पङ्काङ्गरागरुचिर का मतलब है कि ब्रज की कीच अंगराग बनकर कृष्ण-बलराम के अंगों पर सुशोभित होती है । इससे पता चलता है कि ब्रज की भूमि दिव्य है । ब्रज की कीच कीच नहीं है, अंगराग है, फूलों का पराग है । श्यामसुन्दर ने यहाँ लीला की है तो यह भूमि दिव्य है । सारा ब्रज धाम दिव्य है । कीचड़ के अंगराग से सुशोभित अंगों वाले बालक कृष्ण-बलराम को माताएँ गोद में लेकर हृदय से लगा लेती थीं, उन्हें लिपटा लेती थीं । यहाँ भी वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि कभी तो मैया लिपटा लेती थीं और कभी वे स्वयं लिपट जाते थे । माता बालक को लिपटाये या न लिपटाये, बालक स्वयं ही माता से लिपट जाता है ।

दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/८/२३)

यशोदा मैया अपने लाड़ले कन्हैया को स्तन पान कराती हैं तो उनके मुख को देखती हैं । उनका मुख कैसा है, इसका ध्यान करो । यही मुख्य वस्तु है ।

'मुग्धस्मिताल्पदशनम्' – उनके मुख में छोटी-छोटी सी दूध की दँतुलियाँ हैं, उन्हें यशोदा मैया देखती हैं और देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं । वल्लभाचार्यजी यहाँ फिर लिखते हैं कि कन्हैया के मुख में दँतुलियों की शोभा कैसी है – **क्षीरकणसहिता** । दँतुलियाँ तो छोटी-छोटी हैं ही, ऊपर से यशोदा रानी के स्तन के दूध के कण उन दँतुलियों के ऊपर लगे हैं, उससे उनके दाँत और भी श्वेत हो गये हैं । नीले

श्यामसुन्दर के मुख में दूध से सने हुए श्वेत दाँत मोतियों की तरह चमक रहे हैं, मैया उस छटा को देख रही हैं और सोच रही हैं कि मेरा दूध इसके दाँतों में चिपक रहा है । इसके कारण इसके दाँत कितने सुन्दर लग रहे हैं ।

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला -
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।

(श्रीभागवतजी - १०/८/२४)

सुबोधिनिकार महाप्रभु वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि अब श्यामसुन्दर दो वर्ष के हो चुके हैं । गोपियाँ अपने घरों के कार्य, चौका-चूल्हा आदि सब छोड़ करके श्यामसुन्दर की कुमार लीला का दर्शन करने के लिए आ जाती थीं । वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि अपनी लीला शक्ति से प्रभु केवल दो वर्ष के ही नहीं हैं, उसके आगे की भी लीला कर रहे हैं । कुछ गोपियाँ तो श्रृंगार रस में भी आविष्ट हो गयी थीं, क्यों ? वल्लभाचार्यजी ने कुमार शब्द का अर्थ दिया है – **कुत्सितः मारः यस्मात् – कुत्सितो मारो यस्मादिति** – अर्थात् श्यामसुन्दर को देखकर कामदेव भी बुरा लग रहा है, बदसूरत लग रहा है । इसी भाव को नारायण स्वामीजी ने भी लिखा है कि जिस समय नन्दनन्दन संध्या समय नन्द भवन के सामने आकर खड़े हुए, उसी समय चन्द्रमा भी निकला बड़े अहंकार के साथ कि मैं ही सुन्दर हूँ । एक गोपी ने दूसरी गोपी से कहा कि एक नन्द का लाला है, वह वंशी अत्यन्त मधुर बजाता है । सुबह नन्द भवन से निकलकर आता है । दूसरी गोपी ने कहा कि तू मुझे उसका दर्शन करा दे । अतः वह गोपी अपनी सखी को नन्द लाला के दर्शन कराने ले गयी । नन्द भवन में नन्द नन्दन खड़े थे । दूसरी ओर से गोपी अपनी सखी को उनका दर्शन करा रही थी और उधर आसमान में चन्द्रमा निकला । यह छटा है । इसका वर्णन नारायण स्वामी जी करते हैं –

देख सखी नव छैल छबीलो ।

अरी सखी ! इस नये छैल छबीले को देख ।

दो वर्ष के श्यामसुन्दर हैं किन्तु अपनी लीला शक्ति से एक साथ अनेक लीलायें कर रहे हैं

देख सखी नव छैल छबीलो ।
प्रात समय इत ते नित आवै ।

गोपी अपनी सखी से कहती है – 'यही है नन्द नन्दन, प्रातः काल यह नित्य ही यहाँ आता है ।'

कमल समान बड़े दृग जाके ।

'सखि ! ध्यान से देख, इसके नेत्र कमल से भी अधिक सुन्दर हैं ।' सखी कहती है – 'हाँ, बात तो ठीक है । इसके नेत्र तो ऐसे हैं कि एक बार देखो तो देखते ही रह जाओ ।'

मुख छबि लखि द्युति चन्द्र लजावै ।

'सखि देख, इधर चन्द्रमा निकला और कृष्णचन्द्र को देखकर लज्जित हो गया ।

जाकी सुन्दरता जग बरनत,
श्याम सलोनो मृदु मुसुक्यावे ।

अरी सखि, श्यामसुन्दर कैसे मुस्कुराते हैं, इनकी मुस्कान तो देख ।

नारायण ये द्यौं यही वही है,
जो यशुमति को लाल कहावै ।

सखी, ये वही है, तू पहचान गयी ।'

श्रीवल्लभाचार्यजी लिखते हैं – **'कुत्सितः मारः यस्मात्'**

इनके छः अंगों से एक साथ श्रृंगार रस की भी लीला हो रही है ।

वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि तीन प्रकार की गोपियाँ हैं – कौतुकाविष्ट गोपी, रसाविष्ट गोपी, कामाविष्ट गोपी । कौतुकाविष्ट गोपियाँ तो श्रीकृष्ण के कौतुक देखने आती हैं । वे कहती हैं – 'यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, यह नन्दलाल कितना चंचल है ।' रसाविष्ट गोपियाँ वे हैं, जो वात्सल्य रस की अनुभूति के लिए आती हैं । ये भी दौड़-दौड़कर कृष्ण लीला का दर्शन करने आती हैं । एक गुप्त लीला है, कामाविष्ट गोपियाँ कृष्ण को देखकर काम में आविष्ट हो जाती हैं । इसलिए ब्रज में एक साथ, एक कालावच्छिन्न अनेक लीलायें हो रहीं हैं । ऐसा इसलिए है क्योंकि श्रीकृष्ण का विग्रह चिन्मय है ।

यर्ह्यङ्गादर्शनीयकुमारलीला -
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षयन्त्य उज्झितगृहा जह्युषुर्हसन्त्यः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/२४)

ब्रज के भीतर बछड़े खड़े थे । **अन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः** – (श्रीभागवतजी - १०/८/२४) कृष्ण ने एक बछड़े की पूँछ पकड ली । बछड़ा बहुत प्रसन्न हुआ और वह कूदने लग गया । कृष्ण उसके पीछे-पीछे खिंचने लगे । **वत्सैरितस्तत** - बछड़ा कूद रहा है और कृष्ण-बलराम उसकी पूँछ पकड़कर खींच रहे हैं । दोनों भाई 'हुँ-हुँ' – ऐसी ध्वनि कर रहे हैं और बछड़े आगे चल रहे हैं । इस प्रसंग में श्रीजीव गोस्वामीजी लिखते हैं –

त्रिचतुःपुच्छग्रहणाद्वा – कृष्ण ने एक साथ कई बछड़ों की पूँछ पकड़ रखी है । कोई इधर खींचता है, कोई उधर खींचता है ।

'प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जह्युषुर्हसन्त्यः' (श्रीभागवतजी - १०/८/२४)

सब गोपियाँ अपना कामकाज छोड़कर कृष्ण-बलराम की ऐसी लीला देखकर जोर-जोर से हँसने लगती थीं । नन्दभवन में बैठी हुई वे कृष्ण की ऐसी लीला देखकर हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती थीं । यशोदा मैया ने जाकर अपने कन्हैया को बछड़े से अलग किया और कहने लगीं कि यह बड़ा नटखट है । बछड़े के पास से वे कन्हैया को छुड़ाकर लायीं ।

शृङ्गयग्निदंष्ट्रयसिजलद्विजकण्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृहाणि कर्तुमपि यत्र न तज्जन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/२५)

थोड़ी देर बाद कन्हैया एक बैल के पास पहुँच गये । ब्रज के सभी जीव कृष्ण से प्रेम करते थे । कृष्ण को देखकर बैल ने अपना सिर झुका दिया तो उन्होंने उसका सींग ही पकड़ लिया । अब बैल सींग से धीरे-धीरे उनके शरीर को खुजलाने लगा कि कहीं इनके लग न जाए । बैल भी कन्हैया को जानता था । यशोदा मैया दौड़कर गयीं और कन्हैया को बैल के पास से ले आयीं और कहने लगीं कि बैल की सींग कहीं लाला के पेट में लग जाए, पेट फट जाये तो क्या होगा, यह छोरा कितना चंचल है ।

'शृङ्गयग्निदंष्ट्रयसिजलद्विजकण्टकेभ्यः' (श्रीभागवतजी - १०/८/२५)

यह कृष्ण की लीला है । इसी के लिए परमहंस मुनिजन तरसते हैं ।

एक बार कहीं पर आग जल रही थी तो कृष्ण उसकी आँच देखकर दौड़े, उनके पीछे मैया भी दौड़ीं, पकड़ लिया और कहने लगीं – 'देखो, अब ये आग से खेलेगा, कहीं जल गया तो क्या होगा ?' मैया कन्हैया

को आग से छुडाकर लायीं तो शुकदेवजी कहते हैं – **दंष्ट्र** – दाँत से काटने वाले पशु ।

जीव गोस्वामीजी लिखते हैं – **कुक्कुरादयः** – कुत्ते आदि अर्थात् कन्हैयाजी कुत्ते के पास पहुँच गये । **कुक्कुरः वानरः** – कुत्ते और बन्दर भी श्यामसुन्दर के पास खेलने पहुँच गये ।

परमानन्द दास को ठाकुर, लायो पिल्ला घेर ।

यह सब आचार्यों का अनुभव है । बाल कृष्ण छोटे से पिल्ले को पकड़ लाये और उससे खेलने लगे । सब गोपियाँ हँसने लगीं और कहने लगीं कि पिल्ला कहीं काट ले तो क्या होगा ?

पिल्ला कन्हैया को काटता नहीं है, वह भी उनसे प्यार करता है । वह भी मुँह घुमा-घुमाकर कन्हैया को चाटने का प्रयास कर रहा है, खेलने के लिए अपने दाँत कन्हैया के शरीर से छुआ रहा है । इतने में बन्दर आ गये, कन्हैया उनके मुख को पकड़कर खेल रहे हैं । बन्दर तो प्रभु के पुराने भक्त हैं, ये उन्हें काट नहीं सकते । बन्दरों को कन्हैया बुला रहे हैं – 'ओ बन्दर ! इधर आ । अपने दाँत दिखा ।' बन्दर मुँह खोल देता है तो कन्हैया उसके दाँत गिनते हैं । यशोदा मैया बन्दर से उन्हें छुडाकर लाती हैं । **असि** – कुछ आचार्यों ने असि का अर्थ सर्प भी लिखा है तो कहीं इसका अर्थ तलवार किया है ।

यशोदाजी व रोहिणीजी चकई की तरह कृष्ण-बलराम के पीछे दौड़ती रहती थीं । पहले वे उन दोनों को बैल से छुडाकर लायीं । आग, कुत्ता, बन्दर से छुडाकर लायीं तो चुपके से ये दोनों नन्दबाबा की बैठक में घुस गये और तलवार निकाल ली । रोहिणी मैया ने देखा तो बोलीं – 'अरे, गजब हो गया ।' दौड़कर गयीं और तलवार उनके हाथ से छीनी तथा बोलीं – 'अरे लाला ! हाथ कट जायेंगे तेरे ।' कुछ आचार्य असि का अर्थ सर्प मानते हैं । भगवान् को देखकर

सर्पादि विषैले जन्तु भी मस्त हो गये, उनमें अहिंसा का भाव आ गया। सर्प श्यामसुन्दर के पास आ गये और फन उठाकर उनके पास बैठ गये। कन्हैया उनके फन पर धूल फेंकने लगा और फन को हाथ से ठोंकने लगा। सर्पों को आनन्द आ गया। ये सर्प कन्हैया को नहीं काटते थे। नन्द का लाला ऐसा पैदा हुआ कि इसे न तो बन्दर काटे, न कुत्ता काटे, न बैल मारे और न ही सर्प काटे क्योंकि यह कृष्ण है। सभी जीव कृष्ण के जादू से ऐसा मोहित हो गये कि जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। यशोदा मैया ने कन्हैया को सर्प के पास देखा तो सर्प से कहने लगीं – 'अरे, नाग देवता, तुम जाओ, मेरे कन्हैया को मत हानि पहुँचाना।' मैया की बात समझकर सर्प चले गये। साँप से छुड़ाकर मैया लायीं तो घर के पास ही कुण्ड था। कन्हैया वहीं दौड़कर चले गये और कुण्ड के जल से छप-छप करके खेलने लगे। दोनों भैया कृष्ण-बलराम कुण्ड के जल से जब इस प्रकार खेलने लगे तो यशोदाजी रोहिणीजी से बोलीं – 'अरी रोहिणी दौड़ो, देखो, ये बालक कहीं कुण्ड में न गिर जाएँ।' रोहिणीजी दौड़कर गयीं और दोनों बालकों को कुण्ड से लेकर आयीं तथा बोलीं – 'बच गये, नहीं तो अभी कुण्ड में दोनों डूब जाते।' एक आचार्य लिखते हैं कि जल से मतलब है कि यशोदा रानी ने जल से भरा कलश रखा था। बलराम पहले उसके पास पहुँचे, उन्होंने उस कलश को हिलाया तो नहीं हिला। उसी समय कन्हैया भी वहाँ पहुँच गये और कहने लगे – 'हूँ-हूँ' अर्थात् मैं आऊँ, मैं आऊँ, तुझसे कलश नहीं गिरेगा। दोनों भाई मिलकर कलश को हिलाने लगे और फिर उसे लुढ़का दिया। अब उस कलश का पानी जब फैला तो दोनों बालक उसमें हाथ मारकर छपाछप खेलने लगे। यशोदाजी दौड़ीं और बोलीं – 'अरे, इन दोनों ने सारा पानी फैला दिया।'

इस प्रकार दोनों ने जल क्रीड़ा की। **द्विजकण्टकेभ्यः** – नन्द भवन में सभी जीव आते थे। पक्षी भी आते थे। हंस, मोर, तोते, कौवे आदि सभी प्रकार के पक्षी श्रीकृष्ण का दर्शन करने आते थे। एक बार एक हंस

आया तो उसे देखकर कृष्ण-बलराम दौड़ गये । दोनों छोटे से बालक जाकर हंस पर चढ़ गये । ये हंस भी तो भगवान् की लीला के सहायक पार्षद हैं । वे कृष्ण को अपने शरीर पर चढ़ाकर धीरे-धीरे टहलने लगे । मैया ने देखा तो सोचने लगीं कि कहीं ऐसा न हो कि हंस मेरे बालक को लेकर उड़ जाए या यह हंस कहीं कंस का भेजा हुआ असुर तो नहीं है । देखो, ये बालक कितने ढीठ हैं । जाने कौन से देश का हंस है और ये दोनों उस पर जाके चढ़ गये । मैया गयीं और दोनों बालकों को डाँटा – 'चल उतर, सब पर ये चढ़ जाते हैं । कुत्ता-बन्दर सभी पर चढ़ जाते हैं ।' वहाँ से मैया छुड़ाकर लायीं तो दूसरी ओर से मोर आ गये और अपनी बोली बोलने लगे । कृष्ण-बलराम दोनों बालक मोरों के पास दौड़ गये । कृष्ण ने मोर की गर्दन पर हाथ रख दिया और मोर की आवाज की नकल करने लगे । इस प्रकार ये दोनों बालक पक्षियों से खेल रहे थे । इनकी यह लीला सब गोपियाँ देख रहीं थीं । एक दिन ये दोनों बालक नन्द भवन के पीछे गये तो वहाँ काँटों की बाड़ लगी हुई थी । दोनों भैया काँटों के पास पहुँच गये । दोनों की झंगुलियों में काँटे लग गये । यशोदाजी ने दूर से देखा तो चिल्लायीं – 'अरे, अब तो ये काँटे में घुस गये ।' वहाँ गयीं और दोनों बालकों की झंगुलियों से काँटे निकालकर उन्हें घर लायीं, डाँटती भी जा रही थीं – 'वहाँ तू क्यों गया था ?'

क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् – (श्रीभागवतजी - १०/८/२५)

सबेरे से शाम तक दोनों माताएँ अपने बालकों को रोकने में ही लगी रहतीं – 'यहाँ मत जाओ, वहाँ मत जाओ ।' इधर से पकड़तीं तो दूसरी ओर भाग जाते, उधर पकड़तीं तो कहीं और भाग जाते । अनन्त ब्रह्म को वे सीमा में बाँधने का प्रयास करतीं ।

गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ – (श्रीभागवतजी - १०/८/२५)

दोनों माताएँ बालकों की चंचलता के कारण घर का काम भी नहीं कर पाती थीं। **मनसोऽनवस्थाम्** – उनका मन बच्चों की चिन्ता से चंचल रहता था । श्रीजीवगोस्वामीजी ने यहाँ चंचल का भाव लिखा है कि चंचल का मतलब यह मत समझना कि वे घबरा गयीं, दुखी हो गयीं । यह सञ्चारी भाव है । यहाँ वात्सल्य स्थायी भाव है । वात्सल्य जो स्थायी भाव है, उसमें यहाँ पर सञ्चारी भाव 'अनवस्था' है । इसका मतलब यह मत समझना कि वे दोनों माताएँ उकता गयीं, परेशान हो गयीं । यह तो प्रेम की तरंग है ।

कुछ ही दिनों में राम-श्याम दोनों बालकों की और प्रगति हुई ।

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/२६)

अब धीरे-धीरे ये दोनों बालक खड़े होकर चलने का प्रयास करने लगे । यशोदाजी और रोहिणीजी उन्हें अँगुली पकड़कर चलाने लगीं । कभी यशोदा जी उँगली पकड़कर चलातीं तो कन्हैया थोड़ी देर चलकर फिर लड़खड़ाकर गिर पड़ते । इस प्रकार माताओं का सहारा लेकर उनके बालक धीरे-धीरे चलने लगे ।

यशुमति सुत को चलनो सिखावै ।
उंगली पकर लाला की पैंजनिया बाजै ।

यशोदाजी और रोहिणीजी कृष्ण को चलना सिखाने लगीं । एक ओर यशोदाजी ने श्रीकृष्ण की उँगली पकड़ी, दूसरी ओर रोहिणीजी ने पकड़ा और इस तरह वे श्रीकृष्ण को चलाने लगीं और कहती जातीं – 'लाला ! ऐसे चल, लाला आगे चल ।'

इस प्रकार यह मधुर लीला होने लगी ।

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/२७)

कुछ दिनों के बाद श्रीकृष्ण और बलराम अपनी ही आयु के बालकों के साथ खेलने लगे । अब तो वे खूब दौड़ने लगे । गेंद भी खेलने लगे ।

जब श्रीकृष्ण चलने लगे तो उन्होंने सोचा कि अब मुझे माखन चोरी करनी चाहिए । अभी तक तो चोरी इसलिए नहीं की थी क्योंकि तब चल नहीं सकते थे, भाग नहीं सकते थे । चोर को तो चोरी करके भागना पड़ता है, इसलिए अब वे चोरी करने लगे ।

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।

अब तो श्रीकृष्ण ने बड़ी चंचलता करना शुरू कर दिया । उनकी चंचलता के कारण गोपियाँ उनकी शिकायत करने के बहाने नन्द भवन में जातीं । एक आचार्य ने लिखा है कि वे आपस में भी श्रीकृष्ण की चंचलता के बारे में बातें करती थीं और फिर नन्द भवन में जाकर यशोदा मैया से कहतीं –

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिन्नत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/२९)

'हे यशोदा रानी ! तुम्हारा कन्हैया तो बड़ा नटखट हो गया है, यह हमारे बछड़ों को खोल देता है ।' यशोदाजी ने कहा – 'बछड़े खोल देता है तो तुम्हारा तो काम ही करता है । तुम्हें भी तो बछड़ों को खोलना

पड़ता है, जब तुम दूध दुहने जाती हो । इसलिए मेरा लाला तो तुम्हारी सेवा ही करता है ।' गोपी ने कहा – 'अरी यशोदा रानी ! तुम तो अपने बालक का पक्ष लेती हो । अरे, यह तो असमय में खोलता है । दूध दुहने से पहले ही बछड़े खोल देता है तो वे सारा दूध पी लेते हैं, फिर हम लोगों के लिए तो दूध बचता ही नहीं है । जब हम दूध दुह लें, उसके बाद बछड़े खोले तब तो ठीक भी है ।' यशोदाजी ने कहा – 'तो तुम मेरे कान्हा को रोकती क्यों नहीं हो, उसे रोक दिया करो । तुम लोग उस पर क्रोध नहीं करती हो ।' गोपियाँ बोलीं – 'क्रोध क्या करें, जब यह कुछ ऊधम करता है, बछड़े खोलता है अथवा माखन चोरी करता है और हम इस पर क्रोध करती हैं तो - **क्रोशसंजातहासः** – यह हँसने लगता है ।' यशोदाजी – 'अरी गोपियो ! हँसने लगता है तो हँसने से क्या होता है ? तुम लोग इसको फटकार दिया करो ।' गोपी – अरी मैया ! अब इसकी हँसी के बारे में क्या बताऊँ ? एक दिन की बात है । यह मेरे घर में माखन चुरा रहा था तो मैंने इसको पकड़ लिया । मैंने सोचा कि यह बहुत ऊधम करता है, आज मेरे हाथ में आया है तो मैंने इसको पकड़ कर क्रोधित होते हुए कहा –

माखन दधि मेरो सब खायो ।
बहुत अचगरी कीन्हेऊ ।
अब तो हाथ पड़े हो लालन,
तुमहि भले मैं चीन्हेऊ ।

'अरे कान्हा ! तू ही है, जो रोज-रोज मेरे दही-माखन खा जाता है । मैंने तुझे पहचान लिया ।'

दोऊ भुजा पकर के कहियत ।

गोपी ने कृष्ण की दोनों भुजाओं को पकड़ लिया और बोली – 'आज तुझे पकड़कर यशोदा मैया के पास ले चलूँगी और उन्हीं

के सामने तुझे बहुत फटकारूँगी । वहीं सारा माखन मँगवा लूँगी ।' श्यामसुन्दर बोले – 'जब मैंने तेरा माखन खाया होगा, तभी तो तू मुझे मारेगी और मैया के पास ले चलेगी, मैंने तो तेरा माखन खाया ही नहीं ।' गोपी – 'मेरी कमोरी का इतना ढेर सारा माखन फिर कौन खा गया, क्या चींटी खा जाएगी ? इसे किसने खाया ?'

कन्हैया बोले – 'मैं तेरी सौगन्ध खाता हूँ, सच मान, तू मुझे बड़ी प्यारी लगती है, मैंने तो तेरा माखन चखा भी नहीं कि कैसा इसका स्वाद है ?' गोपी – 'फिर सारा माखन गया कहाँ ?' कन्हैया – **'सखा गये सब खाय'** – मुझे तो खाने को कुछ भी नहीं मिला, सारा माखन मेरे सखा खा गये ।' तब भी गोपी ने कन्हैया की बात नहीं मानी, उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ । तब कन्हैया ने अपनी अन्तिम मोहिनी विद्या चलाई । गोपी के मुख में अपना मुख मिलाकर ऐसे मनमोहक ढंग से मुस्कुराये कि गोपी के क्रोध की सारी आग ऐसे ठंडी पड़ गयी, जैसे जलती हुई अंगीठी के ऊपर दो बाल्टी पानी डाल दो तो सारी अंगीठी ठण्डी पड़ जाती है । इसके बाद क्या हुआ ?

कहाँ तो गोपी कन्हैया को पीटने जा रही थी, यशोदाजी के पास पकड़कर लिए जा रही थी और अब उनकी मुस्कान का ऐसा जादू हुआ कि गोपी ने कन्हैया को अपने हृदय से लगा लिया ।

मुख तन चितै बिहंसि हँस दीनी ।
रिस सब गयी बुझाय,
लिए श्याम उर लाय ग्वालिनी ।

सूरदासजी कहते हैं कि इस छटा के आगे अब मैं कुछ नहीं कहूँगा, बस यही कहूँगा कि नन्दनन्दन की हँसी के आगे तो –

'सूरदास बलि जाय ।'

गोपी यशोदाजी से कहती है – 'अरी मैया ! इसके ऊपर कौन क्रोध करेगा, जैसे ही कोई गोपी क्रोध करती है, यह तुरन्त मुस्कुरा देता है और सारा क्रोध ठंडा पड़ जाता है ।' यशोदाजी – 'जब यह तुम्हारे घर चुराकर माखन खाता है तो तुम लोग स्वयं ही इसे खाने के लिए माखन क्यों नहीं दे देती हो ? तुम्हारे घर के एक माट, दो माट, जितने भी माट का माखन खाये, तुम लोग मुझसे माखन के दस माट ले जाओ ।'

यशोदा मैया ने तो आज फैसला कर दिया कि ब्रज की सभी गोपियों सुन लो । जिसके भी घर मेरा लाला जाए, तुम लोग इसके सामने जितना ये खाये, उतने ही माखन से भरे माट रख दिया करो और फिर मेरे पास आकर उनसे दोगुने माखन के माट ले जाया करो ।

गोपियाँ बोलीं – मैया, तुम कह तो ठीक रही हो किन्तु जब हम इसे अपनी प्रसन्नता से माखन खाने के लिए बुलाती हैं – कान्हा, मेरे घर आकर माखन खा जा ।

बंसी वारे तू मेरी गली,
आ जा रे ।
तेरे काजे कोरी कोरी मटकी में,
दही जमायो रे ।
अपने हाथन खा जा रे,
मुरली वारे ।

मैया ! हम स्वयं चाहती हैं कि तुम्हारा लाला हमारे ही हाथों से माखन खाये किन्तु हम क्या करें, हम जब इसे अपने हाथों से माखन देती हैं, तब ये नहीं खाता है, क्यों ? **स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ** – यह तो चोरी का ही माल खाता है, ईमानदारी से नहीं खाता है, प्रेम से देने पर नहीं

खाता है, त्याग दिखाता है और कहता है – 'मेरे घर में माखन नहीं है क्या, जो मैं तेरे घर का माखन खाऊँगा, तेरा दिया हुआ माखन खाऊँगा । मेरे घर में बहुत अधिक माखन है ।'

यह जब हमारे घर घुस जाता है तो स्वादिष्ट बढ़िया माखन खाता है, बड़ा चटोरा है । केवल माखन ही नहीं खाता है । **दधि पयः** – यह दही-दूध भी खाता-पीता है । वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि कन्हैया बड़ा ही चट्टू है । पहले यह दही खाता है, उसके बाद दूध पीता है, जिससे कि पेट में नुकसान न करे । सही तरीका यही है कि दूध के बाद दही नहीं खाना चाहिए ।

गोपियाँ कहती हैं – '**स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः**' यह छोटा सा लाला इतना चतुर है कि पहले दही खाकर फिर दूध पीता है, पता नहीं कहाँ से इसमें इतनी बुद्धि आ गयी । यशोदा मैया ने कहा – 'यदि यह ऐसा करता है तो तुम लोग अपने गोरस को छिपाकर रखा करो, छोटा सा लाला फिर वहाँ तक नहीं पहुँच पायेगा ।'

गोपियाँ बोलीं – अरी मैया ! यह तुमसे ज्यादा होशियार है, यह चोरी के बड़े-बड़े उपाय करता है ।

'कल्पितैः स्तेययोगैः'

इसके चोरी के उपायों का कोई वर्णन नहीं किया जा सकता । श्रीधरस्वामीजी ने भी इस लीला के बारे में लिखा है –

कृष्णचापलचौर्याणि सहैवाखिलसद्व्रतः ।
प्रजल्पन्त्यः समागत्य गोप्यो गोप्यै मुदं ददुः ॥

ऐसा नहीं है कि गोपियाँ केवल यशोदाजी से ही कन्हैया की करतूतों के बारे में चर्चा करती थीं । आपस में भी गोपियाँ बैठकर कन्हैया के विविध चोरी के उपायों की चर्चा किया करती थीं कि आज इसने मेरे

घर में चोरी की । कोई गोपी कहती कि उस घर में चोरी की । जैसे एक बार श्यामसुन्दर ने एक सखा को स्त्री वेष में सजा दिया और घूँघट में बहू बनकर वह किसी गोपी के घर पहुँचा और उससे बोला – 'अरी सखि ! तेरे पीहर से कोई आया है, वहाँ दूर खड़ा है । तू खायरे गाँव की है न ?' गोपी ने कहा – 'हाँ, मैं खायरे की हूँ ।' बहू बना सखा बोला – 'तो चली जा, वह तुझे बुला रहा है, तू चली जा वहाँ ।' गोपी ने पूछा – 'वह कहाँ है ?' बहू बोली – 'थोड़ी दूर है ।'

अब वह गोपी तो चली गयी अपने पीहर वाले से मिलने और तब तक कन्हैया और उनके सारे सखा उस गोपी के घर में घुस गये और वहाँ उनकी पंगत होने लगी । उधर वह गोपी देखने गयी और आवाज लगाती रही कि यहाँ खायरे का कौन है लेकिन वहाँ तो कोई खायरे का था ही नहीं । जब तक वह अपने घर लौटकर आई तो देखा कि सारा मैदान साफ़ । घर में न दूध बचा, न दही,न माखन । गोरस से भरे सारे मटके बिल्कुल खाली पड़े थे । ये है – **'कल्पितैः स्तेययोगैः ।'**

श्रीधर स्वामीजी ने लिखा है कि इस प्रकार गोपियाँ बैठकर आपस में कृष्ण की चोरी लीला आदि की चर्चा किया करती थीं ।

गोपियों की बात सुनकर यशोदाजी कहती थीं कि तुम लोग मेरे घर से दूध-दही-माखन के जितने चाहे मटके ले जाया करो, यदि तुम्हारे घर में मेरा लाला इस तरह चोरी करता है । गोपियाँ बोलीं – 'अरी यशोदा रानी ! हम तुमसे माखन के मटके लेने की बात नहीं कह रही हैं । वैसे भी प्रतिदिन हम कहाँ तक ले जायेंगी ? एक और समस्या यह है कि इसके साथ ग्वालबाल चलें तो कोई बात नहीं किन्तु इसके साथ तो पूरी वानर सेना चलती है । इसके पीछे सैकड़ों बन्दर चलते हैं ।'

एक महात्मा ने लिखा है कि कृष्ण की चोरी लीला में बन्दर बहुत सहयोग करते थे । एक बार कोई गोपी मोटा सा डंडा लेकर सावधानी से अपने घर के बाहर बैठ गयी और सोचने लगी कि आज देखूँ, कौन

मेरे घर में चोरी करने घुसता है । बन्दरों ने सोचा कि आज तो कन्हैया को इस घर में चोरी करना बड़ा मुश्किल है, नीचे गोपी डंडा लेकर बैठी है तो सारे बन्दर उस गोपी की छत पर पहुँचकर उछलने-कूदने लगे, खौं-खौं करने लगे, ऐसा उत्पात मचाया कि लगा कि ये सारी छत ही तोड़ देंगे । बन्दरों को भगाने के लिए वह गोपी डंडा लेकर छत पर पहुँची, तब तक उसके घर में माखन चोरी करने दूसरे बन्दर घुस गये, ग्वालों की सेना घुस गयी और माखन खाने लगे । जब तक वह गोपी बन्दरों को छत से भगाती रही, तब तक कन्हैया और उनके सखा उसके घर का सारा गोरस खाकर समाप्त कर गये । इसीलिए भागवत में लिखा है – **'मर्कान् भोक्ष्यन्'** - ये बन्दर श्यामसुन्दर से मिले हुए थे । कन्हैया इनको खूब भरपेट माखन खिलाते थे । इसीलिए गोपियाँ यशोदाजी से शिकायत करतीं कि ग्वालबालों के साथ ही यह बन्दरों को भी हमारे घर का माखन खिला देता है ।

इस सम्बन्ध में यहाँ वल्लभाचार्यजी ने बहुत अच्छी बात लिखी है कि ये बन्दर रामावतार के भक्त हैं । इन्होंने रामावतार में प्रभु की बहुत सेवा की थी । इन वानरों के मन में यह कामना थी कि हम श्रीजनकनन्दिनी सीताजी के हाथ की बनी वस्तुयें आरोगें । भगवान् ने उनकी कामना अपने कृष्णावतार में पूरी की । जितनी भी ब्रजगोपियाँ थीं, ये सब श्रीजी की अंशस्वरूपा थीं ।

यत्पादपद्म-नखचन्द्र-मणिच्छटायाः
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि ।

(श्रीराधासुधानिधि - १०)

उन्हीं के द्वारा निकाला हुआ दही-माखन श्यामसुन्दर इन बन्दरों को अपने हाथों से खिलाते थे । एक अन्य सुन्दर भाव वल्लभाचार्यजी ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है कि श्यामसुन्दर गोपियों के बछड़ों को इसलिए खोल देते थे, जिससे कि कोई बछड़ा भूखा न रह जाए ।

ब्रज में बहुत सी गायें थीं, बहुत दूध था, चाहे जितना भी दूध ले लो, वह समाप्त नहीं होता था। ब्रज में ऐसी गायें थीं कि उनके थनों से सदैव दूध चूता रहता था। ब्रज में इतना अधिक दूध था कि सारी धरती दुग्धमयी हो जाती थी। **'स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः'** में स्वादु शब्द का अर्थ एक आचार्य ने लिखा है कि जिन गोपियों के पीहर से कोई मिलने वाली आती तो अपने साथ कभी खांड़ के लड्डू लाती, बढ़िया-बढ़िया मिठाइयाँ और अन्य पकवान लाती तो कन्हैया और उनके सखा केवल दूध-दही ही नहीं बल्कि उन स्वादिष्ट पकवानों को भी खा जाते थे। इसीलिए कन्हैया बछड़े खोल देते थे कि जब तक गोपी बछड़े को सँभाले, तब तक ग्वाल मण्डली उन पकवानों को भी खा ले। विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने इस सम्बन्ध में दूसरी लीला भी लिखी है। वे लिखते हैं कि चोरी दो प्रकार की होती है। एक होती है चोरी, दूसरी होती है सीनाजोरी अर्थात् एक चोरी में तो सामने से चुरा लिया और दूसरी में पीछे से, चुपके से चुराया। कन्हैया बछड़ों को इसलिए खोल देते थे कि गोपियाँ बछड़े को पकड़ने के लिए बाहर जाती थीं। जब कन्हैया देख लेते थे कि कोई गोपी बड़ी होशियार है, इसके घर में चोरी करना बहुत मुश्किल है क्योंकि वह तो घर के भीतर माखन के पास डंडा लेकर बैठी हुई है तो सबसे पहले उन्होंने उस गोपी के घर के बाहर बँधे हुए बछड़े को खोल दिया। जब वह बछड़े को पकड़ने के लिए दौड़ी तो कृष्ण पीछे से उसके घर में घुस गये और सारा माखन चुराकर खा गये। यह तो परोक्ष चोरी है। सामने की चोरी वह है कि जब श्यामसुन्दर गोपी के सामने ही माखन खा लेते और जब गोपी उन पर क्रोध करती तो वे हँस देते थे, उनकी हँसी देखकर गोपी का सारा क्रोध दूर हो जाता और श्यामसुन्दर आराम से माखन खा जाते और गोपी कुछ बोल नहीं पाती थी। अतः इसमें परोक्ष व अपरोक्ष दोनों प्रकार की चोरी की लीला है। ऐसा चक्रवर्तीजी ने लिखा है। वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि अधिक माखन खाकर बन्दरों का पेट इतना भर जाता कि वे और माखन देने पर भी नहीं खाते थे, तब श्रीकृष्ण

क्या करते थे, **भाण्डं भिन्नत्ति** – गोरस खाने के बाद बचे हुए खाली मटकों को कन्हैया अच्छी तरह तोड़-फोड़ देते थे। गोपियाँ भी बड़ी चतुर थीं, उन्होंने कृष्ण से छिपाने के लिए ऐसे-ऐसे तहखाने बनवा रखे थे कि किसी प्रकार कृष्ण वहाँ न पहुँच सकें। जब इस प्रकार गोपियाँ माखन को छिपा देतीं तो कृष्ण उन गोपियों पर बहुत कुपित होते थे और उनके घर के बच्चों को रुला देते थे। जो कुँवारी गोपियाँ होतीं थीं, उनके छोटे-छोटे भाइयों को रुला देते थे। जीव गोस्वामी जी ने लिखा है – **लघुभ्रातादीनि** – जिन कुँवारी गोपियों के छोटे भाई सोते रहते थे, उनको कन्हैयाजी रुलाकर भाग जाते थे। वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि बच्चों को इसलिए रुलाते थे क्योंकि माताओं को अपने बच्चों को छोड़कर और कहीं नहीं जाना चाहिए।

अस्तु, दूसरी गोपी ने यशोदाजी से कहा कि जब कभी हम अपने घरों में मटकों को बहुत ऊँचाई पर रख देती हैं तब यह क्या करता है ?

ऊँचो छींको हाथ न आवै ।
तब ग्वाल पे ग्वाल चढ़ावै री,
यशोदा तेरो लाला ।

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपम्
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/३०)

पहले पीढ़ा रखता है, उसके ऊपर ऊखल रखता है और फिर उसके ऊपर स्वयं चढ़कर ऊँचाई पर लटकती हुई माखन की कमोरी में छेद कर देता है। छेद कैसे करता है ? जीव गोस्वामीजी ने लिखा है कि जब कन्हैयाजी माखन चोरी करने जाते थे तो एक लठिया में त्रिशूल जैसी नुकीली सुई लगाकर ले जाते थे कि यदि गोपी मटके को बहुत

ऊँचाई पर टाँग देगी तो नीचे से ही उस लठिया की सुई से छेदकर देंगे तो सारा दूध-दही बाहर निकल आएगा ।

'दीर्घसशल्यलगुडादीना छिद्रं रचयति' – (श्रीजीव गोस्वामी)

जीव गोस्वामीजी को यही लीला दिखाई पड़ी कि प्रभु चोरी करने गये तो उनके पास एक बांस था, उसकी नोक में छेद करने वाली एक कील थी । वल्लभाचार्यजी को यह लीला दिखाई पड़ी कि कन्हैया किसी गोपी के घर चोरी करने गये तो उन्होंने वहीं से एक बाँस उठा लिया और उसी से ऊपर लटकते मटके में छेद कर दिया और उसके नीचे एक भाण्ड रख दिया, ऐसा करने से सारा दही और माखन चू-चू करके उसी भाण्ड में गिरने लगा ।

गोपी ने यशोदा मैया से कहा –

श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।

हे माँ ! यह मटकी में छेद कर देता है । इसके अतिरिक्त हम लोग ऊँचाई पर बहुत से मटकों को टाँग देती हैं, उनमें से कुछ खाली भी होते हैं तो इसको पता चल जाता है कि अमुक मटके में माखन होगा । पता नहीं, कहाँ से सूँघकर यह पता लगा लेता है । यहाँ पर आचार्य लोग लिखते हैं कि कन्हैया अपने सखाओं से कहते हैं – 'ये जो मटके दिखाई पड़ रहे हैं, ये खाली हैं, इनमें कुछ नहीं है, वह जो कोने में एक माट दिखाई दे रहा है, उसमें माल है ।' इसको सब पता पड़ जाता है कि माल कहाँ है ?

ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपम् – (श्रीभागवतजी - १०/८/३०)

यदि हम गोरस के मटकों को अँधेरे स्थान में रख देती हैं तो तुम्हारा यह लाला तो नीलमणि है, इसके शरीर से चिन्मयी नीली ज्योति निकलती रहती है । नीलमणि जिस घर में पहुँच जाते हैं, वह घर प्रकाशित हो जाता है । वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि यह केवल माखन

ही नहीं चुराता है, **'अर्थप्रदीपम्'**- इसको सब पदार्थ दिखाई दे जाते हैं कि खाँड़ कहाँ है, शहद कहाँ है, लड्डू कहाँ है ? गोपी कहती है कि मैं अँधेरे में सब माल छिपाकर रख देती हूँ किन्तु कन्हैया को सब दिखाई दे जाता है । पहले तो यह माखन निकालता है, उसके बाद मिसरी निकालता है, फिर खाँड़ निकालता है और इसके बाद लड्डू निकालता है । एक बात और है, इसके शरीर पर मणियों के आभूषण हैं । इसके हाथों में ही बहुत सी मणियाँ हैं । एक आचार्य लिखते हैं कि श्यामसुन्दर के शरीर पर बहुमूल्य मणियाँ हैं, फिर भी यह दूध-दही-माखन की चोरी करने जाता है । नागरीदासजी ने कहा है – **ब्रजराजा के बेटा चोर ।**

गोपियाँ कहती हैं कि हम लोग जब घरों के काम में व्यस्त हो जाती हैं, तब नन्द नन्दन इस प्रकार से चोरी करता है । ये माखन चोर है न

नन्द किशोर नवल किशोर ।
वृन्दावनचन्द्र प्यारो माखन चोर,
माखन चोर श्याम माखन चोर ।

प्रभु कितनी सुन्दर, मीठी लीला करते हैं । गोपीजनों को इसे देखकर कितना आनन्द आता होगा, कितनी हँसी आती होगी ।

गोपियाँ यशोदाजी से आगे कहती हैं –

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/३१)

कन्हैया बहुत ढिठाई करता है । **धार्ष्ट्य** (ढिठाई) के उदाहरण श्रीधरस्वामी ने दिए हैं, इनको यह लीला दिखाई पड़ी है । एक गोपी

कहती है कि कन्हैया एक दिन मेरे घर गया चोरी करने, मैंने इसको चोरी करते हुए पकड़ लिया और कहा कि तू मेरे घर क्यों आया तो यह बोला – 'ए, क्या कह रही है ? यह तो मेरा घर है, तू यहाँ कैसे आ गयी, चल, मेरे घर से निकल ।' मैं बड़ी क्रोधित हुई और इससे कहा – 'तू मेरे घर में एक तो चोरी करता है और दूसरे मुझे ही अपने घर से निकलने को कहता है ।' जब मैं इसको पकड़ने दौड़ी तो **वस्त्र विमोचन्** – इसने मेरी साड़ी खोल दी, अब मैं बाहर इसे पकड़ने कैसे जाती ? इस प्रकार यह ढिठाई करता है । एक गोपी ने कहा कि जब मैं इसे पकड़ने चली –

जब मैं चली श्यामहि पकरन ।

तब तक यह भाग गया । मैंने सोचा कि अब तो कन्हैया भाग गया, अतः मैं पलंग पर जाकर लेट गयी किन्तु वह तो चोरी से फिर मेरे घर में घुस आया और मुझे पता ही नहीं पड़ा, मैं तो सो गयी । मेरी चोटी नीचे लटक रही थी, कन्हैया ने चुपके से आकर मेरी खाट की पाटी में मेरी चोटी बाँध दी और उसके बाद यह माखन खाने लगा, मुझे कुछ पता नहीं लगा । किन्तु खाते समय सप्प-सप्प की आवाज आ रही थी तो जब मैं उठी तो पाटी में मेरी चोटी बँधी हुई थी, मैं कैसे उठ सकती थी, मैं तो उठ भी नहीं पायी और कन्हैया तो माखन खाता जाता और मुझे अँगूठा दिखाता जाता और कहता – 'ले, ले, मैं तो पहले ही कह रहा था कि यह मेरा घर है, अब मैं माखन खा रहा हूँ, रोक सकती है तो मुझे रोक ।' यशोदा मैया ने गोपी की बात सुनकर पास खड़े कन्हैया से पूछा – 'क्यों रे, तूने ऐसा किया, इसकी चोटी पाटी में बाँधी' तो कन्हैया बोले – 'अरी मैया, तू भी इसकी बात पर विश्वास करती है । मैं इसकी चोटी कैसे बाँध सकता था, इस गोपी का पति भी खाट पर इसके साथ सो रहा था । यह बिल्कुल झूठ बोलती है । इसके घर के दही में शहद की चींटी पड़ी हुई थी, इसने मुझे बुलाया और कहने लगी कि दही से चीटियाँ बीनकर निकाल । इसके कहने से मैं तो चींटियाँ बीन रहा था

और यह जाकर अपने पति के साथ सो गयी । कन्हैया की बात सुनकर यशोदाजी हँसने लगीं और गोपी कन्हैया का मुँह देखती रह गयी तथा सोचने लगी कि इसने तो मेरी बोलती ही बन्द कर दी ।

इसके बाद एक अन्य गोपी ने कहा – **'मेहनादीनि वास्तौ'**

कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं कि गोपी यशोदाजी से कहती है – 'मैया ! यह हमारे लिपे-पुते साफ़ घरों में मूत्र कर देता है । हम लोग घरों को लीप-पोत कर स्वच्छ रखती हैं । जब कन्हैया देख लेता है कि यह घर अच्छी तरह से लिपा-पुता है तो यह वहाँ आकर लघुशंका कर देता है ।'

आचार्यों ने इस लीला के बारे में लिखा है –

जगज्जनमलध्वंसिश्रवणस्मृतिकीर्तनाः ।
मलमूत्रादिरहिताः पुण्यश्लोका इतिस्मृताः ॥

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

वस्तुतः भगवान् का शरीर चिन्मय है । उनके चिन्मय विग्रह में मल-मूत्र आदि विकार नहीं है । वृन्दावन के परम रसिक संत विहारिन देव जी ने भी कहा है –

इनके मल मैथुन कछु नाहीं ।
दिव्य देह विहरत वन माँहीं ॥

आचार्यों ने इस लीला का रहस्य यह बताया है कि इस श्लोक (१०/८/३१) में प्रयुक्त शब्दों **मेहनादीनि वास्तौ** का इस ढंग से अर्थ करना चाहिए –

बाल्यलीलाविनोदार्थं मृषैव प्रापञ्चितानि मेहनादीति ज्ञेयम् –

(जीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

हँसाने के लिए अपनी माया से भगवान् अपने शरीर में मल-मूत्र आदि प्रकट कर देते हैं । गोपीजन हँसें, इसलिए प्रभु ऐसा करते हैं । यह

लोकवत् लीला है । भगवान् गोपियों को हँसाने के लिए ऐसा करते हैं । इसे समझो, इस तरह की सम्पूर्ण लीलाओं में गोपियों को आनन्द मिल रहा है । बहुत से लोग ऐसा सोचते हैं कि कन्हैया की ऊधम भरी लीला से गोपियाँ परेशान हो जाती होंगी किन्तु ऐसी बात नहीं है, ऐसा तो वे ही लोग समझते हैं, जिनके हृदय में प्रेम नहीं है ।

स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः – श्यामसुन्दर चोरी के अनेकों उपाय करते थे । **विरचितकृतिः** को समझो ।

श्यामसुन्दर अनेकों रूप बनाकर गोपियों के घरों में प्रवेश कर जाते थे । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने इस प्रसंग में सुबोधिनी में लिखा है –

'पतिवत् पुत्रवत् भ्रातृवच्च तिष्ठति'

यह लीला श्रीवल्लभाचार्यजी को दिखाई पड़ी, इसलिए उन्होंने लिखा कि एक बार माखन चोरी करने पर एक गोपी श्यामसुन्दर को पकड़ने चली । अपनी चुनरी से उसने कन्हैया का हाथ बाँध दिया, जिससे कि भाग न सके और फिर वह यशोदा रानी के पास पहुँची और बोली – 'अरी यशोदा ! देखो, आज मैं तुम्हारे लाड़ले लाल को पकड़कर लायी हूँ ।' यशोदाजी बोलीं – 'ला मेरे पास, आज मैं इसको ठीक करती हूँ ।' इधर श्यामसुन्दर ने उस गोपी के पति का रूप बना लिया । यशोदाजी ने पास आकर देखा तो उसका पति खड़ा था । वे कहने लगीं – 'अरी गोपी, तेरी आँख फूट गयी है क्या, अपना घूँघट खोलकर देख कि यह कौन है ?' जब गोपी ने पीछे मुड़कर देखा तो उसके पति देवता खड़े थे । तुरन्त ही वह अत्यधिक लजाकर अपने पति का हाथ छोड़कर वहाँ से भाग गयी । यह तो विवाहिता गोपी के साथ की लीला है । एक बार एक कुँवारी गोपी ने कन्हैया को पकड़ लिया और बोली – 'निपूते ! आज तुझे तेरी मैया के पास ले चलूँगी ।

रोज-रोज हमारे दही-माखन खा जाता है ।' कन्हैया का हाथ पकड़कर वह यशोदाजी के पास ले गयी । कन्हैया बोले – 'मैंने तो चोरी नहीं की ।' गोपी ने कहा – 'तेरे मुँह पर माखन लगा हुआ है, यशोदाजी को दिखाऊँगी ।' कन्हैया ने कहा – 'मुझे जब भूख लगी तब मैंने माखन खाया, भूख लगेगी तो क्या खाऊँगा ? बात बनाती है, तेरा माखन किसलिए है ?' ऐसा कहकर कन्हैया ने गोपी को फटकार लगा दी । गोपी फिर भी पकड़कर कन्हैया को नन्द भवन ले गयी और बाहर से आवाज लगाई – 'अरी मैया ! देख अपने लाला को, इसके मुख पर माखन लगा हुआ है ।' मैया बोली – 'अच्छा, मैं आती हूँ ।' इतने में कन्हैया ने उस गोपी के पिता का रूप बना लिया । वह गोपी यशोदाजी से बोली – 'देख, अपने लाला का मुख ।' यशोदाजी ने देखा तो बोलीं – 'अरी बावरी, यह तो तेरा बाप है । इसकी दाढ़ी सफेद हो गयी, क्या यह चोरी करेगा ?' गोपी ने पीछे मुड़कर देखा तो बोली – 'अरे, ये तो मेरा बाप है ।' फिर वह लजाकर भाग गयी ।

वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि गोपी द्वारा पकड़े जाने पर कन्हैया कभी उसके पिता का, कभी भाई का रूप बना लेते थे । यह **विरचितकृतिः** का उदाहरण है । आगे गोपियाँ कहतीं हैं – **सुप्रतीको** । सुप्रतीक का भाव आचार्यों ने लिखा है कि कभी तो कन्हैया साधु का रूप बना लेते और माखन चोरी करने जाते । साधुओं को ब्रज में कहीं भी रोक-टोक नहीं है । कन्हैया नकली जटा, नकली दाढ़ी-मूँछ लगा लेते और गूदरी ओढ़कर, हाथ में कमण्डल लेकर किसी गोपी के घर पहुँच जाते और बोलते – 'सीता राम, नारायण हरि ।'

कन्हैया की इस लीला की एक गोपी अन्य गोपियों से चर्चा कर रही थी । उस गोपी ने कहा कि जब कन्हैया मेरे घर इस तरह साधु का वेष धरकर आया तो मैंने यही समझा कि कोई सन्त है तो मैंने उससे कहा – 'अरे बाबा जी ! तुम्हें जो भिक्षा लेना हो, मेरे घर के भीतर

आकर अपनी इच्छानुसार ले लो ।' कन्हैया बना वह साधु बोला – 'ठीक है' और घर के भीतर जाकर स्वयं ही सब खाने का सामान लेकर खाने-पीने लगा । फिर मैंने सोचा कि यह कैसा साधु है, बहुत देर हो गयी, अभी तक यह घर से बाहर नहीं निकला तो मुझे सन्देह हुआ क्योंकि प्रतिदिन नकली काम हो रहे थे । मैंने सोचा कि कहीं यह नन्दनन्दन तो नहीं है । अब भीतर इन नकली बाबाजी ने सारा माखन खा लिया और माट-मटके फोड़कर बाहर ही आ रहे थे कि तब तक मैं दरवाजे पर खड़ी हो गयी । उसे देखकर मैं पहचान गयी कि अरे, ये तो वही है । साधु बनकर आ गया है । फिर मैंने एक हाथ से उसकी दाढ़ी पकड़ी और एक हाथ से जटा पकड़कर जोर से खींचा तो एक हाथ में दाढ़ी निकल आई और दूसरे हाथ में उसकी जटा निकल आई । तब फिर कन्हैया नीचे से दुबककर चले गये । ये थे साधु-महात्मा जी, जो चोरी करने आये थे । साधु बनने का भाव यह भी है कि ये तो नकली साधु थे और कभी-कभी कन्हैया सचमुच ही साधु बन जाते थे, कैसे ?

ग्वालिन जो देखे घर आये ।

एक गोपी ने अपने घर में आकर देखा

माखन खाय चुराए श्याम तब
आपन रहे छिपाय ।

श्यामसुन्दर ने माखन चुराया और छिप गये कि यह गोपी बड़ी बलवान है, पकड़ लेगी तो छोड़ेगी नहीं ।

ठाढ़ी भई मथानी के ढिग
रीती परी कमोरी ।

गोपी ने जाकर माखन के मटकों को देखा तो सब खाली पड़े थे। अब वह कहती है –

अबही गयी आई इन पाहीं,
ले गयो को कोऊ चोरी ।

अभी तो मैं पानी भरने गयी थी और इतनी देर में कैसे सब गोरस गायब हो गया। चोर यहीं कहीं है, बाहर नहीं गया क्योंकि दरवाजे पर ही कुआँ था। चुपके से वह भीतर गयी कि कहीं कन्हैया भाग न जाए।

भीतर गयी तहाँ हरि पाये ।

भीतर कन्हैया मिल गये, अब मिल गये तो साधु बन गये, सच्चे साधु बन गये।

श्याम परे गहि पांय ।

बालकृष्ण उस गोपी के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे – 'अरी, मैंने तेरे घर का माखन खाया, मुझे क्षमा कर दे।' इस प्रकार से गोपी के चरणों में गिरकर आँखों से आँसू बहाने लगे।

ये सच्चे साधु हैं। सच्चा साधु वही है, जो अपने दोष को तुरन्त मान ले कि मुझसे गलती हो गयी है, मुझे क्षमा कर दो। श्यामसुन्दर सच्चे साधु हैं, इनसे बड़ा साधु और कौन है ? इसीलिए यहाँ भागवत में लिखा है – **सुप्रतीक** – सच्चे साधु हैं ये। देख लो, अपनी गलती मान रहे हैं गोपी के आगे।

बोलो माखन चोर की जय ।

भीतर गयी तहाँ हरि पाए ।
श्याम परे गहि पांय,

सूरदास प्रभु ग्वालिन आगे,
अपनो नाम सुनाये ।

कन्हैयाजी गोपी से कहने लगे – 'मैं नन्द बाबा और यशोदा मैया का लाला हूँ, मुझसे गलती हो गयी, मुझे क्षमा कर दो ।' श्यामसुन्दर की ऐसी दीनता भरी वाणी सुनकर गोपी ने उन्हें तुरन्त अपने हृदय से लगा लिया । गोपी ने कहा – 'अच्छा, लाला अब तो तुम सुधर गये हो, अब आगे से चोरी तो नहीं करोगे ।' कन्हैया बोले – 'अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा । अब मुझे छोड़ दे ।' गोपी ने कन्हैया को छोड़ दिया तो बोले – 'अच्छा, संध्या को तेरे घर फिर आऊँगा ।'

शुकदेवजी कहते हैं –

इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि – (श्रीभागवतजी - १०/८/३१)

जब गोपियाँ इस तरह यशोदाजी से बालकृष्ण की शिकायत कर रही थीं तो उन्होंने भयभीत होने की आकृति बना ली । वे सोचने लगे कि मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे शिकायत सुनकर मैया को मेरे ऊपर क्रोध न आ जाये । इसलिए वे डर के कारण थर-थर काँपने लगे, आँख की पलकें झपझपाने लगीं, होठ भी फड़फड़ाने लगे । भय से उनके हाथ-पाँव भी काँपने लगे । यशोदा मैया ने देखा तो बोलीं – 'अरे, कन्हैया तो डर गया है ।' गोपियाँ भी देख रही हैं और सोच रही हैं कि कन्हैया को तो डर लग रहा है । **सभयनयन** - गोपियाँ कृष्ण की भयभीत आँखों को देखने लगीं कि कृष्ण कैसे डर रहा है, इसके नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं, इसके ओंठ काँप रहे हैं, इसके मुख से आवाज भी नहीं निकल रही है तो सब गोपियाँ लगातार कृष्ण के भयभीत मुख को ही देखती रहीं । अब न कोई उनकी शिकायत कर रही है, न कोई पिटाई कर रही है । गोपियाँ श्रीकृष्ण के श्रीमुख को

देख रही हैं । **इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि** – क्या सुन्दर छवि है, कन्हैया डर रहे हैं और डरने वाले कृष्ण की कैसी शोभा है ? आँखों से आँसू गिर रहे हैं और भय से काँप रहे हैं । **व्यांख्यातार्था प्रहसितमुखी** – सभी गोपियाँ कृष्ण के इस भयभीत रूप को देखकर हँसने लगीं । जब गोपियाँ हँसने लगीं तब यशोदाजी बोलीं – **न ह्युपालब्धुमैच्छत्** – 'अब मैं समझी, तुम सब हँस रही हो । मैं अपने लाला को नहीं पीट सकती, मैं अपने लाला को नहीं फटकार सकती । तुम सब यहाँ आई हो और हँस रही हो । जिसका माल चोरी होगा, वह रोयेगा कि हँसेगा, चलो यहाँ से ।' यशोदारानी कहती हैं –

क्यों ठाढ़ी मदमाती ग्वालिनी ।

मेरा लाला डर रहा है ।

बार-बार इत उत चलि आवति ।
क्यों ठाढ़ी नन्द पौरी,
विजया खाय भई बौरी ।

'क्या तुम लोगों ने भाँग पी रखी है । इतनी देर से मेरे लाला की तुम लोग शिकायत कर रही हो कि वह डर के कारण काँप रहा है ।'

इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ।

इस प्रकार से गोपियों को फटकारकर यशोदा मैया अपने लाला को डाँटना भूल जातीं, उनमें कोई दोष नहीं देखतीं ।

ब्रजगोपियों की श्यामसुन्दर से प्रीति ही माखन है एवं उनकी माखन रूपी इस प्रीति का ही प्रभु रसास्वादन करते थे । अगर कोई कृष्ण लीला को आध्यात्मिक रूप देना चाहे तो इस तरह के रूपक से करना चाहिए । बहुत से लोग कृष्ण लीला को दूसरे ढंग से

आध्यात्मिक बना देते हैं, उससे लीला का सारा रस ही बिगड़ जाता है । ऐसा नहीं करना चाहिए । प्रीति ही माखन है, आस्वादन है क्रिया-चोरी । प्रीति की आस्वादन क्रिया ही चोरी है । बहुत से लोग ऐसा सोच सकते हैं कि श्रीकृष्ण की माखन चोरी से गोपीजनों को कष्ट होता होगा क्योंकि आजकल समाज में दूध-दही का अभाव है, यह युग का प्रभाव है किन्तु बिल्वमंगलजी के श्लोक से उन्हें बात समझ में आ जाएगी ।

बिल्वमंगलजी ने इस लीला को लिखा है कि एक बार दोपहर के समय श्यामसुन्दर किसी गोपी के घर में गये और वहाँ माखन चोरी की । जब गोपी आ गयी तो उसे देखकर हाथ में ही माखन लेकर माखनचोर भागे । गोपी भी उनके पीछे दौड़ी और कहने लगी –

नीतं नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन् ।
आतप तापित भूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥

'हे श्याम ! यदि तुमने माखन ले लिया तो ले लिया, माखन बड़ी वस्तु नहीं है परन्तु धूप से तप्त पृथ्वी पर तुम मत दौड़ो ।'

एक तरफ गोपियाँ माखन चोरी करने पर यशोदा मैया से कन्हैया की शिकायत किया करती थीं और दूसरी ओर उन्हें अपने घर माखन चोरी का न्योता भी देती थीं । वे कन्हैया से कहती थीं – 'लाला ! मैया से तेरी शिकायत करने का तो हमें बहाना चाहिए किन्तु तू हमारे घर माखन खाने आया कर । हमें बड़ी प्रसन्नता होती है जब तू हमारे घरों में आकर चोरी करता है । उस बहाने उतनी देर तक हमें तेरा मुख दर्शन करने का अवसर मिल जाता है ।'

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८/३२)

एक दिन ग्वालबालों के साथ राम-श्याम यमुना तट पर खेल रहे थे । उसी समय कन्हैया ने एकान्त में जाकर मिट्टी खा ली । बलरामजी और ग्वालबालों ने देखा तो उन्होंने मैया के पास आकर शिकायत की – 'मैया ! आज लाला ने मिट्टी खायी ।' यह सुनकर मैया को बड़ी भारी चिन्ता हुई, उन्होंने सोचा कि गोपियों के घरों से चुराकर मेरा लाला दही-माखन खाता है, यह तो अच्छी बात है किन्तु मिट्टी क्यों खा ली ? मिट्टी भी कोई खाने की चीज है । मैया ने कन्हैया से कहा – 'लाला ! मिट्टी खायेगा तो तेरे पेट में कीड़े पड़ जायेंगे, फिर पेट में दर्द होगा । मिट्टी मत खाया कर । क्यों तूने मिट्टी खायी, तेरे घर में दूध-दही-माखन की कोई कमी है क्या ?' यशोदा मैया की बात सुनकर कन्हैया ने कहा –

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।

'मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खायी । ये सब झूठ बोल रहे हैं । तू तो जानती है कि दाऊ भैया कितना झूठा है । वह तो जन्म से ही मुझसे वैर करता है और मेरी झूठी शिकायत करता है ।' यशोदा मैया ने कहा कि केवल दाऊ ही नहीं कह रहा है, सभी ग्वालबाल कह रहे हैं, सब साक्षी हैं कि तूने मिट्टी खायी है । श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ । मैंने मिट्टी नहीं खायी है । ये सब ग्वालबाल झूठे हैं ।' यशोदाजी ने कहा – 'अच्छा ! एक तू ही सत्यवादी है, बाकी सब झूठे हैं ।' कन्हैया ने कहा कि दाऊ भैया तो ज्यादा ही झूठ बोलते हैं ।

यशोदा मैया दाऊजी का पक्ष लिया करती थीं और रोहिणी मैया कन्हैया का पक्ष लिया करती थीं । इसीलिए कन्हैया ने कहा कि मैया ! तू दाऊ भैया को नहीं जानती है । इनके झूठपने को तो रोहिणी मैया जानती हैं । ये बहुत झूठ बोलते हैं । तू रोहिणी मैया से पूछ कि मैं कितना सच्चा हूँ । मैं कभी झूठ नहीं बोलता हूँ और अब भी तुझसे

सत्य ही कह रहा हूँ । मेरा विश्वास कर ले और यदि मुझ पर विश्वास नहीं है, इन्हीं सखाओं और दाऊ भैया की बात को सत्य मानती है तो –

यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् – (श्रीभागवतजी - १०/८/३५)

मेरा मुख तेरे सामने ही है, मेरा मुख खोलकर देख ले । कन्हैया ने बड़ी निर्भीकता के साथ कह दिया, जैसे मिट्टी खायी ही न हो । कन्हैया की बात सुनकर मैया ने कहा – 'ठीक है लाला, अपना मुँह खोल ।' कन्हैया ने जैसे ही अपना छोटा सा मुख खोला तो उन्होंने उसके भीतर अपने अनन्त ऐश्वर्य का, अचल-सचल सृष्टि का मैया को दर्शन करा दिया । आकाश, दिशायें, पहाड़, द्वीप, समुद्रों के सहित सारी पृथ्वी, वायु, अग्नि, चन्द्रमा और तारों के सहित सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल, जल, तेज, वैकारिक अहंकार के कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राएँ और तीनों गुण कन्हैया के छोटे से मुख में दिखायी पड़े । यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रज और अपने आपको भी यशोदा मैया ने कन्हैया के मुख में देखा । श्रीकृष्ण के शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है । ब्रह्माण्ड में पड़े हुए जीवों के मन में इच्छा हुई कि हमें किसी प्रकार ब्रज रज के आस्वादन करने का अवसर प्राप्त हो, इसलिए उन सभी प्राणियों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए गोपालजी ने मिट्टी खा ली और अब अपने मुख के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का दर्शन कराकर वे मैया को बता रहे हैं कि केवल मैंने ही मिट्टी नहीं खायी बल्कि मेरे सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ने मिट्टी खायी है । यशोदाजी तो अपने लाला के मुख में अखिल ब्रह्माण्ड का दर्शन करके घबरा गयीं । वे सोचने लगीं कि 'यह कोई स्वप्न है या भगवान् की माया ? कहीं मेरी बुद्धि में ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है अथवा सम्भव है कि मेरे इस बालक में ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो । जो चित्त, मन, कर्म और वाणी के द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमता से अनुमान के विषय

नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्ता से ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है – उन प्रभु को मैं प्रणाम करती हूँ । यह मैं हूँ और ये मेरे पति तथा यह मेरा पुत्र है, साथ ही मैं व्रजराज की समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी, उनकी धर्मपत्नी हूँ, ये गोपियाँ, गोप और गोधन मेरे अधीन हैं – जिनकी माया से मुझे इस प्रकार की कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं, मैं उन्हीं की शरण में हूँ ।' जब इस प्रकार यशोदा मैया श्रीकृष्ण का तत्त्व समझ गयीं तब उन्होंने अपनी पुत्र स्नेहमयी वैष्णवी योगमाया का मैया के हृदय में संचार कर दिया ।

वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ।

(श्रीभागवतजी - १०/८/४३)

यशोदाजी ने अभी-अभी जो ब्रह्माण्ड अपने लाला के मुख में देखा था, उस घटना को वे भूल गयीं । मैया फिर से अपने बालक के प्रति वात्सल्य में डूब गयीं और उसके अनन्त ऐश्वर्य को भूल गयीं । उन्होंने कन्हैया को गोद में उठाया और अपने हृदय से लगाकर लाड़ लगाने लगीं ।

अध्याय – ९

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥

(श्रीभागवतजी - १०/९/१)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – घर में अनेकों दास-दासियों के होते हुए भी यशोदा मैया अपने लाला के लिए दधि मन्थन स्वयं ही किया करती थीं । कन्हैया जब तक सुबह सोकर नहीं उठते थे, उससे पहले ही उनका भोग तैयार हो जाता था ।

एक समय की बात है कि यशोदा मैया ने घर की दासियों को तो दूसरे काम में लगा दिया और स्वयं अपने लाला को माखन खिलाने के लिए दही मथने लगीं ।

दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ।

(श्रीभागवतजी - १०/९/२)

किस प्रकार दधि मन्थन कर रही हैं ? उनका कर्म भी कृष्ण को अर्पित है, वाणी से भी कृष्ण गुणगान कर रही हैं और मन से भी कृष्ण लीला का ही चिन्तन हो रहा है । इस तरह कायिक, वाचिक और मानसिक – तीनों ही प्रकार से यशोदाजी श्रीकृष्ण की सेवा में व्यस्त थीं । तब तक गोपालजी की नींद खुल गयी और वे अपनी आँखों को मलते हुए मैया के पास आये तथा उनका आँचल पकड़कर बोले – 'मैया ! बड़ी भूख लगी है ।' अपने लाला को भूखा देखकर यशोदा मैया ने उसी समय दधि मन्थन करना छोड़ दिया और कन्हैया को गोद में लेकर स्तन पान कराने लगीं । उसी समय चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफनने लगा । दूध का जलना, उफनना और गिरना पुत्र की आयु के लिए अच्छा नहीं होता है ।

यथा यथा जीर्यति दुग्धमग्नौ तथा तथा नश्यति बालकायु ।

जैसे-जैसे जितना भी दूध जलता है, वैसे-वैसे बालक की आयु नष्ट होती है । इसीलिए यशोदा मैया ने कन्हैया को गोद से उतार दिया और उफनते हुए दूध को चूल्हे से उतारने के लिए चली गयीं । दूध को चूल्हे से उतारा । इधर कन्हैया का पेट नहीं भरा था, मैया बीच में ही अतृप्त छोड़कर उन्हें चली गयी थीं, इसलिए उन्हें क्रोध आ गया । उन्होंने एक लोढ़ा लेकर दूध-दही के सभी मटके फोड़ दिए और फिर दूसरे घर में जाकर ऊखल पर चढ़ गये तथा बन्दरों को बुला लिया ।

सभी बन्दर कृष्ण के पास आ गये और वे छींके पर का माखन ले-लेकर बन्दरों को लुटाने लगे । जब मैया दूध उतारकर वापस आयीं तो उस स्थान पर लाला को न देखकर चिन्तित हो गयीं । दौड़कर दूसरे घर में गयीं तो वहाँ देखा कि कन्हैया एक ऊखल पर चढ़कर छींके से दही-माखन चुराकर बन्दरों को लुटा रहे हैं । अब मैया को विश्वास हो गया कि गोपियाँ कन्हैया की माखन चोरी की जो शिकायतें करतीं हैं, वह सच है, यह अवश्य ही उनके घर गोरस की चोरी करता होगा । जब यह अपने ही घर में माखन चुरा रहा है तो फिर गोपियों के घर क्यों न माखन चोरी करता होगा ? मैया ने सोच लिया कि आज मैं इसको दण्ड अवश्य दूँगी, अच्छी तरह इसकी खबर लूँगी, नहीं तो यह मानेगा नहीं और बहुत बड़ा चोर बन जायेगा । यशोदाजी चुपके से कन्हैया को पकड़ने के लिए आयीं तो वे झट से ऊखल पर से कूद पड़े और भयभीत होकर भागे । यशोदा मैया कन्हैया को पकड़ने के लिए उनके पीछे दौड़ने लगीं किन्तु स्थूल शरीर होने के कारण वे दौड़ते-दौड़ते थक गयीं । मुख पर स्वेद बिन्दु आ गये । श्रीकृष्ण का हृदय करुणा से द्रवित हो गया, उन्होंने देखा कि मैया बहुत थक गयी हैं तो जानबूझकर अपनी गति को धीमी कर लिया । मैया दौड़ती हुई जल्दी से कन्हैया के पास पहुँच गयीं और उन्हें पकड़ लिया । कन्हैया का हाथ पकड़कर मैया उन्हें डराने-धमकाने लगीं ।

यशोदाजी ने कहा – 'लाला ! जब तू अपने घर में ही चोरी कर रहा है तो फिर मैं गोपियों की बात पर विश्वास कैसे न करूँ ? अवश्य ही तू उनके घरों में जाकर चोरी करता होगा । ब्रज के घर-घर में तूने चोरी का उत्पात मचा रखा है । मैं गोपियों की शिकायत सुनते-सुनते थक गयी हूँ ।' मैया के हाथ में छड़ी देखकर और उनकी डाँट-फटकार सुनकर कन्हैया डर गये । अतः वे अब रोने का नाटक करने लगे । अपनी आँखों को मलते हुए इतनी जोर से रोये कि सारे मुख पर

काजल फ़ैल गया । मैया ने देखा कि लाला बहुत डर गया है तो उन्होंने अपने हाथ से छडी को फेंक दिया किन्तु यह निश्चय कर लिया कि इसे मारूँगी तो नहीं पर कोई न कोई दण्ड तो अवश्य ही दूँगी । चलो, आज इसे रस्सी से बाँध देती हूँ । जब यशोदा मैया कन्हैया को रस्सी से बाँधने लगीं तो वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी । तब उन्होंने दूसरी रस्सी उसमें जोड़ी तो वह भी छोटी पड़ गयी । अब मैया ने घर की सारी रस्सियाँ जोड़ डालीं, यहाँ तक कि पूरे गोकुल की रस्सियाँ जोड़ डालीं, फिर भी वे अपने लाला को बाँध नहीं पायीं ।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ।

(श्रीभागवतजी - १०/९/१८)

जब श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरी मैया का शरीर पसीने से लथपथ हो गया है एवं वे बहुत थक भी गयी हैं तब प्रभु का हृदय दया से भर गया और रस्सी ने श्रीकृष्ण को नहीं बाँधा, उनकी कृपा ने ही उनको बाँध दिया । कृपापरवश, दयापरवश होकर दयालु प्रभु स्वयं ही बँध गये परन्तु यह सौभाग्य लक्ष्मीजी को, ज्ञानियों और कर्मकाण्डियों को प्राप्त नहीं हुआ ।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥

(श्रीभागवतजी - १०/९/२१)

केवल ब्रजभावभावित ब्रजवासी तथा ब्रजभाव जिनमें आ गया, उस भाव से भावित जीवों को ही यह लीला देखने को मिल सकती है और वे इसको समझ सकते हैं, इसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । यह सौभाग्य उन्हीं को मिलता है, जिनका हृदय ब्रजभाव से भावित हो गया हो, ब्रजभाव से एकदम पूर्ण हो गया हो ।

यशोदा मैया ने कन्हैया को ऊखल से बाँध दिया और घर के काम-काज में लग गयीं । गोपालजी ने सोचा कि आज मुझे बँधा तो रहना ही है तो क्यों न यमलार्जुन वृक्षों का भी उद्धार कर दूँ । नारदजी के शाप से कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव वृक्ष योनि को प्राप्त हो गये थे ।

अध्याय – १०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – ये दोनों यमलार्जुन वृक्ष पास-पास जुडवाँ वृक्ष की तरह खड़े थे । यशोदा मैया गोपालजी को रस्सी से एक ऊखल से बाँधकर चली गयीं तो वे ऊखल सहित दोनों वृक्षों के बीच में एक ओर से प्रवेश कर गये तथा दूसरी ओर से निकल गये । जैसे ही वे दूसरी ओर निकले तो ऊखल टेढ़ा होकर अटक गया । दामोदर भगवान् की कमर में रस्सी कसी हुई थी । उन्होंने अपने पीछे लुढकते हुए ऊखल को ज्यों ही तनिक जोर से खींचा, त्यों ही उन वृक्षों की सारी जड़ें उखड गयीं और भीषण ध्वनि करते हुए वे वृक्ष पृथ्वी पर गिर पड़े । इस प्रकार दामोदर भगवान् के द्वारा यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार हो गया ।

बोलो श्रीदामोदर भगवान् की जय ।

उन दोनों वृक्षों में से अग्नि के समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष नलकूबर और मणिग्रीव प्रकट हुए । उन्होंने दामोदर भगवान् को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करते हुए कहा –

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।

स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१०/३८)

हे प्रभो ! हमारी वाणी आपके मंगलमय गुणों का सदा वर्णन करती रहे । हमारे कान सदा आपकी रसमयी कथा के श्रवण में लगे रहें । हमारे हाथ आपकी सेवा में एवं मन आपके चरणकमलों की स्मृति में रम जाएँ । यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है । हमारा मस्तक सबको प्रणाम करने के लिए झुका रहे । संत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं । हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें । इस प्रकार हमारे शरीर का प्रत्येक अवयव, हर इन्द्रिय सदा आपमें ही लगी रहे । यही हम चाहते हैं ।

इस प्रकार भगवान् की स्तुति एवं उनको प्रणाम करके नलकूबर और मणिग्रीव उत्तर दिशा को चले गये ।

अध्याय – ११

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – वृक्षों के गिरने से जो भयंकर ध्वनि हुई थी, उसे सुनकर सभी ब्रजवासी वहाँ दौड़े हुए आये । शीघ्र ही वहाँ गोपियों और ग्वालबालों की बहुत बड़ी भीड़ इकठ्ठा हो गयी । यशोदा मैया भी दौड़ी हुई उस स्थान पर आयीं । नन्दबाबा ने अपने लाला के बन्धन को खोला और उसे गोद में उठा लिया । नन्दबाबा यशोदाजी से बोले – 'अरी यशोदा ! तुम कितनी क्रूर हो । तुमने छोटे से लाला को इतना बड़ा दण्ड दे दिया । इसके कोमल से हाथ हैं । देखो, रस्सी के चिह्न भी इसके हाथों में अंकित हो गये हैं । यह बालक कितना कोमल है । अगर ये विशाल वृक्ष हमारे लाला के ऊपर गिर जाते तो कितना बड़ा अनिष्ट हो जाता ।'

एक दिन कोई फल बेचने वाली गोकुल में फल बेचने आई । वह नन्द भवन के पास पहुँची और पुकारने लगी – 'फल ले लो, मीठे फल

ले लो ।' उसकी पुकार सुनते ही समस्त कर्मों और उपासनाओं के फल को देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हाथों में अनाज लेकर फल खरीदने के लिए दौड़ पड़े । अनाज तो उनके दोनों हाथों से रास्ते में ही नीचे गिर गया परन्तु फल बेचने वाली ने उनके दोनों हाथ फल से भर दिए । भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उसकी फल रखने वाली टोकरी रत्नों से भर दी ।

कुछ लोग सोचते हैं कि रत्न तो खराब चीज है किन्तु ऐसा नहीं है । प्रभु जो कुछ भी दे देते हैं, उसका परिणाम भक्ति है ।

होय अटल जगदीश भजन में ।
अनायास चारेउ फल पावहि ॥

भगवान् के भजन से चारों फल धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

इसी तरह फल बेचने वाली को प्रभु का प्रेम तो मिलेगा ही, साथ ही उसकी टोकरी को उन्होंने रत्नों से भी भर दिया ।

एक दिन श्रीकृष्ण और बलराम बालकों के साथ खेलते-खेलते यमुना तट पर चले गये । यह महावन की लीला है । वहाँ नन्दनन्दन, दाऊ भैया के साथ ब्रह्माण्ड घाट आदि स्थानों पर यमुना तट पर विचरण किया करते थे ।

महावन में आज भी रसखानजी की छतरी बहुत सुन्दर बनी है । वहाँ जाने पर ऐसा लगता है कि आज भी श्यामसुन्दर बाल रूप में यहाँ क्रीड़ा कर रहे हैं ।

अस्तु, खेलते-खेलते श्यामसुन्दर यमुना तट पर पहुँच गये । रोहिणी मैया उन्हें और बलराम जी को बुलाने लगीं क्योंकि उन दोनों ने सुबह से न तो स्नान किया था और न ही कुछ खाया-पिया था ।

नन्द भवन में रोहिणीजी का बड़ा सम्मान था । उन्होंने यशोदाजी से कहा – 'यशोदा ! तुम जाओ और कृष्ण-बलराम को बुलाकर लाओ । बहुत दोपहर हो गयी है । इन बालकों ने कुछ खाया भी नहीं है ।' यशोदाजी यमुना तट पर पहुँचीं और आवाज लगायी – 'अरे कृष्ण ! अरे लाला कन्हैया ! आ जा, आ जा ! अरे, दूध तो पी ले । अब अधिक मत खेल । तू थक गया होगा । राम ! तू तो कन्हैया का बड़ा भाई है, जल्दी आ । सबेरे से तुम लोग खेलने निकल गये हो । देखो, तुम्हारे नन्द बाबा बैठे हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । तुम दोनों के बिना वे भोजन नहीं कर रहे हैं । बालको ! अब तुम लोग भी अपने-अपने घर जाओ । तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं क्या ? अरे कन्हैया और दाऊ ! तुम लोग बिना स्नान किये सुबह से ऐसे ही घूम रहे हो । तुम्हारे सारे शरीर पर मिट्टी भर गयी है ।

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।

(श्रीभागवतजी - १०/११/१८)

अरे मेरे बालको ! कम से कम स्नान तो कर लिया करो ।'

बालक श्यामसुन्दर नहाते नहीं थे । यह छोटे बच्चों की आदत होती है । उन्हें नहाना-धोना प्रिय नहीं लगता है । महापुरुषों ने लिखा है कि जब श्यामसुन्दर स्नान नहीं करते थे तो यशोदा मैया माखन-मिसरी लेकर आतीं और कहतीं कि ले माखन की लौनी ले ले और जल्दी से नहा ले । वे उन्हें माखन मिसरी का लोभ देतीं ताकि किसी प्रकार से लाला नहा ले ।

कर मोदक माखन मिसरी ले,
कुँवर के संग डोलत नन्दरानी ।
मिस कर पकर न्हायो चाहत,
बोलत मधुरी बानी ।

मैया बहुत मीठी वाणी में पुचकारती – 'अरे लाला ! एक लोटा नहा ले । मैं तेरा ब्याह कर दूँगी । तू जल्दी से नहा ले ।'

कनक पटा आँगन में राख्यो ।

सोने के पटरे पर यशोदाजी ने कन्हैया को बैठाया

शीत उष्ण धरयो पानी ।

मैया ने शीतल और गरम जल मिलाया

कनक कटोरा सोंधो उबटन,
चन्दन कांकटी आनी ।

सोने का कटोरा है, उसमें उबटना है और लाला के बाल झाड़ने के लिए चन्दन की कंघी लायी हैं ।

यों लायीं मज्जन हित जननी ।

जब कन्हैया को फुसलाकर मैया पानी लायीं तो कन्हैया समझ गये कि अब मैया पानी डालने वाली हैं ।

चित चतुराई ठानी ।
मन में मतों करत,
उठ भाजे तुरत केस उलझानी ।

जैसे ही श्यामसुन्दर ने देखा कि मैया लोटा से पानी डालने ही वाली हैं तो तुरन्त उठकर भाग गये । लोटा वैसा का वैसा यशोदाजी के हाथ में ही रह गया । जब कन्हैया सामने जाकर खड़े हो गये ।

निरखि नयन भर देखत रानी ।

आँख भरकर यशोदा रानी उन्हें देखने लगीं और बोलीं कि यह कैसा चंचल-चपल, कैसा चालाक है । जब तक मैंने लोटा नहीं उठाया

तब तक तो कहता रहा कि हाँ, दुल्हिन लूँगा, हाँ मेरा ब्याह कर देना, ठीक है । ऐसे कहता रहा और जब इसने देख लिया कि लोटे का पानी गिरने वाला है तो तुरन्त भाग गया । यशोदाजी कृष्ण के नेत्रों की ओर देख रही हैं और सोच रही हैं कि यह कहाँ से सब विद्या पढ़ आया ?

निरखि नयन भर देखत रानी ।
शोभा कहत न बानी ।
गात सुचिक्कण यों राजत है,
ज्यों घन तड़ित लपटानी ।

श्यामसुन्दर के चिकने-चिकने नीले अंग हैं । यशोदा रानी सोचने लगीं कि यह तो मेरे चक्कर में नहीं आएगा, बड़ा चंचल है । फिर यशोदा रानी बोलीं – 'अरे मनमोहन ! मेरे पास आओ, मैं एक बात कहूँ, एक गुप्त बात है, मैंने तुझे आज तक नहीं बताई, तुझसे छिपाकर रखी । लाला ! तू यहाँ आ जा तब बताऊँ ।' श्यामसुन्दर बोले – 'मैया ! पहले बता दे ।' मैया ने कहा – 'गुप्त बात यह है कि नन्द बाबा आज एक नया खिलौना लाये हैं । ऐसा दुनिया में कहीं नहीं है । बलराम तक को मैंने नहीं बताया ।' श्यामसुन्दर सोचने लगे कि इसमें कुछ चक्कर है, मैं यदि पास जाऊँगा तो मैया फिर से पानी का लोटा उठाएगी और कोई खिलौना नहीं है । मैं उसके पास जाऊँगा तो तुरन्त मेरे ऊपर पानी डाल देगी । खिलौना आदि कुछ नहीं मिलना है । इसलिए वे भी मैया की बात सुनकर अपना सिर हिलाने लगे और कहने लगे – 'हाँ मैया, बाबा लाये होंगे खिलौना ।' यशोदाजी मन में सोचती हैं कि यह बड़ा चालाक है, मेरे पास नहीं आया । फिर वे बोलीं – 'अच्छा लाला ! तू भले ही मत नहा, मैं तुझसे एक बात कहूँगी । एक राजा का बेटा था, उसकी माँ उसको नहलाने लगी तो वह बीच से उठकर भाग गया । उसकी बात तो सुन ले ।' कन्हैया बोले – 'मैया, उसकी क्या बात है ?' मैया बोली –

राजकुँवर अध न्हातो भाग्यो,
ताकी कहूँ कहानी ।

कन्हैया – 'मैया, फिर उसके साथ क्या हुआ ?'
मैया – 'अरे, बड़ा नुकसान हुआ ।'
कन्हैया – 'क्या नुकसान हुआ मैया ?'
मैया – 'उसकी चोटी घटकर आधी रह गयी ।

(श्यामसुन्दर को अपनी चोटी बढ़ाने की बड़ी इच्छा रहती थी कि बड़े-बड़े बाल हों, उससे बड़ी चोटी बने ।)

सबसे बड़ी बात यह हुई कि ब्याह होने के बाद जब उसकी दुल्हिन आई तो वह अपनी सखियों के साथ बैठकर दिन-रात उसकी हँसी उड़ाती, कहती कि मेरा जो पति है, वह नहाता नहीं है, आचारहीन है, गन्दा रहता है । इस तरह दिन-रात उसकी हँसी उड़ाई जाती । घर में, बस्ती में, ससुराल में सभी जगह न नहाने के कारण उसकी नाक कट गयी । इसलिए कन्हैया, अब तू सोच ले, न नहाने से ऐसा होता है ।

तेरी न बारि रही तनक सी,
दुलहिन देख हँसानी ।

लाला, मेरा क्या, मुझे तो कोई नुकसान नहीं होगा लेकिन नहीं नहायेगा तो दुल्हिन के आने पर तेरी भी नाक कटेगी और मेरी भी कटेगी ।' तेरी दुल्हिन मुझसे कहेगी – 'सासु जी ! तुम्हारे लाला तो इतने गंदे हैं कि नहाते भी नहीं हैं ।'

विष्णुरात गिरिधरन सयाने ।

विष्णुरातजी कहते हैं कि गिरधर नागर वैसे तो बड़े सयाने थे किन्तु दुल्हिन की बात आने पर उनका सब सयानापन चला गया ।

उन्होंने सोचा कि खिलौना मिले चाहे न मिले किन्तु दुल्हिन के नाम पर मुझे घाटा नहीं होना चाहिए । इसलिए कन्हैया बोले – 'अच्छा मैया, तू कहती है तो मैं नहा लूँगा किन्तु दुल्हिन मेरी हँसी न उड़ाये ।'

मैया – 'हाँ, अब देख ले तू लाला, मेरा तो कुछ नहीं जायेगा, भले ही तू मत नहा ।'

कन्हैया – 'नहीं मैया, अब तू कह रही है तो मुझे नहला ही दे ।'

बोलो कन्हैया लाल की जय ।

वही बात शुकदेवजी कहते हैं –

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।

(श्रीभागवतजी - १०/११/१८)

यमुना तट पर खेल रहे कन्हैया से यशोदा मैया कहती हैं – 'बेटा, नहा तो ले । आज तेरा जन्म नक्षत्र है । स्नान करके फिर ब्राह्मणों को दान दे ।'

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं
मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/११/२०)

इस प्रकार यशोदाजी ने एक हाथ से कृष्ण को पकड़ा और दूसरे हाथ से बलराम को पकड़ा तथा दोनों को घर लाकर उन्हें स्नानादि कराया ।

जब महावन में उत्पात होने लगे, बड़े-बड़े असुर वहाँ आने लगे तो नौ नन्दों में उपनन्दजी सबसे बड़े थे, उन्होंने ब्रजवासियों को बुलाकर एक पंचायत की और कहा – 'अब हम लोगों को गोकुल

छोड़कर कहीं और रहना चाहिए । इसका कारण यह है कि पहले तो यहाँ पूतना आई, उसके बाद बड़ा भारी छकड़ा अपने-आप गिर गया, नन्द लाल किसी प्रकार बाल-बाल बचा । इसके बाद तृणावर्त आया । यमलार्जुन वृक्ष गिर पड़े तब भी भगवान् की कृपा से कन्हैया की रक्षा हुई । इसलिए हम लोगों को अब गोकुल छोड़ देना चाहिए ।'

उनकी बात सुनकर ब्रजवासी बोले – 'बाबा ! आप बात तो ठीक कह रहे हैं । यहाँ रहना अब बड़ा कठिन प्रतीत होता है किन्तु हम लोग कहाँ जाकर रहें ?'

उपनन्दजी बोले – 'यहाँ से हम लोग सीधे नन्दीश्वर नहीं जा सकते । नन्दीश्वर और महावन के बीच में कहीं हम लोग रहेंगे ।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/११/२८)

वृन्दावन बड़ा सुन्दर वन है, हम लोग वहीं चलकर रहेंगे ।'

सब गोप बोले – 'ठीक है, अब हम लोगों को वृन्दावन में ही रहना चाहिए ।'

(उपनन्दजी के कहने पर सभी ब्रजवासी पहले वृन्दावन में आये, उसके बाद वे लोग नन्दीश्वर गये । यह प्रकट लीला की बात है ।)

अब यहाँ यह विचार करना चाहिए कि वृन्दावन का स्वरूप क्या है क्योंकि बहुत से लोग इसे जानते नहीं हैं और इसे जानना आवश्यक है । उपनन्दजी ने जिस वृन्दावन का वर्णन किया और जिसमें ब्रजवासी गोकुल से आकर रहे, वह पाँच कोस का सीमित वृन्दावन नहीं है, जैसा कि आजकल के लोग समझते हैं । अनेकों पुराणों के, शास्त्रों के मतानुसार वृन्दावन पाँच योजन अर्थात् बीस कोस (साठ कि.मी.) के विस्तार वाला है ।

बृहद्गौतमीयतंत्र में स्वयं भगवान् ने कहा है –

पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।

यह पाँच योजन का वन मेरा देह है ।

आचार्यों ने भी इस बात को स्वीकार किया है । उन्होंने वृन्दावन के बारे में पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, हरिवंश पुराण आदि के प्रमाणों को माना है । हरिवंश पुराण में कहा गया है –

वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ।

वृन्दावन बहुत सुन्दर वन है, उसमें स्वादिष्ट फलों के अनेकों वृक्ष हैं ।

ब्रजवासियों ने उपनन्द जी से पूछा कि वृन्दावन कैसा है, उसके स्वरूप का कुछ वर्णन कीजिये । उपनन्द जी ने कहा – 'वृन्दावन में ही गोवर्धन पर्वत है, दूर नहीं है, वहीं पर है । **तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान्** । अतः गोवर्धन भी वृन्दावन में है ।'

भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दन्स्येव मन्दरः ॥
मध्ये चास्य महाशाखो न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः ॥
भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ।
तत्र गोवर्द्धनं चैव भण्डीरं च वनस्पतिम् ।
कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥

उपनन्द जी ने जब वृन्दावन का वर्णन किया तो उन्होंने बताया कि वृन्दावन के बीच में एक वट वृक्ष है तथा भाण्डीर वन भी वृन्दावन में है । यमुनाजी वृन्दावन के बीच में बहती हैं ।

स्कन्द पुराण में कहा गया है –

अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरिः ।

वृन्दावन कितना सुन्दर है, जहाँ गोवर्द्धन पर्वत स्थित है । श्रीजीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

श्रीवृन्दावन भूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि सुगन्धिकादयोबहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।

(वैष्णव तोषिणी)

वृन्दावन के ही ये सब पर्वत हैं जैसे नन्दीश्वर अर्थात् नन्दगाँव, अष्टकूट पर्वत (अष्ट महासखियों के पर्वत), वरसानु शब्द से बरसाना बना है जिसका अर्थ है सुन्दर चोटी । बरसाना भी वृन्दावन में है तथा नन्दगाँव भी वृन्दावन में है । इनके अतिरिक्त धवल गिरि घाटा में है, सुवर्ण गिरि (सुनहरा गाँव), सौगन्धिक पर्वत आदि बहुत से पर्वत वृन्दावन में ही हैं ।

इस प्रकार पुराणों में वृन्दावन के जिस स्वरूप का वर्णन किया गया है, उसके अनुसार बरसाना, नन्दगाँव और गोवर्द्धन आदि वृन्दावन में ही हैं ।

रसिकों ने भी लिखा है –

बीस कोस वृन्दा विपिन पुर वृषभानु उदार ।
तामें गह्वर वाटिका जामे नित्य विहार ॥

वृन्दावन बीस कोस का है, जिसमें वृषभानुपुर (बरसाना) है । सभी रसिकों ने ऐसा लिखा है । हरिरामव्यासजी ने लिखा है –

सुभग गोरी के गोरे पाँय ।
श्याम काम बस जिनहिं हाथ दै, राखत कंठ लगाय ।

किशोरीजी के चरणों का वर्णन है –

कोटि चन्द नख मणि पर वारौं, गति पर हंस गिराय ।

किशोरीजी के श्रीनखों पर करोड़ों चन्द्रमा न्योछावर कर दो । जब वे चलती हैं तो उनकी चाल पर हंसों को न्योछावर करके फेंक दो ।

नूपुर धुनि पर मुरली वारौं, यावक पर ब्रजराय ।

लोग कहते हैं कि श्यामसुन्दर बहुत अच्छी बाँसुरी बजाते हैं किन्तु श्रीजी के नूपुरों की ध्वनि पर तो वंशी न्यौछावर है । और तो क्या कहें, किशोरीजी के चरणों में जो महावर लगा है, उस पर तो नन्दनन्दन को भी न्यौछावर कर दो ।

नाचत रास रंग मह दरस सुधंग दिखावत भाय ।
जमुना जल से दूर करत रज चरनन पंक छुटाय ।

जब श्रीजी रास में नृत्य करती हैं तो उनके चरणों में ब्रज रज लग जाती है, यह देखकर श्यामसुन्दर स्वयं उनके चरणों को अपने हाथों में लेकर यमुना जल से चरणों को धोते हैं । व्यासजी वृन्दावन की लीला गा रहे हैं । यह कैसा वृन्दावन है ?

धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माय ।
जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत, पति सों रति पछताय ॥
जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत रसनि अघाय ।
ताके शरण रहत काको डर, कहत 'व्यास' समुझाय ॥

श्रीव्यासजीमहाराज कहते हैं – श्रीवृषभानुजी धन्य हैं, बरसाना धन्य है, राधारानी की माँ धन्य हैं । बरसाने में नटनागरी राधारानी प्रकट हुईं, उनके चरण कमलों के स्पर्श से ही वृन्दावन में रस बरसता है ।

रसिकों ने यह भी लिखा है कि लाड़िलीजी के चरण वृन्दावन में ही मिलते हैं और वृन्दावन में निवास करने से ही लाड़िलीजी के

चरणकमलों की प्राप्ति होती है यानी इनका आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् जब वृन्दावन जाओगे तब राधारानी मिलेंगी और राधारानी के चरणकमलों का ध्यान किये बिना वृन्दावन धाम की प्राप्ति नहीं होगी ।

रसिकों ने कहा है कि 'राधा' तत्त्व कहाँ मिलेगा तो वे लिखते हैं –

यद् वृन्दावनमात्र गोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरो –
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद् ध्यानगम् ।
यत् प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकम्
तद् रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - ७६)

वृन्दावन में ही उनके दर्शन होते हैं । शिव-शुकादि जिस राधा तत्त्व को नहीं पा सकते, उसकी प्राप्ति वृन्दावन में होती है । जो नित्य किशोर तत्त्व है, उस राधा तत्त्व को देखने के लिए मेरी आँखें व्याकुल हो रही हैं ।

वृन्दावन में ही श्रीजी मिलेंगी तो वृन्दावन कैसे मिलेगा तब रसिकों ने उत्तर दिया –

यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरम् ।

जो श्रीराधारानी की किंकरी हैं, उन्हीं को नित्य वृन्दावन धाम की प्राप्ति होगी ।

वृन्दावन में राधारानी हैं और राधारानी में वृन्दावन है, यह प्रतिज्ञा तभी पूरी होगी जब प्राचीन मत माना जायेगा कि वृन्दावन में श्रीजी हैं और इसी वृन्दावन धाम की प्रथम वन्दना करी है ग्रन्थकारों ने –

तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ।

इसलिए श्रीमद्भागवत में इसी वृन्दावन का वर्णन किया गया है । ऐसा आचार्यों ने लिखा है । वृन्दावन के अन्तर्गत बरसाना, गह्वर वन आदि को भी सभी आचार्यों ने गाया है । जैसे श्री हितहरिवंश महाप्रभुजी का पद है –

देख सखी राधा पिय केलि ।

यह हित चतुरासी जी के नित्य विहार का पद है – 'हे सखि ! राधा-श्यामसुन्दर की लीला देख ।' कहाँ देखें ? इनकी गुप्त लीला कहाँ होती है ?

ये दोउ खोर खिरक गिरि गह्वर, विहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि ।

अगर कोई इस पद को ध्यान से देखे तो इसमें जिन चारों स्थानों पर श्यामा-श्याम के विहार का वर्णन किया गया है तो ये चार स्थान पाँच कोस के वृन्दावन में नहीं हैं । खोर – दुनिया में प्रसिद्ध खोर बरसाने में ही है – साँकरी खोर । अगर कोई खोर का अर्थ गली लगा भी ले तो खिरक कहाँ है ? यह है वृषभानु खेरा । द्वापर के कृष्ण लीला काल में वहाँ एक गोपी रहती थी । गिरिराज पूजन के प्रसंग में उसने यहीं बरसाने में ही गिरिराजजी को भोग अर्पित किया तो गिरिराज महाराज ने बरसाने के निकट स्थित वृषभानु खेरा तक अपने हाथ फैलाकर उसके अर्पित भोग को ग्रहण कर लिया । ऊँचा गाँव और प्रेम सरोवर के बीच में है वृषभानु खेरा या खिरक । खिरक और कहीं नहीं है । अगर पाँच कोस के वृन्दावन में कोई खोर और खिरक दोनों मान ले तो गिरि कहाँ है ? गिरि माने पर्वत । पञ्च कोसीय वृन्दावन में तो कोई गिरि (पर्वत) है ही नहीं । यह गिरि है ब्रह्माचल गिरि, जो बरसाने में है । इसी प्रकार गह्वर वन भी बरसाने में ही है । खोर,

खिरक, गिरि, गह्वर – ये चारों स्थान बरसाने में ही हैं । साँकरी खोर और गह्वर वन की लीला स्वामी हरिदासजी ने भी गाई है और हितहरिवंश महाप्रभुजी ने भी गाई है ।

स्वामी हरिदासजी ने साँकरी खोर की दान लीला भी गाई है –

हमारो दान मारयो इन ।
रात बिरात काहू की बेटी.. ।

गह्वरवन की लीला भी उन्होंने गाई है –

प्यारी जू आगे चल गह्वर वन भीतर जहाँ बोलै कोयल री ।
अति ही विचित्र फूल पत्रन की सेज्या रची,
रुचिर सँवारी तहाँ तूब सोइल री ।
छिन छिन पल पल तेरी ए कहानी तुव मग जोइल री ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत छबीलौ काम रस भोइल री ।

इस तरह बरसाने के लीला स्थलों की महिमा सभी आचार्यों ने गाई है । इतना होने पर भी प्रश्न उठता है कि पाँच कोस के स्थान को ही वृन्दावन क्यों माना जाता है ? इसका उत्तर भी आचार्यों ने दिया है । बृहद् गौतमीय तन्त्र में पञ्च योजन वृन्दावन का वर्णन किया गया है ।

पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी ॥

इस पाँच योजन के वृन्दावन में भी सुषुम्णा नाड़ी के रूप में यमुनाजी का वर्णन है ।

पाँच कोस के स्थान को ही वृन्दावन क्यों कहा जाता है तो इसका उत्तर है – **'सर्वमुख्यत्वविवक्षया'**

पाँच कोस की यह भूमि महारास की भूमि है, इसलिए इसे मुख्यता दी गयी है ।

यह बड़ी संगत बात है । वस्तुतः तो वृन्दावन बीस कोस का है । बरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन आदि सब वृन्दावन में ही हैं ।

अस्तु, उपनन्दजी के परामर्श से सभी ब्रजवासी गोकुल छोड़कर वृन्दावन में आये ।

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥

(श्रीभागवतजी - १०/११/३६)

वृन्दावन, वहाँ स्थित गोवर्द्धन पर्वत और यमुनाजी के सुन्दर पुलिनों को देखकर श्रीकृष्ण और बलराम के हृदय में उत्तम प्रीति का उदय हुआ । राम और कृष्ण की जोड़ी के वृन्दावन में आने से बड़ा आनन्द हुआ । यहाँ आने के थोड़े ही दिनों के बाद वे वत्सपाल बन गये । गोवंश पालने वाले दो प्रकार के होते हैं । एक तो वत्स पाल, दूसरे गोपाल । छोटी आयु के ग्वारिया तो बछड़ों को चराते हैं, उन्हें वत्सपाल कहते हैं और जो बड़ी आयु के ग्वारिया होते हैं, वे वन-वन में गायों को चराते हैं, उन्हें गोपाल कहते हैं । वृन्दावन में आने पर कृष्ण-बलराम वत्सपाल बन गये, बछड़े चराने लग गये । अभी गोपाल नहीं बने । बछड़े चराते समय वे अपनी आयु के ग्वालबालों के साथ अनेक प्रकार के खेल खेलने लगे, जिनका वर्णन कोई नहीं कर सकता है । कहीं वे बाँसुरी बजाते, कहीं गोलियाँ फेंकते तो कहीं पैरों के घुँघरू पर ताल देते एवं कहीं बनावटी गाय और बैल बनकर खेलते । कहीं मोर, बन्दर आदि पशु-पक्षियों की बोलियाँ निकालते । इस प्रकार वे साधारण बालकों के समान खेलते रहते ।

एक दिन की बात है, श्रीकृष्ण और बलराम जब ग्वाल बालों के साथ बछड़े चरा रहे थे तो उन्हें मारने की इच्छा से बछड़ा का रूप

धारण करके वत्सासुर आया । भगवान् श्रीकृष्ण समझ गये कि यह दैत्य है । उन्होंने बलरामजी को उस बछड़े का रूप बनाये दैत्य को दिखाते हुए कहा – 'दाऊ भैया ! ये जो नया-नया बछड़ा आया है, इसका ध्यान रखना ।' बलरामजी समझ गये और बोले – 'ठीक है, ठीक है । तभी तो मैंने सोचा कि यह कैसा बछड़ा है, इसकी आकृति भी अन्य बछड़ों से न्यारी है और इसकी चाल भी सबसे न्यारी है ।' श्यामसुन्दर ने सोचा कि इसको तुरन्त ही समाप्त कर देना चाहिए, नहीं तो यह अन्य बछड़ों को भी मारेगा । उन्होंने वत्सासुर के पूँछ समेत दोनों पैर पकड़कर उसे घुमाया और बोले – 'तू पहली बार आया है तो ब्रज को अच्छी तरह देख ले । चारों ओर देख ले, कैसी लताएँ झूम रही हैं ।' इस प्रकार उन्होंने उस बछड़ा रूप धारी दैत्य को बार-बार घुमा-घुमाकर एक बड़े से कैथे के पेड़ पर पटक दिया । उस असुर के प्राण निकल गये । जब श्यामसुन्दर वत्सासुर को पकड़कर घुमा रहे थे, उस समय वह दैत्य अपने असली रूप में प्रकट हो गया था । ग्वालबाल अपने प्रिय सखा की लीला को देख रहे थे, उन्होंने कहा – 'अब यह असुर कन्हैया के हाथों में आ गया है तो बचेगा नहीं ।' जब उसके प्राण निकल गये तो सभी ग्वाल-बाल 'साधु-साधु' वाह कृष्ण, वाह कृष्ण कहने लगे ।

बोलो कन्हैया लाल की जय ।

वत्सासुर के मरने पर देवता बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर फूल बरसाने लगे ।

इस कथा के पीछे एक बहुत बड़ी शिक्षा भी है । मुर नामक राक्षस का पुत्र प्रमील था । एक दिन वह वसिष्ठ मुनि के आश्रम पर गया । वहाँ उसने मुनि की नन्दिनी गाय को देखा । वह कामधेनु ही थी । एक लाख मनुष्य वसिष्ठजी के आश्रम पर पहुँच जाते तो उसकी

कृपा से सबके लिए प्रबंध हो जाता था । रहने को मकान, खाने-पीने की सामग्री आदि सबकी व्यवस्था हो जाती थी । प्रमील दैत्य ने सोचा कि ऐसे तो मुझे यह गाय मिलेगी नहीं, अतः नन्दिनी को लेने की इच्छा से उसने ब्राह्मण का रूप बनाया और वसिष्ठ जी के पास जाकर बोला – 'मैं ब्राह्मण हूँ, आपके पास कुछ माँगने आया हूँ ।' वसिष्ठजी समझ गये कि यह दैत्य है और मुझे ही ठगने के लिए आ गया ।

प्रमील ब्राह्मण के वेष में वसिष्ठजी से बोला कि आप मुझे अपनी यह गाय दे दीजिये । बाद में उसे नन्दिनी गाय ने ही बछड़ा बनने का शाप दे दिया ।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को अपनी सामर्थ्य और आवश्यकता से अधिक वस्तु पाने की इच्छा और चेष्टा नहीं करना चाहिए । साथ ही ढोंग-पाखण्ड भी नहीं करना चाहिए । जब इस दैत्य को शाप मिला तो वह वसिष्ठ मुनि और नन्दिनी गौ से क्षमा माँगने लगा और अपने कल्याण की प्रार्थना करने लगा । नन्दिनी ने कहा – 'द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण के हाथ से तेरी मुक्ति होगी ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक दिन की बात है, सभी ग्वाल-बाल कृष्ण-बलराम के साथ बछड़े चराने के लिए वन में गये । बछड़े प्यासे थे, अतः वे बछड़ों को पानी पिलाने के लिए एक सरोवर पर ले गये । ठाकुरजी बछड़ों को खिलाते-पिलाते, उनकी हर तरह से देखभाल करते थे । ग्वालबालों ने देखा कि उस सरोवर के किनारे बहुत बड़ा जीव बैठा हुआ था । ग्वालबाल उसे देखकर डर गये और श्यामसुन्दर से बोले – 'अरे कन्हैया ! यह कौन सा जीव बैठा हुआ है, पहाड़ की तरह बड़ा इसका शरीर है । यह तो कोई बवाल है, तू ही चलकर देख कि यह कौन है ?'

वह बकासुर नामक बड़ा भारी दैत्य था, जो बगुले का रूप बनाकर आया था । श्यामसुन्दर उसे देखने के लिए गये । वह कंस

का भेजा हुआ असुर था और सरोवर के किनारे बैठकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था । कंस श्रीकृष्ण को मारने के लिये किसी न किसी असुर को भेजता रहता था । जो भी असुर आता, कंस से कहता था कि मैं कृष्ण को मारकर आऊँगा । बकासुर भी कंस के सामने कृष्ण को मारने की प्रतिज्ञा करके आया था । सभी सखाओं ने कृष्ण को आगे कर दिया और बोले – 'लाला ! तू ही आगे चल क्योंकि यदि वह कोई असुर हुआ तो तू ही उसे मार सकता है, हम लोगों के बस की यह बात नहीं है ।' कृष्ण बोले – 'ठीक है, मैं आगे चलता हूँ । तुम लोग मेरे पीछे हो जाओ, मैं देखता हूँ यह कौन है ?' ऐसा कहकर कृष्ण अकेले ही उस असुर के पास चले गये । अब तो बकासुर बड़ा प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि यह तो बहुत बढ़िया है कि मेरा असली शत्रु स्वयं ही चलकर मेरे पास आ गया है । पहले मैं इसी को मारता हूँ, जब राजा मर जायेगा तो सेना तो स्वयं ही मृतक हो जाएगी । ऐसा सोचकर उसने कृष्ण को पकड़ने के लिए अपनी चोंच फैलाई । बगुला किसी तालाब में मछली पकड़ने के लिए ध्यान लगाकर खड़ा रहता है । जैसे ही उसे मछली दिखाई देती है, चोंच से ऐसा प्रहार करता है कि मछली बड़ी फुर्तीली होती है तब भी वह उसे पकड़कर निगल लेता है । इसी प्रकार बकासुर ने भी बड़ी फुर्ती के साथ श्यामसुन्दर को झपट कर निगल लिया । जब बकासुर उन्हें निगल गया तो यह भगवान् की लीला शक्ति है कि बलरामजी भी उदास हो गये और कहने लगे – 'हाय-हाय, कृष्ण को तो यह असुर खा गया । कृष्ण तो समाप्त हो गया ।' कृष्ण के सभी सखा भी उन्हें बकासुर द्वारा निगल लिए जाने पर प्राण रहित हो गये । **विचेतसः** - मूर्च्छित से हो गये । उधर बकासुर के मुख में जाकर श्रीकृष्ण ने विचार किया कि मुझे बाहर निकलना चाहिए क्योंकि मेरे सभी सखा और दाऊ भैया भी मेरे बिना बहुत दुखी हो रहे हैं । इधर बकासुर जब कृष्ण को निगल गया तो धीरे-धीरे गले से नीचे उतारने का प्रयास

करने लगा । बगुले के दाँत नहीं होते हैं, वह अपने शिकार को चोंच से निगलकर गले के भीतर सरकाता हुआ पेट में डाल लेता है । इसी प्रकार बकासुर भी जब श्यामसुन्दर को गले के द्वारा पेट के भीतर ले जाने का प्रयास करने लगा तो वे उसके गले में ही अटककर अग्नि रूप हो गये । अब बकासुर सोचने लगा कि यह कृष्ण है या मैंने आग को निगल लिया है, ये है क्या बवाल ? अब उसका मुख और कण्ठ आग से जलने लगा । कण्ठ जलने लगेगा तो जीव की मृत्यु हो जाएगी । उसने सोचा कि जल्दी से मुझे इसको वमन (उल्टी) कर देना चाहिए, नहीं तो यह मेरे पूरे शरीर को जला देगा । ऐसा सोचकर उसने कृष्ण को अपनी चोंच के बाहर उगल दिया और कृष्ण बाहर आ गये । अब क्रोध के कारण बकासुर ठाकुरजी के शरीर पर अपनी तीखी चोंच से प्रहार करने लगा । ठाकुरजी ने सोचा कि मारने को तो मैं इसके मुख के भीतर ही इसे मार सकता था किन्तु अब बाहर इसे मारकर अपने सखाओं को कौतुक दिखाना चाहिए । इनको दिखाकर मैं इसे मारूँगा तो ये बड़े प्रसन्न होंगे, इन्हें बड़ा मजा आएगा । श्यामसुन्दर तो लीलाधारी हैं, अपने भक्तों को सुखी करने के लिए ही तो वे लीला करते हैं । अतः जब बकासुर श्रीकृष्ण पर अपनी चोंच से प्रहार करने लगा तो उन्होंने अपने दोनों हाथों से उसके चोंच के दोनों हिस्सों को पकड़ा । सब ग्वालबाल चिल्लाने लगे – 'कन्हैया ! अबकी बार इसे छोड़ना मत, नहीं तो फिर से तुझे यह निगल जायेगा । इसे अच्छी तरह मारो, हम लोग भी आ रहे हैं ।' ठाकुरजी ने बकासुर की ऊपर और नीचे की चोंच को पकड़कर इस प्रकार चीर डाला जैसे चटाई बनाने वाला घास के वीरण को चीर देता है ।

पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया
मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/११/५१)

सभी ग्वालबाल और देवगण बड़े प्रसन्न हुए और श्यामसुन्दर की जय जयकार करने लगे – बोलो कन्हैया लाल की जय ।

अब इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है, इसे बकासुर के पूर्व जन्म की कथा से समझो । हयग्रीव नामक दैत्य का पुत्र था उत्कल । वह बड़ा बलवान था । एक दिन वह गंगा सागर संगम पर जाजलि मुनि के आश्रम के समीप गया और पानी में बंसी डालकर मछली पकड़ने और खाने लगा । मुनि ने उसे बहुत मना किया किन्तु उसने उनकी बात नहीं मानी । तब उन्होंने उसे बगुला बनने का शाप दे दिया । शाप मिलने पर जब उसने क्षमा माँगी तो मुनि ने वर भी दिया कि भगवान् श्रीकृष्ण के हाथों तेरा उद्धार हो जायेगा । भाव यह है कि संत-महात्माओं के आश्रम पर सावधानी से जाना चाहिए । लोग ब्रज में आते हैं । वृन्दावन, बरसाना, गोवर्धन, नंदगाँव आदि स्थलों पर जाते हैं तो वहाँ साधु-संत, भक्तगण रहते हैं । उनके आश्रम में जाने पर शांति के साथ आचरण करना चाहिए । चिड़ियाघर की तरह वहाँ नहीं जाना चाहिए । तीर्थों में, धाम में जाने पर संयम के साथ वहाँ जाना चाहिए, कोई उपद्रव नहीं करना चाहिए । हिंसा और क्रोध से वहाँ बचना चाहिए । भाव के साथ वहाँ स्नान,दर्शन, परिक्रमा आदि करके चुपचाप चले जाना चाहिए । पवित्र स्थलों पर जो उपद्रव करता है, ऊधम-दंगा आदि करता है, उसे अगले जन्म में बकासुर ही बनना पड़ता है ।

कथाओं में शिक्षा है, उस शिक्षा को गाँठ बाँधकर रखना चाहिए । भगवद् धामों में जाकर कभी ऊधम मत करो, वहाँ बड़ी पवित्रता, दीनता-विनम्रता के साथ जाओ । तीर्थों-धामों में भावुकता के साथ आचरण करो ।

अस्तु, बकासुर के वध की घटना जब ब्रजवासियों ने सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । नन्द बाबा ने अपने कन्हैया को हृदय से

लिपटा लिया और कहने लगे – 'मेरे बालक के ऊपर बार-बार मृत्यु के संकट आये किन्तु भगवान् नारायण की कृपा से हर बार उसकी रक्षा हुई ।'

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने ब्रज में पाँच वर्ष बिता दिए । पाँच वर्ष की अवस्था को कुमार अवस्था कहते हैं । नौ वर्ष तक की अवस्था को पौगंड कहा जाता है । अब कन्हैया की पौगंड अवस्था की लीलाओं का आरम्भ होगा ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं के साथ ब्रज में सख्य-रस की बहुत सी लीलायें कीं ।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/११/५९)

कृष्ण-बलराम ग्वालबालों के साथ कभी आँख-मिचौनी खेलते तो कभी पुल बाँधते । कभी यमुनाजी के ऊपर पुल बाँधते तो कभी किसी सरोवर पर ।

वल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में लिखा है –

रामावतारे ह्येक एव बन्धः कृतः एकैव सीतेति अत्र यमुनादिषु बहूनेव बन्धान् करोति ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज में सैकड़ों पुल बनाये । रामावतार में तो उन्होंने एक ही पुल बनाया था । वहाँ से उन्हें पुल बनाने का अभ्यास हो गया । ब्रज में तो उन्होंने ग्वालबालों के साथ मिलकर कई पुल बनाये । कामवन में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा ब्रजवासियों को रामलीला का दर्शन कराने पर सेतु बन्ध लीला की गयी थी । उसका दर्शन आज भी कामवन में भक्तों को होता है ।

अध्याय – १२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक दिन श्यामसुन्दर वन में ही कलेवा करने के विचार से बहुत सबेरे ही उठ गये और अपने सखाओं से बोले – 'मित्रो ! आज हम लोग कलेऊ घर में न करके वन में करेंगे ।' इसके लिए कन्हैया ने रात को ही सब ग्वालबालों को बता दिया था कि हम लोग वन में भोजन करेंगे तो तुम सब अपने-अपने घरों से खाद्य पदार्थ बनवाकर ले आना । प्रातः काल जल्दी उठकर श्यामसुन्दर ने ग्वालबालों को जगाने के लिए सिंगी बजाई । उसे सुनकर गोपबालकों की मण्डली अपने-अपने बछड़ों को आगे करके वन की ओर चल दी ।

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः ।

कृष्ण के सैकड़ों-हजारों सखा वन की ओर चल दिए । वे कैसे हैं ?

'सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः'

सबके साथ छींके हैं । उनमें बढ़िया-बढ़िया व्यंजन हैं । सभी बालकों की माताओं ने अनेकों प्रकार के पकवान बनाकर छींकों में रख दिए हैं ।

स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्
वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ।

(श्रीभागवतजी - १०/१२/२)

आचार्यगण कहते हैं कि ये मत समझो कि वृन्दावन में लाखों ग्वालबाल और लाखों बछड़े कैसे आ जायेंगे ? इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि यह लीलाशक्ति की विचित्रता है । कुछ आचार्यों ने वृन्दावन को बीस कोस का माना है, कुछ ने सोलह कोस का माना है ।

सोलह कोस का वृन्दावन मानने वाले चौथे-पाँचवें आचार्य अपनी टीका में लिखते हैं कि सोलह कोस के वृन्दावन में इतने सारे ग्वालबाल और बछड़े कैसे आ सकते हैं तो वे कहते हैं कि यह भगवान् की लीलाशक्ति की विचित्रता है । जब ब्रह्माजी को मोह हुआ तो भगवान् ने उन्हें अपने ही शरीर में अनन्त ब्रह्माण्ड दिखा दिए । उसी तरह लीलाशक्ति की विचित्रता से सब कुछ सम्भव है ।

जब ग्वाल सखा श्रीकृष्ण के साथ वन को चल दिए तो उन ग्वारियाओं की क्रीड़ा आरम्भ हुई । पहले तो उन्होंने चोरी लीला की । कोई किसी का छींका चुरा लेता तो कोई किसी के लड्डू चुरा लेता । कोई किसी की छाछ पी लेता ।

'मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्' (श्रीभागवतजी - १०/१२/५)

ग्वालबाल एक दूसरे के कलेऊ के छींके चुरा लेते थे और जब पता लग जाता था तो एक दूसरे से कहते – 'अच्छा, तूने मेरा छींका चुराया है ।' वह समझ जाता कि यह मुझसे छींका छीन लेगा तो वह उसे उठाकर दूसरे सखा के पास फेंक देता ।

ये भगवान् की नित्य क्रीड़ा है । अपने धाम में भगवान् अपने भक्तों के साथ ऐसे खेल खेलते हैं । इस प्रकार एक दूसरे का छींका चुराकर दूसरे को फेंककर सब सखा आपस में हँसने लगते थे । कभी-कभी श्यामसुन्दर वन की शोभा देखने के लिए दूर चले जाते तो सखाओं का उनके प्रति ऐसा प्रेम था कि वे आपस में कहते – 'बताओ, कन्हैया को कौन पहले छुएगा ?' कोई कहता – 'मैं पहले छुऊँगा,' दूसरा कहता – 'मैं पहले छुऊँगा ।' इस प्रकार आपस में होड़ करके सब के सब ग्वालबाल श्रीकृष्ण को छूने के लिए दौड़ पड़ते । श्यामसुन्दर की देखा-देखी सभी ग्वालबाल बाँसुरी बजाते । एक सखा ने श्यामसुन्दर से कहा – 'लाला ! ये मत समझना कि तू ही

बंसी बजाता है, तू ही बंसी वारा है । मेरे पास तो वेणु है, मैं वेणु वाला हूँ ।'

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः श्रृङ्गाणि केचन ।
केचिद् भृंङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१२/७)

कोई ग्वालबाल वन से बड़ा सा बाँस तोड़कर लाया और उसका बंसा बनाकर बजाने लगा, उसे देखकर अन्य भी बहुत से गोपबालकों ने ऐसा ही किया । उनमें से एक सखा कृष्ण से बोला – 'देख लाला ! तू ये मत समझना कि मैं ही मुरलीधर हूँ । मैं तो बंसाधर हूँ ।'

ग्वारियाओं की क्रीड़ा में ऐसा ही आनन्द होता है । वह ग्वाल अपना बंसा लेकर बजाने लगा । दूसरा ग्वाल सखा उससे बोला – 'चल-चल ! मेरी सिंगी देख, कितनी बढ़िया बजती है, इसके सामने बंसी क्या चीज है ?' ऐसा कहकर वह उस सखा के मुँह पर सिंगी बजाने लगा । वन में कहीं भौंरे गुंजार कर रहे थे तो कुछ ग्वालबाल उनके पास जाकर उन्हीं की गुनगुनाहट में अपना स्वर निकालने लगे । यह देखकर सब सखा हँसने लगे और कहा कि तूने भौंरे के सुर में अपना सुर बढ़िया मिलाया । वे कृष्ण से कहने लगे – 'कन्हैया, असली गवैया तो ये ही हैं । देख, इन्होंने भौरों के सुर में अपना सुर मिला दिया ।' कृष्ण बोले – 'ठीक बात है, मैंने मान लिया, ये श्रेष्ठ गायक हैं ।' एक बालक बोला – 'अरे, ये क्या गवैया है, भौंरे के सुर में सुर मिलाता है, भौंरा तो बहुत खराब जीव है । मेरा सुर देख ।' वहाँ कुछ कोयलें बोल रही थीं, वह बालक जाकर कोयल की ध्वनि का अनुकरण करता हुआ कुहू-कुहू करने लगा और बोला – 'देख, मेरा

गला कोयल से भी अधिक सुरीला है ।' ये ब्रज की आनन्द भरी लीलायें हैं । ऐसी लीलायें ब्रज के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हैं ।

'विच्छायाभिः प्रधावन्तो' – आकाश में पक्षी उड़ रहे थे, उनकी छाया नीचे धरती पर पड़ रही थी तो कुछ बालक उस छाया से होड़ करके उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । बालक वही है जो निरर्थक क्रिया करे, उसी का नाम खेल है । इसी में आनन्द है । सामने हंस दिखाई पड़े तो कुछ बालक हंस की चाल की नक़ल करते हुए उसकी तरह चलने लगे और दूसरे बालकों से बोले – 'अरे, तू मेरी चाल देख ।'

'गच्छन्तः साधुहंसकैः । बकैरूपविशन्तश्च' – कुछ बालकों ने देखा कि सरोवर के किनारे बगुला आँख मूँदकर बैठा है तो वे भी बगुले की नकल करते हुए आँख मूँदकर ध्यान लगाकर बैठ गये । दूसरे बालक कहने लगे – 'देखो, ये बगुला भगत बैठे हुए हैं, ढोंगी बैठे हुए हैं ।' किन्तु वे बालक अपनी आँख नहीं खोल रहे हैं, ऐसा लग रहा है जैसे उन्हें समाधि लग गयी हो । कुछ बालकों ने मोरों को नाचते हुए देखा तो कृष्ण से बोले – 'कन्हैया, अब देख मैं अच्छा नाचता हूँ कि मोर ।' ऐसा कहकर वे अपने सखा श्यामसुन्दर को हँसाने के लिए अपना पटुका खोलकर मोर की तरह नाचने लगे । सभी बालक हँसने लगे और 'वाह-वाह' करने लगे । वहाँ वृक्ष पर एक बहुत मोटा बन्दर बैठा हुआ था । एक बालक गया और उसकी पूँछ पकड़कर लटक गया । बन्दर खों-खों करने लगा तो अन्य बालक डरकर भाग गये और कहने लगे – 'अरे, बन्दर ने काट लिया, काट लिया, छोड़ नहीं रहा है ।' **विकर्षन्तः कीशबालान्** । कोई बालक बंदरों की तरह पेड़ पर चढ़ने लगे, कोई बालक कुँए पर जाकर आवाज लगा रहे हैं – 'ए मूर्ख ।' अब तो कुँए से भी उसकी प्रतिध्वनि आने लगी – 'ए मूर्ख ।' कुछ बालक बोले – 'ए गधे' तो कुयें से भी आवाज आई – 'ए गधे ।' कुछ बालक बोले – 'चुप रह' तो कुयें से भी यही आवाज आई – 'चुप

रह ।' अपनी आवाज की प्रतिध्वनि सुनकर सब बालक जोर-जोर से हँसने लगे । **'शपन्तश्च प्रतिस्वनान्'** - कुयें में एक दूसरे को गाली देकर फिर उसकी प्रतिध्वनि सुनकर सभी बालक बहुत हँसते और 'वाह-वाह' करते । वे कहते – 'इन्होंने यह बढ़िया खेल दिखाया, यह तो नया खेल बहुत अच्छा है ।'

श्रीशुकदेव जी कहते हैं –

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१२/११)

भगवान् के तीन स्वरूप हैं । जो ज्ञानी हैं, उनके लिए भगवान् ब्रह्मसुख की अनुभूति हैं । ऐसा मत समझना कि ग्वालबालों के साथ यह हुल्लड़ कर रहा है तो इसका रूप बदल गया है । यही भगवान् रूप से अपने भक्तों का दास बन जाता है और जो संसार के कर्मी लोग हैं, इनको यह साधारण बालक प्रतीत होता है अर्थात् जो शुष्क कर्मकाण्डी हैं, भक्ति की महिमा नहीं जानते हैं, उनको यह श्रीकृष्ण साधारण बालक की तरह प्रतीत होते हैं । **'साकं विजह्रुः'** - ऐसे प्रभु के साथ ब्रज के ग्वालबाल खेल रहे हैं अर्थात् ज्ञानी को यह अधिकार नहीं है कि भगवान् के प्रेमी भक्तों की तरह उनके साथ विहार करे । यह अधिकार किसी को नहीं है । यह अधिकार तो केवल इन ब्रज के ग्वालबालों को है जो भगवान् के साथ विहार कर रहे हैं, **'कृतपुण्यपुञ्जाः'** – इन्होंने बहुत पुण्य किये हैं । पुण्य पुञ्ज का अर्थ है सुन्दर कृपा वाले अर्थात् भगवद् कृपा प्राप्त । दूसरे आचार्य ने पुण्यपुञ्जाः का अर्थ किया है कि जो भगवान् पुण्य से नहीं मिलते हैं । पुण्य कई प्रकार का होता है । एक पुण्य तो वह है जैसे कि साधारण

लोग मंदिर में जाते हैं, सौ रुपये वहाँ चढ़ाते हैं और फिर देखते हैं कि कोई देख रहा है या नहीं । ऐसे लोग दुनिया को दिखाने के लिए पुण्य करते हैं । ऐसा पुण्य मनुष्य को भगवान् से नहीं मिला सकता । एक पुण्य होता है हरिप्रीत्यर्थ अर्थात् जो केवल प्रभु की प्रसन्नता के लिए इस तरह किया जाता है कि कोई दूसरा व्यक्ति उसे न जान सके । ये ग्वालबाल अपने पूर्व जन्मों में ऐसा ही पुण्य करके आये हैं और आज भगवान् के साथ विहार कर रहे हैं ।

यत्पादपांसुः बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिः योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१२/१२)

जिन भगवान् के चरणकमलों की रज को अनेक जन्मों तक कष्ट उठाकर अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाले योगी भी नहीं प्राप्त कर सकते, वही भगवान् जिन ग्वालबालों के साथ ब्रज में ऐसे खेल खेलते हैं, उन ब्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा क्या कही जाए ? तीनों लोकों में कोई भी ब्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता । इन ब्रजवासियों की चरण रज प्राप्त हो जाए, वही बहुत है ।

(ब्रजवासियों के प्रति कभी दुर्भाव नहीं करना चाहिए । बाहर के बहुत से लोग ब्रज में आकर ब्रजवासियों में दुर्भाव करते हैं कि ये ब्रजवासी पैसा माँगते हैं, इनमें ऐसा दुर्गुण है, इस प्रकार उनकी निन्दा करते हैं ।)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – उसी समय वहाँ अघासुर नामक भयंकर दैत्य आ गया । वह श्रीकृष्ण की ग्वालबालों के साथ इस आनन्दमयी क्रीड़ा को सहन नहीं कर सका । **'सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः' -**

ग्वालबाल कन्हैया के साथ अनेकों प्रकार के खेल खेल रहे थे, उनके इस आनन्द को देखकर वह बहुत क्रोधित हुआ और सोचने लगा कि ये लोग बहुत मौज ले रहे हैं, यह कृष्ण है, आज इसे इसके सखाओं सहित मैं समाप्त कर दूँगा । अघासुर इसलिए क्रोधित हो रहा था क्योंकि बकासुर और पूतना इसके भाई-बहिन थे, जिन्हें श्रीकृष्ण ने मार दिया था । वह विचार करने लगा कि इसी कृष्ण ने मेरे भाई-बहन का वध किया है, अतः मैं इसे आज मारकर उन्हें जलाञ्जलि दूँगा तो उनकी आत्मा प्रसन्न हो जायेंगी और कहेंगी कि मेरे भाई ने कृष्ण से बदला ले लिया । ऐसा विचार करके उस दैत्य ने बड़े भारी अजगर का रूप बनाया और रास्ते में ही लेट गया । उसका शरीर चार कोस लम्बा था । उसके मुँह का नीचे का हिस्सा जमीन पर और दूसरा हिस्सा बादलों को छू रहा था । इतना विशाल मुख उसने फैला दिया ।

बड़े-बड़े अजगर वन में पड़े रहते हैं, वे अपने मुँह से साँस खींचते हैं तो बहुत दूर के जीव-जन्तु उनके मुख में अपने आप खिंचे चले आते हैं और अजगर उन्हें खा जाते हैं । इसी प्रकार अघासुर भी वन में गुफा के समान मुँह फाड़ कर लेट गया और बीच में उसकी बहुत लम्बी जीभ थी, जो लाल सड़क सी दिखती थी । सब ग्वालबाल उधर गये तो अघासुर का रूप देखकर वे सोचने लगे कि यह कैसा वृन्दावन है ? वे आपस में कहने लगे कि वृन्दावन में ऐसा दृश्य तो हम लोगों ने आज तक कभी नहीं देखा, यह कोई पहाड़ है कि सड़क है कि क्या है ? कुछ ग्वालबाल बोले कि यह अजगर की तरह मालूम पड़ता है । मधुमंगल, सुबल, स्तोककृष्ण आदि सखा बोले कि इसके मुख का ऊपरी हिस्सा तो बादलों की ओर है और नीचे की ठोढ़ी धरती पर है । ये जो लाल सी सड़क है, वह अजगर की जीभ जैसी मालूम पड़ती है । कुछ ने कहा कि जंगल में कहीं आग लगी है, उससे गरम और तीखी हवा आ रही है, उससे प्रतीत होता है कि यह अजगर की

विषैली साँस है तथा आग से जले हुए प्राणियों की दुर्गन्ध ऐसी जान पड़ती है मानो अजगर के पेट में मरे हुए जीवों के माँस की दुर्गन्ध हो। कुछ बालक बोले – 'तुम लोग बेकार की बातें बना रहे हो। अजगर का शरीर कहीं इतना बड़ा होता है। यह तो वृन्दावन की कोई शोभा है।' कुछ बालक बोले – 'चलो, हम लोग इसके मुख के भीतर प्रवेश करते हैं, यदि यह अजगर होगा तो क्या हमें निगल जायेगा ?' दूसरे बालक बोले कि यदि ऐसा करेगा तो हमारा कन्हैया इसे बकासुर की तरह मार डालेगा। इस प्रकार कहकर वे हँसते हुए, ताली बजाते हुए अघासुर के मुँह में प्रवेश कर गये। भगवान् श्रीकृष्ण सोचने लगे – 'अरे, इन्हें सच्चा सर्प भी झूठा मालूम पड़ता है। इन बालकों की बुद्धि कैसी हो गयी ? अब मुझे इनकी रक्षा करनी चाहिए।' सभी ग्वालबाल अपने बछड़ों के साथ अघासुर के मुँह में घुस गये परन्तु उसने अभी उन्हें निगला नहीं क्योंकि वह सोच रहा था कि अभी मेरा असली शत्रु तो मेरे मुख के भीतर आया नहीं। यदि मैं इन बालकों को खा जाऊँगा तो कृष्ण भाग जायेगा, वह समझ जायेगा कि यह सर्प है। इन बालकों को खाने से तो कोई लाभ भी नहीं है, मुझे मारना तो कृष्ण को है, इसलिए वह अपना मुख फाड़े कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था। उधर भगवान् ने सोचा कि मेरे सारे सखा तो अघासुर के मुख के भीतर चले गये, यदि मैं इसे मारूँगा तो वे भी मर जायेंगे। ग्वालबाल न मरें, अकेला यह असुर मरे, मुझे ऐसी युक्ति करनी है। अपना कर्त्तव्य निश्चित करके श्यामसुन्दर अघासुर के मुख में घुस गये। इस आश्चर्यजनक घटना को आकाश में स्थित देवता भी देख रहे थे तथा कंस आदि असुर भी देख रहे थे। ये असुर अपनी माया से कहीं भी जा सकते थे, इच्छानुसार रूप बना लेते थे। कृष्ण को अघासुर के मुख में गया देखकर कंस और उसके साथी असुर बहुत प्रसन्न हुए। वे सोचने लगे कि अब यह कृष्ण किसी प्रकार भी बच नहीं सकता। इतने असुर इसको मारने के लिए गये, इसने सबको मार डाला किन्तु

आज यह नहीं बच सकता । जब श्रीकृष्ण अघासुर के मुख के भीतर चले गये तो वह विचार करने लगा कि अब मैं इसे इसके साथियों के सहित पीस डालूँ । जब वह ऐसा विचार कर रहा था, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शरीर को बढ़ाना चालू किया । उन्होंने सोचा कि कहीं यह असुर अपने दाँतों से चबाकर मेरे सखाओं को चूर्ण न कर डाले, इसलिए उन्होंने अपने शरीर को इतना बढ़ा लिया कि अघासुर के मुख का ऊपरी हिस्सा जो बादलों को छू रहा था, वह भी छोटा पड़ गया । भगवान् का शरीर इतना बड़ा हो गया कि अघासुर का गला रुँध गया, उसका दम घुट गया, वह व्याकुल होकर बहुत ही छटपटाने लगा और अन्त में उसके प्राण मस्तक को फ़ोड़कर बाहर निकल गये तथा आकाश में घूमते रहे । भगवान् के द्वारा मारने से अघासुर का उद्धार हो गया था । उसके शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली और भगवान् के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगी ।

हम लोग श्रीकृष्ण की बाल लीला सुनकर उन्हें साधारण बालक समझ लेते हैं किन्तु उनकी दृष्टि का चमत्कार देखो कि उन्होंने अपनी अमृतमयी प्रेम दृष्टि अघासुर के मुख में मरे ग्वालबालों और बछड़ों पर डाली तो वे सब के सब तुरन्त ही जीवित हो गये । यही है सरकार की कृपा दृष्टि । प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में अपनी सामर्थ्य के अनुसार शक्ति होती है । सन्तों की दृष्टि में ऐसी शक्ति होती है कि वे जीवों के पापों को जला देते हैं । अपनी पत्नी के शाप से शनिदेव की ऐसी दृष्टि हो गयी कि जिसको देख देते, वही नष्ट हो जाता । पार्वती पुत्र गणेशजी पर दृष्टि डाली तो उनका सिर शरीर से अलग हो गया, तब उनके हाथी का सिर लगाया गया । इस प्रकार सबकी दृष्टि अलग-अलग होती है ।

दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ।

(श्रीभागवतजी - १०/१२/३२)

भगवान् मुकुन्द तो अपनी कृपादृष्टि से सभी ग्वालबालों और बछड़ों को जिलाकर तथा उन सबको साथ लेकर अघासुर के मुँह से बाहर निकल आये । जब प्रभु बाहर निकले तो अघासुर के शरीर से निकली दिव्य ज्योति उनमें लीन हो गयी और उसकी मुक्ति हो गयी ।

बोलो कन्हैया लाल की जय ।

उस समय देवताओं ने प्रभु पर फूल बरसाए, अप्सराएँ नाचने लगीं और प्रभु के पार्षद उनकी जय-जयकार के नारे लगाने लगे । देवगण बहुत बड़ा आनन्दोत्सव मनाने लगे । सुन्दर बाजों और नृत्य-गीत के द्वारा भगवान् का अभिनन्दन करने लगे क्योंकि देवता भी अघासुर से बहुत भयभीत रहते थे । उन्होंने भी राहत की साँस ली कि प्रभु ने बहुत अच्छा किया, जो इसे समाप्त कर दिया । उस समय देवताओं द्वारा किये गये इस आनन्दोत्सव, उनके बाजों, गीतों और जयजयकार की मंगल ध्वनि ब्रह्मलोक तक पहुँच गयी । ब्रह्माजी ने सोचा कि आज ये क्या हो रहा है, यह कोलाहल कैसा सुनाई दे रहा है ? तब वे अपने वाहन पर चढ़कर आये और भगवान् श्रीकृष्ण की यह महिमा, यह पराक्रम देखकर आश्चर्यचकित हो गये । वृन्दावन में अजगर का वह शरीर सूख गया तो ग्वालबालों के लिए लुकाछिपी खेलने का बढ़िया स्थान बन गया । भगवान् के अंग का स्पर्श होने से अजगर का शरीर पूर्ण शुद्ध हो चुका था । एक योजन लम्बे शरीर में ग्वाल बालों के छिपने के लिए बहुत जगह थी, वे उसके भीतर जाकर छिप जाते और ताली बजाकर अन्य सखाओं से कहते कि हमें ढूँढ लो ।

इस प्रकार यह अद्भुत अघासुर मोक्ष की लीला सम्पन्न हुई । अब इस कथा से शिक्षा ग्रहण करना चाहिए । शंखासुर का पुत्र अघ बहुत सुन्दर था । जिसमें सुन्दरता होती है, उसमें ऐंठ आ ही जाती

है । अष्टावक्र नामक एक मुनि थे, जो आठ जगह से टेढ़े थे । एक बार उनको देखकर अघासुर जोर से हँसने लगा और बोला – 'यह टेढ़ी गति वाला बाबाजी कितना कुरूप है ।' मुनि उसकी इस दुष्टता से नाराज हो गये और उसके कल्याण के लिये उसे शाप देते हुए बोले – 'तू सर्प की तरह टेढ़ा बोलता है, इसलिए सर्प हो जा ।' शाप सुनते ही उसने घबराकर मुनि से क्षमा माँगी तो उन्होंने उसे वर दिया कि जब भगवान् श्रीकृष्ण तेरे मुख में प्रवेश करेंगे तब तुझे सर्प योनि से मुक्ति मिल जाएगी ।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि हम लोगों को बड़ी सावधानी से बोलना चाहिए । ऐसा मत बोलो कि अगले जन्म में सर्प बनना पड़े । इन कथाओं को पढ़ने-सुनने के बाद शिक्षा भी ग्रहण करना चाहिए । केवल कुटिल वचन बोलने के कारण अघासुर को मुनि के द्वारा शाप मिला और उसे भयंकर सर्प बनना पड़ा । इसलिए किसी से व्यंग्य वचन मत बोलो, नहीं तो सर्प ही बनोगे । मीठी वाणी बोलो । यदि कोई तुमसे कड़वी वाणी बोले तब भी तुम उससे बदले में कटु वचन मत बोलो, नहीं तो अघासुर बनना पड़ेगा । कोई तुमसे कहे मूर्ख तो तुम उसे ज्ञानी कह दो । उससे कहो – 'हाँ प्रभो ! आप जैसा ज्ञान मुझमें कहाँ है ?' इस कथा से यह शिक्षा लेनी चाहिए । जो कटु वचन बोलता है, वह निश्चित ही अगले जन्म में सर्प बनता है । इसलिए इस शिक्षा को समझकर अपने हृदय में बिठा लेना चाहिए । शुकदेवजी ने एक बहुत अच्छा श्लोक कहा है –

सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१२/३९)

अघासुर मूर्तिमान पाप था, उससे अधिक पापी कोई नहीं था । अघ का अर्थ पाप होता है । उसे अघासुर अथवा पापासुर भी कहा जा सकता है ।

भगवान् की प्रतिमा या श्रीविग्रह थोड़ी देर के लिए अघासुर के मुख में गयी और उसी से उसका कल्याण हो गया अर्थात् थोड़ी देर के लिए अघासुर के मुख में श्रीकृष्ण के जाने से उसका उद्धार हो गया । इसीलिए भगवान् के भक्त उनके रूप का ध्यान करते हैं । कीर्तन करते या नाम जप करते समय भगवान् के रूप का ध्यान करना चाहिये । रूप का ध्यान करने के लिए ही मूर्ति पूजा या चित्रपट की पूजा की विधि चलाई गयी है । रूप ध्यान के द्वारा जब भगवान् का रूप तुम्हारे मन में चला जायेगा तो इससे तुम्हारा कल्याण हो जायेगा । यदि यह सोचें कि हम जिस रूप का चिन्तन करेंगे, वह तो काल्पनिक होगा जैसे मूर्ति अथवा चित्र मनुष्य के द्वारा बनाया जाता है तो उसके चिन्तन से कल्याण कैसे होगा तो इसका उत्तर यह है कि वस्तुतः मूर्ति में भगवान् नहीं हैं, चित्र में भगवान् नहीं हैं, भगवान् तो भावना में होते हैं । जो आदमी मूर्ति पूजा का खण्डन करता है, वह यह नहीं समझता कि मूर्ति को भगवान् नहीं माना जाता है, मूर्ति में जो भावना की जाती है, उस भावना में भगवान् होते हैं । मूर्ति तो पत्थर अथवा धातु की बनी होती है, इसी प्रकार चित्रपट में भी शीशा और उसके भीतर कागज की फोटो होती है । मनुष्य आलोचना करता है कि चित्रपट में भगवान् कैसे हो सकते हैं, एक लोढ़ा चित्रपट पर मारा जाये तो उसका शीशा टूट जायेगा । इसलिए इस बात को समझो कि हम उस चित्र में जो भावना करते हैं – 'हे दीनबन्धो ! हे प्रभो ! हे दीनानाथ !' – यह भावना ही भगवान् है । यह शास्त्रसम्मत बात है ।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावेषु विद्यते देवः तस्मात् भावो हि कारणम् ॥

(गरुडपुराण, उत्तर. ३/१०)

न देवो विद्यते काष्ठे भावे हि विद्यते देवः
तस्मात् भावो जनार्दनः ।

भगवान् भावना में हैं । हमारे धर्म में यही बात कही गयी है कि भगवान् मूर्ति में, काष्ठ में अथवा पत्थर में नहीं हैं, भगवान् तो भाव में हैं । इसलिये जो लोग मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं, वे व्यर्थ ही खण्डन करते हैं । हम लोग भी मूर्ति को भगवान् नहीं मानते, हम लोग भगवान् को भगवान् मानते हैं । भाव को भगवान् मानते हैं । वेद में प्रतीकोपासना लिखी हुई है जैसे अग्नि को भगवान् माना गया है, इसे सभी मानते हैं चाहे वेद पढ़ने वाले कर्मकाण्डी हों, चाहे सनातनी हों, चाहे आर्यसमाजी हों । मूर्तिपूजा का खण्डन करने वालों से कहना चाहिए कि जैसे अग्नि जड़ है, वैसे ही मूर्ति भी जड़ है फिर तुम जड़ अग्नि को भगवान् कैसे मानते हो ? यह खण्डन-मण्डन करना तो मूर्खों का काम है । भावना करो । तुम जब मूर्ति में भावना करते हो कि ये मेरे प्रभु हैं, चाहे वह पीपल का पेड़ है, चाहे चित्रपट है, चाहे शिवलिंग है, चाहे गोपाल जी हैं, उनके प्रति जो तुम्हारी भावना है, वही भगवान् है । इसीलिए जब तुम रूप ध्यान करोगे तो यह समझकर करोगे कि ये मेरे प्रभु हैं तो यह जो भगवद् भाव है, वह तुम्हारे मन से ध्यान किये गये आकार को दिव्य बना देगा । इसीलिए शुकदेवजी ने कहा –

'सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता' (श्रीभागवतजी - १०/१२/३९)

इसलिए जो भी व्यक्ति भगवान् का भजन-कीर्तन करे, वह रूप ध्यान सहित करे ।

शुकदेवजी कहते हैं – भगवान् ने अघासुर मोक्ष की लीला कुमार अवस्था में अर्थात् पाँचवें वर्ष में की थी । परन्तु ग्वालबालों ने पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष में अपने घर में जाकर उसका वर्णन किया ।

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! आपने यह बताया कि जिस समय श्रीकृष्ण ने अघासुर वध किया, उस समय उनकी और ग्वालबालों की आयु पाँच वर्ष की थी, फिर एक वर्ष के बाद उन्होंने अपने घर में इसका वर्णन किया, यह बात मेरी समझ में नहीं आयी । इतना बड़ा असुर मारा गया और इस घटना को एक वर्ष बाद ग्वालबालों ने अपने घरों में बताया, यह बात मेरी समझ में नहीं आई । कृपा करके आप इसका समाधान कीजिये ।

सूतजी कहते हैं – जब राजा परीक्षित् ने यह प्रश्न किया तो इसको सुनते ही शुकदेवजी को समाधि लग गयी । सबने सोचा कि अब तो कथा रुक गयी । सातवें दिन परीक्षित् की आयु समाप्त हो जाएगी और यहाँ तो कथा में ही विराम लग गया । अब क्या किया जाए ?

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिः
तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१२/४४)

जब श्रीशुकदेवजी को समाधि लग गयी तब यह प्रश्न हुआ कि उन्हें समाधि से बाहर कैसे लाया जाये क्योंकि इससे कथा को भी विराम लग गया था । **कृच्छ्रात्** – बहुत कठिनाई से वे समाधि के बाहर आये । श्रीजीवगोस्वामीजी ने अपनी टीका में कृच्छ्रात् का अर्थ लिखा है –

उच्चैः करतालशङ्खभेरीदुन्दुभिनिःशाणादिवाद्ययुक्तकीर्तनोद्घोषणै र्बहुलप्रयासेन लब्धबहिर्दृशिः जातेन्द्रियबहिर्वृत्तिरित्यर्थः

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

उन्होंने यह लिखा है कि शुकदेवजी ने प्रायः भागवत के कई प्रसंगों में अपने को सँभाल लिया, जहाँ-जहाँ वे भीतर की ओर डूबते, वहाँ-वहाँ उन्होंने 'तात' शब्द कहा है, अपने को बाहर लाने के लिए। कोई व्यक्ति कृष्ण लीला रस में भीतर पूर्णतया डूब गया तो वह यह भूल जायेगा कि बाहर कौन बैठा है और हम कथा किसको सुना रहे हैं ? यह साधारण कथावाचक की स्थिति नहीं है, यह तो शुकदेवजी जैसे परमहंस आत्माराम मुनि की स्थिति थी कि वे साक्षात् लीला देखते जाते और उसे कहते जाते थे। यह हम लोगों की स्थिति नहीं है। हम लोग तो कीड़े-मकोड़े की तरह हैं। यह तो शुकदेवजी जैसे महापुरुषों की स्थिति है। वे सोलह वर्ष के थे और नग्न थे। कौपीन भी उनके पास नहीं थी। शुक-रम्भा सम्वाद में रम्भा अप्सरा उनके पास आई। जब शुकदेवजी गर्भ के बाहर निकलते ही वन में जा रहे थे तो मार्ग में किसी सरोवर में नग्न स्त्रियाँ नहा रही थीं किन्तु उनको यह भी पता नहीं कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष ? महापुरुषों में ही ऐसी सामर्थ्य होती है। इन्द्रियों का बाहरी व्यवहार हमें कृष्ण से दूर करता है। जब बाहरी व्यवहार से इन्द्रियाँ हट जाती हैं तो भीतर लीन हो जाती हैं। शुकदेवजी के बारे में यहाँ लिखा है – **'अनन्तहृताखिलेन्द्रियः'** – उनकी समस्त इन्द्रियाँ भगवान् की नित्य लीला में खिंच गयीं।

श्रीजीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

पुनरित्यनेन पूर्वमपि बारम्बारमीदृशो जातो ऽस्तीति बोध्यते तत्र तत्रैव तातेति वारं वारं सम्बोधनमित्यभिज्ञाः आहुः तदर्थं श्रीपरीक्षिता महाव्यग्रेण सता निजान्तिके तत्तद्वाद्यादि श्रीकृष्णकीर्तनसामग्री श्रीजनमेजयतो रक्षिता ऽस्तीत्याख्यायिका

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

जिस समय शुकदेवजी भागवत कथा कहने के लिए आये तो परीक्षित् जी जानते थे कि इनके लिए सात दिन तक लगातार कथा कहना कठिन है।

अन्न-जल की तो उन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी क्योंकि वे आत्मस्वरूप में स्थित थे । सात दिन तक उनके लिए कथा कहना इसलिए कठिन था क्योंकि परीक्षित् जी जानते थे कि ये कथा कहते समय भीतर डूब जायेंगे और बाहर की सब बात भूल जायेंगे तो कथा बन्द हो जाएगी, इसलिए परीक्षितजी ने अपने सबसे बड़े पुत्र जनमेजय से कह रखा था कि जब कथा कहते समय शुकदेवजी भीतर डूबने लग जाएँ तो इन्हें बाहर लाने का उत्तरदायित्त्व तुम्हारा है । कोई भगवद् भक्त जब समाधि में डूब जाता है तो उसको बाहर लाने का उपाय है भगवन्नाम संकीर्तन । उस समय जोर-जोर से नाम कीर्तन करने पर वह बाहर की ओर लौटेगा । इसीलिए १०/१२/४४ में लिखा है – **कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः** – जब जोर-जोर से कीर्तन किया गया तब शुकदेवजी बड़ी कठिनाई से बाहर की ओर लौटे । जब वे बाहर लौटे तब उन्होंने कथा कही । तब उनकी समझ में आया कि परीक्षित का यह प्रश्न है । शुकदेवजी तो समाधिस्थ होकर भीतर लीला देखने लग गये थे । उनको भगवान् की मधुर लीला का मानसिक साक्षात्कार हो रहा था । संसारी प्रेम में भी जब मनुष्य डूब जाता है तो पता नहीं क्या-क्या प्रलाप करने लगता है, फिर शुकदेवजी तो अलौकिक महापुरुष थे, उनका प्रेम भी अलौकिक था, इनके लिए तो भीतर डूब जाना साधारण सी बात है और स्वाभाविक ही है ।

अध्याय – १३

बाहर लौटने पर शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा –

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यन्नूतनयसीशस्य श्रृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१३/१)

राजन् ! तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है । भगवान् की यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है, इसमें गुप्त बात है । किन्तु यदि योग्य शिष्य प्रश्न करने वाला मिल जाये तो महात्मा लोग उसे गुप्त बात भी बता देते हैं ।

गूढउ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ११०)

भगवान् श्रीकृष्ण अपने साथी ग्वालबालों की अघासुर से रक्षा करने के बाद उन्हें यमुना पुलिन पर ले आये और उनसे कहने लगे – 'मेरे प्यारे मित्रो ! यमुनाजी का यह पुलिन अत्यन्त ही रमणीय है । यहाँ की बालू बड़ी कोमल और स्वच्छ है । अब हम लोगों को यहाँ भोजन कर लेना चाहिए क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हम लोगों को भूख भी बहुत लग रही है । हमारे बछड़े यमुनाजी का पानी पीकर समीप ही हरी-हरी घास चरते रहेंगे ।'

श्रीकृष्ण की बात सुनकर सभी सखाओं ने एक स्वर से कहा – 'ठीक है, ठीक है ।' उन्होंने बछड़ों को पानी पिलाकर हरी घास में चरने के लिए छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोलकर कन्हैया के साथ बड़े आनन्द से भोजन करने लगे । जैसे कमल की कर्णिका के चारों ओर उसकी पंखुड़ियाँ फैली रहती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के चारों ओर सभी गोपबालक बहुत सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बनाकर बैठ गये । उन सबके बीच में श्यामसुन्दर बैठ गये । वन के पुष्प, पत्ते, छाल एवं पत्थरों के पात्रों में घर से लाये हुए षट् रस व्यंजन परोस दिए गये । सभी सखा परस्पर एक-दूसरे के खाद्य पदार्थ लेकर खाने लगे किन्तु गोपालजी ने अभी तक कुछ नहीं खाया था । श्रीसूरदासजी महाराज ने इस लीला के बारे में गाया है –

ग्वालन कर ते कौर छुडावत ।
जूठो लेत सबन के मुख ते,
अपने मुख में लावत ।

गोपालजी ग्वालबालों के मुख से उनकी जूठन लेकर खा रहे हैं । इसी लीला को जब ब्रह्माजी ने देखा तो उनकी बुद्धि चकरा गयी, उन्हें मोह हो गया कि यह कैसा भगवान् है, जो बच्चों के मुख से जूठन निकालकर खा रहा है । ऐसा तो दुनिया में अत्यन्त दरिद्र भिखमंगा भी नहीं करेगा । अब तो ब्रह्माजी के हृदय में अपने सखा गोपबालकों की जूठन लेकर खाने वाले गोपालजी की भगवत्ता, उनका अनन्त ऐश्वर्य देखने की तीव्र अभिलाषा का उदय हुआ एवं इसी अभिप्राय से उन्होंने प्रभु की भगवत्ता की परीक्षा लेने का विचार किया कि यह साधारण-सा बालक है अथवा परमेश्वर । अब तो श्रीकृष्ण की भगवत्ता की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्माजी ने पहले बछड़ों का हरण किया और बाद में ग्वालबालों का भी हरण कर उनको मूर्च्छित करके अपने ब्रह्मलोक में रख दिया । तब ब्रह्माजी की जड़ बुद्धि को ठीक करने के लिए गोपालजी स्वयं ही समस्त बछड़ों और ग्वालबालों का रूप धारणकर एक वर्ष तक ब्रज में लीला करते रहे । ग्वालबालों और बछड़ों को ब्रह्मलोक में रखने के बाद ब्रह्माजी ब्रज में यह देखने के लिए आये कि अब वह परब्रह्म क्या कर रहा होगा ? उन्होंने देखा कि कन्हैया तो पूर्व की भाँति उन्हीं ग्वालबालों और बछड़ों के साथ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रहे हैं । ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे कि इन गोवत्सों और गोपबालकों का हरण करके तो मैं ब्रह्मलोक में रख आया हूँ फिर ये यहाँ कैसे आ गये ? जब वे ब्रह्मलोक में गये तो देखा कि वे ही गोपबालक और गोवत्स वहाँ मूर्च्छा में लीन हैं । ब्रज में आकर देखा तो वे श्यामसुन्दर के साथ क्रीड़ा कर रहे थे । ब्रह्माजी यह बात किसी प्रकार भी समझ नहीं सके कि इनमें से कौन

सच्चे हैं और कौन बनावटी । अब भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको अपने अनन्त ऐश्वर्य का दर्शन कराया । सभी ग्वालबाल और बछड़े ब्रह्माजी को श्रीकृष्ण के रूप में दिखायी पड़े । सब के सब श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त चतुर्भुज थे । ब्रह्माजी ने यह भी देखा कि उन्हीं के जैसे दूसरे ब्रह्मा से लेकर तृण तक सभी चराचर जीव मूर्तिमान होकर नाचते-गाते अनेक प्रकार की पूजा सामग्री से अलग-अलग भगवान् के उन सब रूपों की उपासना कर रहे हैं । उन्हें अलग-अलग अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ और महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओर से घेरे हुए हैं । यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी तो चकित रह गये । उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं । वे भगवान् के तेज से निस्तेज होकर मौन हो गये । वे भगवान् के उन महिमामय रूपों को देखने में भी असमर्थ हो गये । उनकी आँखें बन्द हो गयीं । ब्रह्मा के इस मोह और असमर्थता को जानकर भगवान् ने तुरन्त ही अपनी माया का पर्दा हटा लिया । इससे ब्रह्माजी को बाह्य ज्ञान हुआ । ब्रह्माजी चारों ओर देखने लगे तो उन्हें दिव्य वृन्दावन का दर्शन हुआ ।

वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/१३/५९)

वृन्दावन सबके लिए प्यारा है । जिधर देखो, उधर ही जीवों को जीवन प्रदान करने वाले फल और फूलों से लदे हुए, हरे-हरे पत्तों से लहलहाते हुए वृक्षों की पंक्तियाँ शोभित हो रही हैं ।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुड्वर्षकादिकम ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१३/६०)

भगवान् श्यामसुन्दर की लीलाभूमि होने के कारण चिन्मय ब्रज-वृन्दावन धाम में क्रोध, तृष्णा आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते । वहाँ स्वभाव से ही परस्पर दुस्त्यज वैर रखने वाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रों के समान मिल-जुलकर एक साथ रहते हैं । ब्रह्माजी ने देखा कि स्वाभाविक द्वेष रखने वाले पशु जैसे सिंह और हिरन, सर्प-नेवला, कुत्ता-बिल्ली आदि अपना पारस्परिक वैर व भय छोड़कर इस प्रेममय धाम में प्रीतिपूर्वक एक साथ क्रीड़ा कर रहे हैं ।

ऐसे प्रेमस्वरूप दिव्य वृन्दावन के दर्शन के साथ ही ब्रह्माजी को अपने हाथों में दही-भात का कौर लिए हुए अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यनिधि गोपालजी का भी दर्शन हुआ । गोपालजी को देखते ही ब्रह्माजी अपने वाहन हंस से कूद पड़े और लोकातीत ब्रज वसुन्धरा पर दण्ड की भाँति गिर पड़े । उन्होंने अपने चारों मुकुटों के अग्रभाग से गोपालजी के चरण-कमलों का स्पर्श करके नमस्कार किया और फिर उनकी स्तुति करने लगे ।

अध्याय – १४

ब्रह्माजी ने कहा – हे प्रभो ! आप मुझे क्षमा कीजिये । मैंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है । आपकी ही नाभिकमल से उत्पन्न होकर भी मेरे अन्दर आपकी परीक्षा लेने की दुर्बुद्धि उत्पन्न हो गयी । ये तो मेरे द्वारा ऐसा अपराध हुआ, जैसे सूर्य के सामने जुगनू उसे अपने प्रकाश से प्रकाशित करना चाहे ।

ब्रह्माजी ने ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना करते हुए कहा –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१४/३२)

धन्य हैं ये ब्रजवासी बालक, जिनका मित्र बनकर परिपूर्णतम ब्रह्म भी सामान्य गँवार बालक की भाँति लीला कर रहा है ।

ब्रह्माजी ने यहाँ तक कह दिया –

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न -
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१४/३५)

हे नाथ ! एक बात मुझे मोह में डाल रही है कि ये जितने भी ब्रजवासी हैं, इन्होने आपको आत्मसमर्पण कर दिया है । इनका घर अपना नहीं आपका है । इनके सुहृद भी अपने नहीं आपके हैं । ये संसार में किसी को प्रिय भी मानते हैं तो आपके सम्बन्ध से मानते हैं । इनका शरीर भी आपका है, इनके बेटा-बेटी भी आप हैं, प्राण और अन्तःकरण भी आप ही हैं । इस प्रकार इन ब्रजवासियों ने अपना सब कुछ आपको सौंप दिया है । अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इसके बदले में आपने ब्रजवासियों को क्या दिया है ? यदि आप कहते हैं कि मैंने ब्रजवासियों को अपना स्वरूप प्रदान कर दिया तो वह स्वरूप तो आपने जहर पिलाने वाली पूतना को भी प्रदान कर दिया था । यह कौन सा न्याय है ? जिन्होंने आपको सब कुछ अर्पित कर दिया, उन्हें भी आप वही चीज दे रहे हैं और जो आपको मारने के भाव से आई, उसको भी आप वही वस्तु दे रहे हैं । यह तो न्याय नहीं है ।

ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए मानो गोपालजी कहने लगे कि आप समझ नहीं सके । मैंने पूतना को केवल अपना स्वरूप ही तो दिया था । मैं पूतना के आधीन तो नहीं हुआ था परन्तु मैंने अपने आपको ब्रजवासियों के आधीन कर रखा है । इसलिए आपका इन

ब्रजवासियों के प्रति किया अपराध अक्षम्य अपराध बन गया है । ये ब्रजवासी मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । आप मेरा अपराध करते तो मैं कुछ नहीं कहता किन्तु आपने मेरे प्रिय सखा ग्वालबालों को एक वर्ष तक मुझसे दूर रखा । इस अपराध का आपको प्रायश्चित्त करना होगा ।

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिःपरिक्रम्य पादयोः ।

(श्रीभागवतजी - १०/१४/४१)

ब्रह्माजी ने गोपालजी की आज्ञा से अपराध के प्रायश्चित्त के रूप में अपने चरणों से चलकर सम्पूर्ण ब्रजभूमि की तीन बार पदयात्रा की । ब्रह्माजी के ग्वाल-बाल एवं बछड़ों के हरण रूपी अक्षम्य भक्तापराध को ब्रज धाम की परिक्रमा ने ही नष्ट किया । **'त्रिः परिक्रम्य'** – सृष्टिकर्ता ने अपने अपराध के मार्जन हेतु ब्रज की एक नहीं, तीन परिक्रमायें कीं । सूरदासजी के अनुसार ऐसा करने के लिए स्वयं भगवान् ने उनसे कहा था –

"ब्रज परिक्रमा करहु देह को पाप नसावहु ।"

ऐसे बहुत से अपराध, जिनको भगवान् भी क्षमा नहीं कर सकते, वे ब्रज धाम की परिक्रमा करने से नष्ट हो जाते हैं । साक्षात् धामी भगवान् से भी अधिक करुणा धाम में है ।

भगवान् की आज्ञा से ब्रह्माजी ने धाम की तीन परिक्रमा की और इस तरह वे ब्रजवासियों के प्रति किये गये अक्षम्य अपराध से मुक्त हुए । उन्होंने ब्रह्मलोक से ग्वालबालों और बछड़ों को लाकर ब्रज में यथास्थान पहुँचा दिया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी के व्यामोह को दूर किया ।

अध्याय – १५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अब बलराम और श्रीकृष्ण ने पौगण्ड अवस्था में प्रवेश किया अर्थात् अब वे छः वर्ष के हो गये । अभी तक वे वत्स चराने जाया करते थे । एक दिन कन्हैया ने यशोदा मैया के सामने हठ पकड़ लिया – 'मैया ! अब तो मैं गायें चराऊँगा । पुत्र का धर्म है पिता के व्यवसाय में सहयोग करना । अब मेरे अन्दर समझदारी आ गयी है । हमारे नन्द बाबा गोप हैं । गो सेवा करना परम धर्म है । इसलिए अब मैं भी गायें चराने के लिए जाऊँगा ।' यशोदा मैया ने कहा – 'अरे कन्हैया ! अभी तो तू छोटा सा है । कहीं गाय ने सींग से प्रहार कर दिया अथवा तेरे कोमल अंगों पर अपना पाँव रख दिया तो बहुत कष्ट होगा ।' किन्तु कन्हैया ने मैया की बात नहीं मानी और गो चारण करने का प्रबल हठ करने लगे तो अन्त में कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के शुभ दिन उन्हें गायों को चराने की स्वीकृति मिल गयी । अब वे बछड़ों के साथ ही गायों को भी वन में चराने के लिए ले जाने लगे । वे अपने सखा ग्वालबालों के साथ ब्रज के विभिन्न वनों में, गोवर्धन की तराई में तथा यमुना तट पर गौओं को चराते हुए अनेकों प्रकार की लीलायें करने लगे ।

एक दिन वन में श्रीदामा, सुबल और स्तोककृष्ण आदि सखाओं ने श्याम और राम से कहा – 'हमारे प्यारे कृष्ण और दाऊ भैया ! यहाँ से थोड़ी ही दूर पर ताल वन है । उसमें बहुत से ताड़ के वृक्ष हैं । वहाँ बहुत से ताड़ के फल पककर गिरते रहते हैं । परन्तु वहाँ गधे के रूप में धेनुक नामक एक दुष्ट दैत्य रहता है । उसने उन फलों के खाने पर रोक लगा रखी है । उसके साथी और भी बहुत से उसी के समान बलवान दैत्य भी गधे के रूप में उस वन में रहते हैं । वह दैत्य अब तक बहुत से मनुष्यों को खा चुका है । उसके भय के कारण ही मनुष्य

और पशु-पक्षी उस वन में नहीं जाते हैं । ताल वन के फल बड़े सुगन्धित हैं । हमें उन फलों को खाने की इच्छा हो रही है । तुम दोनों को अच्छा लगे तो उस वन में चलकर हमें वे फल अवश्य खिलाओ ।'

अपने सखाओं की बात सुनकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए श्रीकृष्ण और बलरामजी उनके साथ तालवन की ओर चल पड़े । उस वन में पहुँचकर बलरामजी ने अपनी भुजाओं से उन ताल के पेड़ों को पकड़ लिया और उन्हें बड़े जोर से हिलाकर बहुत से फल नीचे गिरा दिए । धेनुकासुर को जब फलों के गिरने का शब्द सुनाई दिया तो वह बलवान दैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर बलरामजी को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ा । उसने बड़े वेग से बलरामजी के सामने आकर अपने पिछले पैरों से उनकी छाती में दुलत्ती मारी और इसके बाद वह बड़े जोर से रेंकता हुआ वहाँ से हट गया । इसके बाद गधे के रूप में रहने वाला वह दैत्य क्रोध में भरकर फिर रेंकता हुआ दूसरी बार बलरामजी के पास पहुँचा और उनकी छाती पर बड़े क्रोध के साथ पिछले पैरों की दुलत्ती से प्रहार किया । इस बार बलरामजी ने अपने एक ही हाथ से उस दुष्ट के दोनों पैर पकड़ लिए और उसे आकाश में घुमाकर एक ताड़ के वृक्ष पर दे मारा । घुमाते समय ही धेनुकासुर के प्राण निकल गये । उस समय धेनुकासुर के भाई-बन्धु अपने भाई के मारे जाने से बहुत क्रोधित हो गये । सब के सब गधे के रूप में रहने वाले वे असुर बलरामजी और श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए बड़े वेग से उन पर टूट पड़े । उनमें से जो भी दैत्य पास आया, उस-उसको श्रीकृष्ण और बलराम ने पिछले पैर पकड़कर ताल वृक्षों पर दे मारा । उनकी यह मंगलमयी लीला देखकर देवतागण उन पर फूल बरसाने लगे और उनकी स्तुति करने लगे ।

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।

(श्रीभागवतजी - १०/१५/४७)

भगवान् श्यामसुन्दर इस प्रकार वृन्दावन में अनेकों लीलायें करते । एक दिन वे अपने सखा ग्वालबालों के साथ यमुना तट पर गये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – श्रीवृन्दावन धाम में यमुनाजी की अत्यन्त सुन्दर छटा है । यमुनाजी के भीतर एक कालिय दह था । कालिय दह में कालिय नामक एक नाग रहता था । उसका विष अत्यधिक भयंकर था । उस समय गर्मी के ताप से गायें और ग्वालबाल अत्यधिक पीड़ित हो रहे थे । प्यास से उनका गला सूखा जा रहा था । इसलिए उन्होंने यमुनाजी का विषैला जल पी लिया । उस विषैले जल के पीते ही सब गायें और ग्वालबाल मूर्च्छित होकर गिर पड़े । जिस प्रकार भगवान् ने अघासुर के मुख के भीतर निष्प्राण हुए ग्वालबालों और बछड़ों को अपनी अमृतमयी कृपादृष्टि से जीवित कर दिया था, उसी प्रकार उन्होंने

ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् । (श्रीभागवतजी - १०/१५/५०)

अमृत को बरसाने वाली कृपादृष्टि से गायों और ग्वालबालों को जीवित कर दिया । अमृत तो केवल उपमा के लिए कहा जाता है । स्वर्ग का अमृत वास्तविक अमृत नहीं है । वस्तुतः तो श्रीकृष्णामृत ही अमृत है । जीवित होने पर सभी ग्वालबालों ने समझ लिया कि हम लोग विषैला जल पीने के कारण मर चुके थे परन्तु हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ने अपनी कृपा भरी दृष्टि से देखकर हमें फिर से जिला दिया है ।

श्री राधा

अध्याय – १६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि महाविषधर कालियनाग ने यमुनाजी का जल विषैला कर दिया है । मेरी गायों अथवा ग्वालबालों में से कोई भी इस विषैले जल को पी लेगा तो प्रतिदिन ही उसकी मृत्यु होगी और फिर मुझे प्रतिदिन ही उन्हें जिलाना पड़ेगा । इससे तो अच्छा है कि इस विषैले जल की समस्या की जो जड़ है, उसी को दूर कर दिया जाए । तब उन्होंने यमुनाजी को शुद्ध करने के विचार से वहाँ से उस विषैले सर्प को बाहर निकाल दिया ।

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१६/१)

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! आपने तो यह कथा अत्यन्त संक्षेप में सुनाई । मैं तो कृष्ण कथा को सुनने के लिए ही बैठा हुआ हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण ने यमुना जी के अगाध जल में किस प्रकार उस सर्प का दमन किया, यह कथा आप मुझे विस्तार से सुनाइए ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – राजन् ! यमुनाजी में कालियनाग का एक ह्रद था ।

भागवत में केवल इतना ही लिखा है । श्रीजीवगोस्वामीजी ने हरिवंश पुराण के अनुसार कालिय ह्रद के बारे में लिखा है –

दीर्घं योजनविस्तार (दुस्तरं) मगम्यं त्रिदशैरपि ।
गम्भीरमक्षोभ्यजलम् निष्कम्पमिव सागरम् ॥
दुःखोपसर्पं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः ।
विशारणीभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम् ॥

तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा ।
समन्ताद्योजनं साग्रं तीरेष्वपि दुरासदम् ॥

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णव तोषिणी)

कई योजन विस्तार का अगम्य कालिय ह्रद था, वहाँ देवता भी नहीं पहुँच सकते थे । इसका कारण यह था कि कालिय कोई साधारण नाग नहीं था । गरुड़जी, कालियनाग आदि देव योनि में हैं । कालिय ह्रद के किनारे ही बहुत से बिल थे । उस किनारे पर ही कोई नहीं पहुँच सकता था । कालिय ह्रद से हर समय विष का धुआँ उठता रहता था, इसलिये वहाँ कोई पहुँच ही नहीं सकता था । उस जल में कोई तिनका भी यदि दूर से आकर गिरता तो जल जाता था । चारों ओर से, एक योजन दूर से भी उस ह्रद की ओर कोई देख नहीं सकता था । ऐसा वर्णन हरिवंश पुराण में किया गया है । शुकदेवजी ने इस कथा को संक्षेप में कहा है क्योंकि परीक्षितजी को सात दिनों में ही उन्हें सम्पूर्ण कथा सुनानी थी । इसलिए इस बात का भी उन्हें ध्यान रहता था कि परीक्षितजी के पास बहुत थोड़ा समय है ।

कालिय ह्रद का जल विष की गर्मी से खौलता रहता था । उसके ऊपर से उड़ने वाले पक्षी भी उस विष की गर्मी से झुलसकर उसमें गिर जाया करते थे । भगवान् कृष्ण ने देखा कि कालियनाग के कारण मेरे विहार का स्थल यमुनाजी का जल विषैला हो गया है तब उसे यमुनाजी से बाहर निकालने के उद्देश्य से एक बहुत ऊँचे कदम्ब के वृक्ष पर वे चढ़ गये । ब्रजवासी ऐसा कहते हैं कि उन्हें कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर यमुनाजी में कौन कूदने देता, इसलिए उन्होंने गेंद खेलने की लीला रची । गेंद यमुनाजी में चली गयी, इसलिए गेंद लाने के बहाने वे कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये । वैसे भी सभी ग्वालबाल जानते थे कि हमारा कन्हैया साधारण नहीं है, इसने अघासुर, बकासुर जैसे

महाबलशाली दैत्यों का संहार किया है । भागवत में तो गेंद खेलने की लीला का वर्णन नहीं है । श्रीकृष्ण सबकी सम्मति से ही कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये । सब ग्वाल बाल समझ गये कि आज हमारे कन्हैया और कालियनाग की कड़ी टक्कर होगी । कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर श्यामसुन्दर ताल ठोंकने लगे । सब गोपबालक बोले – 'हाँ, अब कालियनाग की मिट्टी पलीद होगी ।'

यमुना किनारे वहाँ कदम्ब वृक्ष कैसे स्थित था, इसके सम्बन्ध में कई मत हैं ।

श्रीधरस्वामी किसी दूसरे पुराण को उद्धृत करते हुए लिखते हैं –

'अमृतमाहरता गरुत्मता क्रान्तत्वादिति'

जीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

"कदम्बः कृष्णवृक्षो हि कालियह्रदसमीपगः ।
तस्मादेको न शुष्कोऽसौ विषहारकरः परान्"

जब गरुड़जी स्वर्ग से अमृत का कलश हरण करके ले जा रहे थे तो थोड़ी देर के लिए इसी कदम्ब वृक्ष पर बैठे थे और अमृत का कलश उसके ऊपर रख दिया था, इस कारण वह कदम्ब वृक्ष यमुना जल के विषैला होने पर भी कभी सूखा नहीं और न ही उसे कोई नुकसान हुआ । इससे भी अधिक बढ़िया बात अन्य आचार्यों ने लिखी है कि देवता भी तो अमृत पीते हैं किन्तु वे कभी कालिए ह्रद पर पहुँच नहीं पाए । इसलिए अमृत कोई बड़ी चीज नहीं है । इसलिए ऐसा विचार कि अमृत का कलश कदम्ब पर रखने से वह वृक्ष सदा स्थिर बना रहा, यह कोई विशेष बात नहीं है । विशेष बात तो यह है कि भगवान् की लीलाशक्ति की विचित्रता के कारण वह कदम्ब वृक्ष दीर्घ काल तक सुरक्षित बना रहा । श्यामसुन्दर को यहाँ लीला करनी थी, इसलिए

उन्होंने कदम्ब वृक्ष को स्थिर बनाये रखा कि भविष्य में इस पर चढ़कर मैं कूदूँगा और मल्ल की तरह ताल ठोकूँगा तो यह देखकर ग्वालबाल प्रसन्न होंगे । इसलिए दोनों ही बातें सही हैं । श्रीधर स्वामी ने जो लिखा वह भी सही है । भगवान् ने कदम्ब वृक्ष को स्थिर बनाये रखने के लिए अमृत को भी निमित्त बना दिया ताकि कोई शंका करने वाला संतुष्ट रहे ।

जब कन्हैया कदम्ब वृक्ष पर खड़े होकर ताल ठोंकने लगे तो ग्वालबाल उन्हें शाबाशी देने लगे – 'वाह, वाह, कन्हैया ! आज यदि तूने कालियनाग को नाथ दिया तो हम लोग तुझे मान जायेंगे ।' श्रीकृष्ण ने सखाओं की बात सुनकर कमर का फेंटा कसा और उस विषैले जल में कूद पड़े । वे इतनी वेग से कूदे कि कालिय ह्रद का जल इधर-उधर चार सौ हाथ तक फ़ैल गया । यमुना जल विष की गर्मी से उबल रहा था । ठाकुरजी उस ह्रद में कूदकर जल विहार करने लगे, तैरने लगे, कभी सीधे, कभी उलटे और अपने हाथों से जानबूझकर जल को उछालने लगे । सर्प आँख से ही सुनता है, उसके कान नहीं होते हैं । अतः आँख से ही सुनने वाले कालियनाग ने जब श्यामसुन्दर द्वारा जोर-जोर से जल उछालने की आवाज सुनी तब वह सोचने लगा कि अरे, यह मेरे स्थान पर कौन चढ़ आया ? यहाँ तो कोई देवता तक नहीं आ सकता, कोई चिड़िया भी नहीं आ सकती, कोई दानव नहीं आ सकता तो आखिर ये है कौन ? वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण के सामने आ गया ।

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातम्
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिम्
सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१६/९)

उसे श्रीकृष्ण के दर्शन हो गये । कैसे हैं श्रीकृष्ण, बस देखते ही चले जाओ । कालियनाग ने देखा कि एक सुकुमार बालक है, नीला दिव्य वपु, जिससे नील ज्योति निकल रही है, वक्षः स्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है, पीले रंग का वस्त्र धारण किये हुए है । वह बालक बड़ा सुन्दर है और कालियनाग को देख करके मुस्कुरा रहा है, भयभीत नहीं हो रहा है ।

यद्यपि वीर रस और रौद्र रस का आपस में मेलजोल है । जब योद्धा लड़ता है तो रुद्र रूप में आ जाता है, उसकी आँख-नाक चढ़ जाती है, भयानक आकृति बन जाती है क्योंकि वीर रस और रौद्र रस का मेल है किन्तु अर्जुन महाभारत में अधिकतर मुस्कुराकर लड़ते थे । उत्तम योद्धा मुस्कुराकर खेल समझकर लड़ते हैं । लड़ते समय भी श्यामसुन्दर मधुर बने रहते हैं क्योंकि ये मधुर हैं, इनका सब कुछ मधुर है । इस भयंकर वातावरण में भी वे मुस्कुरा रहे थे क्योंकि वे रसमय प्रभु हैं । एक बात और है, श्यामसुन्दर ने ब्रज में कभी हथियार नहीं उठाया, जिससे कि मधुरता कहीं बिगड़ न जाए । जितने भी असुर ब्रज में उन्होंने मारे तो पूतना को स्तन पान करके मार दिया, किसी असुर को टांग पकड़कर पछाड़ दिया और अभी कालिय को नाच-नाचकर पछाड़ देंगे । इसीलिए यह बड़ी विचित्र बात हुई कि कालियनाग को देखकर श्यामसुन्दर मुस्कुरा रहे थे । कालियनाग ने देखा कि यह बालक मुस्कुरा रहा है और निर्भय खेल रहा है तथा यमुनाजी से कमल लेकर घुमा रहा है । यह उनकी एक अदा है । यह सब देखकर कालियनाग बड़ा क्रोधित हुआ और उसने अपने सैकड़ों फनों से श्रीकृष्ण के मर्म स्थानों को काटा । **'मर्मसु'** – एक जगह पर नहीं, कई स्थानों को उसने डँसा । इतना होने पर भी श्रीकृष्ण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब उसने उन्हें कस कर जकड़ लिया । यह लीलाधर की लीला है । इन्हीं श्रीकृष्ण के अंश भगवान् रुद्र ने कालकूट विष पी

लिया और उन्हें कुछ नहीं हुआ फिर श्रीकृष्ण को क्या नुकसान हो सकता है ? थोड़ी देर के लिए वे सबको अपनी लीला दिखा रहे थे । श्रीकृष्ण को कालियनाग के पाश में जकड़ा देखकर गाय, बैल, बछिया और बछड़े दुःख से रोने लगे । ग्वालबाल भी पछताने लगे कि हमने व्यर्थ ही कृष्ण को कालिय ह्रद में भेजा, हमने तो सोचा था कि कन्हैया कालियनाग को मार देगा । वे एक दूसरे को दोष देने लगे कि तूने ही कन्हैया को कालिय दह में कूदने के लिए उत्साहित किया, दूसरा कहता कि तू ही इसे शाबाश-शाबाश कहकर कालियनाग से लड़ने के लिए भेज रहा था । अन्त में ग्वालबाल कन्हैया के शोक में मूर्च्छित हो गये । इधर ब्रज में बड़े-बड़े उत्पात होने लगे, जो किसी अशुभ घटना की सूचना दे रहे थे । नन्द बाबा ने देखा कि आज बलराम श्रीकृष्ण के साथ गाय चराने नहीं गया है । वे और सभी ब्रजवासी अपशकुनों को देखकर श्रीकृष्ण के अनिष्ट की शंका से भयभीत हो गये । वे सभी अपने प्यारे कन्हैया को देखने की तीव्र लालसा से घर छोड़कर वन की ओर निकल पड़े । रास्ते में उन्हें गायों के और श्रीकृष्ण के चिह्न मिलते जाते थे, उनके सहारे वे कालिय दह पहुँच गये । वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण कालियनाग के शरीर से जकड़े हुए हैं और चेष्टाहीन हो गये हैं, कुछ नहीं कर सकते । यह देखकर ब्रजवासी भी मूर्च्छित हो गये । गोपियों का मन श्रीकृष्ण के प्रेम के रंग में रंगा हुआ था । वे उनके प्रेम का स्मरण करने लगीं, श्यामसुन्दर को कालियनाग द्वारा जकड़ा हुआ देखकर उन्हें बहुत कष्ट हुआ और तीनों लोक उन्हें शून्य दिखने लगे । यशोदा मैया तो कालिय दह में प्रवेश करने जा रही थीं । उन्होंने कहा कि अपने लाला के बिना मैं जीवित रहकर क्या करूँगी ? उन्हें गोपियों ने रोक लिया । नन्द बाबा भी कालिय दह में प्रवेश करने लगे तो बलरामजी ने उन्हें रोक लिया और समझाने लगे कि बाबा, यह क्या करते हो ? ये वही श्यामसुन्दर हैं, जिन्होंने कंस द्वारा भेजे

गये बड़े-बड़े असुरों का वध किया । उन्होंने यशोदा मैया और नन्द बाबा से कहा कि आप लोग कन्हैया के प्रभाव को नहीं जानते हैं, वह अभी इस कालियनाग को मारकर बाहर आएगा । ये तो कालिय और कृष्ण दोनों के दाँव-पेंच हो रहे हैं, जैसे दो मल्ल जब आपस में कुश्ती लड़ते हैं तो ऊपर-नीचे हुआ करते हैं ।

इस प्रकार बलरामजी समझा-बुझाकर यशोदा व नन्द बाबा को जबरन कालिय दह से लेकर आये । यशोदाजी ने तो कालिय दह में अपना पाँव ही रख दिया था, उनको भी बलरामजी ने रोका और कहा कि मैया, ये तुम क्या करती हो, कुछ समझती तो हो नहीं, तुम्हारा लाला अभी कालिय को पछाड़ कर बाहर आने वाला है ।

श्यामसुन्दर ने देखा कि मैया और नन्द बाबा को उनके जकड़े जाने से बहुत से कष्ट हो रहा है तथा गोपियाँ और ग्वालबाल भी बहुत दुःखी हो रहे हैं तो उन्होंने कालियनाग के पाश से छूटने का निश्चय किया । श्यामसुन्दर एक मुहूर्त (लगभग चालीस मिनट) तक कालिय के पाश में जकड़े रहे और ब्रजवासियों का कष्ट देखते रहे कि कोई रो रहा है, कुछ मूर्च्छित हो गये हैं, तब उन्होंने अपना शरीर बढ़ा लिया, शरीर बढ़ाने से कालिय का पाश टूटा । उसने मन में सोचा कि यह बालक है कि क्या है, मैं तो इसे बालक समझ रहा था और यह तो मेरे पाश से छूट गया । तब वह कुपित होकर अपना फन ऊँचा करके फुँफकार से विष की पिचकारी चलाने लगा, उसके विष से आग निकल रही थी और वह कृष्ण को देखने लगा । दोनों एक दूसरे पर चोट करने के लिए पैंतरा बदलने लगे । वह ठाकुरजी के ऊपर हमला करता तो वे दूसरी ओर चले जाते, इस प्रकार ठाकुरजी उसके साथ खेल खेलने लगे ।

विष्णुपुराण के अनुसार –

सर्वा यशोदया सार्द्धं विशामोऽत्र महाह्रदे ।
नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥
दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा ।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ।
न विना पुण्डरीकाक्षं यास्यामो नन्दगोकुलम् ॥
भोगेनावेष्टितस्यापि सर्पराजस्य पश्यत ।
स्मितशोभिमुखं गोप्यः कृष्णस्यास्मद्विलोकने ॥

यशोदाजी को कालियदह की ओर जाते देखकर सभी ब्रजवासी कहने लगे कि यशोदाजी कालिय दह में जा रही हैं तो हम लोगों को भी इसी दह में घुस जाना चाहिए । हम लोग ब्रज में लौटकर नहीं जायेंगे । सारे के सारे ब्रजवासी कालिय दह में घुसने को तैयार होने लगे । ब्रज में ऐसा कोई नहीं था, जो कृष्ण के बिना जीना चाह रहा हो । जब श्रीकृष्ण कालियनाग के साथ पैंतरा बदलने लगे तो ब्रजवासी बोले कि कन्हैया तो अभी जीवित है । यह तो अब इस नाग को समाप्त करके ही आएगा । उन्हें कृष्ण के सकुशल लौट आने की आशा बँधी ।

इधर श्रीकृष्ण बार-बार पैंतरा बदलते और कालिय भी पैंतरा बदलता । बारम्बार पैंतरा बदलने से उसका बल क्षीण हो गया । वृक्षों से भी ऊँचे, कालिय के बड़े-बड़े फन थे, उस पर श्यामसुन्दर चढ़ गये, कैसे चढ़े ? हरिवंश पुराण में कृष्ण और कालिय की लड़ाई को विस्तार से बताया गया है । उसमें वर्णन है –

"शिरः स कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनम्य च ।"

जैसे मल्ल युद्ध में पहलवान एक दूसरे की गर्दन पर थप्पी मारते हैं, थप्पी मारने से गर्दन झुक जाती है । उसी प्रकार श्यामसुन्दर ने भी कालियनाग के फन के नीचे से थप्पी मारी और उससे फन नीचे

झुका तो वे उसका फन पकड़कर, झुकाकर उस पर चढ़ गये । कालिय के फनों पर बहुत-सी मणियाँ थीं, उनके प्रकाश से श्रीकृष्ण के चरण बहुत लाल दिखने लगे और फिर उसके फनों पर वे नृत्य करने लगे । श्रीकृष्ण नटेश्वर हैं, शिवजी नटराज हैं । श्रीकृष्ण ने कालियनाग के फनों के ऊपर अद्भुत नृत्य किया, यह कला है; ऐसा नृत्य आज तक किसी ने नहीं किया । उनके इस विलक्षण नृत्य को देखने के लिए गन्धर्व, देवता और देवांगनाएँ भी आ गये । समान स्थल पर, बराबर वाली धरती पर तो सब नाचते हैं किन्तु अखिलकला गुरु श्रीकृष्ण की तरह कालियनाग के सैकड़ों ऊपर और नीचे के फनों पर, असमान स्थल पर कोई नहीं नाच सकता । कुछ नृत्यकार बताशों पर तो कुछ सकोरों पर नाचते हैं । उनके नृत्य से बताशे और सकोरे टूटते नहीं हैं । नृत्य की अनेक विधायें होतीं हैं किन्तु श्रीकृष्ण तो समस्त कलाओं के आदिगुरु हैं । इन्होंने तो विचित्र नृत्य किया । कालियनाग के सैकड़ों ऊपर-नीचे के फनों पर ताल, स्वर के साथ संगत करते हुए नृत्य किया । गन्धर्व, सिद्ध, देवता, और चारण बड़े प्रेम से मृदंग, ढोल और नगाड़े आदि बाजे बजाने लगे तथा अप्सरायें नृत्य करने लगीं । बड़े आश्चर्य की बात है कि उनके बाजों के ताल-सुर के साथ श्यामसुन्दर कालियनाग के ऊबड़-खाबड़ फनों पर सुर-ताल मिलाकर नृत्य कर रहे थे । नृत्य भी हो रहा था और युद्ध भी हो रहा था, यह एक अद्भुत दृश्य था । सर्वश्रेष्ठ कला और सर्वश्रेष्ठ युद्ध का एक साथ प्रदर्शन हो रहा था; यह एक विचित्र बात थी, यह भी एक रस है । श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला में रस है । देखने में ही मालूम पड़ता था कि कालियनाग के साथ लड़ने में कितनी भयानकता है, ऐसी स्थिति थी कि साधारण भावुक व्यक्ति को देखकर बड़ा कष्ट होता था परन्तु श्यामसुन्दर ने इस भयानक दृश्य को भी ऐसा रसमय परिवेश दे दिया कि भयानकता तो समाप्त हो गयी और 'कालियनाग के फन' नृत्य करने का सुन्दर मंच बन गया । जो रसिया होता है, वह हर चीज को

रस बना देता है और जो विषैला होता है, वह रस को भी विष बना देता है । श्रीकृष्ण की यही विशेषता है कि उन्होंने ऐसी भयानक स्थिति को भी रस में परिवर्तित कर दिया; यही चतुराई है । 'भगवद्भक्त' जहाँ भी रहता है, 'भगवान्' की कृपा से वह विष को भी रस बना देता है क्योंकि वह 'कृष्णभक्त' है । इस गुण को सीखना चाहिए, इसके विपरीत हम जैसे लोग जहाँ भी बैठेंगे, रस को भी विष बना देते हैं ।

अस्तु, श्यामसुन्दर का कालिय के साथ युद्ध भी हो रहा था और ताल-सुर के साथ उसके फनों पर नृत्य भी हो रहा था । कालियनाग के एक सौ एक सिर थे । वह अपने जिस सिर को नहीं झुकाता था, उसी को प्रभु नाचते समय प्रभु अपने पैरों की ठोकर से कुचल देते थे । बड़ी तीव्रता के साथ प्रभु कालिय के फनों पर अपने चरण रख रहे थे और ताल-सुर के साथ लय मिलाकर नृत्य कर रहे थे । आकाश में स्थित सिद्ध, देवता, गन्धर्व आदि इस दृश्य को देख रहे थे, वे कहने लगे कि इसे युद्ध कहें अथवा संगीत कहें, यही समझ में नहीं आ रहा है । यह तो श्रीकृष्ण की लीला है । गन्धर्वों के वाद्य भी बज रहे हैं, पुष्पों की वर्षा हो रही है तथा हर ताल-सुर के सम पर श्यामसुन्दर अपने चरणों के प्रहार से कालिय के एक-एक सिर को झुका रहे थे । कैसी लीला वैचित्री है । इधर कालियनाग की जीवन शक्ति क्षीण हो रही थी और उधर नटनागर की कला का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन भी हो रहा था । एक कहावत है कि चिड़ियों की जान जाए और बालकों का खिलौना । बालक पत्थर मारते हैं तो चिड़ियों के तो प्राण निकल जाते हैं और बालकों के लिए यह एक खेल है । इसी प्रकार बाल कृष्ण का तो खेल अर्थात् नृत्य हो रहा है और कालियनाग का दम निकला जा रहा है । कालियनाग के फनों से खून के छींटे निकलने लगे किन्तु कृष्ण के चरणों पर वह खून लगने से रसमयी छटा हो गयी । भयानक रस बिलकुल गायब हो गया । इसीलिए महाप्रभु वल्लभाचार्यजी कहते हैं कि कृष्ण का सब कुछ मधुर है – **'मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।'**

इनका बोलना,चलना, नृत्य करना, यहाँ तक कि लड़ना भी मधुर है । कालियनाग के फनों से निकली रक्त की बूँदों से श्रीकृष्ण के चरण लाल हो गये तो उनकी ऐसी शोभा हुई मानो किसी ने लाल पुष्प उनके चरणों में अर्पित किये हों, अन्यथा, रक्तादि के निकलने से वीभत्सता (भयानकता) आ जाती है, रौद्र रस आ जाता है किन्तु शुक मुनि कहते हैं कि कालियनाग के फनों से निकली खून की बूँदें श्यामसुन्दर के चरणों पर लगने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे रक्त पुष्पों से उनकी पूजा की जा रही हो ।

'पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः' (श्रीभागवतजी - १०/१६/२९)

ऐसा इसलिए क्योंकि प्रभु ने इस लीला को रसमय बना दिया है ।

'तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो' (श्रीभागवतजी - १०/१६/३०)

यह विचित्र नृत्य था, ऐसा नृत्य आज तक किसी ने नहीं किया । महादेवजी ताण्डव नृत्य अवश्य करते हैं किन्तु श्रीकृष्ण का यह चित्र ताण्डव है । यही श्रीकृष्ण की विशेषता है, इसीलिए शिवजी नटराज हैं और श्रीकृष्ण नटेश्वर हैं । श्रीमद्भागवत के ही वेणुगीत नामक अध्याय में श्रीकृष्ण के लिए कहा गया है – **'बर्हापीडं नटवरवपुः ।'** प्रलय के समय जब शिवजी ताण्डव नृत्य करते हैं तो सृष्टि का विनाश हो जाता है । उस ताण्डव नृत्य में माधुर्य नहीं आ सकता है क्योंकि उससे संसार का संहार हो जाता है । कालिय का दमन करते समय कृष्ण जो नृत्य कर रहे हैं, यह चित्र-ताण्डव है । यह ताण्डव अत्यन्त मधुर है । यह माधुर्य संवलित ताण्डव है, जिसे भागवत में चित्र ताण्डव कहा गया है । इन शब्दों के द्वारा भागवत में संगीत की विशेषतायें बतायी गयी हैं । इन शब्दों को पकड़कर इनका रहस्य बड़े-बड़े संगीतज्ञ भी नहीं समझ सकते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण के नृत्य की ठोकर से कालिय का एक-एक अंग चूर-चूर हो गया और वह मुँह से खून उगलने लगा । भगवान् के उदर में सारा विश्व है, उनके भारी बोझ से कालियनाग के शरीर की एक-एक गाँठ ढीली पड़ गयी । अब उसे भगवान् की स्मृति हुई और वह मन ही मन भगवान् की शरण में गया । अपने पति की दुर्दशा देखकर कालियनाग की पत्नियाँ अपने बच्चों को लेकर भगवान् की शरण में आयीं । भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करके नागपत्नियाँ कहने लगीं – 'प्रभो ! आपका यह अवतार ही दुष्टों को दण्ड देने के लिए हुआ है, इसलिए इस अपराधी को दण्ड देकर आपने अच्छा किया । यह आपने इस पर कृपा की है ।'

नागपत्नियों ने अपनी इस स्तुति में एक बहुत उत्कृष्ट बात कही है –

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ।

(श्रीभागवतजी - १०/१६/३५)

'हे नाथ ! पूर्व जन्म में कालिय ने स्वयं मानरहित होकर, दूसरों का सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है ।'

तप तो बहुत से लोग करते हैं किन्तु अपने मान को नष्ट करते हुए, दूसरे को मान देकर जो भजन किया जाता है, वही असली भजन है । अपने मान के लिए जो भजन किया जाता है, वह भजन भजन नहीं है । यही बात चैतन्य महाप्रभु ने कही है –

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

भजन वही है, जिसमें स्वयं के सम्मान की इच्छा न करके दूसरे को सम्मान दिया जाए । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

सबहि मानप्रद आपु अमानी ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य सेवक जी कहते हैं – **'सबहि बोलत मान दै'** अर्थात् सबको मान दो । रसिकों ने भी ऐसा लिखा है । जो केवल अपना मान चाहता है, वह न तो भक्त है और न ही रसिक है ।

इसीलिए नागपत्नियों ने भगवान् से कहा कि हमारे पति ने पूर्व जन्म में अवश्य ही ऐसा कोई तप किया है, जिसमें स्वयं मान न चाहकर इसने दूसरों का सम्मान किया है ।

(जो स्वयं मान का भूखा है, उसका भजन क्या है, वह तो देहाध्यासी है और अपने शरीर के सम्मान के लिए ही मरा जा रहा है ।)

नागपत्नियों ने आगे कहा – प्रभो ! इसके इस विशिष्ट तप के कारण ही इसे आपके चरणकमलों की प्राप्ति हुई है ।

'यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो' (श्रीभागवतजी - १०/१६/३६)

आपके जिन चरणकमलों की रज ही इतनी दुर्लभ है कि उसके लिए लक्ष्मीजी बहुत समय से तपस्या कर रही हैं ।

अब यह जो निम्नलिखित श्लोक है, इससे मिलते-जुलते श्लोक का उच्चारण वृत्रासुर द्वारा भी इन्द्र से युद्ध करते समय भगवान् के प्रति किया गया था ।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१६/३७)

आपकी चरण रज की शरण लेने वाले भक्त न तो स्वर्ग का राज्य चाहते हैं, न पृथ्वी का राज्य चाहते, न वे रसातल का राज्य

चाहते और न ही ब्रह्मा का पद चाहते हैं । न तो उन्हें योग सिद्धियों की इच्छा होती है और न ही वे मोक्ष चाहते हैं ।

इस प्रकार से नागपत्नियों ने भगवान् की बहुत स्तुति की और अन्त में उन्होंने कहा कि आप इसके अपराध को क्षमा कर दीजिये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब नागपत्नियों ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की तब उन्होंने दया करके कालियनाग को छोड़ दिया । धीरे-धीरे कालियनाग की इन्द्रियों और प्राणों में कुछ चेतना आई । वह बड़ी कठिनाई से श्वास लेने लगा और फिर बड़ी दीनता से हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण से बोला –

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तमसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१६/५६)

(इस श्लोक में कालिय ने जो कहा है, वह है तो छोटी सी बात किन्तु हम सब लोगों पर घटित हो रही है)

कालियनाग ने कहा – 'प्रभो ! हम जन्म से ही दुष्ट, तमोगुणी और बहुत अधिक क्रोधी जीव हैं । जीवों के लिए अपना स्वभाव छोड़ना कठिन है । इसी स्वभाव के कारण संसार के लोग अनेक दुराग्रहों में फँस जाते हैं ।'

स्वभाव को मनुष्य छोड़ नहीं पाता है । किसी का स्वभाव छूट जाये तो समझो कि वह मुक्त हो गया ।

'लोकानां यदसद्ग्रहः' – असद्ग्रह का अर्थ है हठ । स्वभाव क्या है, स्वभाव है हठ । इसे समझना चाहिए । यह एक दार्शनिक विषय है ।

चाणक्य ने कहा है – **'बुद्धेः फलं अनाग्रहः'** – (चाणक्यनीति)
बुद्धि का फल यही है कि मनुष्य हठ छोड़ दे ।

वास्तव में अहं ही जीव के बन्धन का कारण है और अहं के अनेक रूप हैं । अहं ही हम लोगों का स्वभाव बना हुआ है ।

जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।

इसीलिए यहाँ कालियनाग ने कहा कि स्वभाव छोड़ना बहुत कठिन है और स्वभाव क्या है, **'लोकानां यदसद्ग्रहः'** – लोगों का असत् आग्रह अर्थात् हठ ही स्वभाव है । इसीलिए रामायण में कहा गया है –

भगति पच्छ हठ नहिं सठताई ।

भक्ति में हठ करना शठता है । इसलिए हठ को छोड़ो, बस,तुम्हारा स्वभाव बदल जायेगा । स्वभाव को बदलने का यही उपाय है, जो महापुरुषों ने बताया है कि हठ को छोड़ दो । महात्मा सुन्दरदासजी ने कहा है –

गुरु कहे सोई करना, चाहे पड़े नरक में पड़ना ।

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है –

first obey and then command.

पहले स्वयं आज्ञा का पालन करो और तब दूसरे को आदेश दो ।

पहले आँख बन्द करके आज्ञा पालन करना सीखो, फिर आदेश का पालन कराने की शक्ति तुम्हारे अन्दर अपने आप आ जाएगी । स्वतः शक्ति आ जाएगी । पहले हम लोग जो नीचता करते हैं, हठ करते हैं, अपनी जिद करते हैं, यह हमारा सबसे बड़ा बन्धन है । जिस व्यक्ति को परमार्थ के रास्ते पर चलना है, वह इस बात को गाँठ बाँधकर रख ले –

भगति पच्छ हठ नहिं सठताई ।

उसे हठ छोड़ देना चाहिए । ऐसा करने से उसका स्वभाव बदल जायेगा और वह भगवत्प्राप्ति कर लेगा । कालियनाग ने भगवान् कृष्ण के सामने यह बहुत अच्छी बात कही, जो मनोविज्ञान की दृष्टि से भी बहुत ऊँची है ।

'वयं खलाः...' (श्रीभागवतजी - १०/१६/५६)

यह स्वभाव ही तो हठ है । जिसका राजस स्वभाव है, वह राजस हठ करेगा, जिसका तामस स्वभाव है, वह तामस हठ करेगा । जिसका सात्त्विक स्वभाव है, वह सात्त्विक हठ करेगा । जिसमें हठ नहीं है, उसके अन्दर निर्गुणा भक्ति है । हठ के अनेक रूप होते हैं । राजा के पास राज हठ होता है, बच्चों के पास बाल हठ होता है, स्त्रियों के पास स्त्री हठ होता है । इसीलिए साधुओं के लिए राजा और स्त्री का दर्शन निषिद्ध माना गया है । इनके अन्दर हठ अधिक होता है । इनकी अधिक निन्दा भी इसीलिए की गयी है । हठ के कारण इनका स्वभाव बहुत खराब होता है ।

आगे कालियनाग ने कहा –

'नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति'

(श्रीभागवतजी - १०/१६/५७)

भगवान् कृष्ण के सामने कालियनाग का सारा भाषण स्वभाव के ही विषय में है ।

कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/१६/५८)

उसने यहाँ तक कह दिया कि स्वभाव ही माया है । इसे हम कैसे छोड़ सकते हैं ?

कथनाशय यही है कि जिसका स्वभाव बदल गया, वह तो माया से छूट गया । कोई मनुष्य यदि कहता है कि मेरा ऐसा ही स्वभाव है, अब मैं इसको कैसे बदलूँ तो वास्तव में स्वभाव को बदलना ही माया से छूटना है । जिसका स्वभाव बदल गया तो इसका मतलब है कि उसने माया को जीत लिया । सबसे बड़ी बात यही है । स्वभाव को बदलने का ही दूसरा नाम है – **चित्तवृत्तिनिरोध ।** चित्त के कई भेद बताये गये हैं जैसे क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, निरुद्ध आदि योगशास्त्र में मुख्य चार भेद बताये गये हैं । जिसका क्षिप्त चित्त है, उसकी क्षिप्त वृत्तियाँ हैं । जिसका विक्षिप्त चित्त है, उसकी विक्षिप्त वृत्तियाँ हैं । मूढ़ चित्त है तो मूढ़ वृत्तियाँ हैं, निरुद्ध चित्त है तो वह समाधि पर पहुँचता जायेगा और सविकल्प से होते-होते निर्विकल्प समाधि तक पहुँच जायेगा । इन्हीं को क्षिप्त स्वभाव, विक्षिप्त स्वभाव, मूढ़ स्वभाव और निरुद्ध स्वभाव भी कहा जाता है । मनोविज्ञान की संकलित, समन्वयात्मक बात यही है कि जिसका स्वभाव बदल गया, वह माया से मुक्त हो गया । इसलिए हर व्यक्ति को दुराग्रह छोड़कर अपने स्वभाव को बदल लेना चाहिए । इसी का नाम योग है कि चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो गयीं और फिर वह जीव भवसागर के पार चला जाता है । यह बड़ा सुलझा हुआ मनोविज्ञान है, नपी-तुली सारी बातें हैं । इसीलिए श्रीमद्भागवत शास्त्र समस्त दर्शनों का सार है, मक्खन है यह । कालियनाग ने अपनी स्तुति में यह बहुत बढ़िया बात कही है ।

अध्याय – १६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब कालियनाग ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति कर ली तो उन्होंने उससे कहा – 'कालिय ! अब तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए । तुम अपने परिवार के साथ समुद्र में चले जाओ । अब यहाँ मेरे ग्वालबाल खेलेंगे तथा वे और गायें अब यमुनाजल का

उपभोग करेंगे । जो मनुष्य दोनों समय तुमको दी हुई मेरी इस आज्ञा का स्मरण तथा कीर्तन अथवा पाठ करेंगे, उनको साँपों से कभी भय नहीं होगा । मैं जानता हूँ कि तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़कर इस दह में रहने लगे थे । अब तुम्हारा शरीर मेरे चरणचिह्नों से अंकित हो गया है, इसलिए अब गरुड़ तुम्हें नहीं खायेंगे ।'

भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर कालियनाग और उसकी पत्नियों ने आनन्द से भरकर बड़े आदर से उनकी पूजा की । नागपत्नियों ने प्रभु को मणियाँ लाकर भेंट कीं । इसके बाद कालियनाग अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवों के साथ समुद्र में स्थित 'रमणक द्वीप' में चला गया ।

इस कथा के पीछे कालियनाग के पूर्व जन्म की कथा और उससे जुड़ी हुई महत्वपूर्ण शिक्षा है । दो ऋषि थे, एक का नाम वेदशिरा और दूसरे का नाम अश्वशिरा था । वेदशिराजी किसी वन में आश्रम बनाकर भजन करते थे । एक दिन उधर घूमते-घूमते अश्वशिरा ऋषि आये और भजन करने लगे । इस कथा में एक महत्वपूर्ण शिक्षा है कि विरक्तों में भी कैसे गड़बड़ी हो जाती है । अश्वशिरा मुनि को देखकर वेदशिराजी बोले कि तुम मेरी कुटिया के पास क्यों आ गये, मैं यहाँ भजन करता हूँ । तुम किसी दूसरे वन में चले जाओ । अश्वशिरा मुनि बोले – 'अरे, तुम विरक्त हो चुके हो और अभी भी तुम्हारे मन में 'मेरी कुटिया, मेरा आश्रम, तुम्हारा आश्रम, मेरी जमीन-तुम्हारी जमीन आदि का' भेद बना हुआ है ।'

उन दोनों में आपस में कलह बहुत बढ़ गया । कलह बढ़ जाने पर अश्वशिरा मुनि ने वेदशिराजी को शाप दे दिया – 'तुम विरक्त होकर भी 'मेरी कुटिया, मेरा वन आदि का' भेद लेकर व्यर्थ ही सर्प की तरह फुफकारते हुए क्रोध करते हो, इसलिए सर्प बन जाओ । अरे ! मैं

तेरे यहाँ आया हूँ तो तेरा अतिथि हूँ, मैं यहाँ प्रभु का नाम ही तो लूँगा, तपस्या ही तो करूँगा, तुम्हारे कोई स्त्री-पुत्र नहीं हैं; फिर भी मेरा-तेरा में फँसे हो और सर्प की तरह फुफकारते हो तो तुम्हें सर्प ही बनना पड़ेगा ।' अश्वशिरा के शाप देने से वेदशिरा और भी अधिक क्रोधित हो गये तथा बोले – 'जब से तुम यहाँ आये हो, तब से कौआ की तरह काँव-काँव कर रहे हो, इसलिए तुम भी कौआ बन जाओ ।' इस तरह एक-दूसरे को शाप देने के कारण वेदशिराजी तो कालियनाग बने और अश्वशिराजी काक रूप से कागभुशुण्डिजी बन गये । इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि विरक्त होकर भी मनुष्य को आश्रम के कलह में नहीं पड़ना चाहिए । यह बड़े दुःख की बात है कि आश्रमों में रहने वाले हम जैसे लोग कलह-झगड़े करते हैं, लड़ते हैं और आश्रम के कारण मुकद्दमे भी चलते हैं । यह तो सर्प- योनि में जाने का रास्ता है । इसीलिए शास्त्र में यति-सन्यासी अथवा विरक्त के लिए आश्रम का निषेध किया गया है क्योंकि इसके कारण कलह होने की सम्भावना बनी रहती है और कलह होने पर सर्प योनि प्राप्त करने का रास्ता तैयार हो जाता है ।

अध्याय – १७

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! कालियनाग ने अपने निवासस्थान रमणक द्वीप को क्यों छोड़ा था ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – गरुड़जी पूर्व काल में सर्पों को बहुत खाया करते थे, इसलिए ब्रह्माजी ने सर्पों से कहा कि तुम लोग प्रत्येक अमावस्या को एक वृक्ष के नीचे गरुड़जी को एक सर्प की भेंट दे आया करो । कालियनाग कद्रू का पुत्र था । कद्रू और विनता दो बहनें थीं, जिनका विवाह कश्यप ऋषि के साथ हुआ था । गरुड़जी विनता के पुत्र थे । प्रत्येक अमावस्या को सारे सर्प गरुड़जी को अपना-अपना भाग देते रहते थे किन्तु कालिय बड़ा ही उद्दण्ड था । वह गरुड़जी को बलि

देना तो दूर, दूसरे साँप जो गरुड़जी को बलि देते, उसे भी खा लेता था। गरुड़जी जब क्रोधित होकर उस पर आक्रमण करने के लिए आये तब उसने गरुड़जी को दाँतों से डस लिया। ऐसा करने पर गरुड़जी ने अपने बायें पंख से कालियनाग पर जोर से प्रहार किया तो वह घायल हो गया और वहाँ से भागा। उसको पता था कि वृन्दावन में यमुनाजी के कुण्ड में गरुड़जी नहीं आ सकते तो वह वहीं आकर रहने लगा था।

प्राचीन काल में सौभरि नामक एक ऋषि थे, वे इसी स्थान पर तपस्या करते थे। एक दिन गरुड़जी वहाँ आये और मछली खाने लगे तो सौभरि ऋषि ने गरुड़जी को शाप दे दिया कि यदि गरुड़ फिर कभी यहाँ आकर मछली खायेंगे तो प्राण रहित हो जायेंगे। इस शाप के कारण गरुड़जी उस स्थान पर फिर कभी नहीं गये।इस कथा में भी एक शिक्षा छिपी हुई है। जीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

किन्तु तस्य मुनेरेवापराधः श्रीवैष्णवापराधेन तस्य तपो भङ्गादिपरमानर्थः। तत्रत्यक्षेमार्थसङ्कल्पोपि विपरीत एवाभवत् तत्रास्तु तावज्जलचराणाम् वार्त्ता कालियनिवासेन तीरवर्त्तिनां वृक्षादीनामपि तथोपरि गच्छताम् खगादीनामपि मरणं प्राप्तम्॥

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णव तोषिणी)

गरुड़जी को शाप देने के कारण उलटे ऋषि को ही अपराध लग गया। गरुड़जी को तो कोई हानि नहीं हुई, वे फिर कभी उस स्थान पर नहीं आये किन्तु सौभरि ऋषि को भक्तापराध लग गया। हर जीव का आहार भगवान् ने ही बनाया है। गरुड़जी पक्षी जाति के हैं, अतः उनके लिए भगवान् ने जो आहार बनाया है, उसे यदि वे खाते हैं तो उनके लिए यह कोई अपराध नहीं है। बैल का आहार घास है। भगवान् ने ऐसा

बना दिया है । अब कोई कहे कि वह घास क्यों खाता है, भूसा क्यों खाता है तो इसका कोई उत्तर नहीं है । सारी सृष्टि प्रभु से निर्मित है, उन्होंने जिस जीव के लिए जो आहार बना दिया, वह वही खाता है । गरुड़जी जो मछली खा रहे थे, वह भी ईश्वर इच्छा से ही खा रहे थे । गरुड़जी को शाप देने से सौभरि ऋषि को वैष्णव अपराध लगा और इस वैष्णव अपराध से उनकी तपस्या नष्ट हो गयी । उन्होंने पचास स्त्रियों से विवाह किया और दिन-रात भोग में डूब गये । सारी तपस्या जल गयी । जीव गोस्वामीजी यह भी लिखते हैं कि सौभरि ऋषि ने गरुड़जी को इसलिए शाप दिया कि यमुनाजी के जीवों की रक्षा होगी । यहाँ की मछलियाँ कभी नष्ट नहीं हों किन्तु उनके द्वारा जो भक्तापराध किया गया, उसका यह परिणाम हुआ कि उसी ह्रद में महाविषधर कालियनाग रहा और उसके विषैले जल से यमुना जल में रहने वाले सभी जीवों का नाश हुआ, मछली तो क्या, यमुना तट के वृक्षादि भी नष्ट हो गये । एक योजन तक के आसपास रहने वाले सभी जीव नष्ट हो गये । यह सब कुछ सौभरि ऋषि के अपराध से हुआ । इस बात को समझो कि सौभरि द्वारा गरुड़जी के प्रति किये गये अपराध से यमुनाजी और उसके निकटवर्ती क्षेत्र के सारे जीवों का नाश हो गया । इसलिए मनुष्य को वैष्णव अपराध से डरना चाहिए ।

कालियनाग की कथा से जुड़ी तीन-चार शिक्षायें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । एक तो स्वभाव से सम्बन्धित, दूसरी शिक्षा यह कि आश्रम की आसक्ति ठीक नहीं, इसके बाद नागपत्नियों ने बताया कि भजन किस प्रकार स्वयं अमानी और दूसरों के प्रति मानद बनकर करना चाहिए और चौथी शिक्षा यह है कि वैष्णव अपराध से सदा डरना और बचना चाहिए ।

श्यामसुन्दर ने कालियनाग को उसके परिवार वालों के सहित रमणक द्वीप भेजकर यमुना जल को पूरी तरह शुद्ध, निर्मल बना दिया । इसके बाद जब वे बाहर निकल कर आये तो ब्रजवासियों के तो

मानो प्राण लौट आये । सभी लोग प्रेम से अपने कन्हैया को हृदय से लगाने लगे । यशोदा मैया और नन्द बाबा ने अपने लाड़ले कन्हैया को गोद में उठा लिया । सभी गोपियाँ भी बहुत प्रसन्न हुईं । नन्दबाबा ने कन्हैया के सकुशल लौट आने के कारण ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया । सभी ब्रजवासी बहुत थके हुए थे, इसलिए उस रात वे ब्रज में नहीं गये और यमुना के तट पर ही सो गये ।

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/१७/२१)

संस्कृत में शुचि का अर्थ है आषाढ़ मास ।

आषाढ़ का महीना था और आधी रात के समय वन में आग लग गयी । उस आग ने सोये हुए ब्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया ।

भागवत के टीकाकार आचार्यों ने बताया है कि यह अग्नि कौन था ?

'कंसानुचरः असुरः' – यह अग्नि कंस का अनुचर असुर था, ऐसा जीव गोस्वामीजी ने लिखा है । सुबोधिनीकार वल्लभाचार्यजी ने अपना अलग मत व्यक्त किया है । उन्होंने लिखा है –

'कालियाविष्टो दैत्यो वह्निर्भूत्वा'

कालियनाग कंस का अनुचर नहीं था किन्तु कालिय के शरीर में एक दैत्य आविष्ट हो चुका था । कालिय का तो प्रभु ने शोधन कर दिया । उसके मस्तक पर श्यामसुन्दर के चरणकमलों का स्पर्श होने से वह शुद्ध हो गया था किन्तु कालिय में आविष्ट जो दैत्य था, वह अग्नि बनकर आया था । इसके पीछे कई मत हैं । जो भी हो, इतना समझना चाहिए कि वन में अग्नि लगी । अग्नि के रूप में एक असुर था, चाहे वह कालिय में आविष्ट असुर हो, चाहे कंस का अनुचर हो; वह साधारण अग्नि नहीं थी । वह अग्नि इसीलिए उत्पन्न हुई कि मैं सभी ब्रजवासियों

को और ब्रज को भस्म कर दूँ । मथुरा में कंस की प्रतिदिन ही अपने असुरों के साथ बैठक होती थी और इस बार इस असुर को भेजा गया कि ब्रज को जलाकर राख कर दो । आग लगने पर सभी ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में गये । उन्होंने कहा – 'प्यारे कृष्ण ! हम मृत्यु से नहीं डरते परन्तु तुम्हारे चरणकमल हम नहीं छोड़ सकते ।'

ब्रजवासियों का कष्ट देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपना मुख खोलकर उस अग्नि को पी गये क्योंकि

'अनन्तोऽनन्तशक्तिधृक्' – वे अनन्त प्रभु हैं, अनन्त शक्तियों को धारण करते हैं ।

अध्याय – १८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार की बात है, गर्मियों की ऋतु थी किन्तु वृन्दावन में वसन्त की शोभा छाई हुई थी । शुकदेवजी ने वृन्दावन की बहुत सुन्दर झाँकी का वर्णन किया है । श्रीकृष्ण, बलराम, ग्वालबालों और गायों को साथ लेकर उस वन में विहार करने लगे । श्यामसुन्दर ने वंशी बजाई ।

प्रवालबर्हस्तबकस्त्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१८/९)

इसके बाद राम,श्याम और ग्वालबालों ने नव पल्लवों, मोर पंखों, सुन्दर पुष्पों के हारों और गेरू आदि रंगीन धातुओं से अपने को सजा लिया । फिर कोई आनन्द में नाचने लगा और कुछ ग्वालबाल आपस में कुश्ती लड़ने लगे । ग्वारियाओं के अन्दर कुश्ती लड़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । **'चिक्रीडतुर्निर्युद्धेन'** – कभी-कभी गोपबालक खेल में आपस में बेईमानी करने पर लड़ने भी लगते हैं । यही भाव सूरश्यामजी ने लिखा है –

सखा कहत हैं श्याम रिसाने ।
आपहि आन दुःख भये ठाढ़े,
अब तुम कहा रिसाने ॥

कोई दाँव-पेंच की बात आ गयी तो किसी ग्वालबाल ने कहा – 'अब मेरी बारी है, दाँव दो ।' श्यामसुन्दर बोले – 'नहीं, तुम हारे हो, तुम मेरा दाँव दो ।' अब तो सब सखा एक हो गये और कहने लगे कि यह नन्द का लाला तो बेईमान है । यह खिसिया गया है । दाऊ भैया, तुम बताओ कौन हारा है, कौन जीता है, तुम फैसला करो ।

'बीचहि बोल उठे हलधर'

बलदाऊजी बड़े न्यायी थे । उन्होंने तुरन्त कहा – 'अरे, यह कृष्ण ही बेईमानी करता है, यह तो सदा का बेईमान है ।'

जो बेईमान होता है, उसके माँ-बाप को पहले गाली मिलती है । इसलिए बलराम जी ने कहा –

'इनके माई न बाप'

इसके न माँ है, न बाप, ये तो सदा का बेईमान है ।

हार जीत को नेक न समझत,
लरकन लावत पाप ।

स्वयं यह पाप करता है और दूसरों को पाप चढ़ाता है ।

यह बाल लीला हो रही है । सभी सखा बोले – 'ठीक बात है, यह स्वयं तो पाप करता है और दूसरों को दोष लगाता है । जो बेईमान होता है, वह दूसरों को भी बेईमानी सिखाता है ।'

वास्तव में बेईमानी श्यामसुन्दर ने की ही थी । स्वयं तो हार गये और कहने लगे कि मैं दाँव नहीं दूँगा, मैं जीत गया हूँ ।

आपुन हार सखा सो झगरत ।

हार गये हैं, फिर भी कन्हैया सखाओं से झगड़ा करते हैं कि नहीं-नहीं, तुम सब बेईमान हो। इस तरह से ग्वालबालों में आपस में झगड़ा होता रहता। **'चिक्रीडतुर्निर्युद्धेन'** – खेल रहे हैं, खेल क्या रहे हैं, लड़ रहे हैं। चार बालक जहाँ होंगे, वहाँ थोड़ा बहुत झगड़ा होता ही रहेगा। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह ग्वाल लीला है। प्रभु ग्वाल-बाल लीला कर रहे हैं तो बालक लड़ते और रोते भी हैं, फिर थोड़ी देर बाद उनमें समझौता भी हो जाता है। बालक आपस में लड़ भी लेते हैं और फिर थोड़ी देर में उनमें प्रेम भी हो जाता है।

सूर श्याम उठ चले रोय के।

बालक जब हार जाता है तो रोने लगता है। इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी हार गये तो रोने लगे और रूठकर चल दिए। जब कन्हैया रोने लगे तो सब सखा दौड़ पड़े और बोले – 'नहीं-नहीं, रो मत, अच्छा तू ही दाँव ले ले।'

इस प्रकार ब्रज में श्रीकृष्ण रोकर जीते। ग्वालबालों का उनसे फिर से समझौता हो गया, फिर से प्रेम हो गया। इसी का नाम है बाल लीला। कैसी विचित्र लीला है कि ब्रज में श्रीकृष्ण रोकर जीतते थे क्योंकि सदा हार जाते थे। क्यों, भक्तों से ये सदा हार जाते हैं और जीतेंगे तो रोकर ही जीतेंगे। जब ग्वालबालों का श्रीकृष्ण से समझौता हो गया तो वे सब बोले – 'कन्हैया ! अब तू नाच।' कृष्ण तैयार हो गये और नाचने लगे।

'कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः' – जब कृष्ण नाचते तो कुछ ग्वालबाल गाने लगते। **'केचिदवादयन्'** – एक ग्वालबाल ताल देने लगा और बोला – 'हाँ लाला, ताल के साथ नाचना।' **'वेणुपाणितलैः शृङ्गैः'** – ग्वालबाल भी वंशी बजाते थे। एक ग्वालबाल वंशी बजाने लगा और बोला – 'लाला ! वंशी के स्वर के अनुसार पाँव रखना।' एक

ने वंशी ली, एक ने सिंगी ली और फिर संगीत की गोष्ठी जुड गई । कृष्ण नाचने लगे और बाकी सब सखा वाद्य बजाने लगे और गाने लगे, शेष सब सखा प्रशंसा करने लगे । **'प्रशशंसुरथापरे'** – वाह, ऐसे नृत्य किया जाता है । नन्द का लाला तो बहुत सुन्दर नृत्य करता है । इसके नेत्र बहुत सुन्दर रीति से चलते हैं, कैसी सुन्दर यह कमर लचकाता है, कितनी सुन्दर रीति से इसके चरण उठते हैं । इस प्रकार सभी सखा बड़ी प्रशंसा करने लगे कि नन्दलाला ने तो कमाल कर दिया, बहुत सुन्दर नृत्य किया ।

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः । (श्रीभागवतजी - १०/१८/११)

इस श्लोक के आधार पर गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य ने अपने अनुभव की लीला लिखी है । देवता लोग वृन्दावन में आकर छिपकर श्यामसुन्दर की ग्वाललीला को देखा करते थे । देवगण श्यामसुन्दर का पूजन करने आते थे । वे अवसर ढूँढा करते थे कि प्रभु अपने सखाओं से दूर थोड़ा एकान्त में चलें तो हम उनकी पूजा करें । परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता था । प्रभु कभी-कभी अवसर निकाल लेते, अपने सखाओं से कहते – 'मैं अभी आता हूँ, अपनी गाय को देख आऊँ ।' इस तरह गाय देखने के बहाने कृष्ण चले जाते तो देवगण शीघ्रता के साथ उनकी पूजा करने लग जाते । ब्रह्मा, शिव और इन्द्र आदि देव कृष्ण की पूजा करते और उनकी पूजा स्वीकार करके कृष्ण शीघ्र ही अपने सखाओं के पास भाग जाते और खेलने लगते । एक दिन इसी प्रकार देवताओं द्वारा पूजने पर इन्द्र ने श्रीकृष्ण को बहुत सुन्दर पारिजात पुष्पों की माला पहनाई । माला पहनकर श्रीकृष्ण जल्दी से ग्वालबालों के पास पहुँच गये तो वे कहने लगे – 'क्यों रे कन्हैया, अभी तो तू यहाँ से गया था और इतनी जल्दी तू ऐसी बढ़िया माला कहाँ से पहन आया, यह तो बड़ी सुन्दर माला है ।' दूसरा सखा बोला – 'ला, यह माला तो

मेरे योग्य है ।' ऐसा कहकर उसने कृष्ण के गले से वह माला उतारकर स्वयं पहन ली ।

ग्वालसखाओं की यह प्रीति हुल्लड़ वाली प्रीति नहीं है, यह तो बड़ी रसमयी प्रीति है । बहुत से लोग ग्वालबालों की लीला को हुल्लड़बाजी समझते हैं । प्रेम के अधिकार के कारण उस सखा ने कृष्ण की माला स्वयं पहन तो ली किन्तु एक क्षण में उसे उतारकर कृष्ण से बोला – 'अरे लाला, यह तो तेरे योग्य ही है । इसके योग्य तो तू ही है ।' ऐसा कहकर उसने वह पारिजात पुष्पों की माला कृष्ण के ही गले में पहना दी । इसके बाद ग्वालबाल बहुत प्रकार के खेल खेलने लगे । कभी बेल, आँवले आदि के फल लेकर एक दूसरे के ऊपर फेंकते । कभी मेंढकों की तरह उछलते ।

इस प्रकार के खेल श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ जिस वृन्दावन में खेलते थे, उसके बारे में जीव गोस्वामीजी ने लिखा है –

श्रीवृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु काम्यक वनादिषु...

शास्त्र प्रमाण से वृन्दावन बीस कोस का है । एक कोस में तीन किलोमीटर होते हैं । बरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन आदि स्कन्द पुराण, पद्म पुराण एवं हरिवंश पुराण में वृन्दावन के अन्तर्गत ही बताये गये हैं । आचार्यों ने इसकी सीमा और बढ़ा दी है, जैसे जीवगोस्वामी जी ने लिखा है कि वृन्दावन के भीतर काम्यवन भी है । वृन्दावन को इतना बढ़ा दिया गया है । इसलिए वृन्दावन के भीतर स्थित काम्यक आदि वनों में श्यामसुन्दर की अपने सखाओं के साथ रसमयी लीलायें हो रही हैं । ऐसा जीव गोस्वामीजी ने लिखा है ।

एक दिन जब राम-श्याम अपने सखाओं के साथ वन में विविध क्रीड़ायें कर रहे थे, उसी समय वहाँ प्रलम्बासुर आ गया । वह सखा का रूप बनाकर आया और श्यामसुन्दर से बोला कि मैं भी खेलना चाहता

हूँ । श्यामसुन्दर जानते थे कि यह असुर है और ग्वाल वेष धारण करके आया है । अतः वे उससे बोले – 'तुम भी खेलो, तुम्हारे जैसे सखाओं को तो मैं चाहता ही हूँ । तुम तो बड़े अच्छे हो ।'

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१८/१८)

जानते हुए भी कि यह असुर है, श्रीकृष्ण ने उसके खेलने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । श्रीकृष्ण ने ग्वालबालों से कहा कि अब दो दल बनाकर हम लोग खेलेंगे । एक मण्डली कृष्ण की बन गयी और दूसरी मण्डली बलराम की बन गयी । कृष्ण ने कहा – 'अब हम लोग घोड़ा और घुड़सवार का खेल खेलेंगे । जो हारेगा वह घोड़ा बनेगा तथा जो जीतेगा, वह घुड़सवार बनेगा ।' इस प्रकार यह खेल खेला गया ।

ऐसा खेल कौन खेलेगा दुनिया में, ग्वालबाल रस में इतना डूब गये कि खेलते-खेलते काम्यवन से भाण्डीर वन पहुँच गये । खेल में उन्हें दिन-रात का भी पता नहीं पड़ता । यह कैसी विचित्र लीला है, इसे कौन समझ सकता है ? इतना आनन्द उन्हें आया कि भाण्डीर वन पहुँच गये ।

इस आनन्द की कल्पना हम लोग इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि इस आनन्द को हम लोग भूल चुके हैं । जब तीन-चार वर्ष का बालक खेलता है तो खेल में ऐसा तन्मय हो जाता है कि वह अपने माता-पिता को भी भूल जाता है ।

जब खेल शुरू हुआ तो एक बार खेलते-खेलते श्रीकृष्ण की मण्डली हार गयी और बलरामजी की मण्डली जीत गयी । अब श्रीकृष्ण और उनके दल वालों को घोड़ा बनना पड़ा । श्रीकृष्ण भी घोड़ा बने । श्रीकृष्ण ने अपनी पीठ पर श्रीदामा को चढ़ाया ।

उवाहो कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः – (श्रीभागवतजी - १०/१८/२४)

कैसी भाषा शुकदेवजी बोल रहे हैं । वे कहते हैं कि भगवान् पराजित हो गये । हारने पर भी शुकदेवजी कृष्ण को भगवान् कह रहे हैं । यह समझने की बात है कि यहाँ कौन हारा है, भगवान् हारे हैं । भगवान् की भी ब्रज में ऐसी दशा हो जाती है । भगवान् श्यामसुन्दर हार गये और श्रीदामा को अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले गये । श्रीदामा बना घुड़सवार और कृष्ण बने घोड़ा । प्रलम्बासुर ने सोचा कि कृष्ण तो बड़े बलवान हैं, अतः मुझे पहले बलराम को मार डालना चाहिए । इसलिए वह श्रीकृष्ण के दल में हो गया और घोड़ा बनकर बलरामजी को अपनी पीठ पर चढ़ाकर भाग चला । पीठ पर से उतारने के लिए जो स्थान नियत था, प्रलम्बासुर उससे आगे निकल गया । बलरामजी के पर्वत के समान बड़े भारी बोझ को लेकर जब वह दूर तक नहीं चल पाया, उसकी चाल रुक गयी, तब वह अपने निजी रूप में आ गया, उसका बड़ा भीषण असुर का रूप था । उसके बाल अग्नि की तरह जल रहे थे । इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में एक शब्द आया है –

हलधर ईषदत्रसत् – (श्रीभागवतजी - १०/१८/२७)

बलराम भी एक क्षण के लिए डर गये । यहाँ पर अपनी टीका में आचार्य लोग फिर समझाते हैं कि बलरामजी क्यों डरे ? श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी लिखते हैं –

तदैश्वर्यज्ञानस्य कृष्णेनैव स्वयोगमायया आवरणात् -

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती, सारार्थदर्शिनी)

भगवान् की लीलाशक्ति योगमाया से भगवान् की इच्छानुसार उनकी इच्छाशक्ति ने ही बलरामजी के ऐश्वर्य को ढँक दिया ।

इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि श्रीमद्भागवत के श्लोकों के अर्थ को आचार्यों के माध्यम से समझना चाहिए, अपने मनमाने हिसाब से

भागवत का अर्थ नहीं करना चाहिए । जीव अपने आप तो भागवत को समझ भी नहीं सकता है । इसीलिए विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने लिखा कि भगवान् की इच्छाशक्ति ने लीला के लिए बलरामजी के ऐश्वर्य को ढँक दिया । कई जगह ढँका है । जैसे ब्रह्ममोह लीला में श्रीकृष्ण एक वर्ष तक सारे बछड़े और ग्वालबाल स्वयं बने रहे किन्तु बलरामजी इस रहस्य को एक वर्ष की अवधि तक नहीं जान पाए । बलरामजी ने श्रीकृष्ण से पूछा कि यह किसकी माया है, गायें अपने बछड़ों से इतना प्रेम कर रही हैं, ब्रजवासी अपने बालकों से तुमसे भी बढ़कर प्रेम कर रहे हैं । श्रीकृष्ण ने बताया – 'दादा ! ब्रह्माजी बछड़े और ग्वालबाल चुराकर ले गये हैं ।' बलरामजी बोले – 'तभी मैं सोच रहा हूँ कि यह किसकी माया है ? मैं स्वयं ईश्वर हूँ तो मुझे कोई माया नहीं ढँक सकती है ।'

वस्तुतः सबके मूलपुरुष तो नन्दनन्दन ही हैं । वे व्यूही हैं और सब व्यूह हैं । निम्बार्काचार्यजी ने कहा है – **'व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यम्'** श्रीकृष्ण व्यूहांगी हैं । **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कृष्ण तो स्वयं सबके अंशी भगवान् हैं । एक क्षण को भगवान् की इच्छाशक्ति से बलरामजी को भय हुआ तो दूसरे ही क्षण – **अथागतस्मृतिरभयो** – भगवद् इच्छा से बलरामजी को अपने स्वरूप की स्मृति हो गयी कि मैं तो ईश्वर हूँ । अब उनका सारा भय चला गया, फिर उन्होंने प्रलम्बासुर के सिर पर एक घूँसा कसकर जमाया । एक घूँसे के लगते ही उस दैत्य का मस्तक फट गया और वह प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । जब ग्वालबालों ने यह देखा तो वे कहने लगे – 'वाह-वाह, दाऊ दादा की जय हो ।'

प्रलम्बासुर के पूर्व जन्म की कथा है । कुबेरजी ने भगवान् शिव के पूजन के लिए एक फूलों का बहुत सुन्दर बगीचा तैयार किया था । उसकी रक्षा के लिए यक्षों को तैनात कर दिया था फिर भी उस बगीचे से फूल चोरी हो जाते थे । इससे कुपित होकर कुबेर ने शाप दे दिया – 'जो

भी इस फुलवारी से फूल तोड़ेगा, वह पृथ्वी पर असुर हो जायेगा ।' हू-हू गन्धर्व का बेटा था विजय । उसे शाप की बात पता नहीं थी और उसने भूल से उस बगीचे के फूल तोड़ लिए । इस कारण उसको कुबेर के शापवश प्रलम्बासुर बनना पड़ा ।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि वैष्णव लोग कोई भी वस्तु बिना भगवान् को अर्पण किये नहीं खाते-पीते हैं । इसलिए वस्त्र भी पहने तो भगवान् को अर्पण करने के बाद ही पहनना चाहिए । बिना प्रभु को अर्पण किये कोई वस्तु अपने प्रयोग में लोगे तो उसका परिणाम बुरा ही होगा ।

अध्याय – १९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार वन में सभी ग्वालबाल खेल-कूद में लग गये, तब तक उनकी गायें घास चरते हुए बहुत दूर निकल गयीं । यहाँ लिखा है –

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम् – (श्रीभागवतजी - १०/१९/२)

इसका शब्दार्थ यह है कि बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वन से दूसरे वन में होती हुई आगे बढ़ गयीं ।

कुछ आचार्य इस श्लोक का अर्थ करते हैं - अजा माने बिना ब्यायी हुई गायें । केवल एक बार ब्यायी हुई गायें महिषी हैं तथा कई बार ब्यायी गायें अन्य गायें हैं । गो भक्तों ने इस श्लोक का इस प्रकार अर्थ किया है । परन्तु आचार्यों ने ऐसा अर्थ नहीं किया है । वे तो और आगे बढ़ गये ।

श्रीवल्लभाचार्यजी लिखते हैं –

चकारादन्ये हरिणादयश्च लीलार्थं गृहीताः श्वानो वा – (सुबोधिनी)

गाय, भैंस और बकरी की क्या चलाई, श्रीकृष्ण तो पिल्ला, कुत्ता तथा हिरन भी रखते थे ।

परमानन्द दास को ठाकुर लाये पिल्ला घेर

ऐसा सब आचार्यों ने लिखा है । जिसका जो भाव हो, उसे ग्रहण कर ले ।

अस्तु, गायें वन में खो गयीं । ग्वालबाल उन्हें ढूँढने चले । श्यामसुन्दर गायों का नाम ले-लेकर उन्हें पुकारने लगे । गायें श्यामसुन्दर की आवाज पहचानती थीं । अतः वे उनकी आवाज सुनकर आयीं । उसी समय वन में आग लग गयी । ग्वालबाल श्रीकृष्ण और बलरामजी की शरण में जाकर बोले – 'प्यारे श्यामसुन्दर ! परम बलशाली बलराम ! इस दावानल से हमारी रक्षा करो ।' भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'भय मत करो, अपने नेत्र बन्द कर लो ।' उनकी आज्ञा सुनकर ग्वालबालों ने अपने नेत्र बन्द कर लिए, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उस भयंकर आग को अपने मुख से पी लिया । जब ग्वालबालों ने अपने नेत्र खोले तो उन्होंने अपने आपको मुञ्जाटवी वन से भाण्डीर वन में देखा ।

एक बार तो प्रभु ने अग्नि पान किया था सभी ब्रजवासियों के सामने, सभी उन्हें नेत्र खोलकर देख रहे थे । दूसरी बार उन्होंने अग्नि पान किया सबके नेत्र बंद कराके । महात्मा लोग इसका अभिप्राय यह बताते हैं कि भगवान् परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही प्रकार से अपने भक्तों की रक्षा करते हैं । आँख बन्द कराके रक्षा करना परोक्ष है और आँख खोलकर, खुले नेत्रों से उनकी रक्षा करना अपरोक्ष है ।

अध्याय – २०

इस अध्याय में शुकदेवजी ने वर्षा ऋतु का वर्णन किया है । उपमा और उपमेय के साथ वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है । वर्षा के वर्णन के साथ ही सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया गया है । संस्कृत साहित्य शास्त्र में इसे अर्थान्तरन् न्यास अलंकार कहा जाता है । प्रत्येक श्लोक

में सिद्धान्त का जो पुट रख दिया जाता है, उसे अर्थान्तरन् न्यास कहा जाता है । श्रीमद्भागवत के इस वर्षा ऋतु के वर्णन की शैली को, इसी के सारे भावों को गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस में भी लिया है । बहुत से प्रसंग तो ऐसे हैं कि उनमें श्रीमद्भागवत के अक्षर ज्यों के त्यों रामचरितमानस में मिलते हैं । इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा भी है – **नानापुराणनिगमागमसम्मतं** – अनेक पुराणों से लेकर श्रीरामचरितमानस की मैंने रचना की है । मेरा कोई अपना व्यक्तिगत विचार इसमें नहीं है । श्रीमद्भागवत में जैसा वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है, ठीक ऐसा ही वर्षा ऋतु का वर्णन श्रीमानस जी में भी मिलता है । श्रीमद्भागवत के इस वर्षा ऋतु के वर्णन में बहुत से उपमा और उपमेय हैं ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि बादल तेज हवा की प्रेरणा से प्राणियों के कल्याण के लिए जल को बरसाने लगे जैसे करुणाशील पुरुष जब किसी को दुखी देखते हैं तो अपना सब कुछ दे देते हैं, अपने पास कोई संग्रह नहीं रखते हैं । इसका भाव यह है कि जो करुणाशील है, उसके पास धन का संग्रह हो ही नहीं सकता अर्थात् जिसके पास संग्रह है, उसके हृदय में करुणा नहीं है । कोई बहुत भूखा है, किसी दरिद्र को धन के अभाव में बहुत कष्ट है किन्तु हमारा धन बैंक में जमा है, हम उसकी कुछ सहायता नहीं कर रहे हैं तो हमारे हृदय में करुणा कहाँ है ?

तडित्वन्तो महामेघाः चण्डश्वसन वेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुःकरुणा इव ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/६)

इसी प्रकार आगे भी बहुत बढ़िया बात शुकदेव जी ने कही है –

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/१३)

वर्षा ऋतु में प्रकृति की सुन्दरता बढ़ जाती है, लता-पतायें, वृक्ष आदि सब हरे-भरे हो जाते हैं । पृथ्वी माता हरी-हरी घास से ढँक जाती है तो ऐसा लगता है कि जैसे पृथ्वी ने हरी साड़ी पहन ली हो । सभी प्राणियों का रूप नया हो जाता है ।

अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया

जैसे श्रीकृष्ण सेवा कोई व्यक्ति करता है तो उसका रूप नया हो जाता है । इसी जीवन में उसका कायाकल्प हो जाता है । जबकि कायाकल्प तो बड़ी कठिन बात है । आजकल कहाँ कायाकल्प होता है । सच्चा कायाकल्प यही है कि प्रेम से श्रीकृष्ण की सेवा करो । तुम्हारे मुख पर वैष्णव तेज झलकने लगेगा किन्तु होनी चाहिए अच्छी प्रकार से सेवा । इस श्लोक को टीकाकारों ने बहुत महत्त्व दिया है । श्रीधरस्वामीजी ने जो बात लिखी है, वही बात जीवगोस्वामीजी ने भी लिखी है । दोनों आचार्यों ने एक ही बात लिखी है कि सेवा क्या है ? साधन अवस्था में सेवा को धर्म बोला जाता है तथा साध्य अवस्था में सेवा सुखरूपा हो जाती है । यह बात इन दोनों ही आचार्यों ने लिखी है । वस्तुतः यही बात है । धर्म किसे कहते हैं ? जो चीज धारण की जाती है, वह धर्म है । साधक जो चीज पहले धारण करता है, वही धर्म बोला जाता है । अतः पहले तो सेवा धारण की जाती है, जबरदस्ती उसमें मन लगाना होता है, जब उसमें मन लग जाता है तो वह साध्य वस्तु सुखरूपा हो जाती है । साधन ही साध्य बन जाता है, कैसे ? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है –

साधन सिद्धि राम पद नेहू

भगवान श्रीकृष्ण ने भी उद्धवजी से कहा है –

भक्त्या सञ्जातया भक्त्या – (श्रीभागवतजी - ११/३/३१)

भक्ति से ही भक्ति उत्पन्न होती है । भक्ति ही साधन है और भक्ति ही साध्य है । इसीलिए सेवा करने से इसी जीवन में सेवक का रूप बदल जाता है । **रुचिरं रूपं** – सिर से पाँव तक नया रूप हो जाता है । जैसे तीसरे स्कन्ध में कहा गया है –

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५/३२)

इस श्लोक की टीका में वल्लभाचार्यजी ने उपनिषद् का प्रमाण दिया है कि इन्द्रियों के दो रूप हैं – देव रूपा तथा असुर रूपा । कृष्ण से विमुख हैं इन्द्रियाँ तो असुररूपा हैं और कृष्ण सेवा में लगी हैं तो देवरूपा हैं । वैसे ही इस श्लोक (१०/२०/१३) में लिखा है कि जब जीव अच्छी प्रकार से भगवत्सेवा में लगता है, श्रीजी की सेवा करता है तो नख से शिख तक उसका रूप नया हो जाता है ।

गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में वर्षा ऋतु के वर्णन के प्रसंग में लिखा है –

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसे ॥

(रा. च.मा. १४)

यह प्रसंग उन्होंने श्रीमद्भागवत के वर्षा ऋतु के प्रसंग के इस श्लोक से लिया है –

गिरयो वर्षधाराभिः हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैः यथा अधोक्षजचेतसः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/१५)

जिसका मन भगवान् में लग गया है, उसकी पहचान क्या है, पहली पहचान यही है –

व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः – दुखों से, दूसरे के कटु वचनों से हमें व्यथा नहीं होनी चाहिए, तब तो हम भगवद्भक्त हैं । अब इस पैमाने से नापा जाये तो पता पड़ेगा कि अभी तो हमारा भक्ति में प्रवेश भी नहीं हुआ है ।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/२०)

बादलों के आने पर मोर आनन्द से नृत्य करने लगते हैं, जैसे गृहस्थ के जंजाल में कष्ट पा रहे लोग संत या भक्त के आने से आनन्दमग्न होकर नाचने लगते हैं ।

वर्षा ऋतु में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन भी शुकदेवजी ने किया है ।

क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/२८)

चौमासे में जब वर्षा होती तो श्यामसुन्दर गुफाओं के भीतर बैठकर ग्वालबालों के साथ शिलाओं पर रखकर भोजन करते थे । भगवान् की लीलाशक्ति ऐसी-ऐसी गुफायें बना देती थी कि उसके भीतर सहस्त्रों-सहस्त्रों ग्वालबाल चले जाते थे । ऐसा वैष्णव आचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है । ये सब लीला शक्ति की बातें हैं ।

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके – (श्रीभागवतजी - १०/२०/२९)

श्रीकृष्ण-बलराम ग्वालबालों के साथ दही और चावल शिलाओं पर रखकर (जैसे भोजन थाली) खाते थे । इसी भाव को महापुरुषों ने लिखा है –

बिराजत ग्वाल मण्डली अहो बल मोहन छाकै खात

कृष्ण-बलराम ग्वालबालों की मण्डली में छाक खा रहे हैं

शिला ओदन जंघन रोटी अँगुरिन बिच फल दै अरु गोरस के पात

शिला (पटिया) पर तो चावल-दही रखा है और जाँघों पर रोटी रखी हुई है । यह छाक यशोदा मैया ने भेजी है ।

काऊ को लै देत श्याम काऊ को डहकावत

किसी सखा से श्यामसुन्दर कहते – 'ले लाला, यशोदा मैया ने कितना बढ़िया लड्डू बनाया है ।' ऐसा कहकर एक सखा को तो उन्होंने लड्डू दे दिया और फिर दूसरे सखा से बोले – 'ले, तू भी लड्डू ले ।' उस सखा ने सोचा कि जैसे पहले सखा को कन्हैया ने लड्डू दिया, वैसे ही मुझे भी देगा । कन्हैया बोले – 'अपना मुख खोल ।' उस सखा ने अपना मुख फाड़ा तो कन्हैया ने उसके मुख में अपना अँगूठा डाल दिया और बोले – 'लाला, तुझे नहीं मिलेगा ।'

दूसरे सखा ने कन्हैया के हाथ से झटककर छीन लिया और बोला – 'मुझे लड्डू नहीं देता है और उसे दे दिया ।'

रामदास प्रभु की लीला लखि कहत शिव ब्रह्मादिक
हम न भये अहीर ब्रज में यों कहि-कहि पछतात ।

ब्रह्मा-शिव आदि कह रहे हैं कि हम लोग तो बेकार में ही ब्रह्मा-शिव बने, ब्रज में अहीर बनते तो श्यामसुन्दर के सखा बनकर सख्य-रस का आस्वादन करते, उनके हाथों से दिया हुआ लड्डू हमें भी मिलता ।

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – वर्षा बीतने पर शरद ऋतु आ गयी ।

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरत् जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२०/३४)

इस श्लोक की आचार्यों ने बहुत बढ़िया टीका लिखी है । सभी आचार्यों ने विस्तार से इसकी टीका लिखी है ।

कृष्णे भक्तिर्यथाशुभमाश्रमिनाम् – यह बात आचार्यों ने महत्वपूर्ण कही है ।

हर आश्रम में कोई न कोई अशुभ रहता है । चार आश्रम हैं – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास । कोई कितना भी वर्णाश्रम धर्म का पालन कर ले किन्तु उसका अशुभ मनुष्य को पराभूत कर देता है । इसलिए वर्णाश्रम धर्म का पालन बहुत कठिन है और मनुष्य के लिए उसकी सिद्धि हो नहीं पाती है । यह बात इस श्लोक की टीका में आचार्यों ने लिखी है । कोई कहे कि हम ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं किन्तु ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने पर भी उसका सम्यक् फल तुम्हें नहीं मिल पायेगा क्योंकि उसमें कुछ अशुभ रह जाते हैं । इसी प्रकार कोई गृहस्थ है, कोई वानप्रस्थी और कोई सन्यासी है तो वर्णाश्रम के सभी मलों को कृष्ण भक्ति दूर करती है जैसे ब्रह्मचर्य व्रत है ।
श्रीधरस्वामी लिखते हैं –

'ब्रह्मचारिणो गुर्वर्थोदकाहरणादिकष्टम्' (श्रीधरस्वामी, भावार्थदीपिका)

किसी ने ब्रह्मचर्य व्रत में अपने वीर्य को धारण किया, रोका परन्तु 'गुरु' परीक्षा लेते हैं या सेवा के लिए आदेश देते हैं । गुरु के पास रहने पर ब्रह्मचारी को नित्य सेवा करनी पड़ती है तो वीर्य को धारण करने के

बावजूद भी सेवा के प्रति श्रद्धा में किसी समय कमी आ गयी तो उससे वहाँ पर अशुभ आ जाएगा और ब्रह्मचर्य-आश्रम की सिद्धि नहीं हो पायेगी। 'ब्रह्मचारी' कितना भी वीर्य को रोके रहे किन्तु 'सेवा' में श्रद्धा की कमी से उसके ब्रह्मचर्य-व्रत में भी कमी रह जाएगी।

दूसरा उदाहरण श्रीधरस्वामीजी देते हैं पतिव्रता स्त्री का –

'गृहिणो पत्यादिसाङ्कर्यम्'

पतिव्रता स्त्री पति के साथ सहवास करती है तो भले ही पति के साथ काम भोग धर्म के अनुकूल है परन्तु फिर भी विषय भोग तो भोग ही है, वह कृष्ण सेवा नहीं है। इसलिए पतिव्रता के लिये पति के साथ सहवास भी एक मल है और वह मल भी कृष्ण भक्ति से ही दूर होगा। यह कितनी बड़ी बात बताई गयी है।

इसी प्रकार – **'वनस्थस्य मलधारणक्लेशम्'** कोई विरक्त बन गया तो कपड़े पर साबुन नहीं लगाता है। स्वाभाविक है कि विरक्त बनने पर शरीर का अधिक संस्कार नहीं कर पायेगा। अतः जब शरीर का अधिक संस्कार नहीं हो सकता तो वह भी एक मल ही है; वह भी 'कृष्णनाम' से, 'कृष्णभक्ति' से ही दूर होगा।श्रीधरस्वामी लिखते हैं –

'यतीनां कामादि वासना मलम्'

साधु बन गये किन्तु पहले गृहस्थ में कामभोग भोगकर तब साधु बने तो भोग का संस्कार तो बड़े-बड़े सिद्धों का भी नहीं मिट पाता है; यती (साधु) बन गये फिर भी काम का संस्कार तो जागृत होता ही है; कहीं कोई स्त्री स्नान कर रही है तो उसके अंगों को देखकर मन में विकार उत्पन्न होता ही है, इसलिए यती (साधु) के लिए वह भी भीषण मल है। वह तो वान्ताशी (कुत्ता) की तरह हो गया जो अपने वमन (उलटी) को चाटता है। इन सब मलों का समाधान है –

'कृष्णे भक्तिर्यथा शुभम्' (श्रीभागवतजी - १०/२०/३४)

कृष्ण भक्ति ही वर्णाश्रम के सभी मलों को दूर कर सकती है चाहे तुम कितने ही बड़े ब्रह्मचारी बन जाओ, चाहे गृहस्थ बन जाओ, चाहे वानप्रस्थी बन जाओ और चाहे विरक्त महात्मा बन जाओ, सिद्ध यती बन जाओ परन्तु बिना 'भक्ति' के कोई भी आश्रम सिद्ध नहीं हो सकता है। सब जगह कृष्णभक्ति, कृष्ण- कीर्तन करना ही पड़ेगा।

शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम्। (श्रीभागवतजी - १०/२०/३४)

कोई भी वर्ण, कोई भी आश्रम, कोई भी धर्म, बिना भक्ति के, बिना भगवन्नाम के अधूरा है। कोई भी बड़े से बड़ा यज्ञ है, भगवन्नाम के बिना अधूरा है। कोई भी मन्त्र है, कोई भी तन्त्र है, भगवन्नाम के बिना सब अधूरे हैं। राजा बलि के यज्ञ में यह पहले ही कह दिया गया है।

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं तंत्रतः छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

(श्रीभागवतजी - ८/२३/१६)

केवल नाम संकीर्तन से ही यज्ञ की, मन्त्र-तन्त्र की, वैदिक धर्म की कमियाँ दूर होती हैं। यही भागवत धर्म है। इसमें किसी साधन का खण्डन नहीं किया गया है। रामचरितमानस में भी यही कहा गया है –

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलम्बन एकू ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २७)

कलियुग में कोई धर्म, कर्म नहीं है। ऐसा महापुरुषों ने क्यों लिखा है, खण्डन के लिए नहीं लिखा है। भगवन्नाम कीर्तन सरल है, इसलिए इसे ग्रहण करो।

कलियुग में न कोई धर्म है, न कोई कर्म है, केवल भगवन्नाम ही सबका सार है। इसमें किसी भी साधन का खण्डन नहीं किया गया है। यज्ञ की कमियों को भगवन्नाम कीर्तन ही दूर करता है। इसीलिए

'१०/२०/३४' में कहा गया है कि कितना भी तुम वर्णाश्रम धर्म का पालन कर लो किन्तु कृष्ण भक्ति के बिना सब अधूरा है ।

अध्याय – २१

इस अध्याय को वेणु गीत कहते हैं । इसमें वंशीधर की वंशी की माधुरी का वर्णन किया गया है । श्रीशुकदेवजी कहते हैं –

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१)

शरद ऋतु थी, जल निर्मल था और सरोवरों में खिले हुए कमल पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित मन्द-मन्द वायु चल रही थी । श्यामसुन्दर ने गायों और गोपबालकों के साथ ऐसे रमणीय वृन्दावन में प्रवेश किया ।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग-
द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/२)

वहाँ बड़ी सुन्दर पुष्प लतायें खिल रही थीं । हरे-भरे वृक्षों की पंक्तियों में मतवाले भ्रमर स्थान-स्थान पर गुनगुना रहे थे । विभिन्न प्रकार के पक्षी झुण्ड के झुण्ड अलग-अलग कलरव कर रहे थे, उसके कारण वृन्दावन के समस्त सरोवर, नदियाँ और पर्वत आदि गूँजते रहते थे । **सहपशुपालबलः** – दाऊजी साथ में थे । **चुकूज वेणुम्** – अब यहाँ इस शब्द चुकूज का तात्पर्य समझो । यदि वंशी बजाने की बात कही जाती तो ण्यन्त की धातु होनी चाहिए । **'कूजयाञ्चकार'** यानी बजाई

परन्तु यहाँ ण्यन्त की धातु नहीं दी गयी है, क्यों ? वंशी ने यहाँ अपने आप ही कूजन किया । इसका भाव यह है कि कृष्ण के अधरों के रस की विशेषता है कि उस रस को पीकर वंशी स्वयं बजती है, कृष्ण नहीं बजाते हैं । एक महापुरुष ने चुकूज का यही भाव लिखा है कि कौन कहता है कि कृष्ण वंशी बजाते हैं । अरे, कृष्ण तो वंशी को चूमते हैं और उस प्रसन्नता में वंशी स्वयं गाती है ।

'वंशीचुम्बनचातुरीचपलदृग हंसात्मजा रोधसि'

चुम्बनचातुरी – चतुराई इस बात की है कि श्रीकृष्ण वंशी को इस ढंग से चूमते हैं कि वंशी में अनेक स्वर निकलते हैं । इसमें चूमने की प्रशंसा है, बजाने की प्रशंसा नहीं है । इसलिए इस श्लोक (१०/२१/२) में कहा गया – **चुकूज वेणुम्** – वंशी कृष्ण अधरों का रस पाकर स्वयं ही बोल उठी । कृष्ण अधरों के रस की महापुरुषों ने बहुत सी विशेषतायें लिखी हैं । वल्लभाचार्यजी ने लिखा है – देव भोग्या, भगवद् भोग्या आदि । इस प्रकार अधरों के रस के भेद का उन्होंने वर्णन किया है । वंशी है क्या ? वंशी नाद मार्ग के द्वारा श्रीकृष्ण की प्राप्ति, साक्षात् श्रीकृष्ण प्राप्ति है । कृष्ण के वेणुनाद को सुनकर ब्रजदेवियाँ कृष्णमयी हो जाती हैं । कृष्ण उनके नेत्रों में, उनके हृदय में आ जाते हैं । वंशी साक्षात् श्रीकृष्णरूपा है । वंशी ध्वनि सुनकर गोपियाँ आपस में श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करती हैं । इस रूप का वर्णन जिस श्लोक में किया गया है, यही श्लोक सुनकर शुक मुनि अपने ब्रह्मज्ञान को भूल गये थे । वे ब्रह्मानन्द में भरकर अपनी माता के गर्भ से निकलकर वन की ओर भागे थे । उस समय व्यासजी ने अपने शिष्यों को भागवत के दो श्लोक रटाये थे । उन्होंने शिष्यों से कहा कि जब वन में तुम्हें सिंह का भय लगे तो ये दो श्लोक बोलना । एक तो यही श्लोक है, जिसमें कृष्ण के रूप का वर्णन है –

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं ।
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधयापूरयन् गोपवृन्दैः ।
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/५)

दूसरा श्लोक वह है, जिसमें कृष्ण की दयालुता का वर्णन किया गया है ।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२/२३)

ये दो श्लोक व्यासजी ने अपने शिष्यों को रटा दिए । जब वे शिष्य वन में जाते और सिंह से भय लगता तो यही दो श्लोक गाते थे । महामुनि भगवान् व्यासदेव ने ये दो श्लोक अपने शिष्यों को इसलिये रटाये थे कि जब शुकदेवजी के कानों में ये श्लोक पड़ेंगे तो वे ब्रह्मानन्द को भूल जायेंगे एवं कृष्ण रूप उनके सामने आ जायेगा । अतः यह वही श्लोक है, जिसमें कृष्ण रूप का वर्णन है । **बर्हापीडं नटवरवपुः** वंशी वादन को सुनकर जो सबसे पहली बात हुई, वह यह थी कि गोपियाँ श्रीकृष्ण रूप पर मोहित हो गयीं । पहली बात यही हुई, ऐसा क्यों कहते हो ? इसलिए कहते हैं क्योंकि यह महात्माओं का कथन है । 'कृष्ण यामल तन्त्र' में कृष्ण का प्रथम लक्षण यही लिखा है –

राधाप्रियमयूरस्य पत्रं राधेक्षणप्रभम् बिभर्ति
शिरसा कृष्णस्तस्याश्चूडानिभं यतः

श्रीजी का पालित उनका जो प्रिय मयूर है, जिसे श्रीजी नचाया करती हैं, उस मयूर के पंख का मुकुट बनाकर श्यामसुन्दर अपने पास

रखते हैं । मयूर की गर्दन का जो रंग होता है, उसी प्रकार नीला श्यामसुन्दर का रंग है । इसीलिए प्रियाजी मयूर से बहुत प्रेम करती हैं ।

वल्लभरसिकजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण का प्रथम लक्षण मयूर पंख इसलिए है, जैसे कहीं कोई सड़क का निर्माण कार्य चल रहा होता है तो वहाँ लिखा रहता है – 'खतरा' । जिससे कि वहाँ वाहनों को धीमी गति से चलाया जाए । वल्लभ रसिक जी लिखते हैं कि मोर पंख एक प्रकार का खतरा है । यह श्रीकृष्ण का प्रथम चिह्न है ।

मोर पंख सिर हिलै-डुलै

मोर पंख झोंका ले रहा है और कहाँ तक झोंका ले रहा है, नेत्रों की पुतली तक हिलती है और श्रीकृष्ण के करकमल तक, यानी मोरपंख कह रहा है कि यहाँ खतरा है, यहाँ कोई मत आओ ।

कर पुतरी लौ बरजै

रोक रहा है, क्या खतरा बता रहा है ?

गोपियो ! **यहाँ रूप कहर दरियाव**

यहाँ कृष्ण रूप की, बिजली की नदी बह रही है, खतरा है, अतः यहाँ मत आओ । बिजली को छूते ही आदमी मर जाता है ।

आओ जिन नाव धरम की लरजै

हे गोपियो ! तुम्हारे लोक-वेद आदि धर्म जैसे माता-पिता आदि कुटुम्बीजनों की आज्ञा पालन और सेवा एवं अन्य समस्त धर्मों की नौका डूब जाएगी तथा सब लोग तुम्हें दुराचारिणी कहने लग जायेंगे । शुक मुनि तक ने कह दिया –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः

वे भी गोपियों के बारे में व्यभिचार की बात कह गये । (ऐसा उन्होंने क्यों कहा, इसका रहस्य आचार्यों ने अपनी टीका में बताया है । यह बहुत कठिन शब्द है । इसका वास्तविक अर्थ लगाया नहीं जा पाता है ।)

इसलिए गोपियो ! तुम कृष्ण के पास मत आना, नहीं तो धर्म की नाव डूब जाएगी और लोग तुम्हें व्यभिचारिणी कहने लग जायेंगे ।

बर्हापीडं

अतः मोरपंख कृष्ण का प्रथम लक्षण है ।

इस तरह श्रीकृष्ण ने मोरपंखों का मुकुट पहन रखा है । नटवर वेष है, कानों पर कनेर के पीले-पीले पुष्प हैं, शरीर पर सुनहले रंग का पीताम्बर है । गले में वैजयन्ती माला धारण किये हैं ।

"तुलसीकुन्दमन्दारपारिजातसरोरुहैः ।
पञ्चभिः पुष्पैरेतैर्वनमालाप्रकीर्तिता" ॥

(श्रीरामकृष्णकृतप्रेममञ्जरी)

तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल – इन पाँच पुष्पों से मिलकर वैजयन्ती माला बनती है । दूसरे आचार्य दूसरा प्रमाण देते हैं कि

'श्वेतैपीतैतथारक्तयैहरितैनीलवर्णकै' –

सफेद, पीला, लाल, हरा और नीला – इन पाँच रंगों के पुष्पों की वैजयन्ती माला बनती है अथवा वैजयन्ती माला अन्य प्रकार से भी बनती है, पाँच प्रकार के रत्नों से भी मिलकर बनती है । इसे भी वैजयन्ती कहा जाता है । ये समझो कि वैजयन्ती माला कोई विलक्षण वस्तु है ।

अस्तु, श्यामसुन्दर वंशी के छिद्रों में अपनी अधर सुधा भर रहे हैं । ऐसे में श्यामसुन्दर वंशी नहीं बजाते अपितु उनके अधरसुधा रस को पाकर वह स्वयं ही बजने लगती है ।

ब्रजस्त्रियों ने वंशी ध्वनि सुनी और आपस में उसका वर्णन करने लगीं । एक सखी ने कहा –

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/७)

नेत्र वालों के नेत्र का इससे अधिक फल कुछ नहीं है कि जिस समय श्यामसुन्दर वन से गायों को चराकर लौटते हों, संग में बलराम भी हों, अधरों पर मुरली धारण कर रखी हो, हम उस समय उनकी मुख माधुरी का पान करती रहें ।

यहाँ पर वक्त्रं – एक वचन दिया गया है जबकि यहाँ कृष्ण-बलराम दो हैं तो दोनों के वक्त्र (मुख) के लिए द्विवचन में वक्त्रे होना चाहिए । वक्त्रं से यहाँ मतलब है केवल श्रीकृष्ण मुख से । व्रजेशसुतयो – नन्द बाबा के दोनों पुत्र, सुतयो में द्विवचन है और वक्त्रं में एक वचन है, जबकि दो हैं तो दो मुख होने चाहिए । आचार्य कहते हैं कि कृष्ण-बलराम दोनों में कृष्ण मुख ही गोपियों का लक्ष्य है । श्रीकृष्ण मुख, जो वंशी से सेवित है । वंशी वे ऐसी अदा से बजा रहे हैं कि अनुरक्तकटाक्षमोक्षम् – वंशी वादन करते समय नेत्रों से अनुराग भरे कटाक्ष भी निकल रहे हैं । एककालावछिन्न (एक साथ) ही सब कार्य श्रीकृष्ण विग्रह से हो रहे हैं । वंशी भी बजा रहे हैं, साथ ही हाव-भाव और नृत्यादि एक साथ हो रहे हैं । यह कलाकार का वैशिष्ट्य (विशेषता) है । एक साथ गान-नृत्य दोनों नहीं हो सकते हैं । नेत्रों के कटाक्ष नृत्य है । नृत्य कैसे है ? पाँच प्रकार से नृत्य होता है ।

हस्तक, मस्तक, ग्रीवा, कटि, पाद –

हस्तक – हाथ के नृत्य के उँगली आदि कई भेद हो जाते हैं, मणिबद्ध आदि । मस्तक के नृत्य भेद में नेत्रों के कटाक्ष भी हैं । नेत्रों के कटाक्ष नृत्य है, यह मस्तक के अन्तर्गत आता है । ग्रीवा नृत्य का तीसरा भेद है, कटि (कमर) का भाव चौथा भेद है, पाद (चरण) का भाव पाँचवां भेद है । इस प्रकार पाँच तरह से नृत्य किया जाता है । इसीलिए वंशी वादन के साथ नेत्रों के कटाक्ष के कारण कृष्ण नृत्य भी कर रहे हैं । इसी का नाम संगीत है ।

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'

गीत, वाद्य तथा नृत्य – इन तीनों से मिलकर संगीत बनता है ।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज -
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/८)

अरी सखी ! कृष्ण का दिव्य रूप देखो । वे आम की नयी-नयी कोपलें, मोरों के पंख, सुन्दर पुष्पों के गुच्छे, रंग-बिरंगे कमल और कुमुद की मालायें धारण कर लेते हैं तथा दोनों भाइयों कृष्ण-बलराम के शरीर पीताम्बर और नीलाम्बर आदि से सज्जित होने के कारण उनका वेष विचित्र हो जाता है । ग्वालबालों की गोष्ठी में बैठकर वे अनेक राग-रागिनियों से युक्त गीतों का गायन करते हैं ।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः
दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
ह्रष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/९)

अरी सखी ! यह वेणु पुरुष जाति का होने पर भी श्रीकृष्ण के अधरों की सारी सुधा को पिए जा रहा है, जबकि दामोदर की अधर सुधा हम गोपिकाओं की वस्तु है, इसे यह पुरुष क्यों पी रहा है ? स्त्री होती तो स्त्री सौत बन जाये तो ठीक भी है किन्तु यह पुरुष (रंडफा) कैसे सौत बन गया, इसको चुरा लो । (इस श्लोक में ब्रजदेवियों ने वंशी को वेणु कहा है ।)

गोपियाँ वंशी से चिढ़ रही हैं क्योंकि वह श्रीकृष्ण अधर की सारी सुधा पिए जा रही है ।

कुशलं स्म वेणुः – आचार्यों ने लिखा है कि वेणु पुरुष जाति का है, इसीलिए गोपियाँ उसकी अधिक निन्दा कर रही हैं ।

'भुङ्क्ते स्वयं यद्वशिष्टरसम्'

इतना अधिक अधर रस पी रहा है कि **अवशिष्ट रसं** अर्थात् हम लोगों के लिए रस नहीं बचेगा, वेणु सारा ही अधर रस पी जायेगा ।

श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

तस्माद् अयं वेणुः गोप्यश्चोरयितव्यः
अतः चौरै सद्यः ।

यहीं से गोपियों द्वारा वंशी चोरी लीला हुई है ।

गोपियाँ कहती हैं कि इस वेणु को चुरा लो, नहीं तो यह हमारे लिए अधर सुधा छोड़ेगा नहीं । सखि ! वंशी ध्वनि को सुनकर ह्रदिनियों (नदियों) में कमल खिलने लगे ।

श्यामसुन्दर की वंशी जब बजती तो नदियों में सहस्त्रों कमल खिल जाते, प्रत्येक लता में पुष्प खिल उठते, इसका कारण यह है कि बाँस के वृक्ष नदियों के पुत्र हैं । नदियाँ इनकी माता हैं, ये नदी के किनारे लगे हैं, नदियों का जल पीते हैं । जैसे कोई विवेकी पुरुष अपने कुल में भगवद्भक्त सन्तान को देखकर प्रसन्न होता है, वैसे ही नदियाँ वेणु ध्वनि

को सुनकर प्रसन्न होती हैं, वे सोचती हैं कि यह वेणु हमारा ही तो पुत्र है। अपने पुत्र वेणु के श्रीकृष्ण के पास पहुँचने से अत्यधिक प्रसन्नता के कारण नदियों में कमल खिल उठते हैं।

हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः – (श्रीभागवतजी - १०/२१/९)

आर्याः अर्थात् जैसे अपने कुल में भक्त व्यक्ति होने पर विवेकी श्रेष्ठ पुरुष प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार नदियाँ प्रसन्न हैं एवं अपने वंश में भगवत्प्रेमी सन्तान को देखकर वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर नेत्रों से आनन्द के अश्रु बहा रहे हैं।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।

अरी सखि ! यह वृन्दावन पृथ्वी पर ही अपनी कीर्ति को वैकुण्ठ आदि भगवद्धाम से भी अधिक फ़ैला रहा है क्योंकि इसने देवकीनन्दन के चरणों की रज प्राप्त कर ली है।

प्रश्न उठता है कि यहाँ श्रीकृष्ण को देवकी सुत (देवकी का पुत्र) क्यों कहा गया है ? बृहद् विष्णु पुराण में स्पष्ट कहा गया है

"द्वेनाम्नी नन्दभार्याया यशोदादेवकीत्यपि।
अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया"॥

यशोदा जी के दो नाम थे – यशोदा और देवकी। इसीलिए देवकीजी यशोदाजी से बहुत प्रेम करती थीं, इसी प्रकार यशोदाजी भी देवकी से बहुत प्रेम करती थीं। एक नाम के दो व्यक्ति होने पर उनमें स्वाभाविक ही बड़ा स्नेह हो जाता है। इसलिए इस श्लोक में देवकी सुत का अभिप्राय है यशोदा सुत।

गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् –

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१०)

गोविन्द की वेणु ध्वनि को सुनकर मयूर मस्त होकर नाचने लगते हैं । यह दृश्य समस्त पशु-पक्षी आदि जीव पर्वतों की चोटियों पर दूर बैठे हुए देख रहे हैं । कोई मोरकुटी की शिखर पर हैं, कोई मानगढ़ की शिखर पर हैं, कोई दानगढ़ की शिखर पर, कोई विलासगढ़ की शिखर तथा कोई गिरिराज जी की शिखर पर हैं । सभी को भगवल्लीला की स्फूर्ति हो रही है । **अपरत अन्य समस्त सत्वम्** – समस्त कार्यों को भूलकर के, सत्त्व अर्थात् जितने भी जीव हैं, वे कृष्ण रस का पान कर रहे हैं ।

यह लीलाशक्ति की वैचित्री है ।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/११)

सखियो ! इन हरिनियों को तो देखो, नन्दनन्दन की वंशी सुनकर ये अपने पति कृष्णसार मृगों के साथ उनके पास चली आती हैं । इस श्लोक में **सहकृष्णसाराः** क्यों कहा गया है ? श्रीधर स्वामी इसका एक बड़ा सुन्दर भाव लिखते हैं । **सहकृष्णसाराः** शब्द के द्वारा गोपियों की अपने पतियों पर चोट है । वे कहती हैं कि एक ओर हमारे पति हैं, जो हमें कृष्ण के पास जाने से रोकते हैं और दूसरी ओर इन हिरनियों के पति हैं, जो कृष्ण के सामने खड़े होकर इन्हें कृष्ण रस पिला रहे हैं । श्रीधर स्वामी लिखते हैं – **अस्मत् पतयस्तु क्षुद्राः** गोपियाँ कहतीं हैं कि हमारे पतियों से ये हिरन अच्छे हैं ।

पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः

सखि ! देखो, ये हिरनियाँ श्रीकृष्ण की पूजा करती हैं ।

हिरनियाँ कृष्ण की पूजा कैसे करती हैं ? आरती करती हैं कि घंटी हिलाती हैं अथवा भोग लगाती हैं । सखि ! वे वैधी भक्ति की पूजा नहीं करती हैं, वे तो राग मार्ग के अनुसार कृष्ण की पूजा करती हैं अर्थात् वे श्रीकृष्ण के निकट जाकर अपने प्रेम भरे बड़े-बड़े नेत्रों से उन्हें देखती हैं, यही उनकी पूजा है ।

वैधी भक्ति की पूजा में तो आरती की जाती है, घंटी हिलायी जाती है, भोग लगाया जाता है । षोडश उपचार से पूजा की जाती है । राग मार्ग की पूजा में ये सब नहीं किया जाता है । राग मार्ग की पूजा क्या है, इसे निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महावाणीजी' में प्रकट किया गया है ।

आजु भलीभाँति पूज्यो बसन्त ।
मिलि मृगनैनी मनहरन कन्त ॥

अंत में कहा गया है –

तिरछी चितवन आरती उतार ।
बलि गयी श्रीहरिप्रिया छबि निहार ॥

अनेक प्रकार के रसमय भोग श्रीकृष्ण को लगा करके फिर उन्हें तिरछी चितवन से जो देखा जाता है, वह आरती है । जैसे श्रीकृष्ण को भोग लगा करके फिर अधरामृत का आचमन कराया गया और अंत में चलते समय उन्हें तिरछी चितवन से देख लिया तो वह आरती है ।

वही बात यहाँ गोपियाँ कह रही हैं कि हिरनियाँ जो प्रेम से श्रीकृष्ण को देखती हैं, वही तो इनकी पूजा है । महावाणीकार कहते हैं –

तिरछी चितवन आरती उतार

तिरछे चितवन से कृष्ण को देख लिया, यही आरती है ।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१२)

हे सखि ! युवतियों को आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण को देखकर तथा वंशी पर उनके द्वारा गाये हुए विचित्र संगीत को सुनकर स्वर्ग की देवांगनायें अपने विमानों पर ही अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं, वे ऐसी मोहित हो जाती हैं कि उनकी चोटियों के फूल पृथ्वी पर गिरने लगते हैं तथा उनके नींवी-बन्धन खुल जाते हैं ।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुः
गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१३)

गायें श्रीकृष्ण के मुख से निकले वंशी नाद के अमृत को अपने दोनों कान रूपी दोनों को उठाकर पान करती हैं और बछड़ों की तो दशा ही निराली हो जाती है, गायों के थनों से बहते हुए दूध को जब वे पीते रहते हैं तो वंशी ध्वनि सुनने पर ऐसी जाड्य अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं कि दूध का घूँट उनके मुख में ही रह जाता है, वे उस दूध को गले के भीतर नहीं निगल पाते हैं । मुख दूध से भरा रहता है और उनके कान कृष्ण के वेणु रस से भर जाते हैं । चित्रलिखित से वे खड़े रह जाते हैं क्योंकि अपने भीतर गोविन्द को ले जाकर, आँखों में अश्रु भरकर वे उनका स्पर्श करते हैं ।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१४)

धाम की यह चिन्मयता है कि इस धाम में जितने भी पक्षी हैं, इन्हें पक्षी मत समझो, ये तो मुनि हैं, जो पक्षी का रूप धारण किये हुए हैं, इन्हें साधारण चिड़िया नहीं समझना चाहिए। ये वृन्दावन में, गह्वर वन में आये हैं, इनको चिन्मय समझो। शुक-सनकादिक मुनि इस धाम में पक्षी बने हुए हैं।

धाम की प्रत्येक वस्तु को चिन्मय समझो, तब तो तुम उपासक हो और ऐसा नहीं समझते तो उपासक नहीं हो।

अस्तु, ये मुनिस्वरूप पक्षी वृन्दावन के वृक्षों के सुन्दर पत्तों वाली डालियों पर बैठ जाते हैं, अन्य बातों को सुनना छोड़कर कानों से श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि सुनते हैं तथा नेत्र खोलकर उनके रूप का दर्शन करते हैं।

यद्यपि इस श्लोक का सारा भाव धाम की चिन्मयता को लेकर है, फिर भी इसका एक भाव साधक दृष्टि से श्रीधर स्वामीजी ने दिया है। सिद्ध दृष्टि से तो धाम के वृक्ष चिन्मय हैं, उनके पत्ते भी मणिमय हैं किन्तु साधक दृष्टि से बड़ा सुन्दर अर्थ श्रीधर स्वामी करते हैं कि जो ब्राह्मण लोग कर्मकाण्ड करते हैं, उनका कर्मकाण्ड में इतना अभिनिवेश हो जाता है कि कोई बात थोड़ी सी भी कर्मकाण्ड के विरुद्ध हुई तो उनकी श्रद्धा समाप्त हो जाती है। वे बड़ा नाराज होते हैं कि इसे मत छुओ, उसे मत छुओ। तुमने तो सब भ्रष्ट करदिया। अतः श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक में **आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिर प्रवालान्** का अर्थ किया है कि

ऋषिगण वेद रूपी वृक्ष पर बैठे हुए हैं क्योंकि ऋषि मन्त्र दृष्टा होते हैं, वेद के मन्त्रों को वे ही प्रकट करते हैं । उस वेद रूपी वृक्ष में जो रुचिर प्रवाल अर्थात् सुन्दर-सुन्दर पत्ते दिखाई दे रहे हैं, वे वेद के कर्म हैं । वेदों में कहा गया है कि ऐसा कर्म करोगे तो स्वर्ग मिलेगा, वहाँ ऐसी अप्सराएँ मिलेंगी, भोग मिलेगा । भगवान् ने गीता में कहा है कि ये पुष्पित वाणी है । देखने में तो बहुत अच्छी लगती है पुष्प की तरह किन्तु इसमें (कर्मकाण्ड में) सार कुछ नहीं है । **विगतान्यवाचः** का अर्थ दिया है श्रीधर स्वामी ने – **वेदकर्मफलत्याग** अर्थात् ये सब ऋषि वैदिक कर्म फल का त्याग करने के बाद कृष्ण भक्ति में आये हैं ।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतम्
आवर्तलक्षित मनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेः
गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१५)

श्रीकृष्ण की वंशी का गीत सुनकर यमुना आदि नदियों का वेग रुक जाता है । क्यों रुक जाता है ?

आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे – इसलिए रुक जाता है क्योंकि ये अपनी तरंग रूपी भुजाओं के द्वारा श्यामसुन्दर के चरणकमलों का आलिंगन करती हैं ।

इस श्लोक में मुरारी शब्द क्यों कहा गया है ? मुर नामक एक राक्षस था । वामन पुराण की कथा है कि शिवजी से वर लेकर वह जिसके ऊपर हाथ रखता, उसी के प्राण निकल जाते । भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका संहार किया । गोपियाँ यहाँ मुरारी शब्द इसलिए कह रही हैं क्योंकि मुर राक्षस से भी बड़ा है काम । वह राक्षस तो समाप्त हो गया किन्तु काम को कोई समाप्त नहीं कर पाया । यदि श्रीकृष्ण के चरण मिल जाएँ तो

जीवों के शत्रु काम रूपी असुर का नाश हो जायेगा । जब तक श्रीकृष्ण चरणकमलों की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक जीव कामनाओं में भटकता रहता है । काम नाश का दूसरा उपाय है स्वभाव त्याग तो श्रीकृष्ण चरणों के आश्रय से ही स्वभाव त्याग होता है, अन्यथा वैसे तो स्वभाव का त्याग कभी नहीं हो सकता है । स्वभाव त्याग माने माया विजय । ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस रहस्य को खोला गया है । उसमें लिखा है –

"मुरः क्लेशे च सन्तापे कामभोगे च कर्मणाम् ।
दैत्यभेदे ह्यरिस्तेषां मुरारिस्तेनकीर्त्तिते" ॥

मुर का अर्थ होता है क्लेश । वहाँ कृष्ण का नाम मुरारी होने का अर्थ किया गया है - कृष्ण कौन, वही जो क्लेश को नष्ट करें, कृष्ण वही, जो संताप को नष्ट करें, कृष्ण वही, जो कर्मों के काम भोग को नष्ट करें, कृष्ण वही, जो मुर दैत्य को मारें । इन्हीं चार कारणों से कृष्ण को मुरारी कहा जाता है । ऐसा नहीं समझना चाहिए कि केवल मुर दैत्य को मारने के कारण उनका नाम मुरारी है ।

अस्तु, कमलों का उपहार चढ़ाकर नदियाँ श्रीकृष्ण की पूजा करती हैं ।

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः
सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१६)

सखि ! श्यामसुन्दर जब वंशी बजाते हैं तो उसे सुनने के लिए बादल आ जाते हैं और जब उन्हें धूप लगती है तो ये श्यामघन अपने सखा घनश्याम के ऊपर छाया कर देते हैं , उनके ऊपर धूप नहीं लगने

देते हैं और ऊपर से फूलों की वर्षा भी करते हैं । जहाँ-जहाँ कृष्ण जाते हैं, बादल उनके ऊपर सुन्दर पुष्प वर्षा करते हैं । कुछ महात्माओं ने पुष्प वर्षा का भाव लिखा कि पुष्प का अर्थ है कि बादल नन्ही-नन्ही फुहियों जैसी पतली बूँदें बरसाते हैं, जिससे कि वातावरण सरस बना रहे । पुष्प वर्षा भी होती है क्योंकि मेघों के पीछे स्थित देवगण श्यामसुन्दर के ऊपर पुष्प वर्षा करते हैं ।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग
श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१७)

अरी सखि ! गोपियाँ अपने स्तनों पर जो कुंकुम लगाती हैं, उन्हीं स्तनों पर श्रीकृष्ण चरण-कमलों को धारण करती हैं, तब वह कुंकुम श्रीकृष्ण के चरणकमलों में लग जाता है और जब श्रीकृष्ण वनों में विचरण करते हैं तो घास पर वह कुंकुम लग जाता है, तब उसमें बड़ी शक्ति आ जाती है क्योंकि पहले तो वह गोपियों के वक्षोज से लगकर आया तो उनकी प्रेम शक्ति उस कुंकुम में आ गयी, दूसरे, श्रीकृष्ण चरणों में वह लगा तो कृष्ण चरणों का रस उसमें आ गया, इसके बाद वृन्दावन की घास पर वह कुंकुम लगा तो धाम के रसमय स्वरूप से वह रससिक्त हो गया और तब ब्रज की भीलनियाँ श्रीकृष्ण विरह से संतप्त अपने वक्षः स्थल पर उसे लगा लेती हैं । उसको लगाते ही भीलनियों के हृदय की आधि, श्रीकृष्ण विरह की पीड़ा, विरह रोग नष्ट हो जाता है । इस तरह ये भीलनियाँ धन्य और कृतकृत्य हो जाती हैं ।

यह कुंकुम साधारण नहीं है । यह केवल भावुकता वाली बात नहीं है । इससे ये भी पता चलता है कि श्रीकृष्ण नंगे पाँवों से ब्रजभूमि पर विचरण किया करते थे ।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१८)

अरी गोपियो ! ये गिरिराज गोवर्धन हरिदासों में श्रेष्ठ हैं ।

भागवत में हरिदास तीन व्यक्तियों को ही कहा गया है । आचार्य अपनी टीका में लिखते हैं कि हरिदास नाम का प्रयोग केवल तीन लोगों के लिए ही किया गया है । पहला प्रयोग युधिष्ठिरजी के लिए किया गया है ।

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् – (श्रीभागवतजी - १०/७५/२७)

दूसरी बार हरिदास शब्द का प्रयोग उद्धवजी के लिए किया गया है –

कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् – (श्रीभागवतजी - १०/४७/५६)

तीसरी बार हरिदास शब्द का प्रयोग वेणुगीत में गिरिराजजी के लिए किया गया है ।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो – (श्रीभागवतजी - १०/२१/१८)

इस तरह भागवत में इन तीन के लिए ही हरिदास शब्द का प्रयोग हुआ है – युधिष्ठिर, उद्धव और गिरिराज जी । इन तीनों में भी सर्वश्रेष्ठ गिरिराज जी हैं ।

बोलो गिरिराज महाराज की जय

गोपियाँ कहतीं – अरी सखियो ! ये गिरिराज गोवर्धन तो हरिदासों में श्रेष्ठ हैं, हरिदास वर्य हैं । श्रीकृष्ण और बलराम के चरणकमलों का स्पर्श प्राप्त करके ये सदा आनन्दित रहते हैं । ये तो गायों और ग्वालबालों का भी बड़ा सत्कार करते हैं, उनकी सेवा करते हैं । कैसे सेवा करते हैं, पीने के लिए अपने सरोवरों का निर्मल जल प्रदान करते हैं । गिरिराज जी में बड़े निर्मल सरोवर हैं – गोविन्द कुण्ड, राधा कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, कुसुम सरोवर, मानसी गंगा आदि । इन सरोवरों का जल बहुत पवित्र है । गायों के खाने के लिए गिरिराजजी बड़ी सुन्दर घास प्रस्तुत करते हैं, श्रीकृष्ण-बलराम और उनके सखाओं के लिए कन्द-मूल फल प्रदान करते हैं । विश्राम करने के लिए गिरिराजजी की बड़ी सुन्दर कन्दराएँ हैं, जिनमें लाल-ललना विहार करते हैं ।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणाम्
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२१/१९)

कृष्ण-बलराम दोनों भाई जब वन से गायें चराकर लौटते हैं तो श्रीकृष्ण ऐसी वंशी बजाते हैं कि

'अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम्'

चलने वाले जितने भी जीव हैं जैसे गोप, गोपी, पशु-पक्षी आदि, ये तो एक ही जगह खड़े रह जाते हैं । इनकी गति रुक जाती है । बहती हुई नदी की धारा भी रुक जाती है तथा अचल वृक्षों को रोमांच हो जाता है, कैसे, इन वृक्षों से बहुत से फूल गिरने लगते हैं । ब्रज की गलियाँ फूलों से भर जाती हैं ।

महात्मा लोग गाते हैं –

मन राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे कृष्ण बोल ।
राधे कृष्ण बोल रे राधे कृष्ण बोल,
गह्वर वन में खेलन आवें, ... ।

अब फूल गिरने का भाव बताया गया है कि फूल अपने आप कैसे गिरते हैं जब श्रीजी-ठाकुर जी आते हैं ।

'लता-पता फूलन बरसावें'

राधा-माधव के पधारने पर उनको देखकर, गह्वर वन की लता-वृक्षों से अनन्त फूल गिरते हैं ।

'पुलकस्तरूणाम्'

मधुधारा की नदी बहावें,
फूल बिछी गलियन में डोल ।

गह्वर वन में जहाँ भी घूमो, यही सोचो कि यहाँ की गलियों में अनन्त फूल बिछे हुए हैं । कोई मनुष्य नहीं बिछाता, ये लता-पता स्वयं ही फूल बिछा देते हैं ।

गोपियाँ कहती हैं – हे सखि ! इस प्रकार श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि को सुनकर वृक्षों को रोमांच होने लगता है और उनसे पुष्प गिरने लगते हैं ।

अध्याय – २२

इस अध्याय में चीर हरण लीला का वर्णन किया गया है । श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अब हेमन्त ऋतु आयी । उसके प्रथम मास अर्थात् मार्गशीर्ष में ब्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और

व्रत करने लगीं । यद्यपि ब्रज में सब लोग कार्तिक मास में तीर्थ स्नान करते हैं । हेमन्त ऋतु का पहला महीना मार्गशीर्ष या अगहन माना गया है फिर कार्तिक क्यों चल पड़ा ? आचार्य विजयध्वजजी लिखते हैं कि कुछ लोगों के मतानुसार हेमन्त का प्रथम महीना कार्तिक ही माना गया है ।

हेमन्त के प्रथम महीने में नन्द बाबा के व्रज की कुँवारी कन्यायें कात्यायनी देवी का व्रत करने लगीं । वे प्रातः अरुणोदय के समय ही यमुना जी में स्नान करती थीं और यमुना तट पर ही देवी की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करती थीं । पूजा करके वे देवी से यही प्रार्थना करतीं –

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२२/४)

हे कात्यायनी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! आप नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दीजिये । हे देवि ! हम आपके चरणों में नमस्कार करती हैं ।

इस मन्त्र का जप करते हुए उन कुमारियों ने एक महीने तक देवी की उपासना की । वे ब्रह्म मुहूर्त में ही जागकर अपनी सखियों को पुकार लेतीं और हाथ में हाथ डालकर यमुना स्नान करने जाती थीं ।

बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि गोपियों का परस्पर में सापत्न्य (सौतिया) भाव था । ऐसा भाव नहीं था उनका । वे गोपियाँ तो प्रेममयी थीं । कभी-कभी उनकी मान लीला प्राप्त होती है, उसके पीछे रहस्य है । उनका मान भी प्रणय मान था, संसार का कलह मान नहीं था । **'गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः'** – उनमें परस्पर इतना प्रेम था कि एक दूसरे से भुजायें बाँधकर चलती थीं । यमुना तट पर वे अपने वस्त्रों को उतारकर कृष्ण गुणगान करती हुई यमुना में स्नान करती थीं । भगवान्

उन कुमारियों के अभिप्राय को लक्ष्य बनाकर अपने छोटे-छोटे सखाओं के साथ उनकी साधना का फल देने के लिए गये । वहाँ जाकर श्यामसुन्दर उन गोपकुमारियों के सारे वस्त्र उठाकर एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये । उन्होंने गोपि यों से कहा –

'हे गोपियो ! मैं सदा सत्य बोलता हूँ । असत्य कभी नहीं बोलता । तुम लोग यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्रों को ले जाओ । एक-एक करके ले जाओ या सब एक साथ ही आकर ले जाओ ।' गोपियों ने कहा – 'हे नन्द गोप के लाला ! **मानयं भोः** – हम तुम्हें जानती हैं । तुम बड़े प्रशंसनीय हो । तुम ऐसी अनीति मत करो । इस समय हम ठण्ड से काँप रही हैं । हे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासी हैं । तुम जो कहोगे, वही हम करेंगी । हमारे वस्त्रों को दे दो ।' **नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे** – (श्रीभागवतजी - १०/२२/१५) कुछ लोग इस श्लोक का अर्थ करते हैं – 'नहीं तो हम कंस से जाकर कह देंगी ।'परन्तु यहाँ कंस की बात नहीं है । ऐसा अर्थ करना गलत है ।

आचार्यों ने इस श्लोक का अर्थ लिखा है – 'हम नन्द बाबा से जाकर कह देंगी ।'

कंस को तो गोपियाँ कुछ समझती ही नहीं थीं । वैसे भी ब्रज के राजा तो नन्द बाबा थे । इसलिए कंस का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है । बेटे को बाप का डर होता है । इसलिए आचार्यों ने लिखा कि गोपियों ने कहा – 'तुम मान जाओ, नहीं तो हम नन्द बाबा से जाकर कह देंगी ।' भगवान श्रीकृष्ण ने कहा – 'यदि तुम लोग मेरी दासी हो और मेरी आज्ञा का पालन करना चाहती हो तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो ।'

श्रीकृष्ण की बात सुनकर वे कुमारियाँ अपने दोनों हाथों से गुप्त अंगों को छिपाकर यमुनाजी से बाहर निकलीं । उनके इस शुद्ध भाव से भगवान् बहुत प्रसन्न हुए । अपने कन्धों पर उन्होंने जो वस्त्र रखे थे, उन्हें

कंधे से उतारकर उन कुमारियों को दे दिए और बोले – 'तुम लोगों ने नग्न होकर जो यमुनाजी में स्नान किया, इससे देवहेलन किया, जल देवता का अपराध किया है। इस दोष को दूर करने के लिए तुम नारायण भगवान् के स्वरूप वरुण देव को अपने दोनों हाथों को जोड़कर प्रणाम करो तो तुम्हारा अपराध दूर हो जायेगा।'

गोपियाँ उस समय बड़ी भोली बन गयीं, यद्यपि गोपियाँ बड़ी चतुर थीं परन्तु वे समझ गयीं कि हमारे इस व्रत में कोई त्रुटि न रह जाये। उपासक को भोला बनना ही पड़ता है। व्रत में थोड़ी सी भी कमी होती है तो वह अपूर्ण हो जाता है। गोपियों ने मान लिया कि श्रीकृष्ण ठीक कह रहे हैं। यहाँ जो लीला चल रही थी, यह वैधी भक्ति की लीला थी। व्रत करना और व्रत करके श्रीकृष्ण की प्राप्ति करना। व्रत में कोई त्रुटि न हो जाये, अतः श्रीकृष्ण के समझाने पर गोपियों ने मान लिया कि हमारे व्रत में त्रुटि आ गयी है।

अब ये जानना चाहिए कि ये कुँवारी कन्यायें कौन हैं? गर्ग संहिता के अनुसार रामावतार में उनके रूप पर जो स्त्रियाँ मोहित हुईं, वे द्वापर में गोपियाँ बनीं। अनेकों आर्ष ग्रंथों में इसका प्रमाण है कि भगवान् को पति रूप में प्राप्त करने के लिए भगवान् के अनेकों अवतारों से प्यासी भक्त नारियाँ द्वापर में गोपियों के रूप में उत्पन्न हुईं। रामावतार के परिकर श्रीराम को कान्त रूप में तथा रास रस को पाने के प्यासे थे। उनके मनोरथ की पूर्ति द्वापर में गोपी बनने पर श्रीकृष्ण प्राप्ति से हुई। राम-कृष्ण एक ही हैं, फिर भी राम एक पत्नी व्रत थे, वे सबको कान्त रूप में प्राप्त नहीं हो सकते थे और कृष्ण बहु नायक हैं। राम-कृष्ण में यही भेद है। इस भेद को यदि कोई मिटाएगा तो राम, कृष्ण में कोई अन्तर ही नहीं रह जायेगा, फिर तो वह कृष्ण उपासक ही बन गया। कोई रामोपासक राम-कृष्ण को एक बताते हुए हठपूर्वक यदि कृष्ण के हाथ में धनुष पकड़ा देगा तो धनुष लेकर रास लीला तो नहीं की जा सकती।

धनुष पकड़ाकर तो वह रसाभास ही करेगा । रस के लिए अनुकूल वेषभूषा और उद्दीपन सामग्री होनी चाहिए तब रस की निष्पत्ति होती है । अनुकूल वेष के लिए तो मोर मुकुट और वंशी लेनी ही पड़ेगी । धनुष लेकर तो रास हो नहीं सकता । रस का मतलब है कि आलम्बन, उद्दीपन, भाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि सब अनुकूल होंगे तभी रस की निष्पत्ति होगी । रस के अनुकूल वेष बनाओगे तब कृष्ण रूप बन जायेगा । रामावतार में प्रभु ने दण्डक वन के ऋषियों को और समस्त नारी वर्ग को वर दिया कि तुम सबकी इच्छा की पूर्ति मैं कृष्ण रूप से द्वापर के अंत में करूँगा । मिथिला की नारियाँ श्रीरामचन्द्रजी के वर से नौ नन्दों के घरों में उत्पन्न हुई थीं, वे श्रीकृष्ण रूप पर मोहित थीं । यह नहीं सोचना चाहिए कि नौ नन्दों के घरों में पैदा होने से वे श्रीकृष्ण की बहन हुईं । भगवान् ने द्वारका में भी अपनी फुफेरी बहन के साथ विवाह किया था । वस्तुतः कृष्ण रस लोक-वेद से अतीत है क्योंकि रस जब अपने शुद्ध स्वरूप में आता है तो वह कोई बन्धन नहीं मानता है जैसे ब्रह्म सर्वोपाधि विमुक्त है । जितनी भी उपाधियाँ हैं, उनसे जो विमुक्त है, वह ब्रह्म है । अतः रस भी अपने शुद्ध स्वरूप में समस्त उपाधियों से मुक्त हो जाता है । लोक की उपाधि हो, वेद की उपाधि हो, इनसे जब मुक्त होगा तभी तो रस बनेगा और तभी तो रस ब्रह्म है । यह सूक्ष्म बात है । उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप बताया गया है – **रसो वै सः** । इसलिए नौ नन्दों के घरों में जो कन्यायें उत्पन्न हुईं, उन्होंने ही कृष्ण रूप पर मोहित होकर मार्गशीर्ष के शुभ मास में कात्यायनी का व्रत किया । उन्होंने अपने व्रत में त्रुटि समझकर उसकी निर्विघ्न पूर्ति के लिए साक्षात् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया ।

'साक्षात्कृतं नेमुः' (श्रीभागवतजी - १०/२२/२०)

भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके वस्त्र उन्हें दे दिए ।

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२२/२२)

भगवान् ने गोपियों को वस्त्र देने के पहले उन्हें ठगा, उनकी लज्जा-संकोच को छुडाया, उनके साथ हँसी-मजाक किया, खिलौने की तरह उन्हें नचाया, उनके वस्त्र भी हर लिए परन्तु फिर भी गोपियों ने भगवान् के प्रति दोष दृष्टि नहीं की । यह प्रेम का स्वभाव है कि प्रेमास्पद में दोष नहीं देखा जाता है । गोपियाँ अपने वस्त्र धारणकर वहाँ से गयी नहीं, वहीं खड़ी रहीं । तब श्यामसुन्दर ने उनसे कहा – 'मैं तुम्हारे संकल्प को जानता हूँ । कोई यदि काम भाव से भी मेरी प्राप्ति करता है तो वह काम से अतीत हो जाता है ।'

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२२/२६)

'जिसकी बुद्धि मुझमें लग गयी है, भोग सामग्रियाँ उसे भोग में नहीं खींच सकती हैं जैसे कोई भी अनाज का दाना है जौ, गेहूँ, चना आदि , उसे यदि धरती में बोया जाए तो अंकुर निकलेगा, पेड़ बनेगा किन्तु उसी बीज को भूँज दिया जाए, फिर उबाला जाए और उसके बाद धरती में बोया जाए तो अंकुर नहीं निकलेगा, चाहे कितना भी पानी दिया जाए, खाद डाली जाए किन्तु अंकुर नहीं फूटेगा ।'

जो मनुष्य इस सिद्धान्त को नहीं समझता, वह कृष्ण उपासना नहीं कर सकता । वस्तुतः भगवान् श्यामसुन्दर के स्वरूप के चिन्तन या ध्यान से हर जीव गुणातीत हो जाता है । स्वयं गोपियों ने ऐसा श्रीकृष्ण के बारे में कहा है –

'इतररागविस्मारणं नृणाम्' (श्रीभागवतजी - १०/३१/१४)

कृष्ण रस या कृष्ण प्रेम के आने पर अन्य प्रेम, राग व मोह समाप्त हो जाते हैं ।

कृष्ण कामना आने पर अन्य कामनायें समाप्त हो जाती हैं । कृष्ण राग होने पर अन्य राग समाप्त हो जाते हैं । यह विलक्षणता है जैसे किसी को तीव्र ज्वर (बुखार) हो गया हो, शरीर गरम हो गया हो, ऐसे में उसे ठण्डे पानी से नहला दिया जाये, ठंडी चीज खाने-पीने को दी जाये तो उसे सन्निपात हो जायेगा । गरम रोग के लिए गरम दवा दी जाती है तब वह गरम दवा गरम रोग को नष्ट कर देगी । इसी प्रकार प्राकृत काम को तत्ततत् सजातीय अप्राकृत काम नष्ट करता है । विष विष को मारता है । यह एक सिद्धांत है । प्राकृतिक अनुभूत वस्तु है, इसीलिए श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि मेरे प्रति यदि कोई कामना करता है तो उसका सारा प्राकृत काम नष्ट हो जाता है । हे सतियो ! तुम लोग अब सिद्ध हो गयी हो । आगामी शरद ऋतु की रात्रियों में तुम अब मेरे साथ रास-विलास करोगी । इसलिए अब तुम अपने घरों को लौट जाओ ।

यहाँ एक शब्द जो श्यामसुन्दर ने गोपियों के प्रति कहा, उसे पकड़ना चाहिए ।

यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२२/२७)

यहाँ श्यामसुन्दर ने गोपियों को 'सती' कहा है । ऐसा संसारी लोगों को सावधान करने के लिए कहा है, जो दूषित बुद्धि के होते हैं । वे सोचते हैं कि कृष्ण तो नग्न स्नान कर रही गोपियों के वस्त्र लेकर चले गये, इसमें कौन सा कल्याण है ? इससे तो मर्यादा नष्ट हो गयी । उनको

बोध देने के लिए भगवान् ने सती शब्द कहा है अर्थात् गोपियों से बढ़कर सती और कोई नहीं हो सकती । रुक्मिणीजी ने एकादश स्कन्ध में कहा है कि दाढ़ी-मूँछ और मल-मूत्र से युक्त पति से जो प्रेम करती है, इसमें कौन सी विशेष बात है । चाहे लौकिक दृष्टि से स्त्री कितनी भी बड़ी सती बन जाये किन्तु उसके पति देवता का शरीर तो मल-मूत्र का ही पिण्ड है । उसके प्रति सती धर्म निभाने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी । असली पति तो कृष्ण हैं, जो परब्रह्म हैं, उनसे जो प्रेम करती है, वही वास्तविक सती है । लौकिक सती सती नहीं है । सच्ची सती वह है जो श्रीकृष्ण की अनन्य है । राधारानी से बढ़कर सती आज तक न कोई हुई और न होगी । इस सम्बन्ध में बहुत सी पौराणिक कथायें हैं कि श्रीजी ने अपने सतीत्त्व की परीक्षा दी, इसके प्रमाण हैं । इसी प्रकार ब्रजगोपियों से बढ़कर सती कौन हो सकती है, जिन्हें श्रीकृष्ण जैसे पति मिले । इसीलिए भगवान् ने स्वयं चीरहरण के प्रसंग में गोपियों से कहा कि सच्ची सती तो तुम लोग हो, जिसने मूल पुरुष से प्रेम किया, जो संसार का वास्तविक पति है ।

श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार आदेश देने के बाद वे कुमारिकायें श्रीकृष्ण चरणकमलों का ध्यान करती हुई अपने घरों को बड़ी कठिनता के साथ गयीं ।

चीर हरण लीला के वास्तविक रहस्य को समझना चाहिए । बहुत से लोग इस लीला को पूर्णतया आध्यात्मिक स्वरूप दे देते हैं क्योंकि हर जीव इस लीला का अधिकारी नहीं है । न्याय शास्त्र का एक ग्रन्थ है मुक्तावली । उसमें लिखा है –

नूतन जलधर रुचये गोपवधूटी दुकूल चौराय तस्मै कृष्णाय नमः ।

उन श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जो चीर चोर हैं तथा संसार के बीज हैं । ग्रन्थकार ने तो ठीक लिखा है किन्तु टिप्पणीकार ने लिखा है कि

'गोप वधूटी दुकूल' क्या है ? यह है अविद्या का आवरण । श्रीकृष्ण अविद्या के आवरण को हरने वाले हैं, जो अविद्या रूपी वस्त्रों का हरण करते हैं । इस प्रकार उन्होंने चीर हरण लीला का आशय बताया है । ठीक है, कृष्ण अविद्या का हरण करते हैं किन्तु वस्त्र भी उन्होने हरण किये हैं, यह भी समझना चाहिए । क्यों ? अविद्या क्या है, अविद्या की वृत्तियों का हरण करना वस्त्र हरण करना है यानी चीर हरण का मतलब है वृत्ति हरण । यदि इस लीला को आध्यात्मिक रूप देना है तो इसे वृत्ति हरण कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि वृत्ति हरण दोनों पक्षों में लगता है । लीला पक्ष में भी लगता है और आध्यात्मिक पक्ष में भी लगता है । जैसे अध्यात्म में इस प्रकार लगेगा – अविद्या की वृत्ति, अविद्या के जितने भी राग-द्वेष आदि अंग हैं । लीला पक्ष में इस प्रकार लगेगा कि नायिका के अन्दर मिलन के समय जितनी भी अवरोधक वृत्तियाँ लज्जा, वामा आदि गतियाँ हैं, वे भी वृत्तियाँ हैं । जब तक उन वृत्तियों का हरण नहीं किया जायेगा तब तक सम्पूर्ण रूप से निरावरण मिलन नहीं हो पाता है । श्रीकृष्ण विग्रह चिन्मय है, उनसे मिलन में नायिका के अन्दर जितनी भी अवरोधक वृत्तियाँ हैं, उन्हें प्रभु ने हरण किया । जीव को शंका तब होती है, जब प्राकृत काम को लेकर चला जाता है । यहाँ पर यह लीला अप्राकृत काम की है । प्राकृत और अप्राकृत काम में भेद है । भेद मानना पड़ेगा । संसार में एक माता अपने बेटे को चूमती है । लड़का कितना भी बड़ा हो जाए, कहीं बाहर से आता है, माँ बूढ़ी है, बेटा जवान है तो माँ प्यार से अपने पुत्र को चूम लेती है । उसी लड़के को उसकी पत्नी भी चूमती है । क्रिया एक होते हुए भी भावना में भेद है, इसे मानना ही पड़ेगा; जो लोग नहीं मानेंगे, वे माँ के चुम्बन को और पत्नी के चुम्बन को एक कैसे मानेंगे, ऐसा मूर्ख तो दुनिया में कोई नहीं होगा जो माँ के और पत्नी के चुम्बन में भेद को नहीं

समझता; नहीं समझता तो वह नितान्त पशु है, बिलकुल मूढ़ है । जिस प्रकार माता और पत्नी के चुम्बन में क्रिया एक होते हुए भी भावना का भेद है, उसी प्रकार प्रेम राज्य में भी क्रिया प्राकृत राज्य की तरह प्रतीत होते हुए भी काम और प्रेम में बहुत बड़ा भेद है । इसीलिए भगवान् ने कहा कि अप्राकृत काम की प्राप्ति से प्राकृत काम चला जाता है ।

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२२/२६)

यहाँ 'काम' के लिए दो शब्द आये हैं । भगवान् ने कहा कि जिनका चित्त मुझमें लगा हुआ है, उनके अन्दर जो अप्राकृत काम होता है, वह प्राकृत काम की पुनः उत्पत्ति नहीं करा सकता है ।

इसी श्लोक में ही भगवान् ने प्राकृत काम और अप्राकृत काम को स्पष्ट कर दिया है । दोनों के ही नाम काम हैं । शास्त्र में कहा गया है –

'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यभिधीयते'

गोपियों के प्रेम को काम कहा गया है । वह यहाँ इस श्लोक '१०/२२/२६' में कहा गया है, यह प्रमाण है । यह भगवान् के श्रीमुख से निकला हुआ प्रमाण है । इसलिए यदि चीरहरण लीला को अध्यात्म का रूप दिया जाए तो इसे वृत्ति हरण कहना चाहिए । इससे यह अध्यात्म और लीला, दोनों पक्षों में घट जायेगा । केवल इस लीला को यदि आध्यात्मिक रूप ही दे दिया जाता है और लीला गौण कर दी जाती है तो इसमें चतुराई नहीं बल्कि अनर्थ है । भगवल्लीला की प्रधानता को लेकर ही चलना पड़ेगा ।

इस प्रकार चीरहरण लीला का समापन हुआ ।

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और ग्वालबालों के साथ गायें चराते हुए वृन्दावन से बहुत दूर निकल गये। गर्मी की ऋतु थी किन्तु घने-घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर छाया कर रहे थे। वृक्षों को छाया करते देख गोपाल जी ने अपने सखाओं को बहुत उत्तम शिक्षा दी। उन्होंने स्तोककृष्ण, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन आदि प्रमुख ग्वालबालों को सम्बोधन करके कहा – 'प्यारे सखाओ ! देखो, ये वृक्ष कितना परोपकार करते हैं। इसलिए हम सबको सदा परोपकार करना चाहिए। ये वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, लकड़ी, छाल, गन्ध, गोंद तथा कोपलों को प्रदान कर लोगों की कामना पूरी करते हैं।

एतावत् जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२२/३५)

मनुष्य के जीवन की सफलता इसी में है कि जहाँ तक हो सके, अपने धन से, विवेक-विचार से, वाणी तथा प्राणों से ऐसे कर्म करे, जिनसे दूसरों की भलाई हो।'

इस प्रकार अपने सखाओं को शिक्षा देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण वृक्षों के बीच से होते हुए गायों को जल पिलाने के लिए यमुनाजी की ओर चले गये।

अध्याय – २३

ग्वालबालों ने कहा – 'प्यारे कन्हैया ! हम लोगों को बहुत भूख लग रही है। तुम इसे बुझाने का कोई उपाय करो।' श्रीकृष्ण ने कहा – 'मेरे प्यारे मित्रो ! यहाँ से थोड़ी दूर पर ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे हैं। तुम लोग उनकी यज्ञशाला में जाओ। वहाँ तुम मेरा

और बड़े भैया बलराम जी का नाम लेकर कुछ भोजन की सामग्री माँग लाओ । वहाँ तुम लोगों का स्वागत-सत्कार होगा ।'

जब भगवान् ने ऐसी आज्ञा दी तब ग्वालबाल उन ब्राह्मणों की यज्ञशाला में गये और उनसे हाथ जोड़कर बोले – 'हे भूमिदेव ! हम ब्रज के ग्वाले हैं । श्रीकृष्ण और बलरामजी की आज्ञानुसार हम आपके पास आये हैं । वे दोनों भाई कृष्ण-बलदेव भूखे हैं । गायें चराते हुए वे थोड़ी ही दूर पर आये हुए हैं । यदि आपकी श्रद्धा हो तो उनके लिए थोड़ा सा भात दे दीजिये ।' (ग्वालबालों ने कृष्ण-बलराम के भूखे होने की बात इसलिए कही कि हमें भूखा जानकर शायद कुछ न दें । कृष्ण बलराम का नाम लेने से उनके लिए कुछ अन्न दे भी सकते हैं । बड़ों का नाम लेने से काम जल्दी बन जाता है ।)

ग्वालबालों ने आगे कहा कि जिस यज्ञशाला में पशु बलि होती है उसमें और सौत्रामणि यज्ञ में दीक्षित पुरुष का अन्न नहीं खाना चाहिए । इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी यज्ञ में दीक्षित पुरुष का भी अन्न खाने से कोई दोष नहीं होता है ।

इस प्रकार अन्न माँगने की बात सुनकर भी उन ब्राह्मणों ने कुछ ध्यान नहीं दिया । वे मुख से कुछ भी नहीं बोले । जब ब्राह्मणों ने कुछ नहीं कहा तो ग्वालबाल निराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण-बलराम से बता दिया कि उन ब्राह्मणों ने तो 'हाँ' या 'न' कुछ भी नहीं कहा । हम लोग तो मानो पत्थर से मुँह मारकर चले आये । उनकी बात सुनकर भगवान् हँसने लगे और फिर उनसे कहा – 'प्यारे सखाओ ! उन ब्राह्मणों की स्त्रियाँ बड़ी भक्त हैं । अबकी बार तुम उनके पास जाओ । वे स्त्रियाँ वास्तव में भक्त हैं । उनके पति तो अभी कर्मकाण्ड में ही अटके हुए हैं । उनके पास जाकर तुम कहना कि कृष्ण-बलराम आये हैं, उनके लिए भोजन दे दीजिये, तब तुम जितना भोजन चाहोगे, उतना भोजन

वे तुम्हें दे देंगी क्योंकि वे मुझसे बड़ा प्रेम करती हैं । उनका मन सदा मुझमें ही लगा रहता है ।'

जब ग्वालबालों ने सुना कि ब्राह्मण पत्नियों में श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति है तब वे पत्नी-शाला में गये और उन ब्राह्मण पत्नियों को प्रणाम किया ।

इसका अभिप्राय यह है कि जिसमें भक्ति है, वह प्रणम्य (प्रणाम के योग्य) है । ब्राह्मण की क्या चलाई ? **'भगतिहीन बिरंचि किन होई ।'** गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि भक्तिहीन ब्रह्मा भी कुछ नहीं है, नगण्य है ।

ग्वालबाल शास्त्र को जानने वाले और बड़े चतुर थे । उन्होंने ब्राह्मण पत्नियों को प्रणाम करते हुए बड़ी नम्रता से कहा – 'हे विप्र पत्नियो ! आपको नमस्कार है । आप कृपा करके हमारी बात सुनें । यहाँ से थोड़ी दूर पर गोचारण करते हुए श्रीकृष्ण-बलराम अपने सखाओं के साथ आये हुए हैं । इस समय उन्हें और उनके साथियों को बड़ी भूख लगी है । आप उन्हें और उनके अनुगामी हम साथियों के लिए कुछ भोजन दे दीजिये ।'

(प्रभु को उन ब्राह्मण पत्नियों पर कृपा करनी थी, इसीलिए ग्वालबालों की भूख द्वारा उन देवियों पर कृपा की)

वे विप्र पत्नियाँ बहुत दिनों से श्रीकृष्ण की लीलायें सुना करती थीं । इससे उनका मन श्रीकृष्ण में लग चुका था । वे उनके दर्शन की इच्छा नित्य ही करती थीं । अब उन्हीं श्रीकृष्ण के आने की बात सुनकर वे उतावली सी हो गयीं । चार प्रकार का अन्न होता है – भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य । ब्राह्मण पत्नियों ने सुन्दर बर्तनों में चार प्रकार की भोजन सामग्री रखी और भगवान् श्रीकृष्ण के पास चल दीं । जब वे चलने लगीं तो उनके पति उन्हें रोकने लगे । विवाहिता के पति ने मना किया, किसी के भाइयों ने मना किया किन्तु वे रोकने पर भी नहीं रुकीं और चल पड़ीं ।

अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२३/१९)

जैसे नदियाँ समुद्र की ओर वेग से बहती हैं, उसी प्रकार वे विप्रपत्नियाँ श्यामसुन्दर का दर्शन करने के लिए अत्यधिक उत्साह के साथ चल दीं । भगवान् से मिलने के लिए चले तो ऐसे ही चलना चाहिए ।

जाको मन लाग्यो नंदलालहि,
ताहि और क्यों भावै हो ।

सूरदासजी कहते हैं कि जो श्यामसुन्दर का प्रेमी है, उसे चाहे पिता रोके, माँ रोके, भाई, पुत्र और सारी दुनिया रोके, वह नहीं रुकता है, कैसे ?

जैसे सरिता बहै सिन्धु को,
उलटि प्रवाह न आवै हो ।

जैसे नदी जब समुद्र की ओर चल पड़ती है तो फिर उलटी नहीं लौटती है । इसी प्रकार शुकदेवजी ने कहा कि जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर वेग से बहती हैं, उसी प्रकार वे विप्र पत्नियाँ श्रीकृष्ण की ओर चल पड़ीं । उनके पति रोकते रहे, पिता रोकते रहे किन्तु

निषिध्यमानाः पतिभिः भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवति उत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२३/२०)

रोके जाने पर भी वे नहीं रुकीं । जब वे वन में पहुँचीं तो उन्होंने श्यामसुन्दर का दिव्य रूप देखा ।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह -
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।

विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम्
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२३/२२)

उनके साँवले शरीर पर सुनहला पीताम्बर है । गले में वनमाला लटक रही है । मस्तक पर मोर पंख का मुकुट है, अंगों में रंगीन धातुओं की चित्रकारी की गयी है, कोपलों से सजा नट जैसा वेष है । अपनी भुजा को एक सखा के कंधे पर रखकर दूसरे हाथ से कमल का फूल नचा रहे हैं । कानों में कमल के कुण्डल हैं, कपोलों पर घुँघराली अलकें शोभित हो रही हैं एवं मुखकमल पर मधुर मुस्कान है ।

अब तक ये यज्ञपत्नियाँ श्यामसुन्दर के रूप, गुण के बारे में सुना करती थीं कि वे ऐसे हैं और आज उस रूप को साक्षात् अपने नेत्रों से उन्होंने देखा ।

वृन्दावन में 'भतरोड़' नामक स्थान है, वहाँ की यह लीला है, जहाँ यज्ञ पत्नियों ने श्यामसुन्दर का दर्शन किया था । जब उन्होंने प्रभु के रूप का दर्शन कर लिया तब वे उनसे बोले –

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ।

'महाभाग्यवती देवियो ! तुम्हारा स्वागत है । आओ, बैठो । कहो, हम तुम्हारी क्या सेवा करें ? तुम लोग मेरे दर्शनों की इच्छा से यहाँ आई हो, यह तुम्हारे लिए युक्त है ।

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२३/२६)

जो कुशल लोग हैं, वे मुझसे ही प्रेम करते हैं ।'

भगवान् बार-बार इस बात को बताते हैं कि संसार में सब कुछ छोड़कर उन्हीं से प्रेम करना चाहिए । स्पष्ट रूप से भगवान् बार-बार यह घोषणा करते हैं ।

प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२३/२७)

श्यामसुन्दर ने कहा – 'प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्त्री, पुत्र और धन आदि मेरे कारण ही प्यारे लगते हैं । इसलिए मुझसे बढ़कर संसार में और कौन प्रिय हो सकता है ?

मैं तुम्हारे प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ, किन्तु अब तुम लोग मेरा दर्शन कर चुकी हो, अतः अब जाओ । तुम्हारे पति गृहस्थ हैं, वे तुम्हारे साथ मिलकर अपना यज्ञ पूर्ण करेंगे ।'

इस प्रसंग में कुछ श्लोक वही हैं और वही परम्परा है जैसे रास में गोपियों के आने पर हुई थी । भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार रास में आने पर गोपिकाओं से कहा था – **'स्वागतं वो महाभागा'** – उसी प्रकार उन्होंने यज्ञपत्नियों से भी कहा तथा जब भगवान् ने गोपियों को घर लौटने को कहा तो जिस प्रकार गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था –

'मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्' (श्रीभागवतजी - १०/२९/३१)

ठीक इसी प्रकार यज्ञपत्नियों ने भी भगवान् से कहा –

'मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्'

(श्रीभागवतजी - १०/२३/२९)

यज्ञपत्नियों ने कहा – 'भगवन् ! आप ऐसी कठोर वाणी क्यों बोलते हैं ? हम आपके पास आकर वापस संसार में जाना नहीं चाहतीं और यदि जायेंगी तो हमारे पति हमें स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि हम उनकी आज्ञा के विरुद्ध आपके पास चली आयीं, अतः अब वे हमें घर में भी घुसने नहीं देंगे ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'अरे, तुम्हारे पति तो अब तुम्हारे दास बन जायेंगे । जो मेरा सच्चा भक्त है, देवता तक उसके दास बन जाते हैं ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की आज्ञा से वे यज्ञपत्नियाँ यज्ञशाला में लौट गयीं । उन स्त्रियों में से एक को उसके पति ने श्याम सुन्दर के पास जाने से बलपूर्वक रोक दिया था । जैसे रासलीला में कुछ गोपियों के साथ हुआ, वैसे ही यहाँ भी हुआ । उस ब्राह्मणपत्नी ने भगवान् के सुने हुए रूप का ध्यान किया और अपने स्थूल शरीर का त्यागकर दिव्य शरीर से उसने भगवान् को प्राप्त कर लिया ।

ये ब्राह्मणपत्नियाँ पूर्व जन्म में सप्तर्षियों की पत्नियाँ थीं । एक बार यज्ञ में अग्निदेव इन ऋषि पत्नियों के रूप पर मोहित हो गये तो ऋषियों ने अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप दे दिया । तब से अग्नि को अच्छी-बुरी प्रत्येक वस्तु का भक्षण करना होता है, उसमें मुर्दा भी फुँकते हैं । इसके साथ ही सप्तर्षियों ने अपनी पत्नियों को भी शाप दे दिया कि तुम लोग मानवी हो जाओ ।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण पत्नियों के द्वारा लाये चार प्रकार के अन्न से पहले ग्वालबालों को भोजन कराया और फिर स्वयं उन्होंने भी भोजन किया ।

चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२३/३५)

जब भगवान् ने भोजन कर लिया तो उन ब्राह्मणों की बुद्धि शुद्ध हो गयी, जो कर्मकाण्ड के कारण दुराग्रह से युक्त थी । अब वे पछताने लगे और बड़ी विचित्र बात कहने लगे –

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२३/३९)

'हम लोगों को धिक्कार है, हमारे त्रिवृद्-जन्म – वैदिक जन्म, सावित्री जन्म व गायत्री आदि जन्म को धिक्कार है । हमने वेदों का अध्ययन किया, ब्राह्मण हैं, इसे धिक्कार है । जो श्रीकृष्णचरणारविन्द की प्रीति से विमुख है, उसे धिक्कार है । हमारी इन स्त्रियों को देखो, न तो इनका द्विजाति के योग्य यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुआ, न इन्होंने गुरुकुल में रहकर शास्त्र अध्ययन किया, न तपस्या की, न आत्मचिन्तन किया, न ही इनके शरीर में पवित्रता है (स्त्री शरीर अशुद्ध माना गया है), न ही इनमें कोई शुभ क्रिया है परन्तु इनके हृदय में भगवान् की भक्ति है और हममें वैदिक संस्कार होते हुए भी हम भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हैं, हम लोग स्वार्थ विमूढ़ हैं । हमने वेदों का अध्ययन किया, हमारा यज्ञोपवीत संस्कार भी हुआ, तप किया परन्तु हम लोग घर-गृहस्थी के प्रपंच में पड़कर मूढ़ हो गये हैं ।'

ब्राह्मणों को अपनी श्रीकृष्ण विमुखता के कारण बहुत दुःख तो हुआ किन्तु एक बात की उन्हें प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा कि हमारे अन्य सारे वैदिक कार्य, शास्त्राध्ययन आदि बेकार गये किन्तु एक बात बहुत अच्छी हुई ।

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२३/४९)

हमारी स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त हैं, यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है । बाकी तो हमारे समस्त शुभ कर्म, तपस्या, ब्राह्मणपना आदि समस्त गुण व्यर्थ हो गये । इन सबको धिक्कार है परन्तु यह कम नहीं है कि हमें भक्त स्त्रियाँ प्राप्त हुईं । उनकी भक्ति से हमारी बुद्धि श्रीहरि में निश्चल हो गयी है ।

यदि स्त्री में भक्ति है तो उसके पति में भी भक्ति आ जाएगी । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है । वैष्णवजन इसका कारण बताते हैं कि स्त्री

जो घर में भोजन बनाती है, घर का सारा कार्य करती है, उसके हाथ का बना भोजन खाने से पुरुष में वैसे ही परमाणु आते हैं । स्त्री यदि भगवद् विमुख है तो पति कितना भी गुणवान है, उसमें भी विमुखता के परमाणु और संस्कार प्रवेश कर जायेंगे । पुरुष तो नौकरी करने, व्यापार करने, धन कमाने के कारण अधिकतर घर से बाहर रहता है, स्त्री ही सदा घर में रहती है, अतः घर तो घर वाली स्त्री का होता है । पुरुष तो अधिक कुछ करेगा तो बाहर से आकर थककर घर में सो जाता है । घर तो चौबीस घण्टे घर में रहने वाली स्त्री के परमाणु से ही व्याप्त रहता है । वही घर में सदैव रहती है, घर का सारा काम करती है, घर को झाड़ती-बुहारती है, भोजन बनाती है । इसलिए स्त्री का बड़ा महत्व है । ऐसा यहाँ इस श्लोक (१०/२३/४९) में स्पष्ट लिखा है । ब्राह्मण लोग कहते हैं कि हमारी बुद्धि अब भगवान् की भक्ति से युक्त हो गयी है क्योंकि हमारी पत्नियाँ भक्त हैं । घर में यदि स्त्री भक्त है तो निश्चय ही उस परिवार में भक्ति आ जाएगी । यह बहुत बढ़िया बात ब्राह्मणों ने कही है – **'भक्त्या यासां मतिर्जाता ।'** इसलिए स्त्रियों में भक्ति होना बहुत आवश्यक है, उसके प्रभाव से जितना भी पुरुष वर्ग है - पति, पुत्र, भाई आदि अपने आप ही भक्त हो जायेंगे । इसीलिए मनु स्मृति में मनु महाराज ने लिखा है – **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।**

जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं अर्थात् नारी पूज्या है, भोग्या नहीं है । पूजा का मतलब यह नहीं कि पुरुष आसक्ति के कारण पूजा करे कि ऐसा न करने पर यह हमें भोजन बनाकर नहीं देगी, भोगेच्छा की पूर्ति नहीं करेगी । पूज्यन्ते का अर्थ है कि जहाँ नारी पूज्यनीय है, उसमें पूज्यता के गुण हैं, वहाँ अपने आप ही देवता रहेंगे और देवता तो क्या, वहाँ भगवान् भी आ जायेंगे । यह बात तो स्वयं भागवत में ही कही गयी है । लोग सोचते हैं कि भागवत में स्त्री की बड़ी निन्दा की गयी है । नहीं, भागवत में स्त्री की महिमा का बहुत

वर्णन किया गया है । स्त्री की इतनी अधिक महिमा भागवत में बताते हुए कहा गया है कि स्त्री में भक्ति होनी आवश्यक है, उसका प्रभाव सारे घर-परिवार पर पड़ेगा ।

अस्तु, अन्त में ब्राह्मणों ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, वे हमारे अपराधों को क्षमा करें ।

वे ब्राह्मण श्रीकृष्ण-बलराम का दर्शन करना चाहते थे किन्तु कंस के डर के कारण वे घर में ही रहे, दर्शन करने नहीं जा सके । यह तो उनकी पत्नियों की हिम्मत थी कि पतियों के बहुत रोकने पर भी वे श्रीकृष्ण का दर्शन करने चली गयीं । इसीलिए कहा गया है – **'का न करै अबला प्रबल'** - इनका नाम अबला है किन्तु जब ये प्रबल बनती हैं तो सबसे आगे निकल जाती हैं । इन्हें कोई नहीं रोक सकता है ।

अध्याय – २४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् ने एक दिन देखा कि सभी ब्रजवासी इन्द्र यज्ञ करने की तैयारी कर रहे हैं । उन्होंने विचार किया कि यह तो ठीक नहीं है, ब्रजवासियों को अनन्य भक्त होना चाहिए । श्रीकृष्ण अपने पिता नन्दबाबा के पास गये और उनसे पूछा – 'पिता जी ! आप यह क्या कर रहे हैं ? मुझे भी बताइए । **विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्** – (श्रीभागवतजी - १०/२४/६) – जानकर-समझकर जो कार्य किया जाता है, वह सफल होता है । नासमझ व्यक्ति के कर्म सफल नहीं होते हैं । इसलिए कार्य को जानकर करना चाहिए ।'

बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि हमारे यहाँ परम्परा से यह कार्य होता आया है, इसलिए इसे करना चाहिए । नहीं, उस कार्य को अच्छी तरह समझो । शास्त्र, युक्ति और तर्क से जानो । जानने की जितनी भी विधायें हैं, सबसे जानो । इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ।

जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति न होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढाई ।

इसलिए जानना आवश्यक है । शास्त्र से जानो, युक्ति से जानो, तर्क से जानो ।

विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् । (श्रीभागवतजी - १०/२४/६)

जान के कर्म करने पर जल्दी सिद्धि मिल जाती है और अनजान होकर करने पर जल्दी सिद्धि नहीं होगी तथा सिद्धि नहीं भी होगी । इसलिए हर बात को जानना आवश्यक है ।

यह इन्द्र यज्ञ कार्तिक मास को अमावस्या के दिन किया गया था । आचार्यों के मतानुसार अमावस्या के दिन तो भगवान् ने इन्द्र का यज्ञ भग्न किया अर्थात् इन्द्र यज्ञ बन्द करवा दिया तथा प्रतिपदा के दिन गिरिराजजी का पूजन करवाया एवं दूज (द्वितीया) के दिन भण्डारा करवाया । तृतीया (तीज) से नवमी तक गोविन्द ने गिरिराजजी को धारण किया । सात दिन तक प्रभु ने गिरिराज धारण करने की लीला की । प्रलय की वर्षा करते-करते नवमी के दिन इन्द्र हार गये । दशमी के दिन ब्रजवासी आपस में आश्चर्य की बात करने लगे कि सात वर्ष के इस बालक ने इतना बड़ा पर्वत कैसे उठा लिया ? एकादशी के दिन इन्द्र फिर से आये, गोविन्द से अपराध हेतु क्षमा माँगी और उनका अभिषेक किया । इसी दिन भगवान् का नाम गोविन्द पड़ा । द्वादशी को भगवान् ने वरुण लोक गमन किया तथा पूर्णिमा के दिन वैकुण्ठ लोक गमन किया । पन्द्रह दिनों में इतनी लीलायें हुई हैं ।

गिरिराज लीला आरम्भ हो रही है तो हमें यह समझना चाहिए कि गिरिराजजी वृन्दावन में ही हैं । स्कन्द पुराण से आचार्यों ने इसका

प्रमाण भी दिया है । आचार्यों ने प्रमाण इसलिए दिया है ताकि हम संसारी जीवों का विश्वास पुष्ट हो जाए, अन्यथा आचार्यगण तो सिद्धमूर्ति हैं, वे स्वयं अपने आप में प्रमाण हैं किन्तु वे जानबूझकर शास्त्रों को सम्मान देने के लिए उनसे प्रमाण देते हैं । आचार्यगण तो अत्यन्त श्रद्धालु, अत्यधिक आस्तिक हैं किन्तु अपने से बड़ों का नाम लेकर चलना चाहिए, यह एक शिष्ट परम्परा है । जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण लिखी, क्यों लिखी, उसमें उन्होंने बताया कि सबसे पहले महादेवजी ने पार्वतीजी को रामायण सुनाई, याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज मुनि को सुनाई तथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी को सुनायी । इस तरह उन्होंने सबके नाम क्यों बताये, सम्मान के लिए उन्होंने ऐसा किया । यह एक शिष्ट परम्परा मानी गयी है ।

गिरिराजजी के बारे में स्कन्द पुराण का प्रमाण है –

अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरि ।

अरे, वृन्दावन ही सुन्दर है, जहाँ सुन्दर गोवर्धन पर्वत है ।
जीवगोस्वामीजी भी लिखते हैं –

श्रीवृन्दावन भूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि सुगन्धिकादयोबहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।

नन्दीश्वर पर्वत (नन्द गाँव), अष्टकूट पर्वत (अष्ट महासखियों के पर्वत), वरसानु (बरसाना), धवल गिरि, सौगन्धिक पर्वत आदि – ये सब वृन्दावन में ही हैं ।

अस्तु, जब नन्दबाबा से गोपालजी ने इन्द्रयज्ञ करने का कारण पूछा तो नन्दबाबा ने कहा –

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/८)

बेटा ! बादल इन्द्र भगवान् के ही रूप हैं । बादल साक्षात् इन्द्र हैं, बादलों के अधिष्ठातृ देव भी इन्द्र हैं । इन्द्र ही बादल बनकर उड़ते हैं । वे समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाला व जीवन दान करने वाला जल बरसाते हैं । हम लोग कृतज्ञता के कारण यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना करते हैं ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – केशव भगवान् ने नन्दबाबा की बात सुनकर इन्द्र को क्रोध दिलाने के लिए अपने पिता नन्दबाबा से कहा – (यहाँ भगवान् कर्म की स्थापना कर रहे हैं)

श्रीभगवान् ने कहा –

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/१३)

जीव अपने कर्म के अनुसार ही पैदा होता है तथा कर्म से ही मर जाता है । यदि कोई ईश्वर है भी तो वह कर्म के अनुसार ही फल देगा । बेचारे इन्द्र की इसमें क्या प्रभुता है ?

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/१६)

मनुष्य अपने स्वभाव के अधीन है । इसे समझो, स्वभाव को बदल दो तो माया से मुक्त हो जाओगे । स्वभाव ही हम लोग नहीं बदल पाते हैं । हमारा सबसे बड़ा शत्रु हमारा स्वभाव ही है । हम लोग दूसरे को शत्रु मानते हैं । घर में भाई, बहन, सौत, माँ-बाप आदि एक दूसरे से चिढ़ते हैं । नहीं, शत्रु तो हमारा स्वभाव ही है । हमें अपने शत्रु की पहचान नहीं है ।

शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/१७)

कर्म ही शत्रु, मित्र और उदासीन है । कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर है ।

इस प्रकार कर्म के महत्त्व को बताकर फिर श्रीकृष्ण ने कहा – हम लोग तो वैश्य हैं ।

'वैश्यस्तु वार्तया जीवेत्' (श्रीभागवतजी - १०/२४/२०)

वैश्य व्यापार आदि से जीविका चलाता है ।

हमारा धर्म है – **कृषिवाणिज्यगोरक्षा** – (श्रीभागवतजी - १०/२४/२१) कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा ।

नन्दबाबा को वैश्य क्यों कहा गया है, इसलिए कहा गया क्योंकि देवमीढ़ की दो रानियाँ थीं । उनकी वैश्य पत्नी से परजन्यजी हुए और परजन्य से नन्दबाबा हुए । श्रीकृष्ण की परदादी और नन्दबाबा की दादी वैश्यानी थीं ।

यहाँ श्रीकृष्ण ने अपने को स्पष्ट नन्दात्मज अर्थात् नन्दबाबा का पुत्र बताया है । श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी परदादी वैश्य स्त्री थीं, इसलिये हम लोग वैश्य हैं और गोपालन करना ही हमारा धर्म है । यहाँ ब्रज की महिमा में श्रीकृष्ण एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहते हैं –

न नः पुरोजनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२४/२४)

'पिताजी ! न हम लोगों के जनपद है, न नगर है और न ही गाँव और घर हैं । हम लोग तो वनवासी हैं । वन और पहाड़ ही हमारे निवास स्थान हैं ।'

(इसका अभिप्राय यह है कि ब्रज में पहले पर्वत एवं वन (लता-वृक्ष) ही थे, कृषि आदि नहीं थी । कृषि तो पीछे होने लगी है । कृष्ण के समय ब्रज में केवल वन और लता-वृक्ष ही थे, इसीलिए ब्रजवासी

गो-पालन ही करते थे । खेती आदि तब नहीं होती थी । नगर और ग्राम आदि भी नहीं थे ।)

श्रीकृष्ण ने कहा – 'पिताजी ! इसीलिए हम लोगों को सबसे पहले गिरिराज गोवर्धन का पूजन करना चाहिए ।

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२४/२६)

हमें ब्रज का सारा दूध एकत्र करना चाहिए । अनेक प्रकार के पकवान – खीर, हलवा, पूआ और पूड़ी आदि बनाने चाहिए । तीन दिन तक दूध रखा जाये ।(तब कोई ऐसी विधि थी कि दूध फटता नहीं था)

चाण्डाल, पतित, कुत्ते तक को यथायोग्य वस्तुएँ देकर सबका सम्मान करो । सबको खिलाओ क्योंकि सबमें प्रभु हैं ।'

यह वैष्णव धर्म है । वैष्णव धर्म के अनुसार सब जीवों के हृदय में भगवान् हैं ।

ब्रज में परम्परा है कि सभी को भोजन कराया जाता है । ऐसी परम्परा अन्य देशों में नहीं है । अन्य देशों में तो केवल ब्राह्मण को ही भोजन कराया जाता है । पूरब में पंगत केवल ब्राह्मणों को करायी जाती है । गिरिराज पूजन में भगवान् ने सभी को भोजन कराने की आज्ञा दी ।

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/२८)

इसीलिए ब्रज के गाँवों में सार्वजनिक पंगत (झरा पंगत) होती है । सभी जाति वालों को भोजन कराया जाता है ।

भगवान् ने कहा कि चाण्डाल, कुत्ता पर्यन्त सबको खिलाया जाए, गायों को चारा दिया जाये और फिर गिरिराजजी को भोग लगाया

जाये । ऐसा यज्ञ गो, ब्राह्मण और गिरिराजजी को तो प्रिय होगा ही, साथ ही मुझे तो विशेष प्रिय है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की बात सुनकर नन्दबाबा आदि सभी गोप बहुत प्रसन्न हुए और गिरिराज पूजन की बात सभी ने स्वीकार कर ली । कार्तिक प्रतिपदा को शुक्ल पक्ष में गिरिराजजी का पूजन किया गया ।

गोधनानि पुरस्कृत्य गिरि चक्रुः प्रदक्षिणम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/२४/३३)

इसके बाद सभी ने गायों को आगे करके गिरिराजजी की प्रदक्षिणा की । गिरिराजजी की प्रधान पूजा उनकी प्रदक्षिणा है ।

बोलो गिरिराज महाराज की जय ।

इस प्रकार सभी ब्रजवासियों ने गिरिराजजी की पूजा की । ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया । गोपियों ने श्रीकृष्ण के पराक्रम का गान करते हुए गिरिराजजी की परिक्रमा की । भगवान् श्रीकृष्ण गोपों को विश्वास दिलाने के लिए एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये तथा बोले – 'मैं गिरिराज हूँ ।' वे कहने लगे – 'जो मेरी पूजा नहीं करता है, उसे मैं ही काल रूप से नष्ट कर देता हूँ ।'

गिरिराजजी का पूजन करने के लिए महादेवजी भी आये । गर्ग संहिता में वर्णन है कि उनके साथ पार्वतीजी भी आयी थीं । महादेवजी ने भी गिरिराज महाराज को भोग लगाया । गर्ग संहिता में लिखा है –

धत्तूरभंगाविषपानविह्वलो हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः ।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम् ॥

(श्रीगर्गसंहिता, गिरिराजखण्ड २/१४)

यहाँ धत्तूर भंगा का वर्णन क्यों किया गया है, इसलिए किया गया है क्योंकि इसमें कुछ रहस्य है । महादेवजी अपने साथ माजूम की

टिकिया लाये । भांग को खोया के साथ मिलाकर माजूम की टिकिया बनायी जाती है और किसी को उसे खिला दिया जाये तो वह खाता ही रहेगा, उसका पेट ही नहीं भरेगा । महादेवजी बोले कि आज ब्रज में चलकर इस माजूम वाली भांग का चमत्कार वहाँ दिखाऊँगा । इसीलिए गर्गसंहिता में लिखा है – 'धत्तूर भंगा विषपान विह्वलो' महादेवजी खूब भांग छान घोटकर आये और माजूम की टिकिया लाये । उन्होंने और पार्वतीजी ने मिलकर बनाई थी कि चलो, आज गिरिराज महाराज को इसका भोग लगायेंगे, जिससे कि प्रभु इसे अच्छी तरह पायें । जब गिरिराजजी साक्षात् रूप से प्रकट हुए और बोले – 'शैलोऽस्मीति' – 'मैं पर्वत हूँ ।' तब महादेवजी उनके पास पहुँच गये और बोले – 'प्रभो ! इस माजूम की टिकिया का भोग लगा लीजिये ।' जब गिरिराजजी ने उसका भोग लगा लिया तब उन्हें अच्छी तरह भांग का नशा चढ़ गया और फिर उन्होंने ब्रजवासियों के बनाये पकवानों को माँग-माँगकर खूब खाया । हरिवंश पुराण में उनके विशाल भाषण का वर्णन है । गिरिराज बाबा ने बहुत उपदेश दिया ।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ब्रजवासियों ने गिरिराजजी का पूजन किया ।

अध्याय – २५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब इन्द्र को पता लगा कि मेरी पूजा बन्द कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपों पर बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने प्रलय करने वाले सांवर्तक मेघों को ब्रज को नष्ट करने की आज्ञा दी । सांवर्तक मेघ केवल प्रलय के समय ही वर्षा करते हैं । उस समय भीषण वेग से वायु भी चलती है । उसे भी सांवर्तक कहते हैं । प्रलय की अग्नि को भी सांवर्तक कहते हैं । प्रलय से सम्बंधित सभी चीजों को सांवर्तक कहा जाता है । इसका मतलब क्या है ? महाप्रभु वल्लभाचार्यजी सुबोधिनी में लिखते हैं –

'सङ्घातो भवति सम्वर्त्तकः'

संघात रूप से सभी चीजें चलती हैं । इसीलिए ब्रजवासी गाते हैं –

इन्दर कोप कियो ब्रज ऊपर ।
धारा बरस्यो जैसे मूसर ।

प्रलय के समय होने वाली सांवर्तक नामक वर्षा ही मूसर है ।

जय जय ब्रज की लाज बचैया,
जय जय गोवर्धन उठवैया ।
जय जय राधा रमण कन्हैया,
जय जय गोवर्धन उठवैया ।

इन्द्र ने सांवर्तक नामक मेघों को आज्ञा देते हुए कहा – 'अरे ! एक साधारण मनुष्य कृष्ण के कारण इन ब्रजवासियों ने मेरा अपराध कर दिया । यह कृष्ण बहुत वाचाल (अधिक बोलने वाला) है, नासमझ है, मूर्ख है । इसमें बड़ी ऐंठ है । यह अपने को बड़ा पंडित मानता है । इसलिए प्रलय के बादलो ! तुम लोग जाओ और सारे ब्रज को नष्ट कर दो । ब्रज को जल से ऐसा डुबा दो कि इसका कोई चिन्ह भी न बचे कि कभी ब्रज नाम का कोई स्थान था ।

धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत संक्षयम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/२५/६)

धुनुत – धुन दो, नयत संक्षयम् – क्षय का अर्थ है नाश और संक्षय का अर्थ है कि ऐसा नाश करो कि ब्रज की राख तक न मिले, धूल तक न मिले । तुम्हारी सहायता के लिए मैं महाशक्तिशाली उनचास मरुद्गणों को भेजता हूँ तथा मैं स्वयं भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर नन्द के गोष्ठ को नष्ट करने के लिए तुम्हारे पीछे आता हूँ ।'

इन्द्र की आज्ञा से प्रलय के मेघ चले । बादलों के बरसने से पहले बिजली चमकती है । चारों ओर भयानक बिजली इस प्रकार चमकने लगी कि लोगों के नेत्र नहीं खुल पा रहे थे । सांवर्तक मेघ भीषण गर्जना करने लगे । हवा इतनी तेजी से चलने लगी कि ऐसा प्रतीत होता कि सारी धरती को ही उड़ा ले जाएगी । सबसे पहले आसमान से बड़े-बड़े ओले गिरने लगे, जिससे कि उसी की चोट से मनुष्य मर जाये । इसके बाद वर्षा होना आरम्भ हुआ । सूखे पेड़ के मोटे तने के समान मोटी-मोटी धाराएँ गिरने लगीं । सारे पशु ठण्ड से काँपने लगे । ब्रज के सभी गोप-गोपियाँ अपने बच्चों को अपने शरीर के नीचे छिपाते और काँपते हुए श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे और उनसे बोले –

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपितादृ भक्तवत्सल ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२५/१३)

'हे कृष्ण कन्हैया ! हमारी रक्षा करो ।' भगवान् ने देखा कि ब्रजवासी वर्षा और ओलों की मार से पीड़ित हो रहे हैं । वे समझ गये कि यह सब इन्द्र की लीला है । भगवान् की प्रतिज्ञा है वाल्मीकि रामायण में –

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

(वाल्मीकि रामायण)

इसे आचार्यों ने अपनी टीकाओं में स्थान-स्थान पर बहुत अधिक लिखा है । इस श्लोक का अर्थ है - भगवान् कहते हैं – 'जो केवल एक बार मेरी शरण में आकर अपने मुख से कहता है – 'मैं तुम्हारा हूँ', उसे मैं समस्त प्राणियों से अभय कर देता हूँ – यह मेरा व्रत है ।' वाल्मीकि रामायण में यह रामजी की प्रतिज्ञा है और भागवत में –

तस्मात् मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२५/१८)

यह कृष्ण की प्रतिज्ञा है कि मैं अपने शरणागत की रक्षा करता हूँ ।

सुबोधिनी में वल्लभाचार्यजी भगवान् के व्रत के बारे में लिखते हैं कि भगवान् की प्रतिज्ञा सब जगह है । श्रीगीताजी '९/३१' में भी उन्होंने कहा है –

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।

मेरे भक्त का नाश नहीं होता है । इस प्रकार ब्रजवासियों की रक्षा का प्रण लेकर भगवान् श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में एक ही हाथ से गिरिराज गोवर्द्धन को उखाड़ कर धारण कर लिया जैसे बालक बरसाती छत्ता (कुकुरमुत्ता) को उखाड़कर अपने हाथ पर रख लेता है । कोई सोचे कि कृष्ण को बड़ा परिश्रम हुआ होगा तो ऐसा नहीं है । उन्होंने बरसाती छत्ते की तरह उसे उखाड़कर अपने हाथ पर रख लिया । इसके बाद भगवान् ने कहा – 'हे मैया, हे पिताजी और ब्रजवासियो ! तुम लोग इस पर्वत के गड्ढे (गिरिगर्त) में अपनी गायों और सब सामग्रियों के साथ घुसकर आराम से बैठ जाओ । तुम लोग इस बात का भय मत करना कि यह पर्वत मेरे हाथ से गिर पड़ेगा ।'

हरिवंश पुराण में ऐसा उल्लेख है कि कुछ ब्रजवासियों ने इस सम्बन्ध में शंका की तो कृष्ण ने कहा –

शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ।
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ।

'मैंने अपनी योगमाया से गिरिराज के नीचे की धरती इतनी बढ़ा ली है कि तीनों लोक भी यदि गिरिराजजी के नीचे आ जाएँ तो वे भी इसके भीतर समा जायेंगे। ब्रज तो छोटी चीज है।'

श्रीकृष्ण के इस प्रकार आश्वासन देने पर सभी ब्रजवासी अपने गोधन, छकड़ों, पुरोहितों और सेवकों के साथ गोवर्धन के गड्ढे के भीतर आ गये।

प्रायः लोगों के मन में ऐसी शंका होती है कि जब बादलों के द्वारा बड़े-बड़े ओले बरसाये जा रहे थे तो कोई घायल हुआ कि नहीं। इतने बड़े ब्रज चौरासी कोस से प्रलयंकारी वर्षा के बीच में ब्रजवासी गिरिराजजी के गड्ढे के भीतर भीगते हुए कैसे घुसे होंगे, सारी व्यवस्था कैसे हुई होगी तो इसका उत्तर देते हुए श्रीजीव गोस्वामीजी ने लिखा है –

बहिर्जलपतनागमननिवारणादिसमाधानशतमपि
लीलाशक्त्यानुकूल्येनैव ज्ञेयम्।

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

वर्षा होते ही इतने सारे ब्रजवासियों का एक साथ गिरिराजजी के भीतर घुसने जैसा असम्भव कार्य और अन्य भी बहुत से आश्चर्यजनक कार्य भगवान् की लीला शक्ति के प्रभाव से हुए। योगमाया भगवान् की लीला शक्ति है, वह सभी कार्यों को चमत्कारिक ढंग से स्वाभाविक रूप से कर देती है।

अन्य महापुरुषों ने भी अन्य प्रमाण दिए हैं। जब गिरिराज उठाने के बाद भगवान् ने देखा कि वर्षा का जल नीचे से बहता हुआ गिरिराज के गड्ढे के भीतर आ रहा है तब भगवान् ने अपने मन के द्वारा ही सुदर्शन चक्र तथा शेष नाग को आदेश दिया। उसी समय करोड़ों सूर्यों के समान सुदर्शनजी गिरिराजजी के ऊपर विराजित हो गये। उनके असह्य तेज

के प्रभाव से वर्षा की एक बूँद भी नीचे नहीं आ पायी तथा शेषनागजी गिरिराजजी के चारों ओर कुण्डली बनाकर बैठ गये जैसे पेड़ के चारों ओर मेड़ बनाई जाती है । उनके बैठने से नीचे बहता हुआ पानी गिरिराजजी के गर्त (गड्ढे) में बिलकुल भी नहीं आ पाया । अब तो वर्षा का जल न तो ऊपर से आ पा रहा था और न ही नीचे से बहकर आ पा रहा था । सभी ब्रजवासी आनन्द के साथ गिरिराज जी के नीचे बैठे हुए थे ।

बोलो गिरिराज महाराज की जय ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भूख-प्यास की पीड़ा तथा अपने विश्राम आदि को छोड़कर सात दिन तक लगातार गिरिराजजी को उठाये रखा । श्रीकृष्ण का ऐसा प्रभाव देखकर इन्द्र भी अत्यन्त आश्चर्यचकित रह गये । ब्रज को नष्ट करने का उनका संकल्प भ्रष्ट हो गया । अपनी सारी ताकत तो उन्होंने लगा ली थी । पहलवान सहज में परास्त नहीं होता है । जब उसके लड़ने की ताकत समाप्त हो जाती है तब स्वाभाविक ही अपने हाथ-पाँव फैला देता है । इसी प्रकार अपनी पूरी शक्ति लगाने पर भी गिरिराज गोवर्धन और गिरधर गोपाल के आगे इन्द्र पस्त पड़ गया, उसका संकल्प भ्रष्ट हो गया और सारा घमण्ड चकनाचूर हो गया । उसने अपने बादलों को वर्षा करने से रोक दिया । ब्रजवासी इस कथा को और रोचक बनाते हुए कहते हैं कि जब इन्द्र पानी बरसा रहा था तो ग्वालबाल गिरिराज जी के नीचे खड़े हुए इन्द्र को अंगूठा दिखा रहे थे और कह रहे थे – 'ले-ले ।' वे सींग दिखा रहे थे, इन्द्र की हँसी उड़ा रहे थे । इससे खीझकर इन्द्र और जोर से पानी बरसाता था । सात दिनों तक ग्वालबाल इन्द्र को सींग दिखाकर चिढ़ाते रहे और इन्द्र खिसियाता रहा ।

एक घटना है । परम पूज्य संत श्रीप्रियाशरणबाबामहाराज के नित्य धाम गमन होने पर गिरिराजजी में उनकी समाधि के पास पंगत

का आयोजन किया गया था । पंगत के समय ही अचानक आसमान में बादल आ गये और वर्षा होने लगी । एक ब्रजवासी, जो प्रियाशरणबाबामहाराज का प्रेमी भक्त था, वह बोला – 'अरे, यह तो इन्द्र की बदमाशी है, वह भला बाबा की पंगत में पानी कैसे बरसा सकता है, सब लोग लगाओ इन्द्र को जूता ।' किसी ने जूता नहीं लगाया तो वह बोला – 'अच्छा, मैं लगाता हूँ ।' ऐसा कहकर इन्द्र का नाम धरती पर लिखकर उसने खूब जूते लगाये । जूता लगने की देर नहीं थी कि पानी बरसना बिलकुल बन्द हो गया । सभी लोगों ने यह चमत्कार देखा और फिर आनन्द से सभी भक्तों ने प्रसादपाया । यह श्रीप्रियाशरणबाबामहाराज के प्रति सच्ची निष्ठा का चमत्कार था । उन्होंने गिरिराजजी से ही अपना ब्रजवास और भजनपरायण जीवन आरम्भ किया था और वहीं से उन्होंने अंतिम समय नित्य धाम में प्रवेश किया । जो ब्रजवासी बाबा महाराज का प्रेमी था, उसने उन संत के प्रति निष्ठा के बल पर इन्द्र को जूता लगाया और वर्षा बन्द हो गयी । इससे पता चलता है कि ब्रजवासियों के अन्दर जन्मजात रति होती है और उनकी धारणा पक्की होती है ।

इधर जब इन्द्र की वर्षा बन्द हो गयी तो भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों से कहा कि अब आँधी-पानी बन्द हो गया है । सभी लोग गायों और बच्चों के साथ बाहर निकल चलो । गिरधर गोपाल ने गिरिराजजी को उनके स्थान पर ही रख दिया । श्रीकृष्ण की यह लीला देखकर ब्रजवासियों का हृदय कृष्ण के प्रति प्रेम से भर गया । कोई उन्हें हृदय से लगाने और कोई चूमने लगा । सभी उन्हें आशीर्वाद देने लगे । यशोदा मैया, रोहिणी जी तथा नन्दबाबा श्रीकृष्ण को हृदय से लगाकर आशीर्वाद देने लगे । इसके बाद श्रीकृष्ण-बलराम सहित सभी ब्रजवासी आनन्द के साथ ब्रज की ओर चल दिए ।

अध्याय – २६

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – श्रीकृष्ण की इस अत्यधिक पराक्रम भरी गिरिराज लीला से आश्चर्यचकित होकर ब्रज के गोप आपस में इस प्रकार कहने लगे – इस बालक के कर्म तो बड़े ही अलौकिक हैं । जब यह केवल छः दिन का ही था तब इसने पूतना के प्राण हर लिए, तीन महीने का होने पर इसने विशाल छकड़ा उलटकर शकटासुर को मार दिया, इसके कुछ समय बाद इसने तृणावर्त दैत्य का वध कर दिया । यशोदाजी द्वारा ऊखल से बाँधने पर इसने विशाल अर्जुन वृक्षों को उखाड़ डाला । इसके बाद इसने वत्सासुर, बकासुर, अघासुर आदि को मारा । बलरामजी के साथ मिलकर धेनुकासुर का वध किया तथा प्रलम्बासुर को बलरामजी के द्वारा मरवा दिया और दो बार हम ब्रजवासियों को दावानल से बचाया । इसी ने अत्यन्त विषैले कालिय नाग का दमन करके उसे यमुनाजी के बाहर निकाल दिया और अब सात वर्ष का होने पर इसने एक हाथ से ही गिरिराज पर्वत को धारण कर लिया । हे नन्दबाबा ! हम लोगों को यह शंका हो रही है कि यह बालक कौन है और इसमें ऐसा अलौकिक प्रभाव कैसे है ?

अब नन्दबाबा ने यहाँ जो कुछ भी कृष्ण के बारे में गर्गाचार्य जी का कथन बताया, इसमें '१०/२६/१६' से '१०/१६/२२' तक वही श्लोक हैं, जो गर्गाचार्यजी ने श्रीकृष्ण के नामकरण संस्कार के समय कहे थे ।

नन्दबाबा बोले कि गर्गाचार्यजी इस बालक के बारे में पहले ही बता गये थे कि यह बालक प्रत्येक युग में शरीर ग्रहण करता है । विभिन्न युगों में इसके सफेद, लाल,और पीले रंग थे । इस बार यह कृष्ण वर्ण का हुआ है । इसके बहुत से नाम हैं तथा उन्होंने इसे नारायण के समान बताया था ।

जब ब्रजवासियों ने नन्दबाबा के मुख से गर्ग जी की यह बात सुनी तब उनकी शंका दूर हुई । विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रज के गोपों ने

श्रीकृष्ण के बारे में पराशर मुनि से पूछा था कि इस बालक में इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी तो पराशर मुनि ने उन्हें श्रीकृष्ण महिमा के बारे में बताया । श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि ब्रजवासियों को मेरे ऐश्वर्य का ज्ञान हो जायेगा तो इनका मेरे प्रति माधुर्य रस से युक्त प्रेम समाप्त हो जायेगा । अतः श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों से कहा – 'अरे , ये ऋषि-मुनि जो कुछ कहते हैं, सब झूठ है । इनकी बात तुम लोग मत मानना । मैं तो यशोदा मैया और नन्दबाबा का पुत्र हूँ, तुम लोगों का बान्धव हूँ ।'

वस्तुतः गिरिराजजी तो नित्य लीला में नित्य धाम के परिकर हैं । गर्ग संहिता में वर्णन है कि जब देवताओं की प्रार्थना से श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर अवतार लेने का निश्चय किया तो सर्वप्रथम गोलोक धाम में उन्होंने श्रीराधारानी से प्रार्थना की कि आप भी मेरे साथ पृथ्वी पर चलिए । श्रीजी ने कहा – 'वृन्दावन, गोवर्धन और यमुना के बिना मुझे सुख नहीं मिलता । जहाँ ये हैं, वहीं मुझे सुख मिलता है ।' तब श्रीजी की कृपा से नित्य वृन्दावन और नित्य गोवर्धन पृथ्वी पर प्रकट हुए । शाल्मलि द्वीप में द्रोणाचल पर्वत की पत्नी से गिरिराजजी उत्पन्न हुए । उनके जन्मोत्सव पर हिमालय आदि बड़े-बड़े पर्वत गये और गोवर्धन जी की पूजा की । एक बार काशी से पुलस्त्य मुनि द्रोणाचल पर्वत से उनके पुत्र गोवर्धन को यह कहकर माँग लाये कि काशी में कोई पर्वत नहीं है, इसे मैं वहाँ स्थापित करके तपस्या करूँगा । पुलस्त्यजी अपने हाथों में गिरिराजजी को धारण करके काशी की ओर चले तो रास्ते में ब्रजभूमि पड़ी । ब्रज को देखकर गोवर्धन ने सोचा कि यह तो मेरे प्रभु की लीला भूमि आ गयी, अतः वहीं निवास करने के विचार से उन्होंने अपना वजन बहुत अधिक बढ़ा दिया तब मुनि ने उन्हें यहीं रख दिया । जब मुनि उन्हें उठाने चले तो गिरिराज जी नहीं उठे तब मुनि ने उन्हें तिल-तिल घटने का शाप दे दिया । इसीलिए गिरिराजजी प्रतिदिन घटते जा रहे हैं । एक समय ऐसा आएगा जब ये पृथ्वी से लुप्त हो जायेंगे ।

इनके बारे में एक कथा और है कि राम-रावण के युद्ध के समय सेतुबन्धन के लिए हनुमानजी गोवर्धन को लेकर आ रहे थे, उसी समय मार्ग में आकाशवाणी हुई कि सेतु का निर्माण हो चुका, अब पर्वत लाने की आवश्यकता नहीं है । हनुमान जी ने गिरिराज जी को वहीं रख दिया तब ये हनुमान जी से बोले कि आप मुझे ले आये किन्तु मुझे प्रभु का दर्शन करने को नहीं मिला । हनुमान जी राम जी से गिरिराज जी के बारे में पूछने गये तो रामजी ने संदेश भिजवाया कि मैं द्वापर में कृष्ण रूप से तुम्हें सात दिनों तक अपने हाथों पर धारण करूँगा और तुम्हारी तलहटी में मधुर लीलायें करूँगा ।

अध्याय – २७

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण की गोवर्धन लीला के पश्चात् उनके पास गोलोक से सुरभि गाय (कामधेनु) और स्वर्ग से इन्द्र आये ।

अब अध्याय – २७ के प्रथम श्लोक में भागवतजी में गोलोक का उल्लेख किया गया है – **गोलोकादाव्रजत्** ।

हरिवंश पुराण के अनुसार ब्रह्मलोक आदि समस्त लोकों से ऊपर गोलोक है परन्तु जीव गोस्वामीजी का मत इससे अलग है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि प्राकृत जगत में भी भगवान् ने वैकुण्ठ को प्रकट किया है । इसी प्रकार जीव गोस्वामीजी के अनुसार प्राकृत जगत में भी भगवान् ने गोलोक स्थापित किया है, जहाँ बड़े-बड़े देवता और सिद्ध ऋषि-मुनि जाते हैं । अप्राकृत गोलोक की स्थिति तो इस ब्रह्माण्ड से अतीत, सब भगवद्धामों से भी ऊपर है । ये सब बहुत ही सूक्ष्म बातें हैं ।

अस्तु, भगवान् का अपराध करने के कारण इन्द्र बहुत लज्जित थे । इसलिए एकान्त स्थान में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।

इन्द्र ने कहा – 'प्रभो ! आप धर्म की रक्षा के लिए खलों को दण्ड देते हैं ।'

इन्द्र ने स्तुति करने के साथ ही भगवान् से अपने अपराध के लिए क्षमा भी माँगी । इन्द्र की स्तुति सुनकर भगवान् ने उनसे कहा – 'ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति के मद से जीव अंधा हो जाता है और वह यह नहीं देखता है कि मैं काल रूप परमेश्वर हाथ में दण्ड लेकर उसके सिर पर सवार हूँ ।

तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/२७/१६)

जिस पर मैं कृपा करता हूँ, उसकी सम्पत्ति को छीन लेता हूँ ।'

यह श्रीकृष्ण का स्वरूप है । इसके बाद सुरभि गाय ने आकर भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना की और उनसे कहा – 'आप ही गायों के इन्द्र हैं ।' ऐसा कहकर सुरभि ने अपने दूध से श्याम सुन्दर का अभिषेक किया । इन्द्र ने ऐरावत की सूँड के द्वारा लाये हुए आकाश गंगा के जल से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किया तथा उनका नाम गोविन्द रखा । तभी से गिरिराजजी की तलहटी में सुरभि कुण्ड, ऐरावत कुण्ड और गोविन्द कुण्ड स्थित हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक होने पर पृथ्वी पर बिना जोते-बोये ही अनेकों प्रकार की औषधियाँ और अन्न पैदा हो गये । पर्वतों में छिपे हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर निकल आये ।

अध्याय – २८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार नन्दबाबा ने कार्तिक शुक्ल एकादशी का उपवास किया और भगवान् की पूजा की तथा उसी दिन

रात में द्वादशी लगने पर स्नान करने के लिए यमुनाजी में चले गये । जब उन्होंने यमुना जल में प्रवेश किया तो वरुण का एक दूत उन्हें पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गया । नन्दबाबा के खो जाने पर ब्रज के सभी गोप रोने लग गये और श्रीकृष्ण से बोले कि अब तुम्हीं अपने पिता को वापस ला सकते हो । भगवान् श्रीकृष्ण को पता चला कि मेरे पिताजी को वरुण का कोई सेवक ले गया है तब वे वरुण लोक पहुँचे । जब वरुण ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तब उन्होंने उनकी पूजा की और कहा कि मेरे सेवक ने अनजान में आपका अपराध किया है, आप उसे क्षमा कर दीजिये । वरुण ने भगवान् की बहुत स्तुति की । इसके बाद भगवान् अपने पिता नन्दजी को लेकर ब्रज में आ गये । नन्दबाबा ने देखा कि वरुण कितने बड़े लोकपाल हैं और उन्होंने तथा वरुण लोक के निवासियों ने हमारे छोटे से लाला को दण्डवत् प्रणाम किया तथा उसकी बहुत प्रकार से पूजा की तो नन्दबाबा श्रीकृष्ण को ईश्वर मानने लगे । नन्दबाबा ने ब्रज में आने पर अपने जाति भाइयों को वरुण लोक में श्रीकृष्ण के आदर सत्कार के बारे में बताया तो सभी ब्रजवासी आश्चर्यचकित हो गये और श्यामसुन्दर से बोले –

'लाला ! तुम तो भगवान् हो, अपने स्वरूप को हम लोगों से क्यों छिपाते हो ? **नः स्वगतिं** – भागवत में स्वगति शब्द है अर्थात् हे कृष्ण ! हमें अपनी गति दिखाओ अर्थात् अपना धाम दिखाओ ।'

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम । (गीताजी - १५/६)

भगवान् ने विचार किया कि इस संसार के लोग हमारे धाम को नहीं जानते हैं, सभी जीव अनेकों योनियों में घूम रहे हैं ।

(भगवान् यह सब ब्रजवासियों के बारे में नहीं सोच रहे हैं । संसार के विषयों में आसक्त मायाबद्ध जीवों के बारे में ऐसा विचार कर रहे हैं ।)

भगवान् ने विचार किया कि अपना धाम दिखाने की हम लीला करेंगे तो लोग समझ जायेंगे कि हाँ, भगवद्धाम है । यह विचार करके भगवान् ने ब्रजवासियों को अपना धाम दिखाया ।

बहुत से लोग ऐसा विचार करते हैं कि अपना धाम दिखाने के लिए भगवान् ब्रजवासियों को ब्रह्म ह्रद में ले गये, जहाँ अक्रूरजी ने भगवान् के ऐश्वर्यमय स्वरूप के दर्शन किये थे । ब्रह्म ह्रद में मग्न करके, वहाँ से उठाकर श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को अपने धाम में ले गये । कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् ने अपने वैकुण्ठ लोक का दर्शन कराया परन्तु भागवत के टीकाकार आचार्य लिखते हैं और उनका मत ठीक है । वे लिखते हैं कि भगवान् ब्रजवासियों को अपने निजी धाम श्री वृन्दावन में, अप्राकृत ब्रज में ले गये ।

अब यह कहा जाए कि वहाँ तो वे पहले से ही थे, श्रीकृष्ण की लीला ब्रज में ही हो रही थी । परन्तु आचार्य लोग लिखते हैं कि जो पूर्णतया अप्राकृत ब्रज वृन्दावन धाम था, उसका भगवान् ने ब्रजवासियों को दर्शन कराया । इस ब्रज में तो प्रकट लीला हो रही थी । यहाँ नित्य धाम प्रकट हुआ । जिस प्रकार भगवान् अवतार लेते हैं, वैसे ही उनका नित्य धाम भी अवतार लेता है । इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत में ही है ।

'लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलं स्म' (श्रीभागवतजी - २/७/३१)

यदि इसका अर्थ वैकुण्ठ से लिया जायेगा तो विरोध पड़ जायेगा । कैसे ? यह श्लोक भगवान् के अवतारों के प्रसंग में ब्रह्माजी ने कहा है । इस श्लोक में उन्होंने स्पष्ट गोकुल नाम लिया है । ब्रह्माजी कहते हैं जो कभी कुण्ठित नहीं होता, ऐसे नित्य अप्राकृत धाम गोकुल में भगवान् ब्रजवासियों को ले जायेंगे ।

इस श्लोक में इस बात को बिल्कुल खोल दिया है । श्लोक का मनमाना अर्थ नहीं करना चाहिए । आचार्यगण जो अर्थ लगाते हैं, वे

सबका समन्वय करके लगाते हैं । ब्रह्माजी ने कहा – 'लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलं स्म' – स्पष्ट यहाँ कहा गया है कि गोकुल अर्थात् नित्य गोलोक धाम ।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अपने नित्य धाम का दर्शन कराने से पहले भगवान् ने ब्रजवासियों को ब्रह्महृद में गोता क्यों लगवाया ? यह कौन सी लीला है, इसका क्या रहस्य है ? जैसा कि आगे कहा गया है ।

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।

(श्रीभागवतजी - १०/२८/१६)

पहले कृष्ण ब्रजवासियों को ब्रह्महृद में ले गये, वहाँ उन्होंने डुबकी लगायी, तब भगवान् उसमें से निकालकर उन्हें अपने लोक में ले गये ।

ये क्रिया क्यों की गयी तो इसका भाव आचार्यों ने बताया है –

प्रेमरहिताद् ब्रह्मसुखानुभवात् प्रेमसहितो वैकुण्ठसुखानुभवः श्रेष्ठस्ततोऽपिप्रेममयो गोकुलसुखानुभवः श्रेष्ठ इति सिद्धान्तो ज्ञापितः ।

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी, सारार्थदर्शिनी)

जो प्रेम रहित ब्रह्म सुख है, उससे तो वैकुण्ठ धाम श्रेष्ठ है । उससे भी आगे है भगवान् का गोकुल-ब्रजधाम, उसका उन्होंने ब्रजवासियों को दर्शन कराया । इसलिए भगवान् ने ब्रजवासियों को ब्रह्महृद में स्नान कराया । भगवान् के नित्य धाम को देखकर इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है –

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२८/१७)

वहाँ नन्द आदि गोपों ने कृष्ण रूप को देखा । भगवान् के नित्य धाम का दर्शन किया और फिर प्रकट प्रकाश लीला में चले आये, ऐसा वैष्णव आचार्यों ने लिखा है । इस बात की संगति आचार्यों ने आगे भी बहुत लगाई है । इसी प्रसंग का अन्य पुराणों में भी वर्णन किया गया है । स्कन्द पुराण में शाण्डिल्यजी ने कहा है –

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ।

यही वह ब्रजभूमि है, जिसमें भगवान् की वास्तवी रहस्य लीला गुप्त रूप से होती रहती है । इसके नित्य और प्रकट दो भेद हैं । **लीलैवं द्विविधा** – इस प्रकार वहाँ शांडिल्य जी ने नित्य और प्रकट, ये दो भेद ब्रजभूमि के बताये हैं ।

अध्याय – २९

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का वाङ्मय स्वरूप है, जिसमें रासपंचाध्यायी भागवत का प्राण है । श्रीमद्भागवत कथा कहते समय रास पंचाध्यायी को छोड़ना नहीं चाहिए । कुछ लोग रास लीला को बिलकुल आध्यात्मिक कर देते हैं, उससे लीला गौण हो जाती है, उसका रस चला जाता है । कुछ लोग तो घबराकर रास लीला को छोड़ ही देते हैं । श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीमद्भागवत में रास लीला की कथा को छोड़ना तो भागवत को प्राणहीन करने के समान है क्योंकि रास लीला के पाँच अध्याय भागवत के पाँच प्राण हैं । श्रीकृष्ण लीलायें तो अनन्त हैं किन्तु भक्त महापुरुषों का कहना है कि वे सब अन्य लीलायें उपासक के काम की नहीं हैं, जो ब्रज में उपासना करने आया है । आचार्यों का कहना है कि श्रीकृष्ण की लीलाओं में जो माधुर्य रस से युक्त लीला है, वही उपासक के काम की है । इसलिए देखा जाये तो रास पंचाध्यायी में वर्णित रास लीला की कथा उपासक के लिए सबसे अधिक उपयोगी है,

इसे छोड़ना नहीं चाहिए । इसे छोड़ना तो उपासना का गला घोंटना है । अतः रास पंचाध्यायी की कथा को समझना चाहिए और इसीलिए श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था । रास पंचाध्यायी पर जितने भी आचार्यों ने टीका लिखी है, उन्होंने उसके अनेक लक्ष्य बताये हैं । श्रीधर स्वामी तथा अन्य कुछ आचार्यों ने लिखा कि रास लीला के द्वारा भगवान् ने काम पर विजय की । यह काम विजय लीला है । अन्य आचार्यों ने इसे काम विजय लीला नहीं बताया बल्कि विशिष्ट रस की अनुभूति या आस्वाद अथवा विशिष्ट रस का प्रवाह बताया है । श्रीधरस्वामीजी ने रास लीला के बारे में लिखा है –

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः ॥

कामदेव ने एक बार अपने मन में विचार किया कि मैंने ब्रह्माजी को जीत लिया । महादेवजी जब भगवान् के मोहिनी रूप को देखकर पराजित हुए तो कामदेव बड़ा प्रसन्न हुआ, यद्यपि वह काम लीला नहीं थी । मोहिनी के रूप में स्वयं भगवान् ही थे किन्तु फिर भी कामदेव बड़ा प्रसन्न हुआ । इसीलिए श्रीधर स्वामी ने यहाँ ब्रह्मा के साथ आदि शब्द लिखा – ब्रह्मादि । ब्रह्मा आदि देवों पर विजय प्राप्त करने से कामदेव को बड़ा अभिमान हो गया । इसलिए उस कन्दर्प के दर्प को नष्ट करने के लिए श्यामसुन्दर श्रीपति राधारमण राधाकान्त, जो गोपियों के रासमण्डल के मण्डन अर्थात् शोभा हैं, उन्होंने रास किया ।रास लीला का प्रथम लक्ष्य तो ये है । दूसरे आचार्य श्रीधनपतिसूरि जी ने भी लिखा है –

"अहल्यायै जारः सुरपतिरभूदात्मतनयाम्
प्रजानाथोऽप्यासीदभजत गुरोरिन्दुरबलाम् ॥

इति प्रायः को वा न पदमपथे कार्यत मया
श्रमो मद् बाणानां क इह भुवनोन्मायाविधिषु" ॥

(श्रीधनपतिसूरिजी, भागवतगूढार्थदीपिका)

कामदेव कहता है कि सब लोग मेरा प्रभाव तो देखो कि गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के लिए इन्द्र की क्या हालत हुई ? स्वयं ब्रह्माजी काम मोहित होकर अपनी पुत्री के पीछे दौड़ पड़े । चन्द्रमा अपनी गुरुपत्नी के प्रति कामासक्त होकर दुराचार कर बैठा । सृष्टि में ऐसा कौन है, जिसे मैंने अपथ (कुमार्ग) पर नहीं धर पटका । मेरे बाणों का पराक्रम कौन सह सकता है ? अभी तक तो इस सृष्टि में ऐसा कोई नहीं हुआ, जो मेरे बाणों की टक्कर ले सके । ऐसा कहकर वह अपने धनुष पर टंकार किया करता कि ऐसा कोई है, जो मुझसे लड़ सके, देवता आदि कोई भी इस ब्रह्माण्ड में है । ऋषि-मुनियों को भी मैंने देख लिया ।

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य विकसत्सर्वार्थसम्पत्करीम्
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ॥
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे" ॥

ये बेचारे स्त्री को छोड़कर जंगल में जाते हैं किन्तु वहाँ भी मेरे बाणों की चोट से बच नहीं पाते । स्त्री तो मेरी मुद्रा (डाकखाने की मुहर) है । कितने ही लोग स्त्री छोड़कर बाबाजी बन जाते हैं, इसीलिए मैं उनमें कितनों के ही सिर मुण्डित कर देता हूँ, कितनों के पाँच चोटी रख देता हूँ, कुछ को नंगा डोलना पड़ता है ।

इस प्रकार जब कामदेव का घमण्ड बहुत बढ़ गया तो उसके इस गर्व को नष्ट करने के लिए भगवान् ने रास किया । कुछ आचार्यों का ऐसा मत है । कामदेव को श्रीकृष्ण ने रास लीला के द्वारा पराजित किया, यह तो ठीक है परन्तु भगवान् ने जो रास लीला की, उसका मुख्य

प्रयोजन तो कुछ और ही था । केवल काम विजय ही लक्ष्य नहीं था । इसके बारे में कुछ आचार्यों ने लिखा है –

तदवतारमुख्यतरप्रयोजनं दर्शयन् रासक्रीडां
पञ्चप्राणतुल्यपञ्चाध्याय्या वर्णयन् आदौ ।

(श्रीमत्सनातनजीवगोस्वामिकृतबृहत्तोषिणी)

कृष्णावतार का मुख्य प्रयोजन ही रास लीला थी । इसीलिए उस अवतार का मुख्य प्रयोजन भगवान् अब सिद्ध करने जा रहे हैं । रास लीला के पाँच अध्याय पञ्च प्राण के समान हैं । इसलिए रासलीला करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि जो रस बड़े-बड़े परमहंसों के लिए भी दुर्लभ था, वे भी इस रस को नहीं प्राप्त कर सके, अतः वे भी इस रस का आस्वादन कर सकें, इसलिए प्रभु ने रासलीला की थी । यही मत महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी का भी है । उन्होंने सुबोधिनी में लिखा है –

ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने ।
लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते ॥

रास रस ब्रह्मानन्द से बहुत ऊपर की वस्तु है । आत्माराम मुनियों को ब्रह्मानन्द से ऊपर उठाकर के श्रीकृष्ण के माधुर्य रस का रसास्वादन कराना ही रास लीला का लक्ष्य है । सभी आचार्यों ने इस बात को बताया कि असुरों का वध करना तो बहुत ही छोटी बात है । श्रीकुन्तीजी ने कहा है –

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥

(श्रीभागवतजी - १/८/२०)

वस्तुतः परमहंस आदि मुनियों को भी जो रस दुर्लभ है, उन्हें उसे प्रदान करने के लिए ही भगवान् ने रास रस को प्रवाहित किया । अब

इससे यह समझ में आ गया कि कोई अद्भुत रस को संसार के लोगों के समक्ष प्रवाहित करने के उद्देश्य से ही भगवान् ने रास लीला की थी । अब यह प्रश्न आता है कि भगवान् ने जो रास किया तो वह रास है क्या ? इसका उत्तर है –

'रसानां समूहः इति रासः' – रसों का जो समूह है, वही रास है ।

यदि रस का समूह रास है तो ये साहित्य में वर्णित नौ रस हैं या कोई अन्य रस हैं । ऐसा नहीं है । यद्यपि वे भी रस हैं और रास में आते हैं जैसे भयानक रस है । भगवान् ने गोपियों से कहा – **रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता** – (श्रीभागवतजी - १०/२९/१९) 'रात का समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं ।'

अतः भयानक आदि रस भी इस रास में आते हैं परन्तु रसराज अर्थात् रसों का राजा है श्रृंगार और श्रृंगार रस के जितने भी भेद हैं, उन सब रसों का एक साथ श्याम सुन्दर ने जहाँ आस्वादन किया, वही है रास । श्रृंगार रस के क्या भेद हैं तो इसमें भी स्वकीया रस है, परकीया है, नित्य विहार अथवा नित्य दाम्पत्त्य है अथवा इनके भी अवान्तर भेद हैं । स्वकीया और परकीया के भी कई अवान्तर भेद हैं अथवा कहीं-कहीं इनके मिश्रण भी दिखाए गये हैं । अतः जितने भी ये रस हैं, इन सबका समूह अथवा इनका सम्मिलित रूप ही रास है । रासलीला में ये सभी 'रस' सिद्ध होते हैं और इनका संकलित रूप ही महारास है । रास का मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि केवल नाचना-गाना ही रास है । भगवान् के महारास में नृत्य-गान भी हुआ, जल विहार भी हुआ, वन विहार भी हुआ, श्यामसुन्दर ने प्रियाजी का पुष्प श्रृंगार भी किया, रहो विहार अर्थात् एकान्तिक निकुंज लीला भी हुई । जितने भी रस हैं, उन सबका समष्टि रूप ही रास है । इन सबमें नृत्य मुख्य इसलिए है क्योंकि इसमें संगीत की पद्धति से समस्त विहार होता है । नृत्य में भी केवल नृत्य नहीं है, जैसे हम लोग समझते हैं कि रास में केवल नृत्य

होता है । नृत्य तो रास का एक आस्वाद्य रूप है, नृत्य तो एक क्रिया है । आस्वाद्य तो रस है वहाँ, इस बात का ध्यान रखना है । केवल नृत्य करना रास नहीं हो सकता । रास में नृत्य कैसा होता है, इसे भी थोड़े में समझ लो । उस नृत्य को शास्त्र में कहीं-कहीं 'हल्लीशक' नाम दिया गया है । जहाँ एक नायक होता है तथा अनेकों नर्तकियों का गण (नर्तकी गण) होता है । नायक अनेक नर्तकी गणों के साथ जो नृत्य करता है, उसे हल्लीशक कहा जाता है । आचार्यों ने रास के नृत्य का यह एक नाम बताया है परन्तु यह नाम बताकर आचार्यों ने विचार किया कि अभी भी हम पूरी तरह से नहीं बता पाए क्योंकि उस समय हल्लीशक नामक नृत्य की कोई परम्परा रही होगी और उस नृत्य परम्परा को उस समय देखकर आचार्यों ने विचार किया कि हमने समझाने के लिए ऐसा कह तो दिया किन्तु वास्तविकता तो इसमें भी नहीं है । रास का नृत्य तो इससे भी उत्तम कोटि का होता है ।

तदपि कहे बिन रहा न कोई ।

'परम तत्त्व' का यथार्थ वर्णन तो कोई नहीं कर सकता परन्तु कहे बिना रहा भी नहीं जाता है । भगवान् की उपमा संसार की वस्तुओं से नहीं दी जा सकती किन्तु उपमा देने के लिए फिर और कुछ तो है ही नहीं, इसलिए सांसारिक वस्तुओं से ही उपमा देनी पड़ती है । अतएव रास नृत्य को हल्लीशक नृत्य की तरह बताने पर भी आचार्यों ने कहा कि यह भी ठीक नहीं है क्योंकि रास नृत्य तो सबसे विलक्षण है । वह नृत्य तो स्वर्ग में भी नहीं है, फिर भला पृथ्वी पर कहाँ हो सकता है । इसका प्रमाण उन्होंने दिया है कि जिस समय श्यामसुन्दर वंशी बजाते थे या किसी राग-रागिनी का विस्तार करते थे तो वंशी की ध्वनि पूरे ब्रह्माण्ड में सब सुनते थे, ब्रह्माजी, शिवजी, सब देवगण, देवांगनाएँ, गन्धर्व आदि ।

'शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः' (श्रीभागवतजी - १०/३५/१५)

शिव एवं उनके गणों में पार्वती, गणेश आदि, इन्द्र तथा उनके गणों में गन्धर्व-अप्सराएँ आदि, ब्रह्मा के गण में सरस्वती, सनकादिक आदि सभी हो गये परन्तु ये सब वंशी की ध्वनि सुनकर भी यह नहीं जान पाते थे कि श्रीकृष्ण ने कौन सा राग गाया, कौन सा ताल गाया, ये जान नहीं पाते थे ।

'कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः'

वे जान ही नहीं पाते थे कि कौन सा राग गाया, कौन सी ताल थी, किस प्रकार का नृत्य था, कौन सी धमार गाई, कौन सी रागिनी थी ? इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत को ब्रह्मा, शिव आदि बड़े-बड़े देवगण नहीं समझ सके तो फिर रास तत्त्व को वे कहाँ से समझ सकते हैं, इसलिए रास का नृत्य-संगीत तो अनिर्वचनीय है । अनिर्वचनीय इसलिए भी है क्योंकि रास को प्राकृत समझना ही नहीं चाहिए ।

भागवत में वर्णन है कि भगवान् ने रास करने के पहले योगमाया का आश्रय लिया । योगमाया क्या है, योगमाया वह शक्ति है, जो प्राकृत धाम में सभी वस्तुओं को अप्राकृत बना देती है । भगवान् के अप्राकृत धाम की जितनी भी विभूतियाँ हैं, सब पृथ्वी पर आ जाती हैं और जो वस्तु प्राकृत दिखती है, वह भी अप्राकृत हो जाती है । इसलिए भगवद् धाम की या रास की वस्तुओं को प्राकृत वस्तुओं के शब्दों में न तो उनकी व्याख्या की जा सकती है, न ही प्राकृत शब्दों के रूप में उनको समझा जा सकता है और न ही प्राकृत राग-रागिनी की विधाओं से उसकी तुलना की जा सकती है । ब्रह्मा-शिव आदि भी श्रीकृष्ण के संगीत को नहीं समझ सके । इसीलिए आचार्यों ने कहा कि ब्रह्मलोक तक ऐसी कोई पद्धति है ही नहीं फिर पृथ्वी पर कहाँ से हो जाएगी क्योंकि हल्लीशक नृत्य में नायक एक व नायिकायें अनेक होती हैं किन्तु नायक अनेक रूप तो धारण नहीं कर सकता है जैसे रास में कृष्ण अनन्त रूप धारण कर

लेते हैं, कैसे बन गये हैं, योगमाया के आश्रय से । इसलिए रास कोई प्राकृत वस्तु तो है नहीं, फिर उसे प्राकृत शब्दों के द्वारा कैसे समझा जा सकता है ? इसीलिए श्यामसुन्दर ने उस दिव्य अप्राकृत रस को प्रकट लीला में सबके सामने प्रवाहित करने का विचार किया ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं –

भगवान् अपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/१)

रास के आरम्भ में इस प्रथम श्लोक में शुकदेवजी ने भगवान् शब्द का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि रास में सभी कुछ अप्राकृत होने वाला है । योगमाया, जो परम ऐश्वर्यमयी है, वह माधुर्य की दासी है । पहले वह आकर सारी लीला का मंच बनाती है तब अप्राकृत मंच पर अप्राकृत लीला होती है । इसलिए सबसे पहले योगमाया की आवश्यकता पड़ती है । दूसरी बात यह हुई कि बहुत सी संकलित रातें आयीं, रास एक रात को नहीं हुआ था । रास में बहुत सी रात्रियों का संकलित रूप था । ऐसे में श्यामसुन्दर ने रास करने का विचार किया तथा योगमाया का आश्रय लिया । योगमाया का आश्रय क्या है ? योगमाया के आश्रय का अभिप्राय है कि श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी की उपासना की किन्तु शंका हो सकती है कि ऐसा तो भागवत में नहीं लिखा है । भागवत में संक्षेप में यह लीला लिखी है । अन्य पुराणों में इस बात का उल्लेख है कि श्यामसुन्दर ने योगमाया का आश्रय कैसे लिया, वहाँ से इसे समझना चाहिए । ब्रह्मवैवर्त पुराण में स्पष्ट लिखा है कि रासेश्वर भगवान् ने पहले श्रीजी की पूजा की । दूसरी बात यह समझो कि योगमाया के आश्रय से सभी वस्तुएँ अप्राकृत हो गयीं । यहाँ तक कि किसी गोपी के शरीर भी प्राकृत नहीं रहे । रास का नृत्य, गान, वाद्य आदि सब अप्राकृत है ।

पद्मपुराण में लिखा है कि भगवान् ने जिन गोपियों के साथ रास किया, उन गोपियों के शरीरों को मानुषी नहीं समझना चाहिए, नहीं तो बहुत बड़ी भूल हो जाएगी । पद्म पुराण में लिखा है –

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः ।
देवकन्याश्च विप्रेन्द्र न मानुष्यः कथञ्चन ॥

गोपियाँ मानुषी नहीं थीं । नित्यसिद्धा गोपियों के अतिरिक्त साधन सिद्धा गोपियों में श्रुतियाँ थीं, कई युगों से तपस्या कर रहे ऋषि थे, गोपकन्यायें थीं, ये कौन थीं ? जनकपुर से, मिथिला से, अयोध्या से रामावतार में वर प्राप्त नारियाँ गोपी रूप से उत्पन्न हुई थीं, देवकन्याएँ थीं । भगवान् ने अवतार लेने से पहले ब्रह्माजी को आकाशवाणी के माध्यम से कह दिया था, जब पृथ्वी दुखी होकर ब्रह्माजी के पास गयी थी और ब्रह्मा जी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए भगवान् से प्रार्थना की थी । तब भगवान् ने आदेश दिया था –

'तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः' (श्रीभागवतजी - १०/१/२३)

मेरी और मेरी प्रिया (श्रीराधा) की सेवा के लिए देवाङ्गनाएं जन्म ग्रहण करें ।

इसलिए रास में मानुषी शरीर नहीं थे । धाम भी दिव्य बन गया था । कैसे ? ऊपर से मालूम पड़ता है कि साधारण सी लीला हो रही है किन्तु ब्रह्ममोह लीला के समय ही धाम की दिव्यता को इस श्लोक में बताया गया है –

वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/१३/५९)

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/१३/६०)

विरुद्ध जाति वाले, परस्पर वैर रखने वाले जीवों का वैर समाप्त हो गया जैसे सिंह और हिरन । सिंह हिरन को मारकर खा जाता है परन्तु धाम की दिव्यता के कारण सिंह का हिरन से वैर समाप्त हो गया, सारा वातावरण प्रेममय हो गया । परस्पर वैर करने वाले जीव आपस में प्रेम से रहने लगे । यह धाम की दिव्यता है । रस की सामग्रियाँ आलम्बन और उद्दीपन आदि सब अप्राकृत बन चुके हैं ।

हमारे यहाँ रस शास्त्रकारों ने भरत मुनि की रस पद्धति को नहीं माना है क्योंकि उसमें प्राकृत रस है । ऐसा वैष्णव आचार्यों ने लिखा है । उससे अलग रस पद्धति को वैष्णव आचार्यों ने माना है और उसका बहुत विस्तार किया है । रस की अलग विधाओं का निरूपण किया है, श्रीकृष्ण रति को अंगी मानकर अन्य रसों को उसका अंग माना है क्योंकि संसार में रस कहाँ है ?

उपनिषदों में कहा गया है ।

रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति ।

रस अपने शुद्ध रूप में ब्रह्म है ।

लौकिक वस्तुओं में भला शुद्ध रस और उसमें भी श्रीकृष्ण रस कहाँ से आ सकता है ? लौकिक वस्तुओं में तो श्रीकृष्ण रस की छाया मात्र है । रस की यदि अनुभूति करनी है तो श्रीकृष्ण रति के माध्यम से चलो, तब रस की प्राप्ति होगी । संसार में तो रस कहीं है ही नहीं तो फिर रस कैसे मिल जायेगा ? दूसरी बात यह है कि भविष्य पुराण में लिखा है कि भगवान् ने ब्रज में जो लीला की है, चिन्मय विग्रह से की है । भविष्य पुराण में कहा गया है कि श्रीकृष्ण विग्रह में कैशोर लीला का प्राकट्य हुआ । इसलिए रास लीला कैशोर लीला है । ऐसा योगमाया के बिना हो ही नहीं सकता क्योंकि प्रकट लीला में श्रीकृष्ण को कुछ आचार्यों ने आठ वर्ष का माना है, कुछ ने दस वर्ष का माना है । इस

अवस्था में किशोर लीला हो ही नहीं सकती । केवल भविष्य पुराण की ही बात नहीं, ऐसा विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि किशोर अवस्था में भगवान् ने ब्रज में लीलायें कीं । अब इसे समझो कि आठ वर्ष के कन्हैयाजी किशोर लीलायें कैसे करेंगे ? इसका उत्तर है कि योगमाया के आश्रय से करेंगे, नहीं तो रास ही नहीं घटित हो सकता । यद्यपि बहुत से लोगों ने विशेषकर गीता प्रेस, गोरखपुर वालों ने इस बात को छिपाने का प्रयास किया है क्योंकि संसार रास लीला का अधिकारी नहीं है । उन्होंने बहुत से तर्क दिए हैं कि श्रीकृष्ण उस समय आठ वर्ष के थे, आठ वर्ष के बालक में काम विकार नहीं हो सकता है । इस प्रकार उन्होंने संसारी लोगों के लिए बहुत से तर्क दिए हैं परन्तु वस्तुतः खुली हुई बात यह है कि यहाँ तो ब्रजभूमि है, यहाँ कोई छिपाने की बात नहीं है । इसलिए भगवान् ने योगमाया के कारण किशोर रूप धारण किया । यदि कोई कहे कि भागवत में स्पष्ट रूप से ऐसा उल्लेख नहीं है कि रास लीला श्रीकृष्ण ने किशोर अवस्था में की किन्तु भागवत में तो स्पष्ट है कि यह लीला किशोर अवस्था की है । अन्य पुराणों में इसका प्रमाण है । विष्णुपुराण में स्पष्ट कहा गया है कि श्रीकृष्ण की किशोर अवस्था को मानते हुए चले, तभी रास प्रारम्भ हुआ है । इसलिए छोटा-सा लाला किशोर लीला कैसे करेगा तो इसका उत्तर यही है – **'योगमायामुपाश्रितः'** – योगमाया के आश्रय से ऐसा किया । अतः जितनी भी विरोधाभासी बातें हैं, इनका समाहार योगमाया की भूमि पर ही होगा । अन्य उपाय से नहीं होगा क्योंकि प्रकट लीला में विरोध आ जायेगा कि किशोर अवस्था तो अभी कृष्ण की है नहीं, फिर किशोर लीला कैसे कर लेंगे ? स्पष्ट विरोध इस रूप में आ जायेगा । एक छोटा सा बालक किशोर लीला नहीं कर सकता और न ही उससे कोई रस उत्पन्न होगा । जब तक नायक में नायकत्व के सारे गुण नहीं होंगे तब

तक रस की निष्पत्ति नहीं हो सकती । इसीलिए भागवत '१०/२९/१' में स्पष्ट रूप से लिखा है – **'योगमायामुपाश्रितः'**

भगवान् ने रास के पहले योगमायाजी का आह्वान किया । वे प्रियाजी की एक शक्ति हैं । उन्होंने आकर श्रीकृष्ण रस की निष्पत्ति के लिए वहाँ जितनी भी वस्तुएँ थीं, आलम्बन, उद्दीपन, नायिका इत्यादि सबको अप्राकृत बना दिया । जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि गोपियों के विग्रह अप्राकृत थे । रास का संगीत, नृत्य, स्वर आदि सभी वस्तुएँ अप्राकृत हैं, जिनको शिव–ब्रह्मादि भी नहीं समझ सकते, फिर हम लोग तो क्या समझेंगे ?

शरीर दो प्रकार के होते हैं – प्राकृत और अप्राकृत । देवताओं के शरीर भी प्राकृत होते हैं । चाहे मैथुनी हों चाहे अमैथुनी – सभी शरीर प्राकृत होते हैं । योगी लोग प्राचीन काल में मानसिक रूप से अमैथुनी सृष्टि भी करते थे अर्थात् बिना रज-वीर्य के संयोग के शरीरों की रचना योगी लोग करते थे किन्तु वे भी प्राकृत शरीर होते थे । योगी लोग स्पर्श के द्वारा, संकल्प के द्वारा और सूँघकर भी संतान उत्पन्न करने में समर्थ थे किन्तु इनसे उत्पन्न सब प्रकार के शरीर भी प्राकृत होते थे । इसीलिए पद्म पुराण में कहा गया है – **'न मानुष्यः कथञ्चन'** – गोपियों के शरीर मानुषी न होकर अप्राकृत विग्रह थे । अप्राकृत वस्तु से, अप्राकृत उपादान कारणों से ही अप्राकृत रस की निष्पत्ति हो सकती है । प्राकृत उपादान कारणों से प्राकृत रस उत्पन्न होगा । यह रस शास्त्र का नियम है । जो इसे नहीं मानेगा, वह रस की निष्पत्ति नहीं कर पायेगा । यह रास की प्रथम भूमिका है ।

गर्गसंहिता में स्पष्ट लिखा है कि गोपकन्यायें रामजी के वरदान से ब्रज में उत्पन्न हुई थीं । इनमें कुछ मिथिला की थीं, कौशल देश की नारियाँ राम रूप को देखकर मोहित हो गयीं, वे भी गोप कन्यायें बनीं,

अयोध्या की स्त्रियाँ थीं, भगवान् राम ने यज्ञ में सीताजी की अनेकों प्रतिमायें बनवाकर उनके साथ यज्ञ किया, वे यज्ञ-सीतायें भी चैतन्यघन होकर गोपकन्यायें हुईं। ये सब राम परिकर की नारियाँ मिलकर गोपियाँ बनीं।

योगमाया 'श्रीजी' का ही स्वरूप है, जिसका आश्रय रास के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण ने लिया। ये कैसे ? माया शब्द बहुत प्रचलित होने के कारण, ऐसी शक्ति जो मिथ्या भ्रम करा दे, उसी को लोग माया समझते हैं। प्रचलित शब्द के आधार पर लोग माया के अर्थ को नहीं जान पाते हैं। "**माया दम्भे कृपायाञ्च**" - माया केवल दम्भ में ही काम नहीं आती है, माया कृपा में भी काम आती है। **'योगाय माया'** – योग के लिए, श्रीकृष्ण से मिलाने के लिए जो कृपा है, वह है 'योगमाया' अर्थात् वह श्रीजी का ही स्वरूप है अथवा

"माङ् माने शब्दे च" एक धातु है।

योग के लिए, श्रीकृष्ण से मिलाने के लिए वंशी में शब्द किया

योगस्य सम्भोगस्य मायो मानं पर्य्याप्तिर्यस्यां सा संयोगलक्ष्मी।

अर्थात् योगमा माने संयोग की लक्ष्मी और

'तां याति सा श्रीराधा योगमाया'

पूछा जाए कि ऐसा कैसे कह दिया तो पद्मपुराण में भी यह वर्णन है कि भगवान् ने रास के पहले राधारानी का आश्रय लिया।

बोलो श्रीराधारानी की जय।

अतः आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है कि पद्म पुराण के अनुसार रास के पहले श्रीकृष्ण ने किशोरीजी की आराधना की है, तब रास का प्रारम्भ हुआ है। इसीलिए अन्य पुराणों के प्रमाण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भागवत के **'योगमायामुपाश्रितः'** का अर्थ हुआ कि श्रीकृष्ण

ने राधारानी की आराधना की । उसी समय आकाश में चन्द्रमा निकला । योगमाया के प्रभाव से सभी वस्तुएँ अप्राकृत हो चुकी थीं । श्यामसुन्दर ने चन्द्रमा को देखा तो

'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्' (श्रीभागवतजी - १०/२९/३)

उन्होंने एक गीत गाया । 'कलम्' अर्थात् बहुत सुन्दर अप्राकृत बीजात्मक गीत गाया, वह गीत कैसा था –

'वामदृशां मनोहरम्' - श्रंगार रस के अनुकूल, जो गोपिकाओं के लिए मनोहर, अप्राकृत काम को जगाने वाला था, अप्राकृत काम से श्रीकृष्ण को मिलाने वाला था । (यह पहले ही बताया जा चुका है, श्रीधर स्वामी आदि आचार्यों के अनुसार रास का एक लक्ष्य प्राकृत काम पर विजय प्राप्त करना भी था ।)

श्रीकृष्ण के उस गीत को ब्रजगोपिकाओं ने सुना तो वे गोपिकाओं के चित्त में प्रविष्ट हो गये ।

व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः आजग्मुरन्योन्मलक्षितोद्यमाः –

(श्रीभागवतजी - १०/२९/४)

श्रीकृष्ण के गीत को सुनकर गोपिकायें चल पड़ीं, वे एक दूसरे के उद्यम को नहीं जान पायीं अर्थात् उन्हें कुछ होश नहीं रहा, इसलिए अपनी सखियों को साथ लेकर नहीं गयीं, अन्यथा कात्यायनी देवी के व्रत के समय तो सभी गोपियाँ एक दूसरे को बुलाकर परस्पर मिलकर यमुना तट पर जाती थीं । यह वंशी के गीत का ऐसा जादू था कि उसे सुनकर किसी के चित्त में यह सावधानी नहीं रही कि मुझे क्या करना है, किसको बुलाना है ? वे तो कृष्णगृहीतमानसा हो गयी थीं, उस समय तो उन्हें केवल कृष्ण का ही स्मरण हो रहा था । वंशी का जादू उन पर कैसे चढ़ा ? कुछ गोपियाँ गाय दुह रही थीं, वंशी ध्वनि सुनकर उन्होंने गाय और दोहनी को वहीं छोड़ दिया तथा चल पड़ीं । उन्हें यह भी

अनुसन्धान नहीं रहा कि दूध का पात्र भीतर रख आयें । कुछ गोपियाँ चूल्हे पर दूध औटा रही थीं, कोई लपसी बना रही थीं, वंशी ध्वनि सुनकर उन्होंने उसे चूल्हे पर ही छोड़ दिया और चल पड़ीं । ऐसा नहीं किया कि उसे चूल्हे से उतार दें । यह वंशी का जादू था । गोपिकायें कृष्णगृहीतमानसा थीं, कृष्ण रूपी ग्रह ने उनके मन का अपहरण कर लिया था । इसीलिए योगमाया शब्द का अर्थ पहले बताया जा चुका है – **'योगाय मानः शब्दो यस्याः'** अर्थात् योग के लिए जो शब्द किया गया कि जिस शब्द को, जिस गीत को सुनकर तुरन्त श्रीकृष्ण से मिलना पड़े । इसीलिए कुछ आचार्यों ने अर्थ किया है

'योगाय मानः माने शब्दः'

'मानः' का अर्थ आचार्यों ने किया है शब्द । श्यामसुन्दर ने योग के लिए शब्द किया, जिस गीत को सुनकर मनुष्य एक क्षण के लिए भी न रुक सके और सीधे आकर श्रीकृष्ण से मिलना पड़े ।

'योगाय मानः शब्दः यस्याः सा वंशी'

ऐसी वंशी की ध्वनि थी, जिसे सुनकर तुरन्त 'योग' अर्थात् श्यामसुन्दर से मिलना पड़े, जहाँ एक क्षण को भी विलम्ब न कर सके, वह है जादू । इसीलिए भगवान् ने योगमाया का आश्रय लिया था – **योगमायामुपाश्रितः ।**

वंशी के जादू से गोपिकाएँ श्यामसुन्दर से मिलने के लिए चल पड़ीं । योग करना ही पड़ेगा । **'परिवेषयन्त्यः'** - कोई गोपी भोजन परोस रही थी । पतिदेव भोजन करने के लिए बैठे थे । थाली, कटोरी और लोटा गोपी ने उनके सामने रखा । लोटा में दूध देना है, कटोरी में खीर देनी है । शरत्पूर्णिमा के दिन खीर बनी थी । गोपी रसोई घर से खीर लेने के लिए गयी, इतने में श्याम सुन्दर की वंशी सुनाई दी और

गोपी तुरन्त ही श्रीकृष्ण से मिलने के लिए दौड़पड़ी । उधर पति देवता सोच रहे हैं कि वह खीर लाती होगी लेकिन अब क्या खीर आती ? गोपी के ऊपर वंशी का जादू चढ़ गया । पतिदेव कटोरा लिए बैठे रहे और उनकी पत्नी वह गोपी तो घर से निकलकर बहुत दूर चली गयी । पतिदेव कटोरा खड़खड़ा रहे हैं – 'अरे, जल्दी ला खीर ।' किन्तु कोई रसोईघर में सुनने वाला नहीं था ।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।

एक गोपी अपने नवजात शिशु को स्तनपान करा रही थी, वंशी की ध्वनि सुनकर उस शिशु को भी छोड़कर गोपी अपने प्राण प्यारे श्यामसुन्दर से मिलने के लिए दौड़ पड़ी । वंशी का ऐसा जादू था । गोपियों के परिवारीजनों को आगे योगमाया सँभालेगी ।

रास लीला में ऐसे अद्भुत रस का प्राकट्य हुआ कि प्रकट लीला में अप्राकृत रस की अनुभूति कराकर योगमाया ने सब कार्यों का संतुलन बनाये रखा । इसीलिए सर्वप्रथम रास लीला के आरम्भ में ही शुकदेवजी ने कहा – **'योगमायामुपाश्रितः'**

अर्थात् सारा कार्य इस रास लीला में योगमाया ने ही किया । प्राकृत राज्य में अप्राकृत वस्तु के अवतरण का कार्य कराने वाली योगमाया है, उसकी रास के प्रारम्भ में ही श्यामसुन्दर ने आराधना की और उसी के आधार पर ही सारी रास लीला चली ।

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/७)

कोई गोपी घर को लीप रही थी, कोई गोपी अपने शरीर में उबटन लगा रही थी । कोई आँखों में अंजन लगा रही थी । श्यामसुन्दर की वंशी

ध्वनि सुनकर अंजन कहीं का कहीं लगा लिया और अटपटा श्रृंगार कर लिया । वस्त्र उलटे पहन लिए । ऊपर के पहनने वाले वस्त्र नीचे पहन लिए तथा नीचे पहनने वाले वस्त्र ऊपर पहन लिए । आभूषण भी उलटे-पलटे पहन लिए । नथ को कानों में पहन लिया, कमर की करधनी को गले में पहन लिया, गले की माला को करधनी की जगह लपेट लिया । वंशी ध्वनि को सुनकर गोपिकायें कृष्णमयी हो गयीं, क्या करना है, कैसे करना है, इस बात का उन्हें बिल्कुल भी अनुसन्धान नहीं रहा और वे श्रीकृष्ण से मिलने के लिए चल पड़ीं । कुछ गोपियों के पतियों ने उनको रोका, पिताओं ने अपनी कन्याओं को रोका, भाइयों ने अपनी बहनों को रोका किन्तु

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः –

गोविन्द ने उनके मन का इस प्रकार हरण कर लिया था कि वे लौटी नहीं, जिस प्रकार आकाश में पक्षी उड़ते जा रहे हों, उनको कोई रोकने वाला नहीं होता, इसी प्रकार रोकने पर भी गोपियाँ नहीं रुकीं ।

नाद अमृत को पन्थ रंगीलो सूक्षम भारी
तेहि मग ब्रज तिय चलैं, आन नहि कोऊ अधिकारी ।

यह नाद अमृत का पंथ है, बहुत रंगीला और सूक्ष्म पंथ है, इस पर केवल ब्रजदेवियाँ ही चल सकती हैं, अन्य कोई नहीं चल सकता । इसलिए रोकने पर भी वे रुकी नहीं और सीधे कृष्ण के पास चलती चली गयीं । कुछ गोपियाँ ऐसी थीं, जो रास में नहीं जा पायीं । उनके पतियों ने उन्हें रोक दिया और कमरे में ताला लगाकर बंद कर दिया । यहाँ शुकदेवजी कहते हैं कि सबसे बड़ी वस्तु है भावना, जो श्रीकृष्ण से मिला देती है । रोक दिया तो रोक लो । यह लीला भी भगवान् दिखा रहे हैं अर्थात् सब रसों का

संकलन ही महारास है । कृष्ण का परोक्ष मिलन, कृष्ण का अपरोक्ष मिलन, परोक्ष गमन, अपरोक्ष गमन – ये सब रास की अनेक विधायें हैं । जब गोपियों को रोक दिया गया तो यह भी लीला है । अब देखो, भावना शक्ति का चमत्कार । पति रोक सकता है । भक्ति शास्त्र के विशेषज्ञों ने लिखा है कि परकीया रस में बहुत उत्कण्ठा, बड़ी तीव्रता होती है । प्रेम वही है, जो कसौटी को पार कर ले । इसमें परकीया रस की बड़ी प्रशंसा की गयी है । परकीया कोई नहीं है, परकीया भाव है । ब्रज में परकीया कोई है ही नहीं । सब गोपियों के श्रीकृष्ण ही कान्त हैं । इसलिए परकीया भाव लिया गया है । लोग शंका इसलिए करते हैं क्योंकि गोपियों को परकीया समझते हैं । परकीया नहीं, यहाँ परकीयात्व है । परकीया और परकीयात्व में अंतर है । जिन गोपियों को रोक लिया गया, उन्होंने अपने अन्तःकरण में श्रीकृष्ण की भावना की । ऐसा लौकिक नायिका नहीं कर सकती है । इन गोपियों ने श्रीकृष्ण की भावना करके अपने नेत्र बन्द कर लिए और उन्होंने श्यामसुन्दर से मिलने की साधन प्रक्रिया दिखाई ।

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/१०)

श्रीकृष्ण रति से जीव जितनी जल्दी शुद्ध हो जाता है और प्रभु से मिल सकता है, वैसा और कोई मार्ग नहीं है । जब साधक श्रीकृष्ण से मिलने के लिए रोता है, उस समय जो आँसू गिरते हैं, उससे उसके सारे पाप जलते हैं । यह सबसे सुन्दर उपाय है । इसका नाम है प्रेमयोग । बड़े-बड़े ज्ञानी लोग हजारों-लाखों वर्षों तक योग साधना करके समाधि लगाते हैं तथा योगाग्नि से अपने

पञ्च कोश को जलाते हैं । प्रेम मार्ग में तो वह एक क्षण में ही हो जाता है । श्रीकृष्ण के ध्यानजनित आनन्द से सकाम पुण्य नष्ट हो जाते हैं, **क्षीणमङ्गलाः** । ये कौन से पुण्य हैं, ये वे पुण्य हैं, जो हम सकाम भाव से करते हैं । भगवान् की प्रीति के लिए जो पुण्य किया जाता है, वह अलग होता है । पुण्य भी दो प्रकार के होते हैं ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

कर्मफल का आश्रय लेकर जो कर्म किया जाता है, वह भी पुण्य है तथा कर्मफल का आश्रय न लेकर जो पुण्य किया जाता है, वह भी पुण्य है परन्तु दोनों में बड़ा भेद है ।

जब गोपियों ने श्रीकृष्ण की भावना करके अपने नेत्र बन्द कर लिए तब श्रीकृष्ण के विरह की तीव्र वेदना से उनके हृदय में इतनी जलन हुई कि उनके सारे अशुभ संस्कार जल गये । इसके बाद ध्यान में उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए । उन्होंने बड़े प्रेम से उनका आलिंगन किया । उस समय गोपियों को इतना आनन्द मिला कि उनके सारे पुण्य के संस्कार नष्ट हो गये ।

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः – (श्रीभागवतजी - १०/२९/११)

इस प्रकार गोपियों ने अपने गुणमय शरीर का त्याग कर दिया ।

अब यहाँ पर आचार्यों ने एक रहस्य खोला है । श्रीमद्भागवत का अपने मन से अर्थ नहीं करना चाहिए । महापुरुषों ने कहा है कि भागवत के टीकाकार आचार्यों की शैली से भागवत के अर्थ को समझो ।

अस्तु, पूर्व लीला प्रसंग को देखो, अब यहाँ विरोध आ गया । गुणमय शरीर होता है लिंग शरीर । शंका होती है कि

गोपियों ने लिंग शरीर कैसे छोड़ दिया क्योंकि वहाँ लिंग शरीर तो था ही नहीं । क्योंकि गोपियों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है कि वे मानुषी नहीं थीं, उनके शरीर तो सर्वथा अप्राकृत थे । जब उनके शरीर अप्राकृत थे तो फिर उनमें लिंग शरीर कहाँ से आ गये ? लिंग शरीर तो भीतर की वस्तु है, उसके ऊपर प्राकृत शरीर का चोला होता है और जब तक लिंग शरीर है तब तक जीव कृष्ण से नहीं मिल सकता है और गोपियाँ तो रास में कृष्ण से मिलने के लक्ष्य से जा रही हैं, जिस रस को लक्ष्मीजी भी नहीं प्राप्त कर सकीं । जब उस दिव्यातिदिव्य रस को प्राप्त करने गोपियाँ जा रहीं हैं तो उनमें गुणमय शरीर कहाँ से रहा ? यह तो विरोध आ गया । इस विरोध का उत्तर आचार्य लोग देते हैं – **जहुर्गुणमयं देहं** ।

शरीर तीन होते हैं । स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर । बहुत से लोग दो शरीर मानते हैं । वेदान्ती लोग तीन शरीर मानते हैं । सांख्य शास्त्र वाले दो शरीर मानते हैं – स्थूल और सूक्ष्म । किन्तु दो शरीर मानो तो भी वही बात है और तीन शरीर मानो तब भी वही बात है । इनमें अन्तर क्या है ? जैसे सांख्य शास्त्र वाले मानते हैं कि केवल सूक्ष्म शरीर होता है । सूक्ष्म शरीर के भीतर वे आठ भाव मानते हैं – ज्ञान, अज्ञान, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य, धर्म, अधर्म आदि । आठ भावों को वे सूक्ष्म शरीर के ही अन्तर्भूत कर लेते हैं तथा वेदान्ती लोग इन भावों को अलग कारण शरीर मानते हैं । बात वही हो गयी,आठ भाव मानने ही होंगे, चाहे सूक्ष्म शरीर के भीतर मानो, चाहे उन्हें अलग से मानो अर्थात् हमारी जो भावना है, यही एक शरीर है तथा मुख्य शरीर है । स्थूल शरीर तो बहुत पीछे की बात है, सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से अधिक महत्वपूर्ण है और उस सूक्ष्म शरीर से भी अधिक महत्वपूर्ण

है कारण शरीर यानी भावनामय शरीर । अतः **जहुर्गुणमयं देहं** से मतलब है कि गोपियों का जो विरहभावनामय वपु था, उसे गोपियों ने छोड़ दिया अर्थात् विरह की भावनायें छूट गयीं । इसी प्रकार प्रकट लीला में बाधक जितने बन्धन थे, वे सब भी नष्ट हो गये, ऐसा आचार्यों ने लिखा है । श्रीजीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

"न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते" ।

राजा परीक्षित् ने पूछा – भगवन् ! आप जो कह रहे हैं कि गोपियों के सब बन्धन कट गये, वे बहुत ऊँचाई पर पहुँच गयीं, वे त्रिगुणातीत हो गयीं तो ऐसा कैसे हो गया क्योंकि वे तो कृष्ण को अपना प्रियतम समझती थीं और उनसे रमण करने के लिए गयी थीं, फिर वे तीनों गुणों से परे कैसे हो गयीं ?

शुकदेवजी परीक्षित् का प्रश्न सुनकर हँस गये और बोले – राजन् ! प्राकृत राज्य का जो जीव होता है, उसे कितना भी समझा लिया जाये किन्तु उसकी बुद्धि प्राकृत ही रहती है, वह अप्राकृत वस्तु को समझ ही नहीं सकता है । मैंने तुमको पहले ही यह बात बता दी है और तुम उसे भूल चुके हो । मैंने तुमको पहले यह बताया था कि शिशुपाल जो भगवान् श्रीकृष्ण से सदा द्वेष करता था, उन्हें मारना चाहता था, जब वह मुक्त हो गया तब गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं तो फिर वे त्रिगुणमय संसार से मुक्त हो गयीं, इसमें क्या संदेह है ?

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/१३)

परीक्षित् ! जब प्रभु से द्वेष करने वाला मुक्त हो गया तब फिर जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया हैं, उन गोपियों के बारे में तुम ऐसा सन्देह क्यों करते हो ?

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/१४)

भगवान् श्रीकृष्ण संसार में क्यों प्रकट हुए, उनको इस संसार में आने की क्या आवश्यकता है, अवतार लेने की क्या आवश्यकता है, क्या वे असुरों को नष्ट करने के लिए प्रकट हुए, नहीं । यह गलत बात है । असुरों को, कंस आदि को तो भगवान् अपने नित्यधाम से, अपने संकल्प के द्वारा ही समाप्त कर सकते थे । क्या वे धर्म की स्थापना करने के लिए यहाँ आये, नहीं, इस कार्य के लिए तो वे बड़े-बड़े आचार्यों को भेज सकते थे । भगवान् का अवतार वस्तुतः मनुष्यों के निःश्रेयस (कल्याण) के लिए होता है । भगवान् की पराभक्ति ही सच्चा निःश्रेयस है, जिस रसरूपा भक्ति को भगवान् ने कृष्णावतार में बहाया, उसी से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है ।

'रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति'

सच्चा निःश्रेयस (परम कल्याण) यही है कि जीव रस को प्राप्त करे, उसे श्रीकृष्ण रस मिले । जो वेदों में लिखा है, वही है सच्चा निःश्रेयस ।

अस्तु, गोपिकायें रास में पहुँच गयीं । वन में रास रासेश्वर उनके सामने खड़े थे । रात्रि का समय था । ब्रजदेवियों को देखते ही रासबिहारी लाल बोले –

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।

महाभाग्यशालिनी गोपियो ! आओ, तुम्हारा स्वागत है ।

भगवान् ने यहाँ गोपियों को स्पष्ट रूप से महाभाग्यशालिनी कहा है ।

हे गोपियो ! तुम आज के दिन महारास में सम्मिलित होने के लिए आयी हो, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है ? बताओ, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? ब्रज में सब कुशल तो है न, तुम अपने आने का कारण तो बताओ ।

(श्यामसुन्दर गोपियों से उनके आने का कारण पूछ रहे हैं)

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता । (श्रीभागवतजी - १०/२९/१९)

इस समय अत्यन्त घोर रात है, बड़े भयानक जीव इस समय घूम रहे हैं । अब तुम लोग लौट जाओ । जो अच्छे कुल की स्त्रियाँ हैं, उन्हें रात के समय घोर जंगल में नहीं रुकना चाहिए । तुम्हारे माता-पिता, पति-पुत्र और भाई-बन्धु तुम्हें ढूँढ रहे होंगे, उन्हें भय में मत डालो । तुम लोग अब वन की शोभा को देख चुकी हो । बहुत सुन्दर वन है परन्तु अब तुम लोग अपने घरों को लौट जाओ, देर मत करो । तुम यहाँ आ गयीं, ठीक है किन्तु स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म यही है कि अपने पतियों की सेवा करें । अगर पति में ये छः दोष हैं तब भी स्त्री को उसका त्याग नहीं करना चाहिए । यदि पति दुःशील है (दुःशील चोर को कहा जाता है) यदि पति चोर है, तब भी उसकी सेवा करनी चाहिये, दुर्भग (भाग्यहीन) हो, वृद्ध हो, जड़ अर्थात् गूँगा-बहरा हो, कोई काम करने के अयोग्य हो, रोगी हो, गरीब हो, ऐसी स्थिति में भी पति का त्याग नहीं करना चाहिए, उसकी सेवा करनी चाहिए । किन्तु यहाँ एक बात भगवान् ने कही कि पति को अपातकी होना चाहिए । यदि पति पातकी है तो वह त्याज्य है, उसे छोड़ देना चाहिए ।

सातवें स्कन्ध में नारद जी ने कहा है –

'पतिं त्वपतितं भजेत्' – (श्रीभागवतजी - ७/११/२८)

अपतित पति की ही सेवा करनी चाहिए। सबसे बड़ा पातक क्या है ? भगवत्मार्ग में बाधा देना, श्रीकृष्ण रति में बाधा देना, सबसे बड़ा पाप है। इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है ? कुछ आचार्यों ने लिखा है कि पञ्च महापापों को जो करता है, ऐसे पति को छोड़ देना चाहिए। पातक अथवा पातकी के बारे में अलग-अलग मत हैं। जो भी हो, ठाकुरजी ने गोपियों से अपने घर चले जाने को कहा। उनकी परीक्षा के लिए ठाकुर जी ने ऐसा कहा।

श्यामसुन्दर की ऐसी निष्ठुर वाणी सुनकर गोपियों ने अपने मुख नीचे कर लिए, उनकी गरम साँसें चलने लगीं और नेत्रों से आँसू इतने बहे कि काजल के साथ धुलकर वक्षःस्थल तक पहुँच गये। उनका हृदय दुःख से भर गया और वे गद्गद् वाणी से श्यामसुन्दर से बोलीं –

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं -
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/२९/३१)

'हे विभो ! हम तुमसे क्या कहें, तुम ईश्वर हो किन्तु तुम ऐसी कठोर वाणी बोलने योग्य नहीं हो।'

गोपियों का ऐसा प्रेम था कि वे समस्त प्राकृत विषय रसों को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास गयी थीं। उन्होंने कहा – श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारे पास ऐसे ही नहीं चली आयी हैं, समस्त विषयों को छोड़कर आयी हैं। तुम तो बड़े हठी हो किन्तु हठ छोड़कर हमारा भजन करो, हमारा त्याग मत करो।

तुमने जो हमसे कहा कि अपने पतियों की सेवा करो।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/३२)

पति की सेवा करना तुमने स्त्रियों का धर्म बताया तो पति है कौन ?

'अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे'

यह तुम्हारा उपदेश तो तुम पर ही लागू होता है क्योंकि

'प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा'

तुम ही प्रेष्ठ (प्रियतम) हो, तुम ही बन्धु हो, तुम ही आत्मा हो ।

'कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः'

जो कुशल स्त्रियाँ होती हैं, वे तुमसे ही प्रेम करती हैं । लौकिक पति-पुत्रादि तो केवल पीड़ा ही देने वाले हैं । इनसे सुख नहीं मिलता, इनसे तो केवल कष्ट ही मिलता है । इसलिए हे कमल के से नेत्रों वाले श्यामसुन्दर, तुम हम पर प्रसन्न होओ ।

तुमने हमारा चित्त छीन लिया है, इसलिए अब हमारे हाथों से लौकिक कार्य नहीं हो सकते । हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलों को छोड़कर एक पग भी हट नहीं रहे हैं ।

यदि तुम हमें नहीं अपनाओगे तो हम प्रेम की योगाग्नि से तुम्हारे सामने ही अपने शरीर को जला देंगी और ध्यान के द्वारा तुम्हारे चरण-कमलों को प्राप्त करेंगी ।

हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे चरणकमलों की सेवा का अवसर लक्ष्मीजी को भी कभी-कभी ही मिलता है । जिस दिन से हमें तुम्हारे चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ, उस दिन से हम कहीं और रुक ही नहीं सकती हैं ।

हे गोविन्द ! लक्ष्मीजी भी तुम्हारे चरण कमलों की रज पाने की अभिलाषा करती हैं, जबकि वे दिन-रात तुम्हारे वक्षः स्थल पर निवास करती हैं । उन्हीं की तरह हम भी तुम्हारी चरण रज की शरण में आयी हैं । तुम हम पर प्रसन्न हो जाओ । हे पुरुषभूषण ! हमें अपना दास्य प्रदान करो ।

तुम्हारा मुखकमल जो घुँघराले केशों से घिरा हुआ एवं मीठी मुस्कान से युक्त है तथा तुम्हारी भुजाओं और वक्षः स्थल को देखकर हम तुम्हारी दासी हो गयी हैं ।

तीनों लोकों में ऐसी कौन सी स्त्री है, जो तुम्हारी वंशी के मधुर संगीत को सुनकर आर्य पथ (वेद की मर्यादा) को नहीं छोड़ देगी ।

ऐसा कैसे सम्भव है तो इसका प्रमाण है स्कन्दपुराण में । एक समय पार्वतीजी महादेवजी की गोद में स्थित थीं परन्तु उसी समय श्यामसुन्दर की वंशी की ध्वनि सुनकर वे शिवजी को भूल गयीं । इसलिए अन्य स्त्रियों में ऐसी कौन है, जो श्रीकृष्ण की माधुरी से बच सके ।

हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे रूप को देखकर गोपी-ग्वालबाल तो मोहित होते ही हैं, गायों तक को रोमांच हो जाता है । वन के हिरन आदि पशु और पक्षी भी पुलकित हो जाते हैं । यहाँ तक कि जहाँ से तुम निकलते हो, उधर के वृक्ष-लताएँ प्रसन्न होकर तुम्हारे ऊपर पुष्प वर्षा करने लगते हैं और वे भी प्रेम से पुलकित हो जाते हैं ।

इस प्रकार कृष्ण रूप की यह ऐसी विशेषता है कि जिसे देखकर जड़-चेतन आदि सभी जीव समान रूप से मोहित हो जाते थे ।

गोपियों ने आगे कहा – प्यारे ! तुम ब्रजवासियों के, हम लोगों के कष्टों को दूर करने प्रकट हुए हो । इसलिए अपने करकमल को हम सेविकाओं के सन्तप्त वक्षःस्थल और सिर पर रखो ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – गोपिकाओं की विकलता और प्रेम भरी वाणी सुनकर श्यामसुन्दर मुस्कुराने लगे, उनका हृदय दया से भर गया और वे सोचने लगे कि ये ब्रजांगनायें धन्य हैं ।

'गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्' – (श्रीभागवतजी - १०/२९/४२)

भगवान् स्वयं आत्माराम हैं, फिर भी उन्होंने गोपियों को रमण कराया । गोपियों को साथ लेकर उन्होंने अपनी लीला आरम्भ की । वैजयन्ती माला पहने हुए श्रीकृष्ण ब्रजदेवियों को साथ लेकर वन विहार करने लगे ।

यह रास का प्रथम चरण है । रास लीला में वन विहार भी होता है, जल विहार भी होता है । यह समस्त लीलाओं और रसों का समूह है । श्यामसुन्दर अपनी भुजाओं को गोपिकाओं के अंगस्थल पर रखकर परिरम्भण करते हुए, उन्हें स्पर्श करते हुए अनेक प्रकार की केलि करते और हँसते-मुस्कुराते हुए, अप्राकृत काम को जगाते हुए ब्रजदेवियों को आनन्दित करने लगे ।

(प्राकृत और अप्राकृत काम का भेद पहले ही बताया जा चुका है)

भगवान् श्रीकृष्ण से इस प्रकार के सौभाग्य को पाकर गोपियों को मान हो गया ।

मान क्यों हुआ ? यह प्रेम की एक विशेषता है । प्रेम की गति कुटिल होती है । जैसे गोपियाँ जब कन्हैया को अपने हाथों से माखन देती थीं तो वे नहीं खाते थे । केवल चोरी करके वे माखन खाते थे, क्यों ? यह प्रेम की कुटिल गति है, प्रेम का आस्वाद है । ऐसा नहीं कि गोपियाँ श्रीकृष्ण को माखन देना नहीं चाहती थीं परन्तु चोरी करके ही खाना उन्हें अच्छा लगता था । यह क्या है, यह प्रेम के आस्वादन की एक प्रक्रिया है । गोपियों का प्रेम ही माखन है तथा चोरी करना उस प्रेम

के आस्वादन की प्रक्रिया है । प्रश्न हुआ कि प्रेम के आस्वादन की प्रक्रिया चोरी ही क्यों है तो उत्तर है कि प्रेम की गति कुटिल होती है । चोरी दोष तब होती है जब किसी व्यक्ति के पास कोई वस्तु है और वह किसी को देना न चाहे किन्तु कोई आदमी चुपके से उसे ले जाए, तब वह दोष है परन्तु यहाँ गोपियाँ प्रेम से कृष्ण को माखन देना चाह रही हैं किन्तु प्रेम की कुटिल गति के अनुसार कृष्ण उसे नहीं लेते हैं, फिर गोपियाँ उसे रख देती हैं और कृष्ण चुपके से आकर माखन ले लेते हैं । इससे गोपियों की जो हार्दिक इच्छा होती थी कि कृष्ण उनका माखन ले लें तो माखन लेने पर गोपियाँ प्रसन्न होती थीं । इससे गोपियों की इच्छा पूरी हो जाती थी, उन्हें आनन्द मिलता था । इसलिए यह कृष्ण की चोरी एक लीला है । इसी तरह अब प्रश्न है कि गोपियों को मान क्यों हुआ ? गोपियों का मान सांसारिक मान नहीं है । अब मान के बारे में समझो । श्रीराधारानी भी मान करती हैं । महावाणी में रसिक संत कहते हैं कि भगवान् श्रीराधा माधव के प्रेम में मान आदि लीला नहीं है । वे कहते हैं कि जहाँ रसिक राय का भवन है अर्थात् प्रेम है, वहाँ मान और विरह आदि नहीं हैं । किन्तु दूसरी ओर मान का वर्णन किया गया है । इसका समाधान क्या है ? इसके समाधान में गौड़ीय आचार्यों ने लिखा है कि श्रीजी से उनकी सखी ने एक बार पूछा कि प्रिया जी ! आप मान क्यों करती हैं ? आपका प्रेम तो श्रीकृष्ण को सुख देने के लिए है । (अब यहाँ श्रीजी ने कितना सुन्दर उत्तर दिया है, इन बातों को समझे बिना जीव प्रेम तत्त्व को समझ नहीं सकता है ।) प्रियाजी ने उत्तर दिया – सखियो ! ये लालजी (श्रीकृष्ण) बड़े ही दयालु, बड़े ही कृपालु हैं । कोई भी इनको बुलाता है तो ये वहीं पहुँच जाते हैं किन्तु इनको सम्पूर्ण रसानुभव तो मेरे ही पास होता है क्योंकि **'आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।'** अन्य जितनी भी सखी, सहचरियाँ हैं, वे तो मेरे नखचन्द्रमणि छटा की किरण रूपाहैं । (श्रीजी अंशी हैं और सखियाँ-सहचरियाँ अंश हैं । जो वस्तु अंशी के पास मिलेगी, वह अंश के पास कैसे मिल सकती है ?)

श्रीजी ने कहा कि मैं इसलिए मान करती हूँ कि प्यारे श्यामसुन्दर को मेरे पास आकर सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो ।

संसार में जो मान है, वह तो कटुता का मान है, उसमें तत्सुखसुखिता (अपने प्रेमास्पद के सुख) का भाव नहीं है । श्रीजी और गोपियों के मान में श्रीकृष्ण के सुख की भावना है, अपने सुख की उन्हें कोई कामना नहीं है । उनका मान स्वार्थ का मान नहीं है किन्तु फिर भी कृष्ण सुख का हेतु जो मान है, वह तो है ही । इसलिए यह प्रेम की कुटिल गति है ।

आचार्यों ने लिखा है कि गोपियों का मान जानबूझकर भगवदिच्छा से हुआ, श्रीराधारानी के महत्व को बताने के लिए हुआ । यहाँ दो शब्द आये हैं –

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।

(श्रीभागवतजी - १०/२९/४८)

एक शब्द है प्रशम । प्रेम का संचारी भाव जो मान उत्पन्न हुआ, उसको प्रशम अर्थात् शान्त करके प्रसाद अर्थात् विशेष कृपा करने के लिए श्रीकृष्ण गोपियों के बीच में ही अन्तर्धान हो गये । कृपा क्या है ? प्रेमेश्वरी, रासेश्वरी श्रीराधारानी की महत्ता बताना है प्रसाद अर्थात् कृपा । उनकी महत्ता को बताने के लिए ही श्यामसुन्दर श्रीजी को साथ लेकर गोपियों को छोडकर चले गये ।

अध्याय – ३०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने पर गोपियाँ कृष्णमयी हो गयीं ।

जगृहुस्तदात्मिकाः कृष्णमयी होकर वे कैसी हो गयीं ? **प्रतिरूढमूर्तयः** – ऐसा प्रतीत होता था कि ये गोपी नहीं हैं, सब की सब साक्षात् कृष्ण बन गयी हैं । वे कहने लगीं – 'मैं श्रीकृष्ण हूँ' – **असावहं ।**

वे सब परस्पर मिलकर श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगीं और उन्मत्त सी होकर एक वन से दूसरे वन में जाकर श्रीकृष्ण को ढूँढने लगीं ।

लौकिक प्रेम में ही पागलपन उत्पन्न हो जाता है फिर यह तो अलौकिक प्रेम है, इसके बारे में क्या कहा जाए ? श्रृंगार रस के दो पक्ष होते हैं । एक है वियोग, दूसरा है संयोग । जैसे सम्प्रलम्भ (संयोग) को श्रृंगार रस माना गया है, वैसे ही विप्रलम्भ (वियोग) को भी श्रृंगार रस माना गया है । इसीलिए श्रृंगार रस को रसराज माना गया है । इसके दोनों पक्षों में पूर्णता है । बाकी जितने रस हैं, वे एक पक्षीय हैं । श्रृंगार रस पूर्ण है । यह पहले ही बताया जा चुका है कि रास समस्त रसों का समूह है । इसमें संयोग भी है और वियोग भी है । इसमें स्वकीया रस भी है, परकीया रस भी है ।

वृन्दावन में वर्तमान काल में अधिकतर लोग निकुंज लीला के उपासक हैं । वे कहते हैं कि प्रिया-प्रियतम का एकान्तिक विहार सबसे ऊँचा रस है । इसके अतिरिक्त जो महारास आदि रस हैं, उसमें आधुनिक रसिकों की रुचि नहीं है । यह एक गम्भीर और साम्प्रदायिक विषय भी है क्योंकि विभिन्न सम्प्रदायों के विभिन्न आचार्य हैं और उनके भिन्न-भिन्न मत हैं । बहुत से आचार्य स्वकीया रस को लेकर चलते हैं, बहुत से आचार्य परकीया रस को लेकर चलते हैं, बहुत से आचार्य नित्य दाम्पत्य (नित्य विहार) को लेकर चल रहे हैं । वे सभी अपने-अपने रस को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं । हम भी यही मानते हैं कि राधा-माधव का एकान्तिक विहार ही सर्वोच्च है क्योंकि जितने भी रस उत्पन्न हुए हैं, राधा-माधव से ही हुए हैं, इसलिए जो उनका एकान्तिक विहार होगा, वह सबसे ऊँचा होगा क्योंकि राधा-माधव से ऊँचा कोई हो नहीं सकता परन्तु आदि पुराण में यह भी उल्लेख है कि वहाँ श्रीप्रियाजी ने श्यामसुन्दर से बड़ी विचित्र बात कही है । उन्होंने कहा – 'हे प्यारे !

यद्यपि हम दोनों चिरकाल से एकान्त में विहार कर रहे हैं, नित्य रास कर रहे हैं और मेरा मन हर्ष को भी प्राप्त हो रहा है किन्तु फिर भी मन तृप्त नहीं हो रहा है ।'

श्यामसुन्दर ने पूछा – 'फिर आप क्या चाहती हैं ?' श्रीजी ने कहा – 'महारास करो ।'

अब जो लोग निकुंज रस को सर्वोच्च मानते हैं, उनको यह बात अनुकूल नहीं पड़ेगी । तब इसका समाधान क्या है क्योंकि सबका समन्वय लेकर चलना पड़ता है । समन्वय यह है कि रस ब्रह्म है । रस अनन्त है । जैसे ब्रह्म की कोई सीमा नहीं है, ब्रह्म का मतलब है कि जो बृहत् है, अनन्त है, जिसका कोई परिसीमन नहीं कर सकता है, उसकी कोई सीमा नहीं बाँध सकता है कि ब्रह्म केवल इतना ही है । उसी प्रकार कोई व्यक्ति रस को भी बाँध नहीं सकता है । रस का परिसीमन नहीं हो सकता है । यह सिद्धान्त बिलकुल सही है । आस्वाद की दृष्टि से, आस्वाद वैचित्री के आधार पर रस का परिसीमन किया जाता है, अन्यथा रस का परिसीमन नहीं हो सकता है । आस्वाद की विविध शैलियाँ हैं – स्वकीया, परकीया आदि । फिर संदेह आता है कि प्रियाजी ने ऐसा क्यों कहा कि 'एकान्त निकुंज लीला, नित्य रास करके भी मेरा मन सुख तो प्राप्त करता है किन्तु फिर भी तृप्त नहीं हो रहा है, इसलिए महारास करो ।' ऐसा इन्होंने क्यों कहा तो इस 'क्यों' का उत्तर कोई नहीं दे सकता । इसका उत्तर यही है कि प्रेम की कुटिल गति है, रस की विचित्र गति है । इसके अतिरिक्त 'क्यों' का उत्तर नहीं है । यदि कोई उत्तर दिया भी जा सकता है तो यही है कि एकादश स्कन्ध में उद्धवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा – 'हे कमलनयन ! आप तो अकेले एक ही हैं, फिर आपकी प्राप्ति के मार्ग अलग-अलग अनेक क्यों बन गये ?' श्रीकृष्ण ने कहा – 'मैं तो एक ही हूँ परन्तु मेरी प्राप्ति के अनेक मार्ग मेरे उपासकों की रुचि वैचित्री के कारण हैं । जो मेरी प्राप्ति

करना चाहते हैं, उनमें किसी की रुचि कर्म मार्ग में विशेष होती है, किसी की रुचि ज्ञान मार्ग में विशेष है । रुचि वैचित्री के कारण एक ही वस्तु अनेकों रूपों में उपास्य बन गई है ।' उसी प्रकार तत्त्वतः एक होते हुए भी रस, आस्वाद वैचित्री, रुचि वैचित्री के कारण अनेक प्रकार से उपास्य या आस्वाद्य बन गया है । इसका यही उत्तर हो सकता है और कोई उत्तर नहीं हो सकता है । अब प्रश्न किया जाये कि प्रिया-लाल जी ऐसा क्यों करते हैं, अनेक रसों का आस्वादन क्यों करते हैं तो इसका कोई उत्तर नहीं है । प्रिया-लाल को कोई बाँध नहीं सकता है । चाहे हम हों, चाहे तुम हों, चाहे कोई विशिष्ट व्यक्ति अथवा विशिष्ट सम्प्रदाय हो, उन्हें कोई बाँध नहीं सकता है । वे तो सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं । वही रसरूप हैं, वही आस्वादक हैं, वही आस्वाद्य हैं, उनको कोई बाँध नहीं सकता है ।

कथनाशय यह है कि यहाँ रास लीला में प्रेम की कथा का जो पर्दा गिरता है तो भगवान् उसमें प्रेम के दूसरे पक्ष विरह के स्वरूप को दिखा रहे हैं कि उत्कट विरह कैसा होता है ? विरह की स्थिति कैसी होती है ? विरह की बड़ी-बड़ी स्थितियाँ होती हैं, उन सबको भगवान् दिखा रहे हैं कि विरह में साधक अपने प्रेमास्पद को ढूँढते-ढूँढते तद् रूप हो जाता है । जैसे रामायण में वर्णन आता है कि सीताजी के विरह में रामजी उन्हें ढूँढ़ते हैं, वन में पागलों की तरह कभी पक्षियों से पूछते हैं तो कभी हिरनों से पूछते हैं कि सीता कहाँ है ? हिरनी के नेत्रों को देखकर कहते हैं कि तेरे नेत्र सीता की तरह हैं, तू बता कि सीता कहाँ है ? इस प्रकार सीताजी को ढूँढते और सब जीवों से उनका पता पूछते हुए रामजी आत्मानुसन्धान भूल गये और राम-राम कहने लगे । अपना राम स्वरूप भूलकर कहने लगे कि राम कहाँ चले गये, फिर लक्ष्मणजी से पूछने लगे कि तुम कौन हो, जो मेरे पास खड़े हो ? लक्ष्मणजी कहने लगे – 'यह आपकी कैसी गति हो गयी, प्रभो ! क्या आप मुझे नहीं पहचानते हैं ?' रामजी बोले – 'नहीं, तुम कौन हो ?' लक्ष्मणजी ने

कहा – 'मैं लक्ष्मण हूँ ।' राम – 'लक्ष्मण कौन है ?' लक्ष्मण – 'आपका छोटा भाई ।' राम – 'मैं कौन हूँ ?' लक्ष्मण – 'आप राघवेन्द्र सरकार हैं । महाराज दशरथ के आप ज्येष्ठ पुत्र हैं ।' राम – 'अच्छा, तो हम यहाँ कैसे आ गये ? इस घोर वन में क्यों आये हैं ?' लक्ष्मण – 'हम लोग पिता की आज्ञा से वन में आये हैं ।' राम – 'अच्छा, फिर हम इस वन में क्या कर रहे हैं ?' लक्ष्मण – 'मैं और आप देवी को ढूँढ रहे हैं ।' राम – 'कौन देवी ?' लक्ष्मण – 'जिन जनकनन्दिनी का हरण हो गया है ।' इतना सुनते ही रामजी जोर से 'हा जनकनन्दिनी' कहकर मूर्च्छित हो गये ।

ये प्रेम की गतियाँ हैं । यह रस की विचित्र गति है । रस की अनेक अवस्थायें हैं । इनका संकलित रूप ही महारास है । इसमें प्रश्न करना कि यह क्यों किया गया, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता ।

श्रीकृष्ण के रास से सहसा अन्तर्धान होने पर अब भागवत में उनके विरह में गोपियों की विचित्र अवस्था का वर्णन किया गया है कि ब्रजगोपिकाएँ वनों में श्रीकृष्ण को ढूँढ रही हैं । वृक्षों को देखकर उनसे श्रीकृष्ण का पता पूछने लगीं । एक गोपी पीपल के वृक्ष को देखकर बोली कि यह पीपल बतायेगा कि हमारे प्यारे श्यामसुन्दर कहाँ गये ? जो विरही होता है, उसे जड़-चेतन का अनुसन्धान भूल जाता है । गोपियाँ पीपल से कृष्ण के बारे में पूछने के बाद फिर दूसरे वृक्ष से पूछती हैं – 'हे पाकर ! तुम बताओ कृष्ण कहाँ हैं ?' फिर कहने लगीं – 'अच्छा, यह वट वृक्ष बतायेगा । हे वटवृक्ष ! क्या नन्दनन्दन यहाँ से गये हैं ?' वृक्ष शांत खड़े हैं, कुछ नहीं बोल रहे हैं । तब गोपियों ने अन्य वृक्षों से पूछा – 'कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा ! क्या बलरामजी के छोटे भाई इधर आये थे ?'

यह कैसी प्रेम की लीला है, सोचो तो इस प्रेम में प्रेमी को कितना आनन्द आता होगा । इसके बाद गोपिकायें स्त्री जाति के पौधों के पास

पहुँचीं । पहले उन्होंने बड़े वृक्षों से कृष्ण का पता पूछा, फिर छोटे वृक्षों के पास गयीं और अब स्त्री जाति के पौधों से श्यामसुन्दर का पता पूछने लगीं । तुलसी को देखकर वे बोलीं – 'हे तुलसी ! तू तो गोविन्द के चरणों की प्यारी है, क्या तूने उन्हें देखा है ? प्यारी मालती ! मल्लिके ! जाती ! हे यूथिके(जूही) ! तुम्हारे पास कृष्ण अवश्य आये होंगे । बिना कृष्ण के स्पर्श के तुम्हारे अन्दर इतने सुन्दर फूल नहीं लग सकते हैं ।'

बात सही है । गोपियों ने इसके पहले ही श्यामसुन्दर के रूप के बारे में कहा था –

'यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्' (श्रीभागवतजी - १०/२९/४०)

जिधर से कृष्ण निकलते थे, गायें, पक्षी और पशु तो उनके रूप को दखकर रोमांचित होते ही थे बल्कि लता और वृक्ष भी श्यामसुन्दर के ऊपर अनन्त फूल बरसाते थे क्योंकि कृष्ण रूप को देखकर उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता था । कृष्ण रूप का प्रभाव चेतन जीवों पर भी पड़ता था और जड़ जीवों पर भी पड़ता था । चर-अचर सभी जीवों पर कृष्ण की विलक्षण रूप माधुरी का प्रभाव पड़ता था । जब श्रीकृष्ण यमुनाजी के पास पहुँचते तो उनको देखकर यमुना जल में अनन्त कमल पुष्प प्रस्फुटित हो जाते थे । चिन्मयी नीलिमा युक्त श्यामसुन्दर का अनन्त सौन्दर्य माधुर्य युक्त श्री विग्रह है, जिसकी हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते क्योंकि हम लोग मल-मूत्र पिण्ड वाले प्राणी हैं । हम लोगों ने कभी अलौकिक रूप देखा ही नहीं, इसलिए हम लोग अलौकिक रूप की कल्पना भी नहीं कर सकते ।

अस्तु, गोपियाँ मालती, मल्लिका, जाती और जूही के पुष्पों को देखकर कहने लगीं कि बिना श्रीकृष्ण के स्पर्श के इनमें इतने सुन्दर फूल नहीं खिल सकते हैं । परन्तु सभी लताएँ-वृक्ष शान्त हैं, कोई भी गोपियों के प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा है ।

इसके बाद गोपियाँ बहुत से फलों के वृक्षों के पास गयीं । वहाँ आम के, जामुन के वृक्ष लगे थे, कदम्ब, कचनार, बेल, आक, मौलसिरी आदि के वृक्ष थे । उन सभी वृक्षों से ब्रजदेवियों ने कहा –

'शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः' (श्रीभागवतजी - १०/३०/९)

'हे वृक्षो ! तुम हमें कृष्ण का मार्ग बताओ, प्यारे श्यामसुन्दर कहाँ हैं ?' पृथ्वी की ओर देखकर गोपियों ने कहा – 'पृथ्वी देवी ! तुम्हारे वृक्षों और लताओं में असंख्य पुष्प खिल रहे हैं । अवश्य ही तुमने श्रीकृष्ण का चरण स्पर्श प्राप्त किया है ।'

इसके बाद गोपियों को हिरनियाँ दिखायी पड़ीं । उन्हें देखकर गोपियों ने कहा – 'अरी हरिनियो ! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर कहीं अपनी प्राणप्रिया के साथ तुम्हारे नयनों को परमानन्द प्रदान करते हुए इधर से ही तो नहीं गये हैं ? देखो, यहाँ उनकी कुन्दकली की माला की अत्यन्त मधुर सुगन्ध आ रही है, जो उनकी कान्ता के अङ्ग-सङ्ग से लगे हुए कुच-कुङ्कुम से अनुरञ्जित रहती है ।'

यहाँ पर आचार्यों ने लिखा है कि जिस समय श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए, तीन प्रकार की मालायें पहनकर वे गये थे - वैजयन्ती माला, तुलसी तथा कुन्द की माला । गोपियाँ कहती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी प्रिया के कंधे पर हाथ रखकर श्यामसुन्दर यहाँ से गये हैं और इन वृक्षों ने उन्हें प्रणाम किया है ।

वास्तव में ही वृक्षों ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया था क्योंकि दिव्य अप्राकृत धाम में वास करने के कारण ये वृक्ष भी अप्राकृत बन गये हैं । भगवान् ने प्रारम्भ में ही योगमाया का आश्रय ले लिया, उस समय धाम प्राकृत नहीं रहा जैसे आजकल धाम में जड़ वृक्ष हैं । उस समय योगमाया के प्रभाव से सब कुछ अप्राकृत बन गया । सारा रंगमंच ही अप्राकृत बन गया । अप्राकृत रंगमंच पर अप्राकृत प्रेम की अनुभूति हो

रही थी । अप्राकृत लीला का आस्वादन हो रहा था । इसीलिए गोपियाँ जो कुछ कह रही हैं, वे केवल भावुकता में नहीं कह रही हैं । गोपियों ने वृक्षों को देखकर कहा – 'हे वृक्षो ! श्रीकृष्ण तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार करते हुए, प्रेम के नेत्रों से तुमको देखते हुए यहाँ से गये हैं ।' फिर आपस में वे कहती हैं कि ये वृक्ष कुछ बोलते नहीं हैं । गोपियों ने वृक्षों से कहा – 'कृष्ण के बारे में हमें कुछ तो बताओ, कुछ तो बोलो ।'

इस प्रकार लताओं-वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती हुई गोपियाँ कृष्णमय बन गयीं । जैसे ध्याता, ध्येय और ध्यान – यह त्रिपुटी होती है । इस त्रिपुटी का सविकल्प समाधि में तो भेद है किन्तु निर्विकल्प समाधि में तीनों एक हो जाते हैं । ध्याता, ध्येय और ध्यान में ध्याता और ध्यान मिटकर ध्येय बन जाते हैं । निर्विकल्प समाधि में योगियों की त्रिपुटी एक होती है । उनकी समाधि नेत्र बंद करने पर होती है तथा वह सुषुप्त समाधि है, जबकि गोपियों की श्रीकृष्ण विरह में जागृत समाधि लग गयी । यहाँ पर श्रीकृष्ण तथा उन्हें ढूँढने वाली गोपियाँ, ध्याता गोपियाँ तथा ध्येय श्रीकृष्ण और ध्यान, तीव्र प्रेम की स्थिति में ध्याता और ध्यान तो गायब हो गये और सब गोपियाँ श्रीकृष्ण बन गयीं । आँखें बंद करके योगी लोग जो समाधि लगाते हैं तो आठवीं स्थिति पर समाधि लगती है । नवीं स्थिति पर निर्विकल्प समाधि लगती है । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा आदि करते-करते सविकल्प समाधि लगती है, इसके बाद बड़ी कठिनाई से निर्विकल्प समाधि तक पहुँचते हैं । परन्तु यहाँ गोपियों के नेत्र खुले हुए हैं, फिर भी इनकी वास्तविक समाधि लगी है, सभी गोपियाँ श्रीकृष्णमयी बन गयीं । यह प्रेम की विचित्रता है । सभी गोपियाँ कृष्णमयी होकर कृष्ण लीला करने लगीं । यह अनुकरण लीला नहीं है, यह तो स्वतः अनुकरण हो रहा है, कृष्णमयी बन गयी हैं वे । एक तो नाट्य रस में

अनुकरण किया जाता है, जो अनुकारक होता है, वह अनुकरण के द्वारा अनुकार्य का अनुकरण करता है । वहाँ अनुकारक अनुकार्य नहीं बन सकता है, अनुकरण अवश्य करता है और यदि कहीं उसको भाव समाधि लग जाती है तो भी वह अनुकार्य नहीं बन सकता है । इसीलिए गोपियों द्वारा जो लीला की गयी, वह अनुकरण लीला नहीं है, यह तो विरह में प्रेम की तरंग है, प्रेम की एक अवस्था है, जो स्वतः उत्पन्न हो गयी है ।

अस्तु, एक गोपी पूतना बन गयी और दूसरी गोपी बाल कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी । एक गोपी कृष्ण बन गयी, दूसरी गोपी तृणावर्त बनकर उसे उठा ले गयी । एक गोपी बाल कृष्ण की तरह पाँव घसीटकर घुटनों के बल चलने लगी । एक गोपी वत्सासुर बन गयी, एक गोपी बकासुर बन गयी । दूसरी गोपियों ने अलग-अलग कृष्ण बनकर वत्सासुर व बकासुर बनी हुई गोपियों को मारने की लीला की । एक गोपी श्रीकृष्ण की तरह खड़ी होकर वंशी बजाने लगी, दूसरी गोपियाँ ग्वाल बालों की तरह उसकी 'वाह-वाह' कहकर प्रशंसा करने लगीं । एक गोपी अपने को श्रीकृष्ण समझकर दूसरी गोपी के गले में बाँह डालकर चलती और अन्य गोपियों से कहती – 'मित्रो ! तुम लोग मेरी मनोहर चाल देखो ।' इस प्रकार वह श्रीकृष्ण की तरह से मस्त चाल से चलती । एक गोपी गिरिराज लीला करती हुई स्वयं श्रीकृष्ण बनकर कहने लगी – 'अरे ब्रजवासियो ! तुम लोग आँधी-पानी से मत डरो । मैं तुम लोगों के लिए गिरिराज पर्वत उठाता हूँ ।' ऐसा कहकर वह अपनी चूनरी ऊपर तान देती । उसकी वहीं समाधि लग गयी । गिरिराज धरण बनकर वह खड़ी हो गयी । एक गोपी कालिय नाग बन गयी तो दूसरी गोपी कृष्ण बनकर उसके सिर पर पैर रखकर खड़ी होकर कहने लगी – 'अरे दुष्ट साँप ! तू यहाँ से चला जा ।' ऐसा कहकर वह कृष्ण की तरह कालिय बनी गोपी पर नृत्य करने लगी, जैसे कृष्ण ने

कालिय नाग के फनों पर नृत्य किया था । एक गोपी बोली – 'अरे ग्वाल बालो ! वन में बड़ी भयानक आग लगी है, तुम लोग अपने नेत्र बंद कर लो, मैं अभी इस अग्नि का पान करता हूँ ।' इस तरह गोपियाँ कृष्ण बनकर कृष्ण लीला करने लगीं । इसी समय उन्हें वन के बीच में किसी स्थान पर श्यामसुन्दर के चरण चिह्न दिखाई पड़े । उनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश और जौ के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । श्रीकृष्ण चरण चिह्नों के साथ ही उनकी वधू श्रीराधा रानी के भी चरण चिह्न दिखाई पड़े । कोई पूछ सकता है कि ऐसा कैसे हो सकता है, भागवत में तो 'राधा' नाम कहीं है ही नहीं । तब वे चरण चिह्न राधा रानी के कैसे कहे जा सकते हैं ? ऐसा आचार्यों ने कहा है और ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसका स्पष्ट प्रमाण है । वहाँ यह स्पष्ट लिखा है कि वे चरण चिह्न राधा रानी के थे । दूसरी बात यह है कि श्रीकृष्ण की नित्य वधू राधा रानी के अतिरिक्त और कौन हो सकती है ?

'वध्वाः पदैः सुपृक्तानि' – (श्रीभागवतजी - १०/३०/२६)

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि भागवत में 'राधा' नाम क्यों नहीं है ? बहुत से लोग ऐसा प्रश्न करते हैं । इसका स्पष्ट उत्तर तो रसिक महापुरुषों ने दिया है और रसिक महापुरुषों ने जो कहा, उनकी बात को हमें आँख बंद करके मान लेना चाहिए क्योंकि वे साक्षात् श्रीजी के निकुंज की सहचरी हैं । प्रथम उत्तर हरिराम व्यास जी ने दिया है, जो स्वयं विशाखा सखी के अवतार हैं ।

परम धन राधा नाम आधार ।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, निसदिन बारम्बार ।

राधा नाम को श्यामसुन्दर नित्य ही अपनी बाँसुरी पर गाया करते हैं

श्रीसुक प्रकट कियो नहिं, याते जानि सार कौ सार ।

व्यास जी कहते हैं कि शुकदेवजी ने राधा नाम को सार का सार, गुप्त रहस्य मान करके स्पष्ट रूप से उन्होंने भागवत में राधा नाम नहीं लिया ।

एक अन्य ग्रन्थ में लिखा है कि राधा नाम सुनने पर शुकदेवजी को छः महीने की समाधि लग जाती थी । अतः उन्होंने श्रीमद्भागवत कथा कहते समय स्पष्ट रूप से राधा नाम का उच्चारण नहीं किया क्योंकि उन्हें सात दिनों में ही परीक्षित् जी का हित करना था । वैष्णव आचार्यों ने बताया है कि एकादश स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा है

परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।

(श्रीभागवतजी - ११/२१/३५)

जो बात परोक्ष में कही जाती है, वह मुझे प्रिय है । अतः यह स्वयं भगवान् की इच्छा है कि गुप्त रहस्य को परोक्ष में ही कहना चाहिए ।

काव्य शास्त्र की दृष्टि से भागवत में ऐसी परम्परा नहीं है । भागवत में किसी भी गोपी का नाम नहीं दिया गया है । जब किसी भी गोपी का नाम नहीं है तो फिर श्रीजी का नाम भी नहीं है । इन्हीं कारणों से भागवत में श्रीजी का नाम नहीं दिया गया है । परन्तु १०/३०/२६ में स्पष्ट रूप से लिखा है – **वध्वाः** । श्रीकृष्ण की नित्य वधू राधारानी ही हैं । इसीलिए कुछ लोग स्वकीया भाव से श्रीजी की उपासना करते हैं । एक और सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि श्रीजी ही कृष्ण के साथ गयी हैं । इसे भागवत के द्वारा ही आचार्यों ने सिद्ध किया है, कैसे ? १०/३०/२६ में दो शब्द लिखे हैं – वध्वाः और सुपृक्त ।वध्वाः अर्थात् वधू, जो नित्य संगिनी होती है, उसे वधू कहते हैं । सुपृक्त शब्द में 'पृक्त' का अर्थ है मिलना और सुपृक्त का अर्थ है अच्छी तरह मिलना । गोपियाँ कह रही हैं कि इस वधू के चरण चिह्न श्रीकृष्ण के चरण चिह्न से अच्छी तरह मिल रहे हैं ।

पद्म पुराण में श्रीकृष्ण के चरणों में सोलह चिह्न बताये गये हैं । स्कन्द पुराण में श्रीकृष्ण चरणों में उन्नीस चिह्न बताये गये हैं । इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के दायें चरण में जो चिह्न हैं, वे चिह्न प्रियाजी के बायें चरण में हैं तथा प्रियाजी के दायें चरण में जो चिह्न हैं, वे श्रीकृष्ण के बायें चरण में हैं । इसीलिए भागवत में लिखा है – **वध्वाः पदैः सुपृक्तानि** श्रीकृष्ण के चरण चिह्न उनकी वधू के चरण चिह्नों से अच्छी प्रकार मिल रहे हैं । इसलिए ये प्रिया जी के चरण चिह्न हैं । आचार्यों ने एक बात और बताई है कि श्रीकृष्ण के चरण चिह्न दो से मिलते हैं, एक राधा रानी के चरण चिह्नों से और दूसरे लक्ष्मीजी के चरण चिह्नों से । अतः वृन्दावन की भूमि में या तो लक्ष्मीजी के चरण चिह्न हो सकते हैं या राधा रानी के । अब लक्ष्मीजी के चरण चिह्न तो वे हो नहीं सकते क्योंकि रास में तो लक्ष्मीजी आयी नहीं । यह एक हेतु है । दूसरा हेतु यह है कि लक्ष्मीजी देवी हैं, उनके चरण पृथ्वी को छू नहीं सकते और यहाँ श्रीजी स्पष्ट ब्रजभूमि पर विचरण कर रही हैं, इसलिए वे चरण चिह्न श्रीजी के ही सिद्ध हुए । इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण में वधू राधारानी को कहा गया है तथा दूसरा कारण यह है – **गोकुले वधूत्वेन् प्रसिद्धायाः राधायाः** – यहाँ गोकुल से मतलब है नन्दगाँव-बरसाने में, जहाँ आज तक राधारानी को नन्दनन्दन की वधू (बहू) माना जाता है ।

रंगीली होली के दिन जब वृषभानुजी श्रीकृष्ण को होली खेलने के लिए बरसाने बुलाते हैं और नन्दनन्दन अपनी ससुराल में होली खेलने के लिए आते हैं तो नन्दगाँव का हर गोस्वामी यही गाता है –

अरे बरसानो है असल सुसराल,
हमारो न्यारो नातो ।

बरसाना हमारी असली ससुराल है । इसी बात को आचार्यों ने भी माना है । अतः १०/३०/२६ में जो वधू शब्द आया है, वह राधारानी

के लिए ही है । इसके अतिरिक्त आचार्यों ने यहाँ तक कह दिया कि भागवत में राधा नाम है । इसके लिए उन्होंने इस श्लोक का प्रमाण दिया –

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।

(श्रीभागवतजी - १०/३०/२८)

अनयाऽऽराधितो में 'राध्' धातु से ही राधा नाम बना है । संस्कृत में जितने भी शब्द, नाम आदि बनते हैं, वे धातु से बनते हैं । जैसे राम शब्द रम् धातु से बना है ।

'रमन्ते योगिनो अस्मिन् इति रामः'

इसी प्रकार कृष्ण नाम 'कृष्' धातु से बना है, राधा नाम 'राध्' धातु से बना है, वही राध् धातु इस श्लोक में लिखी है –

अनयाऽऽराधितो नूनं इसमें एक वचन है, जबकि वहाँ बहुत सी गोपियाँ हैं लेकिन वास्तव में अनया अर्थात् इनके द्वारा आराधितो – श्रीकृष्ण आराधित हुए हैं । यही राधा नाम की व्युत्पत्ति है ।

राधा नाम की व्युत्पत्ति है – **'कृष्णं आराधयति इति राधा'**

अथवा **'कृष्णेन आराध्यते इति राधा'** जो कृष्ण की आराधना करती हैं, वे हैं राधा अथवा कृष्ण से जो आराधित होती हैं या कृष्ण जिनकी आराधना करते हैं, वे हैं राधा । अतः राधा नाम की व्युत्पत्ति यही है और यहाँ स्पष्ट लिखा है – **'अनयाऽऽराधितो नूनम्'** इन्हीं अकेली के द्वारा कृष्ण आराधित हुए हैं । इनके अलावा आज तक कृष्ण को कोई वश में नहीं कर पाया । तो श्रीस्वामिनी जी के अतिरिक्त और कौन हो सकती हैं ? इसी श्लोक को व्याकरण की दृष्टि से देखो –

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३०/२८)

'अनया' – इसको सम्बोधन बनाओ और राधितः गोविन्दः भगवान् हरिरीश्वरः – भगवान् राधा के पास गये हैं ।

राधित शब्द् कैसे बना है, राधां इतः – तृतीया को एक भाग से समास करके अर्थात् जो राधा को प्राप्त हुए हैं । राधा + इतः, राधा + इत में समास करके यदि तुम सन्धि करोगे तो राधेत् बनना चाहिए तो कहते हैं कि यहाँ गुणसन्धि नहीं होगी । राधा + इतः में जो 'इ' है और राधा में जो बड़ा 'अ'(आ) है, वह जाकर छोटी 'इ' में मिलकर राधित बन गया है । इसलिए व्याकरण के द्वारा लोगों ने सिद्ध कर दिया कि यह राधा नाम है । इस प्रकार से ऐसा आचार्यों ने सिद्ध किया है ।

अस्तु, श्रीजी के चरणचिह्न देखकर गोपियों ने कहा –

'यही गोपी धन्य है, जो श्यामसुन्दर के साथ गयी है । इसके लिए श्यामसुन्दर हम लोगों को छोड़कर चले गये ।'

'राधा तत्त्व' की महत्ता, उनका बड़प्पन अब गोपिकाओं को मालूम हो रहा है कि वास्तव में हम सबकी चूड़ामणि तो यही है ।

इसीलिए श्लोक '१०/२९/४८' में जब श्यामसुन्दर अन्तर्धान हुए तो शुकदेवजी ने कहा –

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।

गोपियों का मान दूरकर उन पर कृपा करने के लिए श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये । श्यामसुन्दर जिस पर बहुत कृपा करते हैं, उसको राधा तत्त्व का ज्ञान कराते हैं । इसलिये अब श्रीकृष्ण की कृपा से गोपियों को राधारानी की महिमा का ज्ञान हुआ । वे कहने लगीं कि श्रीकृष्ण इनके लिए हम लोगों को छोड़कर चले गये, अतः इनकी प्रीति विशेष है । परन्तु अभी भी गोपियों में थोड़ा अहं है । वे कहती हैं कि अवश्य ही प्रियाजी हमसे अधिक रूपवती हैं किन्तु हमारे जैसा प्रेम उनमें नहीं हो सकता ।

अभी भी पूरी तरह से गोपिकाओं का अहं नहीं गया । ऐसा इसलिए क्योंकि हर व्यक्ति अपने प्रेम का गर्व रखता है कि मेरे अन्दर इतना प्रेम है । प्रेम की परीक्षा कैसे होती है ? प्रेम की परीक्षा होती है कसौटी और विरह में । जैसे किसी से तुम्हारा प्रेम है तो इसकी परीक्षा यही है कि जब वह नहीं रहेगा तो तुम उसकी याद में रोओगे । जैसे तुम्हारे पड़ोस में कोई आदमी रहता है और वह तुम्हारा वैरी है । यदि तुम्हारी संतान की मृत्यु होगी तो वह नहीं रोयेगा । इसी तरह उसका बच्चा मरेगा तो तुम नहीं रोओगे । तुम सोचोगे कि अच्छा हुआ, जो इसका बच्चा मर गया क्योंकि उससे तुम्हारा वैर है । अतः प्रेम की कसौटी यही है कि जिसके विरह में हम जितना अधिक रोयेंगे, उतना ही हमारा प्रेम है । गोपियाँ यह तो समझ गयीं कि राधा तत्त्व विशेष है किन्तु उन्हें अपने प्रेम का जो दर्प (गर्व) है, उसको दूर करने के लिए श्यामसुन्दर थोड़ी देर के लिए प्रियाजी को छोड़कर चले जायेंगे और जब गोपियाँ श्रीजी का विरह देखेंगी तब इन्हें पता पड़ जायेगा कि हमारे विरह में और श्री जी के विरह में क्या अंतर है ? तब उनको पता पड़ेगा कि श्रीजी के विरह के आगे हमारा विरह तो एक अंश भी नहीं है, तब गोपियाँ श्रीजी की आधीनता स्वीकार करके उनके साथ श्रीकृष्ण के विरह में गीत गायेंगी और तब वे प्रकट होंगे ।

अस्तु, श्यामसुन्दर और प्रियाजी की चरण रज देखकर गोपियाँ बोलीं – 'यह वही चरण रज है, जिसको ब्रह्माजी, शिवजी और लक्ष्मीजी अपना अघ दूर करने के लिए अपने मस्तक पर धारण करते हैं ।'

अघ का अर्थ होता है पाप । अब यहाँ प्रश्न होता है कि ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीजी में तो पाप है नहीं, फिर गोपियों ने ऐसा क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि अघ का अर्थ पाप होता है किन्तु हर जगह इसका अर्थ पाप नहीं लगेगा । प्रेमी जन अपने विरह को दूर करने के लिए अपने प्रेमास्पद की चरण रज मस्तक पर धारण करते हैं ।

ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यर्घनुत्तये ।

(श्रीभागवतजी - १०/३०/२९)

अपने विरह को दूर करने के लिए ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मीजी इस ब्रज रज को अपने मस्तक पर धारण करते हैं । आज तक लक्ष्मीजी बेलवन में तपस्या कर रही हैं । यह ब्रजरज बड़ी भाग्यशालिनी है ।

गोपियाँ कहने लगीं – अरी सखियो ! **यैका** – यह एक ही गोपी अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/३०/३०)

यह एकान्त विहार की अधिकारिणी है । एकान्तिक निकुंज लीला की अधिकारिणी यही है । रहो शब्द का अर्थ निकुंज से किया जाता है । आदि पुराण में श्रीजी ने श्यामसुन्दर से 'रहो विहार' की बात कही है । रहो विहार का मतलब है निकुंज लीला । राधा रानी ही निकुंजेश्वरी हैं । इसीलिए यहाँ गोपियों ने उनके लिए कहा – 'रहो भुङ्क्ते'

आगे चलकर कुछ गोपियों ने कहा कि यहाँ तो उस गोपी के चरण चिह्न दिखाई ही नहीं देते । तब दूसरी गोपियों ने कहा कि यहाँ से श्यामसुन्दर उस गोपी को अपने कंधे पर चढ़ाकर ले गये हैं । **अत्रावरोपिता** – और यहाँ आकर उन्होंने उसे उतारा है । **अत्र प्रसूनावचयः** – यहाँ पर श्यामसुन्दर ने पुष्प चयन किये हैं (फूलों को चुना है) । यह सब निकुंज लीला है । गोपियाँ कहती हैं – 'यहाँ श्यामसुन्दर ने अपनी प्रिया की वेणी गूँथी है ।'

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/३०/३४)

लालजी किशोरीजी की वेणी गूँथा करते हैं । वे कहते भी हैं –

बेनी गूँथ कहा को जानै मेरी सी तेरी सौं ।

देखो, यहाँ आत्माराम होकर भी भगवान् ने रमण किया ।

कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/३०/३५)

यह बड़ा अटपटा शब्द है । यहाँ श्यामसुन्दर ने दिखाया कि कामी कितना दीन हो जाता है तथा स्त्रियों की दुरात्मता को भी दर्शाया है । 'दुरात्मता' आदि शब्द ऐसे हैं कि इनका अर्थ हम जैसे लोग नहीं लगा सकते हैं । इनका अर्थ केवल आचार्य लोग ही लगा सकते हैं । दुरात्मता शब्द तो ऐसा है कि प्रियाजी तो दूर, गोपियों के लिए भी ऐसा शब्द कहना ठीक नहीं है । इसे समझने के लिए इसी श्लोक में 'कामिनां' के बाद 'दर्शयन्' शब्द को पकड़ो । दर्शयन् का अर्थ हुआ दिखाने के लिए । दुरात्मता वहाँ है नहीं, केवल लीला के लिए दिखा रहे हैं । दर्शयन् माने जानबूझकर दिखाना, अभिनय या नाटक करना । इस श्लोक में 'कामिनां दैन्यं कुर्वन्' नहीं कहा गया है अर्थात् 'दीनता करते हुए' नहीं कहा गया है बल्कि 'दर्शयन्' अर्थात् 'दिखाते हुए' कहा गया है । दूसरी बात यह कि स्त्रियों की दुरात्मता क्या होता है ? जो लोग नासमझ हैं, रस को नहीं जानते हैं, वे लोग इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द दुरात्मता का अर्थ दुष्टता लगायेंगे । रस शास्त्र में दुरात्मता क्या है ? जो रसिक होते हैं, श्रृंगार रस के जानकार होते हैं, वे इसे जानते हैं । रस में दुरात्मता ऐसी नहीं है जैसे पाप-पुण्य वाली होती है । रस में दुरात्मता का मतलब है कि स्त्रियों की दो गति होती है – लज्जा और वामा । मिलन में लज्जा और वामा गतियाँ अवरोधक हैं । मान आदि वामा गति तथा नेति-नेति शब्द श्रृंगार रस में दुरात्मता माने जाते हैं । एकान्त विहार के समय श्रीजी को मान हुआ, इसलिए श्रृंगार रस की दृष्टि से यहाँ दुरात्मता शब्द लिखा है ।

आचार्यों ने एक बहुत बढ़िया बात लिखी है ।
श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

यत्र यत्र मदङ्गसङ्गवत्त्वं तत्र तत्र न दुरात्मत्वं यथा लक्ष्म्यादिः या मन्दङ्गसङ्गवत्त्वं न भवन्ति ता दुरात्मानो भवन्ति यथा गोप्यादिभिन्नाः स्त्रियः इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां सामान्यस्त्रीणां दुरात्मतां दर्शयन् लीला –

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वृहत् क्रम सन्दर्भ)

जिस-जिसको श्रीकृष्ण का अंग-संग मिल गया, उसमें दुरात्मता नहीं रही । भगवान् के श्रीविग्रह का संग जिसको मिल गया, वह दुरात्मा नहीं रहा जैसे लक्ष्मी आदि तथा जिनको श्रीकृष्ण का अंग-संग नहीं मिला, वे दुरात्मा हैं जैसे लौकिक स्त्रियाँ या लौकिक पुरुष । जिसे श्रीकृष्ण का अंग-संग मिल गया, वहाँ तो दुरात्मता है ही नहीं । जीवगोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थ वृहत् क्रम सन्दर्भ में ऐसा लिखा है कि सामान्य स्त्रियों की दुरात्मता को शिक्षा के लिए प्रभु ने अपनी लीला में दिखाया है । विश्वनाथ चक्रवर्तीजी भी अपनी टीका में लिखते हैं – **स्त्रीवशैश्च न भाव्यम्** - जो पुरुष बहुत अधिक स्त्री के वश में होगा, उसे दीन बनना पड़ेगा । एक और बहुत बड़ी शिक्षा है, इसे तो रसिक ही समझ सकते हैं । श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी आगे लिखते हैं – **दीनैर्भवितव्यम्** - जो सच्चा रसिक प्रेमी है, उसे भी दीन बनना चाहिए । जो रस को जानता है, उसे तो दीन बनना ही पड़ेगा जैसे हरिवंश महाप्रभुजी का एक पद है, एक सखी कह रही है –

प्रीति की रीति रंगीलो ही जानै ।

भगवान् के अनेक अवतार हुए हैं किन्तु इस प्रेम को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता, जैसे रामचन्द्रजी हुए किन्तु वे जनकनन्दिनी के चरण नहीं दबा सकते हैं क्योंकि वहाँ स्त्री-पुरुष की मर्यादा है । इसलिए इस प्रेम को तो केवल श्रीकृष्ण ही जान सकते हैं ।

जद्यपि सकल लोक चूडामणि,
दीन अपनपौ मानै ।

यद्यपि वे अखिल ब्रह्माण्ड नायक हैं किन्तु जब श्रीजी मान करती हैं तो इतने दीन बन जाते हैं कि श्रीजी के चरणों में गिर पड़ते हैं । इसलिए श्यामसुन्दर श्रीजी के साथ अपनी लीला के माध्यम से शिक्षा दे रहे हैं कि जो रसिक है, उसे दीन बनना ही पड़ेगा ।

अस्तु, अब यहाँ से आगे गोपियों को राधारानी के प्रेम की महिमा, उनके विरह को दिखाने के लिए श्यामसुन्दर ने भूमिका रची । उन्होंने विचार किया कि ब्रजगोपीजन इतना तो समझ ही गयीं कि एक अकेली गोपी जो श्यामसुन्दर के साथ गयी है, वह सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी है परन्तु अभी ब्रजदेवियों के मन में ऐसा अहंकार शेष है कि वह हमारे समान प्रेम श्यामसुन्दर से नहीं कर सकती है । इसलिए जब वे राधारानी का विरह देखेंगी तब इन्हें उनके प्रेम के महत्व का ज्ञान होगा । ऐसा विचार करके श्यामसुन्दर ने आगे की लीला रची । श्रीजी ने श्यामसुन्दर से कहा – 'मुझसे अब और आगे नहीं चला जाता । अब तुम जहाँ भी चलना चाहो, मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर ले चलो ।' श्यामसुन्दर ने कहा – 'अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे कंधे पर चढ़ लो ।' उनकी बात सुनकर जैसे ही श्रीजी उनके कंधे पर चढ़ने चलीं त्यों ही श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये । अब श्रीकृष्ण के गोपियों के बीच से अन्तर्धान होने पर उनका विरह तो ऐसा हुआ कि वे वन-वनान्तरों में, लता-वृक्षों के पास जाकर उनसे श्यामसुन्दर का पता पूछने लगीं । आम के पेड़ के पास जातीं, मालती से पूछतीं – 'हे मालती ! क्या तूने प्यारे श्यामसुन्दर को देखा है ? हे चम्पा ! तूने श्यामसुन्दर को देखा है । बिना कृष्ण के तेरे अन्दर इतने पुष्प नहीं हो सकते ।' इसके बाद गोपिकाएं श्रीकृष्ण लीला का अनुकरण करने लगीं । परन्तु जब श्रीजी

के सामने से श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए तो वे उनके विरह में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पायीं और वहीं विलाप करने लगीं –

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३०/४०)

'हे नाथ ! हे रमण ! हे प्यारे ! हे महाभुज ! तुम कहाँ हो, कहाँ हो, मेरे प्यारे सखा, मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ । शीघ्र ही मुझे अपनी सन्निधि का अनुभव कराओ और दर्शन दो ।' ऐसा कहकर क्रन्दन करती हुई वे एक कदम भी आगे नहीं चल पायीं, प्रेम की उत्कट अवस्था महाभाव में पहुँचकर वे जाड्य अवस्था को प्राप्त हो गयीं । इधर गोपियाँ भी श्यामसुन्दर को ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँचीं । उन्होंने देखा कि उनकी सखी तो अपने प्यारे के वियोग से दुखी होकर अचेत हो गयी है । तब उन्होंने उसे जगाकर पूछा – 'अरी सखि ! तुम तो हम सब गोपियों में सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी थी, क्या वह निष्ठुर तुमको भी छोड़कर चलागया ?'

किशोरीजी ने यह सिखाया कि प्रेम में मान जो भी करेगा, उसे विरह की प्राप्ति होगी । **मानप्राप्तिं च माधवात्** – पहले तो श्रीजी ने गोपियों को बताया कि माधव ने उन्हें कितना मान दिया । **अवमानं च दौरात्म्यादु** – अभिमान ही दौरात्म्य का कारण है । अब दौरात्म्य का मतलब क्या है ? दुरात्मा से दौरात्म्य शब्द बना है । दुरात्मा उसे कहते हैं, जिसका मन खराब होता है । **'दुरात्मना भावं दौरात्म्यम्'** । अब ये तो श्रीजी हैं, इनका मन कहीं खराब हो सकता है ? फिर यहाँ दौरात्म्य का मतलब क्या है तो कुछ आचार्य इसका अर्थ लगाते हैं –

'श्रीकृष्णाद्दूरे आत्मा देहो यस्याः' आत्मा माने शरीर । दूर हो गयी है आत्मा अर्थात् शरीर जिनका श्रीकृष्ण से । कृष्ण उनसे दूर हो

गये हैं, यही है दौरात्म्य । यह अर्थ आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने लगाया है । यही बात जीव गोस्वामीजी ने भी लिखी है ।

अस्तु, **विस्मयं परमं ययुः** – श्रीजी की बात सुनकर सभी गोपियों को बड़ा आश्चर्य हुआ । इसके बाद वन में जहाँ तक चन्द्रमा का प्रकाश था, वहाँ तक गोपियाँ उन्हें ढूँढती हुई गयीं परन्तु आगे घना अन्धकार देखकर वे वापस लौट आयीं । वापस आकर गोपियाँ श्रीकृष्ण गुणगान करने लगीं । श्रीजी को साथ लेकर ब्रजगोपियों ने यमुना जी के पुलिन पर जिस गीत को गाया, उसे गोपी गीत कहते हैं ।

अध्याय – ३१

गोपी गीत एक छोटा सा गीत है और इसमें केवल उन्नीस श्लोक हैं । केवल इन उन्नीस श्लोकों के गान से ही प्रसन्न होकर श्यामसुन्दर प्रकट हो गये । गोपियों ने इस प्रकार गाया –

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका -
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/१)

हे श्याम ! यह ब्रजभूमि विजय को प्राप्त हो रही है । लक्ष्मी जैसी देवी भी इसका आश्रय ले रही हैं किन्तु हम गोपिकायें जो तुम्हारी हैं, तुम्हारे लिए ही अपने प्राण धारण कर रही हैं, तुम्हारी होकर भी तुमको ढूँढ रही हैं । यह कितने आश्चर्य की बात है ।

शरदुदाशये साधुजातसत्
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।

सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/२)

तुम्हारे नेत्र जो शरत्कालीन जलाशय में खिले हुए सुन्दर से सुन्दर कमल के सौन्दर्य को चुराने वाले हैं । उन नेत्रों से तुमने हमें देखा, देखकर घायल कर दिया । क्या यह वध नहीं है ? हमने तो जिस दिन से तुम्हारे नेत्रों को देखा, हमारे लोक-परलोक सब नष्ट हो गये ।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/३)

क्या तुमने हमें यही दिन देखने के लिए जिलाया था ? याद करो, तुमने यदि कालिय नाग के विषैले जल से न बचाया होता तो सारे ब्रजवासी यमुना का विषैला जल पी-पीकर मर गये होते । याद करो, तुमने अघासुर आदि भयंकर राक्षसों से ब्रजवासियों को बचाया । जब इन्द्र ने ब्रज के ऊपर घनघोर वर्षा की, प्रलय के मेघ भेज दिए । उस प्रलयंकारी वर्षा से गोप-गोपियों सहित सम्पूर्ण ब्रज नष्ट हो गया होता । तुमने गिरिराज पर्वत धारण करके उस भयंकर वर्षा से सारे ब्रज की रक्षा की । क्या तुमने हमें इसीलिए बचाया कि आज तुम्हारे विरह की पीड़ा से हम जलती रहें ? तुमने अनेक प्रकार के भयों से सदा हम लोगों की रक्षा की है ।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/४)

तुम केवल गोपिकानन्दन ही नहीं हो । वस्तुतः तुम समस्त शरीरधारियों के हृदय में रहने वाले, उनके साक्षी और अन्तर्यामी हो,

सबके ईश्वर हो । अथवा इसका दूसरा भाव यह है कि तुम बड़े कठोर हो, गोपिकानन्दन (यशोदानन्दन) तो तुम हो ही नहीं । तुम हमें छोड़कर, अन्तर्धान होकर अपनी ईश्वरता दिखा रहे हो ।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/५)

हे प्यारे ! तुम अपना करकमल हमारे सिर पर रख दो । जो तुम्हारे चरणकमलों की शरण में आ जाता है, तुम्हारा करकमल उसे अभय प्रदान करता है कि घबराओ नहीं । तुम्हारे करकमल इस प्रकार शरणागतों को अभय प्रदान करते हैं, वे अभय स्वरूप हैं ।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/६)

हे ब्रजवासियों की पीड़ा हरने वाले, तुम अपनी मुस्कान से मानिनियों के गर्व को नष्ट कर देते हो । सखे ! हम तुम्हारी दासियाँ हैं, हमें अपने मुखकमल का दर्शन कराओ ।

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/७)

श्यामसुन्दर ! तुम्हारे चरणकमल शरणागतों के समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं । उन चरणकमलों से तुम ब्रज की घास पर चलते हो । महाविषधर कालिय नाग, जिसके भीषण विष से देवता भी डरते थे, जो गरुड़ तक से लड़ बैठा, तुम्हारे चरण कमलों ने उस महाविषधर के विष को भी शीतल कर दिया ।

जिस समय श्रीकृष्ण कालिय दह में पहुँचे, सारा जल विष की ज्वाला से खौल रहा था परन्तु श्रीकृष्ण के चिन्मय देह का स्पर्श पाते ही सारा जल शांत हो गया ।

हे कृष्ण ! ऐसे तुम्हारे चरणकमल हैं, जो कालिय नाग के विष को भी शीतल कर देते हैं तो हमारे भी इस विरह के विष को शीतल करो । इसके लिए तुम अपने चरणकमलों को हमारे वक्षः स्थल पर रखो ।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/८)

ऐसा कौन होगा, जो तुम्हारी मीठी वाणी सुनकर मोहित न हो । बड़े-बड़े विद्वान् तक उसे सुनकर मोहित हो जाते हैं । हे कमलनयन ! हम तुम्हारी दासी हैं । हम तुम्हारे बिना जी नहीं सकती हैं, फिर कैसे जी रही हैं तो इसका कारण है तुम्हारी कथा ।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/९)

तुम्हारी कथा अमृत है, तुम्हारी चर्चा और तुम्हारे नाम के सहारे ही हम जी रही हैं । तुम्हारे विरह और संसार के तापों से पीड़ित लोगों के लिए तुम्हारी कथा ही जीवनदायिनी है । वह सारे कल्मषों को नष्ट करने वाली है और बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा उसका गान करते हैं । उसको सुनने से ही परम मंगल होता है । तुम्हारी उस कथा का दान करने वाले ही पृथ्वी पर सबसे बड़े दाता हैं ।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।

रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/१०)

तुम्हारी मुस्कान, प्रेम भरी चितवन तथा तुम्हारा विहार, इन सबका ध्यान मंगलकारक है । हे कपटी ! तुमने एकान्त में हमसे जो हृदयस्पर्शी प्रेम की बातें की हैं, उनकी स्मृति हमारे मन को क्षुब्ध किये जा रही है ।

भगवान् का विहार मंगलमय है, किसी को ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि उससे अमंगल होता है, लौकिक काम जागृत होता है ।

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३१/११)

हे श्यामसुन्दर ! जब तुम अपने अत्यन्त सुकोमल नीलकमल के समान चरण-कमलों से ब्रजभूमि पर चलते हो तो काँटों और कंकड़ों के उन चरणों में गड़ जाने के बारे में सोचकर हम लोगों को बहुत कष्ट होता है । धन्य है यह ब्रजभूमि, जिस पर तुम अपने सुकोमल चरणों से चलते हो ।

इस प्रकार गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण विरह में श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से गोपी गीत में कई श्लोक गाये ।

अध्याय – ३२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! गोपियों ने इस गीत को स्वर के साथ गाया और गाने के बाद मधुर स्वर से रोने लगीं ।

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३२/१)

गोपियों के इस प्रकार करुणाजनक स्वर से गाने और रोने को सुनकर श्यामसुन्दर से नहीं रहा गया ।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरःस्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(श्रीभागवतजी - १०/३२/२)

उसी समय गोपियों के बीच में श्यामसुन्दर प्रकट हो गये । एक अदा के साथ वे प्रकट हुए । उनका मुख मधुर मुस्कान से खिला हुआ था । वे पीताम्बर धारण किये थे, गले में वनमाला थी और उनका सुन्दर रूप साक्षात् कामदेव के मन को भी हरने वाला था । श्यामसुन्दर पीताम्बर को अपने हाथ से बड़ी अदा से पकड़कर आये जैसे कोई चतुर नायक आता है, जैसे गोपीजन अपनी चुनरी को हाथों से पकड़कर अदा से चलती हैं । वल्लभाचार्यजी लिखते हैं कि यह उनकी एक अदा है । श्यामसुन्दर हँसते हुए आये और रूप था साक्षान्मन्मथमन्मथ । इस शब्द को समझो । मन्मथ कहते हैं कामदेव को तथा लौकिक कामदेव को भी जो मथने वाला है अप्राकृत काम, वह है प्रद्युम्न, वह साक्षान्मन्मथमन्मथ है । लौकिक काम से ऊपर है अप्राकृत काम प्रद्युम्न । अनन्त ब्रह्माण्डों में अनन्त कामदेव उसी के अंश हैं । इसीलिए वे कृष्ण के पुत्र हैं । ऐसा कैसे ? कृष्ण का पुत्र तो लौकिक काम को भी बताया गया है जैसे रामायण में लिखा है – कृष्ण तनय होइहि पति तोरा । इसका उत्तर यह है कि अनन्त प्राकृत काम आकर अप्राकृत काम में लीन हो जाते हैं क्योंकि अप्राकृत

काम अंशी है और प्राकृत काम अंश है । श्रीकृष्ण तो अप्राकृत काम को भी मथने वाले हैं – साक्षान्मन्मथमन्मथः । कोटि कामदेवों से भी सुन्दर अपने परम प्रियतम श्रीकृष्ण को आया देखकर प्रसन्नता के कारण गोपियों के नेत्र खिल उठे । वे सब एक साथ ही इस प्रकार उठ खड़ी हुईं जैसे प्राणों का संचार हो जाने से शरीर में स्फूर्ति आ जाती है । एक गोपी ने बड़े प्रेम से श्रीकृष्ण के करकमल को अपने दोनों हाथों में ले लिया तथा दूसरी गोपी ने उनके चन्दन चर्चित भुजदण्ड को अपने कन्धे पर रख लिया । तीसरी सुंदरी ने रासेश्वर भगवान् का चबाया हुआ पान अपने हाथों में ले लिया । चौथी गोपी ने उनके चरणकमलों को अपने सन्तप्त वक्षःस्थल पर धारण कर लिया । एक गोपी भौहों को मरोड़कर और होठों को दाँत से दबाकर प्रेमपूर्वक कृष्ण को देखने लगी । एक गोपी उनके मुखकमल को एकटक निहारने लगी । एक गोपी कृष्ण के रूप का अपने हृदय में ध्यान करके तन्मय हो गयी ।

ये गोपियाँ कौन हैं ? ये श्रुतिरूपा हैं, वेद की ऋचायें हैं । बृहद् वामन पुराण में कथा है कि वेद की ऋचाओं ने तप किया और तब वे गोपी बनीं ।

इन गोपियों ने यमुना तट पर श्यामसुन्दर को बैठने के लिए आसन दिया । कैसा आसन दिया ? प्रत्येक गोपी ने अपने वक्षः स्थल पर लगी कुंकुम से चिह्नित चूनरी को श्यामसुन्दर के बैठने के लिए बिछा दिया । उस चूनरी में गोपियों के हृदय का अनुराग भरा था ।

स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै -
रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ।

(श्रीभागवतजी - १०/३२/१३)

श्रीकृष्ण उनके आत्मबंधु थे, इसलिए गोपियों ने उनके विराजने के लिए ऐसा आसन दिया । उस आसन पर श्यामसुन्दर बैठे । बड़े-बड़े योगीश्वर अपने हृदय रूपी आसन पर जिनको बिठाते हैं, वे ही भगवान् यमुनाजी की पावन रेती पर ब्रजदेवियों की चूनरियों के दिव्य आसन पर बैठे । गोपियाँ उनके चारों ओर बैठ गयीं । अब वे थोड़ा कुपित होकर श्यामसुन्दर से बात करने लगीं । ये श्रुतिरूपा गोपियाँ हैं, वेद-शास्त्रों के बड़े-बड़े सिद्धांतों को जानने वाली हैं । उन्होंने श्यामसुन्दर से बड़ा विचित्र प्रश्न किया । गोपियों ने कहा – 'हे श्यामसुन्दर ! संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो केवल प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं । कुछ ऐसे होते हैं, जो प्रेम करने वाले से भी प्रेम करते हैं । कुछ ऐसे होते हैं, जो प्रेम ही नहीं करते हैं । आप इनमें से कौन हैं ?' गोपियों का आशय था कि हम तुमसे इतना प्रेम करती हैं किन्तु तुम प्रेम नहीं करते हो तो क्या तुम इन्हीं लोगों में से हो ? श्यामसुन्दर बोले – गोपियो ! कोई यदि किसी से प्रेम करता है और बदले में प्रेम चाहता है तो वह स्वार्थ है । उस प्रेम में कोई श्रेष्ठता की बात नहीं है । प्रेम न करने पर भी जो प्रेम करते हैं, ऐसे माता-पिता होते हैं । बेटा-बेटी प्रेम नहीं करते फिर भी माता-पिता प्रेम करते हैं । प्रेम न करने पर भी वे प्रेम करते हैं । इस प्रकार एक प्रेम तो स्वार्थ है और एक प्रेम धर्म है । एक जो किसी से भी प्रेम नहीं करते हैं, वे चार प्रकार के लोग होते हैं । इनमें एक तो आत्माराम होते हैं, जिनको सारा संसार ब्रह्मस्वरूप दिखता है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखता है । उनको द्वैत नहीं दिखता । प्रेम तो द्वैत में होता है । दूसरे आप्तकाम होते हैं, जिन्हें द्वैत तो भासता है परन्तु वे पूर्णकाम होते हैं । तीसरे

अकृतज्ञ, मूढ होते हैं । चौथे गुरुद्रोही होते हैं । हे सखियो ! मैं इन चारों में कोई नहीं हूँ । यही तो प्रेम की अलौकिकता है । जिस रीति से जीव प्रेम करता है, उस रीति से मैं प्रेम नहीं करता हूँ ।

'भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये' (श्रीभागवतजी - १०/३२/२०)

मैं इस प्रकार से प्रेम करता हूँ, जिससे जीव की चित्त वृत्ति सदा मेरे प्रति बढ़ती जाए । प्रेम रूपी धन सदा बढ़ता रहे और वह कैसे बढ़ेगा, यह मैं जानता हूँ । इसे कोई दूसरा नहीं जानता है । जैसे कोई आदमी बहुत धनासक्त है, धन का नाश हुए बिना मेरे पास नहीं पहुँच सकता ।

तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ।

(श्रीभागवतजी - १०/२७/१६)

तब मैं उसका धन नाश कर देता हूँ । क्योंकि धन की आसक्ति से तो वह वैसे भी नरक में जाएगा ।

वल्लभ कुल में एक कथा आती है कि एक गृहस्थ वैष्णव भगवान् से बहुत प्रेम करता था । उसका एक पुत्र था । पुत्र से भी उसका प्रेम था तो भगवान् ने उसके पुत्र को सर्प बनकर काट लिया और वह मर गया । भगवान् ने ऐसा इसलिए किया, जिससे कि उस वैष्णव का भगवान् में अनन्य प्रेम हो जाए । इन सब बातों को जीव नहीं समझ सकता है । ये सारी चीजें विनाशी हैं । जिस पर प्रभु कृपा करते हैं, उस पर ऐसे ढंग से कृपा करते हैं कि उसका मन सदा भगवान् में लगता ही जाता है, उसका प्रेम रूपी धन बढ़ता ही जाता है । यह प्रेम रूपी धन घटता नहीं है क्योंकि जो घटता है, वह प्रेम नहीं है ।

छिनहि चढ़ै छिन उतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥

भगवान् ने गोपियों से कहा – जीव की वृत्ति सतत रूप से मुझमें लगी रहे, मैं इस रीति से प्रेम करता हूँ । कभी-कभी मैं छिप भी जाता हूँ, क्यों ? जैसे किसी निर्धन व्यक्ति को कहीं से धन मिल जाए और फिर वह धन खो जाए तो उसकी चित्तवृत्ति धन के चिन्तन में और बढ़ जाती है । इसलिए प्रेम में मैं इस प्रकार का विरोध दिखाते हुए चलता हूँ ।

मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ।

(श्रीभागवतजी - १०/३२/२१)

मैं छिप जाने पर भी परोक्ष रूप से उस प्राणी की सेवा करता हूँ, ऐसा नहीं कि उसे मैं अनाथ छोड़ देता हूँ ।

इसका भाव यह है कि श्रीकृष्ण कहते हैं – गोपियो ! जब तुम सब मुझे ढूँढ़ रही थीं, उस समय मैं भी तुम सबके पीछे चल रहा था । अंतर यह था कि मैं तुम्हें देख रहा था किन्तु तुम मुझे नहीं देख पा रही थीं ।

जब प्रेमी कृष्ण को ढूँढ़ता है तो कृष्ण उसके पीछे-पीछे चलते हैं किन्तु उसे पता नहीं पड़ता है । यह श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा है ।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१४/१६)

यदि कोई साधक भी है परन्तु निरपेक्ष है, शान्त है, निर्वैर है तो मैं उसके पीछे-पीछे चलता हूँ ।

निरपेक्ष बनना बड़ा कठिन है । कोई साधक बन गया है किन्तु प्राण संकट आने पर उसका सब धैर्य नष्ट हो जाता है और सोचता है कि प्रभु, यह संकट कैसे दूर होगा ? केवल शब्दों से निरपेक्षता-निष्कामता कहना बहुत सरल है किन्तु जिस समय हम लोगों के ऊपर कोई संकट आता है, कोई बीमारी आ जाती है, माता-पिता बीमार हो जाते हैं अथवा धन का नाश हो जाता है, उस समय मनुष्य की सारी निरपेक्षता जवाब दे जाती है ।

अस्तु, श्यामसुन्दर ने गोपियों से कहा –

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३२/२१)

मैं तो अपने निष्काम प्रेमी के पीछे-पीछे चलता हूँ, छिपकर रहता हूँ । हे प्रियाओ ! तुम मुझमें दोष मत देखो । सच्चा प्रेमी वही है, जो अपने प्रेमास्पद में दोष नहीं देखता है ।

जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने चातक के बारे में लिखा है कि एक बार चातक या पपीहा पिऊ-पिऊ कर रहा था । उसी समय बादल आया । वर्षा की, आँधी चलाई, साथ ही पत्थर गिराये, जिससे पपीहा के पंख कट गये परन्तु फिर भी पपीहा ने रोष व्यक्त नहीं किया कि बादल मुझे पत्थर मार रहा है । वह तो और प्रसन्नता से पीऊ-पीऊ करता है कि तू मुझे पत्थर मार ले किन्तु है तो मेरा प्यारा ।

इसको कहते हैं प्रेम । दोष देखना तो कालुष्य है । चार कालुष्य होते हैं – असूया कालुष्य, परापकार चिकीर्षा कालुष्य, ईर्ष्या कालुष्य और अमर्ष कालुष्य । दूसरे का दोष देखना कालुष्य है । योगी लोग बहुत लम्बे समय तक साधन करते हैं तो इन सब

कालुष्य को कैसे दूर करते हैं ? योगशास्त्र में लिखा है कि हर जीव से मैत्री रखो, शत्रु से भी । गीता में भी भगवान् ने कहा है –

'मैत्रः करुण एव च' (श्रीगीताजी - १२/१३)

हर व्यक्ति पर करुणा करो, शत्रु पर भी करुणा करो । जो प्रेमी होता है, बिना साधन के ही उसका स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वह दोष नहीं देखता है । प्रेम जहाँ है, वहाँ से दोष दर्शन हट जाता है । एक गँवारू कहावत भी है – दिल लगा गधी से तो परी क्या करे ? जीव की जहाँ आसक्ति हो जाती है, उसे वहीं से प्रयोजन रहता है । गधी से आसक्ति हो गयी तो उसके लिए परी बेकार है । महाकवि लोग भी कहते हैं कि प्रेम में गुण होता है, वस्तु में नहीं । खीर में गुण नहीं होता, गुण जीभ में होता है । इसलिए योगशास्त्र के अनुसार यदि कोई अपने कालुष्य को दूर करना चाहता है तो उसे समस्त प्राणियों से प्रेम करना चाहिए । इससे उसका कालुष्य समाप्त हो जायेगा । प्रेम मार्ग इतना शुद्ध है कि जिसके हृदय में प्रेम आ जाता है, उसे संसार में कहीं दोष नहीं दिखता ।

इसलिए श्यामसुन्दर ने कहा – हे गोपियो ! तुम लोग मुझमें दोष मत देखो । अब भी यदि तुम मुझसे प्रसन्न नहीं हो तो मेरी अन्तिम बात सुन लो ।

इस अन्तिम बात को कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये और गोपियाँ भी चुप हो गयीं अर्थात् निर्णय हो गया ।

श्रीकृष्ण ने कहा –

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३२/२२)

हे गोपियो ! तुम्हारा मुझसे संयोग (मिलन) निरवद्य (अनिन्द्य) है । इस पर विश्व में कोई धब्बा नहीं लगा सकता है ।

गोपी प्रेम पर कोई धब्बा लगाने वाला है ही नहीं । ब्रह्मा-शिव से लेकर पृथ्वी के छोटे-मोटे मनुष्यों तक कोई भी गोपी प्रेम पर दोष नहीं लगा सकता । गोपियों का कृष्ण से मिलन पूर्णतया निर्मल है, स्वार्थ की गंध भी वहाँ नहीं है । गोपियों के अन्दर अपने सुख की कामना लेशमात्र भी नहीं थी । कृष्ण जब मथुरा चले गये तब भी गोपियों ने उद्धवजी से कहा कि यद्यपि हम श्रीकृष्ण के विरह में तड़प रही हैं किन्तु यदि उन्हें मधुपुरी (मथुरा) में सुख मिलता है तो वे ब्रज में न आवें । हम लोग हर स्थिति में कृष्ण को ही सुखी देखना चाहती हैं । यह गोपी प्रेम है । इसीलिए भगवान् इस श्लोक में गोपियों के प्रेम की विशेषता बता रहे हैं । इस श्लोक की टीका में आचार्यों ने बहुत कुछ लिखा है । उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि खिलौना दो तरह का होता है । बाजार में एक मिट्टी का हाथी मिलता है तथा एक सोने का बना हाथी मिलता है । मिट्टी का हाथी बीस-तीस रुपये का मिलता है और सोने का हाथी लाखों रूपये में मिलता है । उसी प्रकार से काम और प्रेम में अंतर है ।

चैतन्य महाप्रभुजी ने कहा है –

कामेर प्रेमेर बहुत अंतर । काम अन्धतम प्रेम भास्कर ।

प्रेम सूर्य है, काम अन्धकार है ।

स्वसुखवाञ्छा हेतु काम तो प्रबल ।
कृष्णसुखवाञ्छा हेतु प्रेम तो प्रबल ॥

इसी बात को जीवगोस्वामीजी ने अपनी टीका में लिखा है –

काममयत्वेन प्रतीयमानत्वेऽपि वस्तुतो
निर्मलप्रेमविशेषमयत्वेन निर्दोषा ।

(जीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

जो गोपियों और कृष्ण के प्रेम में बाहरी रूप काममय दिखाई देता है जैसे गोपियाँ कृष्ण के गले पर अपना हाथ रखती हैं, गोपी-कृष्ण आपस में एक दूसरे के गले में हाथ रखकर नृत्य करते हैं, गोपियाँ कृष्ण का आलिंगन करती हैं तो स्थूल बुद्धि का व्यक्ति इसे काम कहेगा । परन्तु ऐसा नहीं है, यही तो बात है कि हम लोगों की दृष्टि दूषित हो चुकी है । एक शूकर कभी यह नहीं सोच सकता कि बादाम-पिस्ता के बने हलवे में मल से अधिक स्वाद होगा । मल में उसको जो स्वाद मिलता है, उससे अधिक स्वाद की कल्पना वह खीर-हलुआ आदि में नहीं कर सकता । इसी प्रकार हम लोगों की दृष्टि में दोष है ।

जीवगोस्वामी जी लिखते हैं कि यद्यपि गोपियों के प्रेम में बाहरी दृष्टि से काम की प्रतीति होती है किन्तु निर्मल प्रेम मूलक होने के कारण गोपियों और कृष्ण का मिलन सर्वथा निर्दोष है । इसलिये श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा – 'देवताओं की आयु ग्रहण करके भी यदि मैं तुम्हारे निर्मल प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो नहीं चुका सकता ।

तब बोले बृजराज कुँवर हौं ऋणी तिहारो ।

हे गोपियो ! मैं स्वयं कह रहा हूँ कि मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और सदा ऋणी रहूँगा । सदा यह संसार इस बात को गायेगा, ब्रह्मा-शिवादि भी गायेंगे कि कृष्ण सदा गोपियों के ऋणी रहे ।'

ऐसी बात कृष्ण ने आज तक किसी के लिए नहीं कही । कृष्ण तो बृज की अहीरनियों के ऋणी बन गये । ब्रह्म तो ब्र-ज में जाकर के वहाँ की अनपढ़, गँवार गोपियों का ऋणी बन गया । उनके प्रेम का बदला भी नहीं चुका पाया । वह गोपियों से हार गया और गोपियों से उसे कहना पड़ा कि मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और सदा रहूँगा । मैं तुम्हारे प्रेम, उपकार का बदला नहीं चुका सकता ।

कृष्ण को ऐसा कहना पड़ा क्योंकि यह ब्रजभूमि है । कोई पूछे कि आप गोपियों से बदला क्यों नहीं चुका सकते, आप तो प्रभु हैं । ईश्वर किसे कहते हैं ? जो सर्वसमर्थ है, जो सब कुछ कर सकता है, उसे ईश्वर कहते हैं ।

श्रीकृष्ण बोले – मैं बदला इसलिए नहीं चुका सकता क्योंकि

या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३२/२२)

हे गोपियो ! तुमने मेरे लिए घर-गृहस्थी की दुर्जर बेड़ियों को, जंजीरों को तोड़ डाला । माता-पिता की जंजीर, पुत्र की जंजीर, पति की जंजीर, सबकी जंजीरों को अच्छी तरह काट डाला । मैं ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि मेरी यशोदा मैया है, नन्द बाबा हैं, बहुत बड़ा मेरा भक्त समाज है, मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूँ ? तुम तो ऐसी दीवानी बनीं कि सभी जंजीरों को तोड़कर चली हो । तुम्हारे पैरों में जो जंजीरों के टुकड़े थे, वे भी कहते हैं –

ये ब्रजगोपीजन हैं, ये प्रेमरूपा हैं । सूरदासजी ने कहा है –

'गोपी प्रेम की ध्वजा'

गोपिकायें प्रेम की ऊँची-ऊँची ध्वजायें हैं, जिनको देखकर ब्रह्मा-शिवादि भी नतमस्तक हो जाते हैं । ब्रज में जाओगे तो वहाँ ऊँची-ऊँची ध्वजायें मिलेंगी, वे क्या हैं ? वे गोपीजन की ध्वजायें हैं, जो आज तक फहरा रही हैं । जिस ध्वजा के आगे ब्रह्मा-शिवादि भी मस्तक झुकाते हैं और कहते हैं कि प्रेम तो वास्तव में गोपियों ने ही किया, उनके जैसा प्रेम कौन कर सकता है ? जहाँ-जहाँ भी प्रेम का नाम आएगा तो यही कहा जायेगा कि गोपियाँ प्रेम की ध्वजा हैं । जिस राजा की ध्वजा ऊँची रहती है, वह जीत जाता है और जिस राजा की ध्वजा गिर जाती है, वह हार जाता है । इसीलिए सूरदास जी ने कहा कि गोपियों का झंडा तो सदा ऊँचा ही रहेगा ।

जब श्रीकृष्ण ने कहा कि हम तो सदा तुम्हारे प्रेम के ऋणी रहेंगे तो गोपियों को उन पर दया आ गयी और बोलीं कि अब इनसे कुछ शास्त्रार्थ मत करो । अब इनसे कुछ मत बोलो । तब उनका श्रीकृष्ण से पारस्परिक वार्तालाप यहीं बंद हो गया । यही तो प्रेम है । गोपियों ने कहा कि अब जब प्रेमी ने अपनी आधीनता स्वीकार कर ली तो इनसे अब कुछ नहीं कहना चाहिए ।

अध्याय – ३३

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/१)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब गोपियों ने अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर की ऐसी सुमधुर वाणी सुनी तब उनके विरह का सारा ताप दूर हो गया ।

श्रीकृष्ण बोले – चलो, अब मैं वह रस प्रवाहित करूँगा, जिसके लिए पृथ्वी पर अवतार लेकर आया हूँ ।

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/२)

इस श्लोक में गोपियों के लिए 'स्त्रीरत्न' शब्द का प्रयोग हुआ है । ऐसा क्यों तो वल्लभाचार्यजी ने लिखा है –

नन्वयं रसः अलौकिकः न लौकिकेषु उत्पद्यते अतः स्त्रीरत्नः ।

(श्रीवल्लभाचार्यजी, सुबोधिनी)

यह जो अलौकिक रस है, यह लौकिक स्त्रियों में नहीं उत्पन्न हो सकता । लौकिक स्त्री कितनी भी ऊँचाई को प्राप्त कर ले, अलौकिक रस को नहीं प्राप्त कर सकती है । इसलिए यहाँ गोपियों के लिए 'स्त्रीरत्न' शब्द कहा गया है ।

इस प्रकार गोपियों को प्रसन्न करके भगवान् ने रास क्रीड़ा प्रारम्भ की । भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये ।

रास के अलौकिक नृत्य का वर्णन तो नहीं किया जा सकता किन्तु आचार्यों ने इसके बारे में लिखा है

श्रीधनपतिसूरिजी ने लिखा है –

नटैर्गृहीतकण्ठीनामन्योऽन्यात्तकरश्रियाम् ।
नर्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम् ॥

(श्रीधनपतिसूरिजी, गूढार्थदीपिका)

हल्लीशक नृत्य में जैसे एक नायक की बहुत सी नायिकायें होतीं हैं । कुछ आचार्यों ने नायक को भी बहुवचन में बताया है

कि बहुत से नायक होते हैं । इस तरह से उन्होंने रास नृत्य को समझाने का प्रयास किया है परन्तु हल्लीशक भी लौकिक शब्द है । रास में तो कृष्ण एक हैं और वे ही अनेक रूप धारण करके प्रत्येक गोपी के साथ नृत्य करते हैं । इसलिए जैसा हल्लीशक में कुछ आचार्यों ने बताया कि उसमें नायक भी अनेक होते हैं तो इस नृत्य की रास नृत्य से कोई तुलना नहीं की जा सकती है । इसी प्रकार एक वचन भी नहीं घट सकता कि एक नायक है और बहुत सी नायिकायें हैं । अतः रास नृत्य का स्वरूप तो पूर्णतया अलौकिक ही है । इसकी व्याख्या तो की ही नहीं जा सकती है । फिर भी रास नृत्य में नृत्य इस प्रकार किया जाता है कि कृष्ण एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होते हैं ।

रासमण्डलिबन्धोऽयं कृष्णपार्श्वमनुज्झता ।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥
हस्ते प्रगृह्य चैकेकां गोपिकां रासमण्डलीम् ।

(श्रीकिशोरीप्रसादजी, विशुद्धरसदीपिका)

इतनी चंचल गति से रास में नृत्य होता है कि गोपियाँ एक जगह पर रुकती भी नहीं हैं तथा एक क्षण को भी उनका कृष्ण से वियोग भी नहीं होता है और सबके हाथ एक दूसरे से परस्पर मिले भी रहते हैं । एक जगह स्थिर न रहने से नृत्य के सारे आवर्त होते जाते हैं । ऐसा नृत्य इस लोक में कहाँ से हो सकता है । लोक में इतना ही हो सकता है कि एक का हाथ पकड़कर दूसरे के हाथ के नीचे से निकला जा सकता है । लोक में तो नृत्य के सभी अंग पूर्ण नहीं हो सकते हैं । सब अंग करने से हाथ छूट जायेंगे । इसीलिए जीव गोस्वामीजी ने रास नृत्य के बारे में पहले ही कह दिया है कि ऐसा नृत्य पृथ्वी में तो क्या, स्वर्ग में भी नहीं

हो सकता है । इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि रास नृत्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है ।

अस्तु, रासोत्सव के दर्शन की लालसा से देवगण आकाश में आ गये । दुन्दुभियाँ बजने लगीं । आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी ।

नृत्य का ऐसा नियम है कि जब अच्छे नृत्यकार नृत्य करते हैं तो पहले डफ बजता है और जो मृदंग या तबला बजाने वाला होता है, वह बहुत देर तक उसे बजाता है – धाकिट धाकिट धाकिट धाकिट धां धां धां धां.....और उस समय नायिका एक ही मुद्रा में खड़ी रहती है । खड़ी रहती है भावोद्दीपन के लिए । यह नृत्य की पूर्व भूमिका है – पहले वाद्य । पहले वाद्य बजता है, उसके बाद नृत्य का आरम्भ होता है । यह क्रम है, ऐसा नहीं कि वाद्य बजने के पहले ही नाचने लग गये । वह गँवारपना है क्योंकि संगीत इसी को कहते हैं –

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'

पहले गाना, बजाना, उसके बाद नृत्य करना । इसीलिए रासोत्सव के प्रारंभ में सबसे पहले बड़े-बड़े गन्धर्वपतियों ने गायन करना आरम्भ किया, उनकी स्त्रियाँ भी गाने लगीं ।

जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् –

(श्रीभागवतजी - १०/३३/५)

संगीत में ऑर्केस्ट्रा की सबसे पहले आवश्यकता होती है । कोई नृत्य करता है, उसके लिए भी ऑर्केस्ट्रा की जरूरत होती है । फिल्मों में गायक जब गाता है तो तीन-तीन सौ वाद्य बजाने वाले, ऑर्केस्ट्रा वाले बजाते रहते हैं । गाने वाला एक है और तीन

सौ व्यक्ति वाद्य बजाते हैं । इतना सब होने पर रस पैदा होता है ।

महारास के प्रारंभ में तो स्वर्ग के बड़े-बड़े गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ आये और गाने लगे । स्वर्ग की ही दुन्दुभियाँ बजने लगीं । इसके बाद ब्रजगोपीजनों और रास बिहारी लाल का नृत्य प्रारंभ हुआ ।

बोलो रास बिहारी लाल की जय

अनन्त गोपियाँ हैं और ताथेई-थेई के साथ अलौकिक नृत्य शुरू हो गया । श्यामसुन्दर भी गोपियों के नृत्य के साथ लय मिलाकर नृत्य करने लगे ।अब तक स्वर्ग के जितने भी वाद्य - दुन्दुभियाँ और नगाड़े आदि बज रहे थे, गन्धर्वगण गा रहे थे, इन सभी के स्वर यानी शब्द दब गये । ऐसा क्यों हुआ, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रास में प्रत्येक गोपी संगीत की आचार्या हैं और उनका संगीत भी अलौकिक था । गोपीजनों और श्रीकृष्ण ने जब नृत्य करना शुरू किया तो शरीर के पाँच भेदों से नृत्य किया । हस्तक, मस्तक, ग्रीवा, कटि, चरण – इन पञ्च अंगों से पंच प्रकार के नृत्य तथा इनके अवान्तर भेदों को गोपीजनों ने इतनी तीव्र गति से दिखाया कि

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/६)

इतने कंकण बजे, इतने नुपुर बजे, इतनी किंकिणियाँ बजीं और उनके साथ ही कृष्ण के भी कंकण, नूपुर और किंकिणियाँ बज उठे । इन सबका जब तुमुल शब्द हुआ तो स्वर्ग के वाद्य

नगाड़े आदि सब दब गये । ऐसा अलौकिक रास नृत्य शुरू हुआ ।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/७)

इस श्लोक में श्रीकृष्ण के लिए 'देवकीसुत' शब्द का प्रयोग हुआ है । पुराणों के अनुसार यशोदाजी का ही एक नाम देवकी भी था । इसलिए यहाँ देवकीसुत से अभिप्राय यशोदासुत से ही है, वसुदेवजी की पत्नी देवकी से नहीं ।

नृत्य करते समय ब्रजदेवियों के बीच में श्रीकृष्ण की बड़ी विलक्षण शोभा हुई । गोपिकायें तो सोने की पुतली के समान प्रतीत होती थीं तथा यशोदानन्दन भगवान् उनके बीच में नीलमणि के समान प्रतीत होते थे । अनन्त सोने की पुतलियों के बीच में अनन्त नीलमणियों की मूर्तियाँ नृत्य कर रही हों, ऐसी उनकी छटा हुई । वे कैसे नाच रहे थे –

पादन्यासै – ताल सम आने पर सबके चरण एक साथ सम पर पड़ते थे । अनन्त गोपियाँ नृत्य कर रहीं थीं किन्तु किसी का भी स्वर ताल भंग नहीं हो रहा था ।

इस संसार में तो पचास लोगों को नृत्य का महीनों तक प्रशिक्षण दिया जाए तब भी उनके नृत्य में कुछ न कुछ गड़बड़ी रहेगी । क्योंकि हम लोग मनुष्य हैं, हमारा मानवी संगीत है । संगीत भी कई प्रकार का होता है जैसे निषाद ग्राम का संगीत स्वर्ग आदि लोकों में गाया जाता है, मृत्यु लोक में यह संगीत है ही नहीं ।

भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै

नृत्य के समय गोपियाँ अपनी भुजाओं को उठातीं थीं, कलापूर्ण ढंग से मुस्कुरातीं तो कभी भौहें मटकातीं । ये सब नृत्य के अंग-प्रत्यंग के विलास हैं ।गोपियाँ नाचते-नाचते ताल और स्वर के साथ गाती भी थीं । भागवत के महारास के प्रसंग में संगीत की कुछ ऐसी बातें बतायी गयी हैं, जिनको आज तक कोई समझ नहीं पाया । यह अनुसन्धान का विषय है । इसे कुशल संगीतज्ञ भी नहीं समझ सकता है । जिस समय मैं प्रयाग संगीत समिति, प्रयाग में संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रहा था । उस समय मेरी आयु बहुत कम थी । ६०-७० वर्ष पूर्व संगीत की एक नई विधा चली, जिसमें अनेक रागों का मिश्रण करके लोग राग सागर प्रस्तुत करते, कहीं कुछ करते तो उसकी बड़ी प्रशंसा होती थी । उसी प्रकार भागवत में महारास के प्रसंग में संगीत की ऐसी विधाओं का वर्णन किया गया है, जिन्हें आज तक कोई समझ नहीं सका । जैसे –

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/९)

नृत्य करते हुए गोपियाँ गा भी रही थीं, साथ-साथ विहार भी हो रहा था ।

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः –

(श्रीभागवतजी - १०/३३/१०)

इस श्लोक में पाश्चात्य संगीत का वर्णन है । भारतीय संगीत और पाश्चात्य संगीत में क्या अंतर है ? भारतीय संगीत में melody(मैलोडी)है तथा पाश्चात्य संगीत में

harmony(हार्मोनी) है । भारतीय संगीत वाले melody प्रधान गीत गाते हैं, harmony को नहीं गा सकते हैं । भारतीय संगीतकार एक पिच को बना करके, एक सप्तक को मान करके, उसी पर बहुत विस्तार करता है । इसे मेलोडी कहते हैं, जबकि पाश्चात्य संगीतज्ञ एक ही पिच मानकर नहीं चलता है जैसे हमने हारमोनियम पर दूसरे काले को 'स' माना है और अन्य व्यक्ति उसी धुन को चौथे काले को 'स' मानकर बजाता है । एक अन्य व्यक्ति पांचवें काले को 'स' मानकर बजाता है । इस प्रकार अनेकों पिचों को मिलाकर जो एक चीज बजायी जाती है अर्थात् बहुत से मेलोडी मिलकर एक हार्मोनी बनती है । इसे पाश्चात्य संगीत कहते हैं । जिन्होंने संगीत को सीखा है, वे इस बात को जानते हैं, इसीलिए पश्चिमी संगीत का नोटेशन अलग तरह का होता है । कौन सी पिच से कौन सा स्वर उठ रहा है, नोटेशन में उसके चिह्न बनाये जाते हैं ।

अब श्लोक १०/३३/१० में कहा गया है –

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/१०)

कोई गोपी कृष्ण के साथ, (**समं** का अर्थ है कि) वही धुन गा रही है, जिस धुन को कृष्ण गा रहे हैं । स्वरजाती का अर्थ है कि वही स्वर जाति ली गयी है किन्तु अमिश्रित है । अमिश्रित का अर्थ है कि उसी पिच से न उठाकर कोई दूसरी पिच चल रही है । **स्वरजातीरमिश्रिताः** – 'र' में यहाँ विसर्ग है और विसर्ग 'र' के नीचे 'अ' छिपा हुआ है – **स्वरजातीः अमिश्रिताः** यानी वह चीज हार्मोनी हो गयी । यहाँ तक तो समझ में आ जाता है कि

यह हार्मोनी थी किन्तु यहाँ से आगे समझ में नहीं आता है । इन बातों को अब कोई नहीं समझ सकता है ।

गोपियों ने मेलौडी से हार्मोनी बनाई और हार्मोनी से ऊपर उठाकर वे कुछ और विलक्षण गति की ओर ले गयीं – **उन्निन्ये** – हार्मोनी से भी और ऊपर की ओर स्वर उठा दिया । अब यह कौन सी स्वर जाति बनी, इसका कुछ भी पता नहीं क्योंकि **उन्निन्ये** का अर्थ यदि यों करें कि गोपी स्वर को और ऊपर उठाकर तार सप्तक तक ले गयी तो ये तार सप्तक तो हो नहीं सकता क्योंकि पहले ही कह दिया गया है कि यह अमिश्रित तान है, इसके सप्तक दूसरे हैं । अतः यह संगीत की कौन सी विधा है, इसे कोई समझ नहीं सकता । विश्व भर के संगीतज्ञ मिलकर भी भागवत के इस प्रसंग में यदि ईमानदारी से विचार करें तो वे यह नहीं समझ सकते कि इनमें संगीत की कौन-कौन सी विधायें हैं और यदि कोई बेईमानी से दावा करता है कि हम समझ गये तो उसकी बात ही कुछ और है किन्तु ईमानदारी की बात यही है कि इसे कोई समझ नहीं सकता है ।

तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् – (श्रीभागवतजी - १०/३३/१०)

कोई अन्य गोपी उसी राग को ध्रुपद में बनाके पहले वाली गोपी से भी स्वर को और ऊपर उठा ले गयी क्योंकि यहाँ पर सब अनन्त ग्राम आ गये हैं – षड् ग्राम, मध्यम ग्राम, निषाद ग्राम । निषाद ग्राम तो देवलोक में है । स्वर को यदि षड् ग्राम से उठाया और मध्यम ग्राम तक ले गये, इससे अधिक इस संसार में कोई नहीं गा सकता है । कोई देवता इससे भी ऊपर उठाकर निषाद ग्राम तक ले जायेगा किन्तु उससे भी ऊपर उठाकर कहाँ ले जायेगा, उससे ऊपर तो कोई स्वर को ले ही नहीं जा सकता ।

अस्तु, इस तरह से गोपी द्वारा गाने पर श्यामसुन्दर ने उसका सम्मान किया और कहा कि धन्य है तेरी कला । भगवान् ने गोपी की कला का बड़ा मान किया । एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी तो उसने अपनी भुजा से श्यामसुन्दर के कंधे को पकड़ लिया । श्रीकृष्ण ने अपना एक हाथ दूसरी गोपी के कंधे पर रखा था, उसकी सुगंध से पुलकित होकर उसने उसे चूम लिया । कोई गोपी नूपुर और करधनी के घुंघरुओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी । जब वह बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगल में ही खड़े श्यामसुन्दर के शीतल करकमल को अपने स्तनों पर रख लिया ।

श्रीधर स्वामी अपनी टीका में लिखते हैं –

तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम् ।

(श्रीधरस्वामिकृतभावार्थदीपिका)

प्रभु यहाँ काम को विजय कर रहे हैं । गोपीजनों के श्रीस्तन पर उनके हाथ हैं । श्रीधर स्वामी का मत है कि रासलीला का लक्ष्य काम पर विजय प्राप्त करना है । रास लीला के सम्बन्ध में आचार्यों के अलग-अलग मत हैं । श्रीधर स्वामी, वल्लभाचार्य जी, सनातन गोस्वामी आदि सबके अलग-अलग मत हैं ।अस्तु, रास मण्डल में सभी गोपियाँ अपने प्यारे श्यामसुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं । नृत्य करते-करते उनके केश खुल गये । उनके दुकूल और चोलियाँ ढीली पड़ गयीं । वे नृत्य करते-करते इतनी थक गयीं कि अपने केशों और वस्त्रों को भी सँभालने में असमर्थ हो गयीं । भगवान् श्रीकृष्ण की यह रासलीला देखकर देवताओं की स्त्रियाँ भी मोहित हो गयीं ।

शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् – (श्रीभागवतजी - १०/३३/१९)

चन्द्रमा विस्मित हो गये अर्थात् आकाश में ही रुक गये । सारी सृष्टि पर इस महारास का प्रभाव पड़ा । यह भगवान् की योगमाया शक्ति का चमत्कार था । आकाश में सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल भी रुक गया । इसीलिए कहा गया है कि भगवान् ने यह रास केवल एक रात्रि को नहीं बल्कि अनन्त रात्रियों तक किया ।

शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् का अर्थ श्रीधर स्वामी जी ने लिखा है –

शशाङ्केन विस्मितेन यतौ विस्मृतायां ततः प्राक्तनाः
सर्वेऽपि ग्रहास्तत्र तत्रैव तस्थुस्ततश्चातिदीर्घासु रात्रिषु ।

(श्रीधरस्वामिकृतभावार्थदीपिका)

चन्द्रमा रुक गया अर्थात् समस्त नक्षत्रमण्डल रुक गया । प्रभु का रास चलता रहा । सृष्टि में इस रहस्य को कोई जान नहीं पाया । यही तो योगमाया की शक्ति है । यह भगवान् की ऐश्वर्य शक्ति का चमत्कार था, उनकी लीला शक्ति का चमत्कार था ।

जब बहुत देर तक गान और नृत्य करने के कारण गोपियाँ थक गयीं तब करुणामय श्यामसुन्दर ने उनके मुखमण्डल पोंछे । नृत्य-गान के बाद अब जलविहार आरम्भ हुआ । नृत्य और गान से थकने के बाद सभी गोपियों ने श्यामसुन्दर के साथ यमुना जल में प्रवेश किया । महारास का मतलब केवल नृत्य करना ही नहीं है, इसके अन्तर्गत अनन्त लीलायें हैं ।

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।

गोपियों ने जल विहार करते समय श्रीकृष्ण के ऊपर जल की खूब बौछारें डालीं । उन्होंने भी गोपियों के ऊपर यमुना जल की बौछारें डालीं ।

रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः – (श्रीभागवतजी - १०/३३/२४)

यहाँ गोपियों के साथ जल विहार क्रीड़ा में, रमण के समय भी भगवान् स्वरति अर्थात् आत्माराम बने हुए हैं। जलविहार क्रीड़ा के बाद भगवान् गोपियों के साथ यमुना जल के बाहर निकले और यमुना तट के उपवन में गये तथा वन विहार लीला आरम्भ की। १०/३३/२३ और १०/३३/२४ में जल विहार लीला का वर्णन किया गया है तथा १०/३३/२५,२६ में वन विहार लीला का वर्णन है। १०/३३/२ से रासोत्सव शुरू हुआ है। १०/३३/५ में स्वर्ग के वाद्य बज उठे और गन्धर्वगण भगवान् के निर्मल यश का गान करने लगे एवं १०/३३/६ से १०/३३/२२ तक रास के दिव्य संगीत और नृत्य का प्रकरण चला।

सम्पूर्ण वन में चारों ओर चन्द्रमा की बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी। भगवान् श्रीकृष्ण ब्रजगोपियों के साथ यमुना तटवर्ती वन में विचरण करने लगे।

१०/३३/२६ में एक विशेष बात कही गयी है। इसके अर्थ को लोग खोलकर नहीं बताते हैं, उसे छिपाने का प्रयास करते हैं। वह श्लोक यह है –

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः –

(श्रीभागवतजी - १०/३३/२६)

इस श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामीजी ने लिखा है कि इतनी गोपियों के साथ नृत्य और रास विलास करते हुए भी श्रीकृष्ण अपने स्वरूप में स्थित बने रहे, उनका तेज क्षीण नहीं हुआ। सौरत किसे कहते हैं, इसे समझो। संसार में कोई प्राकृत पुरुष यदि स्त्रियों के साथ बहुत बैठता है, उनका अधिक संग करता है, उनके साथ नाचता-गाता

है तो सौरत अर्थात् चरम धातु, तेज या वीर्य अवश्य क्षीण हो जाता है परन्तु श्रीकृष्ण के साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ, इससे पता चलता है कि उन्होंने काम पर विजय प्राप्त कर ली थी। **आत्मन्यवरुद्धसौरतः** - कृष्ण का तेज अवरुद्ध बना रहा, वह क्षीण नहीं हुआ क्योंकि वे भगवान् हैं। यहाँ पर कामदेव श्रीकृष्ण से पराजित हो गया। कामदेव को जब महादेवजी ने जीता था तो क्रोध के द्वारा जीता था। जब कामदेव ने महादेवजी पर प्रहार किया था तो उन्होंने उसे भस्म कर दिया था। उस समय कामदेव के मन में यह विचार आया कि शिवजी ने तो मुझे जला दिया, जीता तो नहीं। इसे विजय नहीं कहा जा सकता। काम विजय तो तब है, जब स्त्रियों के बीच क्रीड़ा करते हुए भी मन न फिसले, तेज क्षीण न हो। वह विजय वास्तविक काम विजय है। इस तरह कोई मुझे जीत कर दिखावे।

श्रीधर स्वामी ने लिखा है –

तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनाय

भगवान् ने कामदेव से कहा कि तेरा दम तो मैं कराऊँगा, महादेवजी को तो रहने दे।

यहाँ कोटि-कोटि गोपियों के साथ भगवान् ने रास विलास किया, नृत्य-गान किया, उन्हें आलिंगन किया, चुम्बन किया और कामदेव श्रीकृष्ण पर अपने बाण पर बाण छोड़ता गया। पहले उसने सोचा कि अब ये जल विहार में परास्त होंगे, फिर सोचा कि अब वन विहार में गिरेंगे। अब गोपियों का आलिंगन कर रहे हैं, अब गिरेंगे। अपने सारे बाणों को श्रीकृष्ण पर छोड़ता गया और रास की समाप्ति पर भी शुकदेवजी कहते हैं – **सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः** –

श्रीकृष्ण अपने स्वरूप में स्थित रहे और उनकी चरम धातु एक ही स्थान पर स्थित रही। इसलिए कामदेव हार गया। यह कामविजय

वास्तविक विजय है कि कोटि-कोटि गोपियों के साथ दीर्घ काल तक सतत् रूप से रास विलास किया, फिर भी श्रीकृष्ण आत्माराम बने रहे, उन पर कामदेव के बाणों का कोई असर नहीं हुआ ।

कुछ आचार्यों ने बताया है कि जितनी बड़ी ब्रह्माजी की रात होती है, उतने लम्बे समय तक रास चला था । चार अरब उनतीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार वर्ष तक कुछ आचार्य ब्रह्माजी की रात मानते हैं । भगवान् ने रास क्रीड़ा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी बना दी । इतने लम्बे समय तक कामदेव कैसे न निष्प्रभावी होता । कोटि-कोटि गोपियों के साथ नाचते रास रासेश्वर के सामने उसके सारे हथियार व्यर्थ हो गये ।

इधर रास लीला की कथा सुनते-सुनते राजा परीक्षित् को शंका हो गयी । उन्होंने शुकदेवजी से पूछा – महाराज ! आपकी यह बात तो ठीक है कि भगवान् का तेज नष्ट नहीं हुआ परन्तु मेरा प्रश्न तो यह है कि भगवान् ने रास लीला क्यों की ? यह रास धर्म के तो विरुद्ध ही था क्योंकि लौकिक रीति से देखा जाए तो समस्त गोपियाँ परस्त्रियाँ थीं । भले ही श्रीकृष्ण समस्त जीवों के परम पति हैं किन्तु उन्होंने प्राकृत जगत में आकर रास किया, अपने नित्य धाम में करते तो ठीक था । इस संसार में तो गोपियाँ परस्त्रियाँ थीं, उनके पति अलग थे, कुछ अविवाहिता थीं । उनके साथ विहार करना लौकिक धर्म के तो विरुद्ध ही दिखाई पड़ता है ।

महात्मा लोग ऐसा बताते हैं कि अभी शुकदेवजी को रास लीला के विषय में, रस के विषय में बहुत कुछ बोलना शेष था क्योंकि अभी तो रास रस का प्रारम्भ ही हुआ था ।

सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः – (श्रीभागवतजी - १०/३३/२६)

भगवान् ने महारास में रस की जितनी भी विधायें हैं, उन सबका सेवन किया अर्थात् यहाँ से शुकदेवजी प्रकट करने वाले थे कि रस की जितनी विधायें हैं और कैसे उनके मिश्रण हैं, रस की कितनी लीलायें हैं किन्तु होनहार की बात थी कि राजा परीक्षित ने बीच में ही प्रश्न कर दिया तो फिर शुकदेवजी ने रास लीला के प्रकरण को वहीं रोक दिया । वे समझ गये कि यह संसार भगवान् की दिव्य रास लीला के बारे में अधिक सुनने का अधिकारी नहीं है । अभी तो मैंने महारास की भूमिका ही बनायी है और भूमिका में ही परीक्षित् ने प्रश्न करना शुरू कर दिया ।

शुकदेवजी ने कहा – रास लीला में धर्म का उल्लंघन हुआ, यह मैं मानता हूँ किन्तु सामर्थ्यवान पुरुषों को कोई दोष नहीं लगता है । जैसे कोई मनुष्य यदि किसी मुर्दे को छू लेगा तो उसे स्नान करना पड़ेगा किन्तु अग्नि मुर्दे को जलाकर राख कर देता है फिर भी उसे कोई दोष नहीं लगता है । श्रीकृष्ण तो परमेश्वर हैं, अग्नि तो उनके सामने कुछ है ही नहीं । अग्निदेव तो श्रीकृष्ण के दास हैं, जब प्रभु के नौकर-चाकरों में ही इतनी शक्ति है तो फिर उनकी शक्ति के बारे में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता परन्तु हम लोगों को उनकी नक़ल नहीं करनी चाहिए । इसका कारण यह है कि हम लोग तो स्वार्थी हैं और ईश्वर को कोई स्वार्थ नहीं है । योगशास्त्र के अनुसार जो कर्म आदि से परे है, नित्य मुक्त है, वह ईश्वर है । उसके लिए कोई कर्मबन्धन नहीं है । इसी प्रकार जिनकी चरण रज का ध्यान करने से योगियों के समस्त बन्धन कट जाते हैं, क्या उन भगवान् को किसी प्रकार का कोई बन्धन हो सकता है ? भगवान् ने रास लीला क्यों की, इसे भी सुनो ।

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/३७)

भगवान् जीवों पर कृपा करने के लिए ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और जानबूझकर ऐसी लीलायें करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव किसी प्रकार उनकी ओर चले ।

जो लोग श्रृंगार रस के उपासक हैं, नृत्य-गान जिन्हें प्रिय है, उनके लिए भगवान् ने ऐसी लीला की, जिससे कि किसी प्रकार उनका मन भगवान् में लग जाए ।

भगवान् की रास लीला को सुनकर लाखों लोग हैं, जो उनमें अपना मन लगा रहे हैं । श्रीकृष्ण अवतार से लेकर अब तक असंख्य मनुष्य भगवान् की रसमयी श्रृंगार रस की लीला के माध्यम से अपने मन को उनमें लगाकर भवसागर के पार जा चुके हैं । अतः ऐसी रसमयी लीला भगवान् में सहजता से मन लगाने का सर्वोत्तम उपाय है । परीक्षित ! जो तुम कहते हो कि गोपियाँ परायी स्त्रियाँ थीं तो जितने भी ब्रज के गोप थे, रास लीला काल में सभी को यह प्रतीत हुआ कि हमारी स्त्रियाँ तो हमारे ही पास हैं ।

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/३८)

जो श्रीकृष्ण प्रेयसियाँ गोपीजन थीं, जिनके शरीर प्राकृत नहीं थे, वे तो रास में भगवान् के साथ नृत्य-गान और विहार करती रहीं परन्तु जो नकली गोपीजन थीं, वे अपने पतियों के साथ सो रही थीं । यह एक विचित्र बात हुई । ऐसा कैसे हुआ, इसके लिए आचार्यों ने कूर्म पुराण का प्रमाण दिया है । कूर्म पुराण में वर्णन है कि जिस समय रावण सीताजी का हरण करने आया, उन्हें पहले ही पता चल गया कि रावण आ रहा है क्योंकि वे भगवती हैं । भगवान् भी इस बात को जानते थे क्योंकि यह लीला उनको करनी थी । उस समय भगवदिच्छा से अग्निदेव प्रकट हुए और जो असली सीताजी थीं, वे अग्नि में प्रवेश कर

गयीं । अग्नि उनके शरीर को जला नहीं सकता था । इसके बाद भगवान् ने छाया सीता का निर्माण कर दिया और रावण उन्हीं का हरण करके ले गया था । जब भगवान् ने रावण को मारकर लंका विजय की तो अग्नि परीक्षा के बहाने छाया सीता अग्नि में प्रवेश कर गयीं तथा वास्तविक सीता बाहर आ गयीं । आचार्यों ने वही दृष्टान्त गोपिकाओं के बारे में दिया है कि वास्तविक गोपीजन के अप्राकृत शरीर रास में भगवान् के साथ नृत्य-गान आदि विहार कर रहे थे तथा योगमाया की शक्ति से जो गोपियों के नकली रूप थे, वे अपने पतियों के साथ शयन कर रहे थे ।

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/३८)

इसीलिए कृष्ण की माया से मोहित होकर ब्रज के गोपों ने भगवान् श्रीकृष्ण में कुछ भी दोष बुद्धि नहीं की । उनको तो यही लगा कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास हैं । शुकदेवजी ने इस रास लीला के श्रवण-कथन की महिमा बतायी है ।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३३/४०)

जो मनुष्य श्रद्धा के साथ रासलीला का वर्णन, गायन करता है और इसका श्रवण करता है, सेवन करता है, उसके हृदय के रोग काम-लोभादि दोष नष्ट हो जायेंगे तथा उसे भगवान् के प्रति पराभक्ति की प्राप्ति होगी ।

बोलो रासबिहारी लाल की जय

अध्याय – ३४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार शिवरात्रि के अवसर पर नन्द बाबा आदि सभी ब्रजवासी महादेवजी का पूजन करने के लिये अम्बिका वन गये । वहाँ उन्होंने भगवान् शंकर तथा भगवती अम्बिका का बड़ी भक्ति से अनेक प्रकार की सामग्रियों के द्वारा पूजन किया । उस दिन सभी गोपों ने उपवास किया था । रात को वे लोग अम्बिका वन में ही सो गये । उस वन में एक बड़ा भारी अजगर रहता था, वह नन्द बाबा के पास आया और उन्हें पकड़ लिया । नन्द बाबा चिल्लाने लगे – 'बेटा कृष्ण ! यह अजगर मुझे निगल रहा है, मैं तुम्हारी शरण में हूँ, शीघ्र ही मेरी रक्षा करो ।' नन्द बाबा की आवाज सुनकर सभी गोप दौड़े और अधजली लकड़ियों से उस अजगर को मारने लगे किन्तु उसने नन्द बाबा को छोड़ा नहीं । इतने में ही भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पहुँचकर अपने चरणों से उस अजगर को छू दिया । भगवान् के चरणों का स्पर्श होते ही उसी क्षण वह अजगर का शरीर छोड़कर दिव्य रूप वाला हो गया । भगवान् श्रीकृष्ण ने उससे पूछा – 'तुम कौन हो ?' वह अजगर बोला – 'मैं सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ । मैं बहुत सुन्दर था और सौन्दर्य के घमण्ड से मैंने अंगिरा गोत्र के कुरूप ऋषियों की बहुत हँसी उड़ाई थी । मेरे इस अपराध से क्रोधित होकर उन्होंने मुझे अजगर होने का शाप दे दिया । किन्तु यह शाप मेरे लिए कृपा बन गया क्योंकि उसी के प्रभाव से आज आपने अपने चरणकमलों से मेरा स्पर्श किया है ।'

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३४/१७)

जो मनुष्य भगवान् के नाम का उच्चारण करता है, वह अपना कल्याण तो करता ही है, साथ ही साथ समस्त सुनने वाले जीवों पर

कृपा करके उन सबका उद्धार करता है । इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने कहा है –

जपि लेते हरि नाम करिया निज साधन ।
उच्च संकीर्तन करे परोपकारे ॥

जप करने वाले से कीर्तन करने वाले को करोड़ गुना अधिक फल मिलता है क्योंकि जो मनुष्य नित्य कृष्ण कीर्तन करता है, वह परोपकार करता है ।

इसलिए सभी को अपने घर में नित्य ही कृष्ण कीर्तन करना चाहिए । इस कथा से एक शिक्षा यह मिलती है कि संसार में किसी जीव की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए । बच्चों के अन्दर यह आदत बहुत होती है, बड़े होकर यदि ऐसा करेंगे तो अपराध लगेगा । अपनी सुन्दरता का घमण्ड करते हुए कभी भी कुरूप लोगों का मजाक नहीं बनाना चाहिए ।

एक दिन की बात है, भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम रात्रि के समय वन में गोपियों के साथ गीत गा रहे थे । उसी समय वहाँ कुबेर का अनुचर शंखचूड नामक एक यक्ष आया । वह गोपियों को उठाकर ले जाने लगा । गोपियाँ उस समय रोने-चिल्लाने लगीं । श्रीकृष्ण व बलराम गोपियों को अभयदान देते हुए बोले – 'डरो मत, डरो मत ।' इसके बाद दोनों भाई शंखचूड के पीछे दौड़ पड़े । भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दुष्ट को पकड़ लिया और उसके सिर पर कसकर एक घूँसा जमाया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया । उस यक्ष के सिर पर एक चूडामणि थी । श्यामसुन्दर ने वह चूडामणि निकाल ली और अपने बड़े भाई बलरामजी को दे दी ।

अध्याय – ३५

इस अध्याय में युगल गीत का वर्णन है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन वन में गायें चराने चले जाते थे, उस समय गोपियाँ अपनी वाणी से श्रीकृष्ण लीला का दिन भर गान किया करती थीं । इस गीत में दो-दो श्लोकों का जोड़ा है, इसीलिए इसे युगल गीत कहा जाता है । गोपियाँ जहाँ बैठकर लीला गाती थीं, वहाँ से उन्हें श्रीकृष्ण का दर्शन भी होता था ।

गोपिकायें आपस में कहतीं –

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/२)

अरी सखि ! श्यामसुन्दर अपने बायें कपोल को बायीं भुजा की ओर करके, भौंहों को टेढ़ा करके बाँसुरी बजा रहे हैं ।

यहाँ वल्लभाचार्यजी लिखते हैं –

वेणुनादः पञ्चधा भवति मुखस्य परितः समतया उपर्यधश्च धारणेन तत्र स्त्रीणां कामोद्बोधकः वामपरावृत्तः स्त्रीणां पुरुषाणांच दक्षिण देवानामुच्चैः अधस्तिररश्चां समतया सर्वेषामचेतनानां च –

(श्रीवल्लभाचार्यजी, सुबोधिनी)

श्रीकृष्ण जब वंशी बजाते हैं तो पाँच प्रकार की भंगिमा से बजाते हैं । पाँच प्रकार की भंगिमा में एक प्रकार की भंगिमा यह है कि वे अपने कपोल को बायीं ओर करके बाँसुरी बजाते हैं, दूसरी भंगिमा है कि मुख को दायीं ओर करके बाँसुरी बजाते हैं, तीसरी भंगिमा में मुख को ऊपर करके बाँसुरी बजाते हैं, चौथी भंगिमा यह कि मुख नीचे की ओर करके बाँसुरी बजाते हैं और पाँचवीं में अपने मुख को समान रखकर बाँसुरी

बजाते हैं । इस प्रकार पाँच तरह की भंगिमा से वे वंशी बजाते हैं और पाँचों के पाँच फल हैं । जब वे बायीं ओर मुख करके बाँसुरी बजाते हैं तो गोपियों के लिए बजाते हैं । जब दक्षिण (दाहिनी) की ओर मुख करके बजाते हैं तब स्त्री-पुरुष सभी के लिए समान रूप से वंशी बजाते हैं, कामोत्बोधक रूप से नहीं । ऊपर की ओर मुख करके वंशी बजाते हैं देवताओं और देवांगनाओं के लिए, नीचे की ओर मुख करके वंशी बजाते हैं गाय, बैल और बछड़ों को बुलाने के लिए । जब मुख को समान रखकर वंशी बजाते हैं तो लता-पता-वृक्षों के लिए बजाते हैं । यह पाँच प्रकार का श्रीकृष्ण का वेणुनाद है ।

युगल गीत के पहले श्लोक में श्रीकृष्ण बायीं ओर मुख करके वंशी बजा रहे हैं तो इसका भाव यह है कि वे गोपिकाओं के लिए वंशी बजा रहे हैं । इसीलिए गोपियों को श्रीकृष्ण की इस छटा का दर्शन भी हो रहा है । गोपियाँ आपस में चर्चा कर रही हैं कि जिस समय श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं तो देवांगनाएँ विमानों पर चढ़कर आकाश में आ जाती हैं और वंशी की तान से मोहित होकर विमान पर ही मूर्च्छित हो जाती हैं, यहाँ तक कि उनके नींवी बन्धन खुल जाते हैं किन्तु उन्हें इसका पता भी नहीं चलता है ।

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/५)

श्रीकृष्ण की वंशी सुनकर टोल के टोल गायें, बैल और हिरन उनके पास ही दौड़ आते हैं । उस समय दाँतों से चबाया हुआ घास का ग्रास उनके मुँह में ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न ही उगल पाते हैं, मानो सो गये हों या केवल भीत पर लिखे हुए चित्र हों ।

युगल गीत में श्रीकृष्ण के पाँच प्रकार से वंशी बजाने और उसके प्रभाव का वर्णन किया गया है ।

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ।

(श्रीभागवतजी - १०/३५/६)

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/७)

जिस समय श्यामसुन्दर मल्लों की तरह फेंटा बाँधकर गायों को बुलाते हैं तो यमुनाजी की गति रुक जाती है और अपनी लहरों को वहीं रोककर उन्हें भुजाओं की तरह ऊपर इस भाव से उठाती हैं कि मुझे श्रीकृष्ण की चरण रज मिल जाये ।

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/८)

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/९)

जब श्यामसुन्दर ने वंशी बजाई तो वन के सारे वृक्षों और लताओं पर इतने अधिक फूल और फल प्रकट हुए कि सब के सब झुक गये तथा हर लता धरती पर लोटने लगी । वंशी का ऐसा सरस प्रभाव पड़ा कि वृक्षों और लताओं से मधुधारा बहने लगी । मधुराधिपति श्रीकृष्ण के रहने से सारा धाम दिव्य बन गया ।

यह बात हम लोगों को समझ में इसलिए नहीं आ सकती क्योंकि हम संगीत का जादू नहीं जानते हैं । फ्रांस में वृक्षों पर एक प्रयोग किया

गया था । दो बगीचे वहाँ लगाये गये, उनमें एक बगीचे में ऐसे पौधे लगाये गये कि वहाँ हर समय संगीत बजाया जाता था । इसका यह प्रभाव हुआ कि उस बगीचे के पौधों का विकास अच्छी तरह हुआ और उनमें अधिक फूल लगे, जबकि दूसरे बगीचे में कोई संगीत नहीं बजाया गया तो वहाँ के पौधे ज्यादा नहीं बढ़े और न ही उनमें अधिक फूल लगे । यह शब्द ब्रह्म का प्रभाव है, जो जड़ पेड़-पौधों पर कैसा प्रभाव डालता है, यह तो हाल ही में वैज्ञानिकों ने शोध करके सिद्ध कर दिया है और फिर उस समय साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के वेणु नाद से चमत्कार हुआ तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इसको यथार्थ ही समझना चाहिए ।

सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/११)

श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि सुनकर सरोवर में रहने वाले सारस और हंस आदि पक्षी उनके पास आकर मौन होकर खड़े रह जाते हैं, हिलते-डुलते भी नहीं हैं ।

सहबलः स्त्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥
महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/१२,१३)

सखियो ! श्यामसुन्दर बलरामजी के साथ **सानुषु** अर्थात् पर्वतों की चोटियों जैसे मानगढ़, मोरकुटी आदि पर खड़े होकर वंशी बजाते हैं । सानुषु में बहुवचन है, केवल एक ही पर्वत गिरिराजजी की ही चोटी नहीं है । जब वे इस प्रकार पर्वतों के शिखरों पर खड़े होकर वंशी बजाते

हैं तो उस समय औरों की तो क्या कही जाए, स्वयं बादल आकर नन्ही-नन्ही फुहियाँ श्यामसुन्दर पर बरसाते हैं, उनके हृदय में प्रेम उमड़ जाता है कि हमारे प्यारे कन्हैया कितनी बढ़िया वंशी बजा रहे हैं ।

विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/१४,१५)

सवनशः का अर्थ है मन्द्र मध्य तार । श्रीकृष्ण की वंशी ऐसी है कि उसमें क्रम से भी तीनों सप्तक बजते हैं और एक साथ भी तीनों सप्तक बजते हैं । यह बात इसलिए समझ में नहीं आती है क्योंकि अब ऐसी वंशी कोई नहीं बजा सकता है ।

श्यामसुन्दर जब वन में वंशी की परम मोहिनी और नई तान बजाते हैं तो आकाश में बड़े-बड़े देवता आ जाते हैं । १०/३५/१५ में देवताओं के तीन टोलों का उल्लेख किया गया है ।

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः – आचार्यों की टीकानुसार शक्र अर्थात् इन्द्र आये हैं । इनके दल में गन्धर्वगण तथा अग्नि, वायु आदि देवता वंशी सुनने आये हैं । शर्व अर्थात् महादेवजी सहित उनके दल में पार्वतीजी, गणेशजी आदि आये हैं । परमेष्ठि अर्थात् ब्रह्माजी एवं उनके दल में सनकादिक मुनिगण और नारदजी आये हैं ।

कवय आनत कन्धरचित्ताः जब श्रीकृष्ण की वंशी बजी तो उसकी मधुर तान को सुनकर इन सबके कंधे और मस्तक झुक गये । क्यों झुक गये ? **कश्मलं ययुरनिश्चिततत्वाः** – वे यह नहीं जान पाए कि यह कौन सा राग है, राग के साथ कौन सा ताल है, कौन सी मूर्च्छना है, कौन से स्वर हैं, कौन सी गति है ? इनमें से एक भी उनकी समझ में नहीं आया, जबकि उन्होंने राग-रागिनियों के बारे में बहुत विचार किया ।

कितना अलौकिक संगीत है, जबकि महादेवजी नटराज हैं, संगीत के आचार्य हैं, इन्द्र मृदंग के आचार्य हैं, संगीत के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं । ब्रह्माजी के मुख से संगीत विद्या की उत्पत्ति हुई है और ये सभी संगीत विद्या के मर्मज्ञ देवगण यह नहीं पता लगा पाए कि यह नन्द का लाला क्या बजा रहा है ?

व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥

(श्रीभागवतजी - १०/३५/१७)

गोपियाँ कहती हैं – हे सखि ! जब श्यामसुन्दर चलते हैं तो उनकी मधुर चाल और विलास भरी चितवन को देखकर हम लोग ऐसी मोहित हो जाती हैं कि हमें यही याद नहीं रहता है कि हमारा जूड़ा खुल गया है, चूनर उतर गयी है, अपने शरीर का भी उस समय हमें अनुसन्धान नहीं रहता है ।

श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि सुनकर हिरनियाँ दौड़कर उनके पास आ जाती हैं । कैसी सुन्दर छटा बन जाती है जब मुरलीमनोहर गायों को चराते हुए चलते हैं तो एक ओर से हिरनियों का टोल उनके साथ चलता है, एक ओर ग्वालबालों का टोल तो एक ओर गोपियों का टोल उन्हें घेर लेता है । यह वंशी क्या है, एक जादू है । जड़-चेतन सभी जीव, पशु-पक्षी, वृक्ष-नदियों आदि सब पर श्यामसुन्दर की वंशी का ऐसा जादू होता है कि सारे ब्रज पर वह छा जाता है । जल, स्थल, आकाश आदि सभी स्थानों पर वंशी का प्रभाव छा जाता है ।

गोपियाँ कहती हैं – हे यशोदा रानी ! यमुना तट पर ग्वालबालों से घिरे, कुंदकली का हार पहने तुम्हारे लाला विहार कर रहे हैं । उस समय शीतल और सुगन्धित स्पर्श से मन्द-मन्द वायु बहकर तुम्हारे लाल की सेवा करती है और बड़े-बड़े उपदेवगण आकर उनकी वन्दना करते हैं ।

इस प्रकार से युगल गीत का वर्णन हुआ ।

अध्याय – ३६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार श्यामसुन्दर ब्रज में अपने सखाओं के साथ खेल रहे थे । उसी समय अरिष्टासुर नामक एक दैत्य बैल बनकर वहाँ आया । पर्वताकार शरीर वाला वह बड़ा भारी बैल बनकर आया था । अपनी बड़ी और नुकीली सींगों से वह ब्रज की धरती को खोदता जा रहा था । बीच में क्रोध से वह बार-बार गोबर और मूत्र त्याग करता जा रहा था । उसको देखकर भय के कारण देवता भी भाग जाते थे । उस तीखे सींग वाले भयंकर बैल को देखकर गोपियाँ और गोप भयभीत हो गये । सभी ब्रजवासी पुकारने लगे – 'कन्हैया ! हमें इससे बचाओ । इस बैल को तुम्हीं सँभालो ।' ब्रजवासियों की पुकार सुनकर श्यामसुन्दर बोले – 'तुम लोग डरो नहीं ।' इस प्रकार ब्रजवासियों को अभयदान देकर श्रीकृष्ण ने उस वृषासुर को ललकारा – 'अरे दुष्ट ! तू मेरे पास आ । इन गायों और ग्वालों को क्यों डरा रहा है, तू तो मेरे लिए आया है । मैं इस बात को जानता हूँ । तेरे जैसे दुष्टों के बल का घमण्ड चूरकर देने वाला मैं हूँ ।' इस प्रकार ललकारकर गोविन्द ने ताल ठोंकी और अपने एक सखा के गले में बाँह डालकर खड़े हो गये । जब अरिष्टासुर ने ताल ठोंकने का शब्द सुना तब वह बहुत क्रोधित हुआ और पूँछ उठाकर कृष्ण पर हमला करने के लिए बड़ी जोर से उनकी ओर दौड़ा । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों सींग पकड़े और उसे अठारह पग पीछे ठेलकर गिरा दिया । वह तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और बड़े क्रोध से श्यामसुन्दर पर पुनः झपटा । तब उन्होंने उसके सींग पकड़ लिए और उसे लात मारकर जमीन पर गिरा दिया, इसके बाद उसके सींग उखाड़कर, उन्हीं सींगों के प्रहार से अरिष्टासुर का संहार कर दिया । अरिष्टासुर की मृत्यु देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए ।

यह अरिष्टासुर पूर्व जन्म में कौन था, इसके पीछे एक बहुत बड़ी शिक्षा भी छिपी हुई है । बृहस्पतिजी का एक शिष्य था परतन्तु । एक बार वे जब शिष्यों को पढ़ा रहे थे तो परतन्तु उनके सामने पाँव फैलाकर बैठ गया । इससे बृहस्पति नाराज हो गये और बोले – 'मूर्ख ! तू मेरे सामने पाँव फैलाकर बैल की तरह बैठा है, अतः तू बैल हो जा ।' इसी शाप से उसे अरिष्टासुर बनना पड़ा ।

इससे शिक्षा मिलती है कि सम्मानित गुरुजनों के सामने सँभलकर उठना-बैठना चाहिए । आजकल के जमाने में तो ऐसी सभ्यता ही नहीं रही । प्राचीन काल में भारत में सभी लोग बड़ा ही मर्यादित जीवन बिताया करते थे । तब लोगों में गुरुजनों के प्रति बहुत श्रद्धा होती थी और श्रद्धा के कारण ही वे उत्तम विद्या प्राप्त करते थे । आजकल हर व्यक्ति में आसुरी भाव आ गया है तो फिर विद्या कहाँ से प्राप्त होगी ?

कंस को जब अरिष्टासुर की मृत्यु का समाचार मिला तो वह बहुत चिन्तित हो गया और सोचने लगा कि एक-एक करके मेरे सारे वीर दैत्य मारे गये, जिनसे अमृत पीने वाले देवता भी भयभीत रहते थे । ब्रज में ये ऐसा कौन सा बालक है, जो मेरे समस्त दैत्यों को मार रहा है । कंस इस प्रकार चिन्ता कर ही रहा था कि उसी समय देवर्षि नारदजी कंस के पास पहुँचे । उन्होंने कंस को समझाया कि जिस समय देवकी-वसुदेव का विवाह हुआ था तथा उनका पहला पुत्र हुआ, उसी समय मैंने तुम्हें बता दिया था कि ये दोनों कोई साधारण स्त्री-पुरुष नहीं हैं, ये तो देवी-देवता हैं, अपना काम बनाने और तुम्हें मरवाने के लिए इन्होंने कुचक्र रचा है । क्या तुम जानते हो कि ब्रज में यह कृष्ण कौन है, जो तुम्हारे सब दैत्यों को मार रहा है, यही देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ आठवाँ बालक है और जो बलराम है, वह रोहिणी का पुत्र है एवं जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी, वह तो यशोदा

की पुत्री थी । वसुदेव ने तुमसे डरकर अपने दोनों पुत्रों को अपने मित्र नन्द के पास रख दिया है । नारदजी की बात सुनकर कंस ने क्रोध में भरकर वसुदेवजी को मार डालने के लिए तलवार उठा ली । नारदजी ने उसे रोक दिया और समझाया कि वसुदेव को मारने से तुम्हारा काल कृष्ण तो समाप्त होगा नहीं । तुम तो ऐसा उपाय करो कि तुम्हारा काल भी समाप्त हो जाये और वसुदेव से बदला भी ले लो । वह उपाय यही है कि किसी तरह एक बार कृष्ण-बलराम को मथुरा बुला लो और जब वे दोनों यहाँ आयेंगे तो तुम्हारे पास बड़े-बड़े मल्ल योद्धा हैं, किसी के भी साथ उन्हें कुश्ती में लड़वा देना, वे पहलवान उन्हें मार डालेंगे । कंस ने नारदजी से पूछा कि उन दोनों बालकों को मथुरा में किस बहाने बुलाया जाये । नारदजी ने कहा कि तुम अपने यहाँ एक धनुष यज्ञोत्सव का आयोजन करो और उस उत्सव को देखने के लिए सभी ब्रजवासियों को आमन्त्रित करो, इस तरह उन्हें यहाँ बुला लो । तुम्हारे यहाँ जो अक्रूरजी रहते हैं, वे सम्बन्ध में कृष्ण-बलराम के चाचा लगते हैं । कृष्ण-बलराम को यहाँ लाने के लिए अक्रूरजी को ही ब्रज में भेजो । घर का सम्बन्धी जब वहाँ जायेगा तो नन्द बाबा भी पूर्ण विश्वास के साथ उन बालकों को भेजने के लिए राजी हो जायेंगे । नारदजी की बात कंस को बहुत पसन्द आई । उसने अक्रूरजी को बुलवाया और उन्हें बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा कि वसुदेव ने मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है, ऐसे ही धोखे के साथ कृष्ण-बलराम को यहाँ बुलवाकर मरवाना है । आप नन्दबाबा के ब्रज में जाइये और वसुदेव के दोनों पुत्रों कृष्ण-बलराम को रथ पर चढ़ाकर यहाँ ले आइये ।

अक्रूरजी मन ही मन सोचने लगे कि यह कंस बड़ा दुष्ट है । मेरे लिए तो दोनों तरफ से संकट उपस्थित हो गया । यदि मैं कृष्ण-बलराम को लेने ब्रज में नहीं जाऊँगा तो कंस मुझे मार डालेगा और यदि मैं वहाँ

जाता हूँ तो कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण मुझे भी अपना शत्रु समझ लें । कंस की बात को अक्रूरजी टाल नहीं सकते थे । उन्होंने सोचा कि बढ़िया तो यही होगा कि कंस मुझे भेज रहा है तो कोई बात नहीं, भगवान् तो सर्वान्तर्यामी हैं, वे सबके अन्तर्गत भावों को जानते हैं, वे मेरे भी हृदयगत भावों को जानेंगे तो मुझे अपना शत्रु नहीं समझेंगे । ऐसा विचारकर अक्रूरजी ब्रज में जाने के लिए तैयार हो गये । कंस ने उन्हें अच्छी प्रकार समझाते हुए कहा कि इस रहस्य को खोलना नहीं, केवल यज्ञोत्सव देखने के बहाने ही ब्रजवासियों को कृष्ण-बलराम सहित यहाँ ले आना ।

अध्याय – ३७

अक्रूरजी ब्रज में जाने को तैयार हुए कि तब तक केशी और व्योमासुर नामक दो दैत्य कंस के पास आये और कहने लगे कि अक्रूरजी को ब्रज में भेजने की क्या आवश्यकता है ? अरे, जब तक हम हैं, आप किसी को वहाँ मत भेजिये । हम लोग शीघ्र ही उन दोनों बालकों को मार डालेंगे । कंस से ऐसा कहकर घोड़े का रूप बनाकर केशी ब्रज में गया किन्तु भगवान् कृष्ण के द्वारा उसका प्राणान्त हो गया । इसी प्रकार जब व्योमासुर भी ब्रज में गया तो उसे भी खेल ही खेल में प्रभु ने समाप्त कर दिया ।

अध्याय – ३८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – केशी और व्योमासुर का कृष्ण के द्वारा वध होने पर अक्रूरजी को ब्रज के लिए प्रस्थान करना ही पड़ा । मथुरा में रात भर वे यही चिन्तन करते रहे कि पता नहीं, श्रीकृष्ण मेरे हृदयगत भावों को समझेंगे कि नहीं, कहीं वे मुझे अपना शत्रु न समझ बैठें । फिर सोचते हैं कि नहीं, वे मुझे शत्रु नहीं समझेंगे, वे तो भगवान् हैं, अन्तर्यामी

हैं, अतः वे सब कुछ जानते हैं । प्रातःकाल होने पर अक्रूरजी रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के ब्रज की ओर चल दिए । मार्ग में वे इस प्रकार सोचने लगे –

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥

(श्रीभागवतजी – १०/३८/३)

न जाने मेरे कौन से जन्मों का सुकृत उदय हो गया, जिससे मुझे आज श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त होगा । ऐसा कौन सा मैंने तप किया, कौन सा सदाचरण किया अथवा कौन सा दान दिया, जिनके फलस्वरूप आज मुझे कृष्ण का दर्शन प्राप्त होने वाला है ।

अक्रूरजी बहुत प्रसन्न हो गये । ब्रजप्राप्ति और कृष्ण दर्शन प्राप्ति के विचार से उनकी ऐसी विचित्र स्थिति हो गयी कि वे बार-बार कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे लौट आते । उनको यह भी याद नहीं रहा कि किस मार्ग से जाना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए ? जब देह का ही अनुसन्धान उन्हें नहीं रहा तो फिर मार्ग का अनुसन्धान कैसे होता ? अक्रूरजी बार-बार राहगीरों से पूछ लेते कि ब्रज-वृन्दावन के लिए कौन सा मार्ग बढ़िया है ? राहगीरों के बताने से जैसे-तैसे भोर के चले हुए अक्रूरजी को ब्रज पहुँचने में संध्या हो गयी । संध्या समय जब अक्रूरजी नन्दगाँव पहुँचे तो उन्होंने विचार किया कि मुझे कृष्ण दर्शन करने हैं तो सबसे पहले उनका दर्शन कहाँ होगा ? तब तक उन्हें श्रीकृष्ण के चरणचिह्न पृथ्वी पर अंकित दिखायी पड़े । उन चरणचिह्नों के दर्शन करते ही अक्रूरजी का हृदय आनन्द और प्रेम के आवेग से भर उठा, वे रथ से कूदकर उस धूलि में लोटने लगे और बार-बार उस चरण धूलि का अपने सर्वांग में लेपन करने लगे । कभी मस्तक से लगाते, कभी वक्षःस्थल से लगाते तो कभी उदर से लगाते । पूरे शरीर में अक्रूरजी

कृष्ण चरणरज का लेपन करने लगे । नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, हृदय में कृष्ण दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा होने लगी, थोड़ी देर में ही उन्हें कृष्ण दर्शन प्राप्त होने वाला है, इसलिए मन में बड़ी भारी प्रसन्नता है । अक्रूरजी सोचने लगे कि श्रीकृष्ण का दर्शन करने कहाँ जाऊँ, या तो वे गोचारण के लिए गये होंगे अथवा नन्दभवन में होंगे अथवा गो-खिरक में होंगे । गोधूलि बेला थी, अक्रूरजी ने देखा कि ब्रज में चारों ओर गायों के चरणों से उठने वाली धूल उड़ रही है ।

ब्रज की इतनी महिमा क्यों है, ब्रज इतना पवित्र देश क्यों है, इसका कारण यही है कि जब संध्या समय श्रीकृष्ण लाखों गायों से, ग्वालबालों से समावृत होकर लौटते थे तो गायों के खुरों से जो धूल उड़ती थी, उस गोधूलि से सारा ब्रज स्नान किया करता था । इसीलिए ब्रज परम पवित्र देश हुआ । जब अक्रूरजी ने देखा कि चारों ओर गोधूलि उड़ रही है तो वे समझ गये कि श्रीकृष्ण गोचारण करके अब वन से ब्रज को लौट रहे हैं । इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब तो मैं सीधे गो खिरक में ही जाऊँगा । उन्होंने अपने रथ को गो खिरक की ओर बढ़ाया । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि समुद्रवत् गायों की बड़ी भारी संख्या है, चारों ओर गायें ही गायें हैं । उन गायों के मध्य ग्वालबालों की मण्डली है और ग्वालबालों के मध्य में दोनों भैया श्रीकृष्ण-बलराम खड़े हुए हैं । कृष्ण-बलराम की रूप माधुरी का पान करके अक्रूरजी से रहा नहीं गया । वे सोचने लगे कि देखो तो सही गोपाल और हलधर भैया को, कैसे ये गायों से समावृत होकर खड़े हैं । इनको गायों के बीच में खड़ा होना, गायों के बीच में रहना कितना प्रिय है ।

वस्तुतः कृष्णावतार तो हुआ ही गायों के लिए है । गोवंश की रक्षा, गोवंश की सेवा – बस इन्हीं कारणों से कृष्णावतार हुआ । भगवान् ने अवतार लेकर गो सेवा करायी ही नहीं, गो सेवा स्वयं की । गिरिराज धारण करके गायों की रक्षा की । इसीलिए उनका नाम ही गोविन्द हो

गया । गायों से उन्हें इतना प्रेम है । अक्रूरजी दूर से विलक्षण छटा को देखने लगे, कृष्ण-बलराम पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए हैं । उनका दर्शन करके अक्रूरजी रथ से उतरकर दौड़ते हुए श्रीकृष्ण के पास गये और उनके चरणों में गिर पड़े । श्यामसुन्दर ने देखा कि अक्रूरजी आये हैं तो 'चाचाजी-चाचाजी' कहकर उन्हें उठाया और अपने हृदय से लगा लिया । 'चाचाजी' सम्बोधन सुनते ही अक्रूरजी का हृदय गद्गद हो गया । वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण मेरे भाव को जान गये, इन्होंने मुझे आत्मीय(अपना) बना लिया, इससे बड़ी उपलब्धि मेरे लिए और क्या होगी ।

अध्याय – ३९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने अक्रूरजी का भलीभाँति सम्मान किया । श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कंस के अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा । उन्होंने सोच लिया कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं प्रभु से झूठ नहीं बोलूँगा । उन्होंने श्यामसुन्दर से सच्ची बात बताते हुए कहा – 'प्रभो ! नारदजी ने सब बना-बनाया काम बिगाड़ दिया । उन्हें कंस को यह बताने की क्या आवश्यकता थी कि आप देवकी के आठवें पुत्र हैं । अब तो वह दुष्ट दैत्य आपको मारने के लिए कटिबद्ध हो गया है और इस जघन्य कृत्य के लिए उसने मुझे यहाँ भेजा है । यज्ञोत्सव के बहाने आप दोनों भाइयों को वह मथुरा बुलाना चाहता है और वहाँ मल्ल-क्रीड़ा के द्वारा आप दोनों को मरवाना चाहता है । मैंने तो आपसे सत्य बात कह दी, अब आपको जो उचित लगे, उसे आप करें ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने हँसते हुए अक्रूरजी से कहा – 'चाचाजी ! आप चिन्ता न करें । मामाजी ने बुलाया है तो मैं अवश्य जाऊँगा, इस बहाने मथुरा भी घूम लूँगा, कभी मथुरा जाने का अवसर नहीं मिला,

प्रथम बार मथुरा में गमन होगा किन्तु आप इस बात का ध्यान रखें कि नन्द बाबा को यह पता न चल जाये कि कंस मुझे मारना चाहता है । यदि उन्हें इस बात का पता चल गया तो फिर वे मुझे मथुरा कभी नहीं भेजेंगे ।'

अक्रूरजी ने नन्दबाबा से तो वही बातें कहीं जो कंस ने उन्हें कहने के लिए भेजा था कि मथुरा में यज्ञोत्सव है, महाराज कंस ने उसे देखने के लिए आप सभी को आमन्त्रित किया है, आप सभी मथुरा पधारें और उस उत्सव का दर्शन करके आनन्द लें । अक्रूरजी की बात सुनकर नन्दबाबा को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा कि कंस ने प्रसन्न होकर हम लोगों को निमन्त्रण भेजा है, यह तो बड़ी अच्छी बात है । नन्दबाबा ने रात को ही ब्रजवासियों को यह घोषणा करवा दी कि कल राम-कृष्ण मथुरा जायेंगे, सभी ग्वालबाल समय से तैयार रहें । जो गोरस घर में रखा हो, उसे एकत्रित कर लें, उसी दौरान हम लोग कंस को वार्षिक कर भी चुका आयेंगे । सम्पूर्ण ब्रज में चारों ओर यह सूचना फ़ैल गयी । ग्वालबालों ने यह समाचार सुना तो वे एक-दूसरे से कहने लगे कि तूने नहीं सुना, कल कन्हैया मथुरा जा रहा है । जा तो रहा है किन्तु हम मना कर देंगे तो वह नहीं जायेगा । ऋषभ सखा, जो कृष्ण से आयु में बड़ा था, वह बोला – 'मैं कन्हैया से बड़ा हूँ । वह मेरी हर बात का मान रखता है, मैं उसे मना कर दूँगा तो कन्हैया मथुरा की ओर पाँव करके भी नहीं सोयेगा और तुम लोग उसके मथुरा जाने की बात कह रहे हो । कन्हैया को मैं मथुरा नहीं जाने दूँगा । जब तक हम लोग यहाँ रहे, कन्हैया के साथ ही हमने खाया-पिया, खेले-कूदे । अब कन्हैया के बिना हम यहाँ रहकर क्या करेंगे ?' एक सखा ने ऋषभ से पूछा कि यदि कन्हैया ने तेरी बात नहीं मानी तब फिर क्या होगा ? ऋषभ ने कहा कि यदि कन्हैया नहीं रुका तो फिर हम सब भी उसके साथ चलेंगे, वह रथ पर बैठकर जायेगा तो हम पैदल चलेंगे परन्तु कन्हैया को अकेले नहीं जाने देंगे ।

ग्वालबालों की समस्या का तो समाधान हो गया किन्तु वे ब्रजदेवियाँ, जो कृष्ण को सर्वात्मसमर्पण कर चुकी थीं, अभी कृष्ण दर्शन से उनका मन तृप्त भी नहीं हुआ था कि वियोगावस्था सामने आ गयी। सभी ब्रजगोपियाँ बैठकर परस्पर चर्चा करने लगीं। कृष्ण का मथुरा गमन ब्रज में एक बहुत बड़ी चर्चा का विषय बन गया। एक गोपी ने अपनी सखी से कहा – 'अरी ! कल कृष्ण मथुरा चले जायेंगे।' दूसरी गोपी ने कहा – 'तो क्या हुआ ? वैसे भी हमें दिन भर कृष्ण का दर्शन नहीं मिलता है। दिन में गोचारण के कारण वैसे भी हमें कन्हैया का वियोग ही रहता है।' तीसरी गोपी ने कहा – 'जब गोचारण के लिए कन्हैया जाते हैं तो संध्या के समय उनके आगमन की प्रतीक्षा का हमें सहारा तो रहता है किन्तु यदि वे मथुरा चले गये तो फिर हम कौन सी आशा धारण करेंगी, कृष्ण के कौन से आगमन की प्रतीक्षा करेंगी, जिसके सहारे अपने प्राणों को जीवित रखेंगी। अब तो कृष्ण की प्रतीक्षा की हमारी आशा भी नष्ट हो जाएगी। हम कृष्ण के बिना कैसे रहेंगी ?' एक अन्य गोपी ने कहा – 'मैंने तो कन्हैया को रोकने का पूर्ण निश्चय कर लिया है। रथ के जाने का एक ही मार्ग है। घर के बन्धु-बान्धव यदि रोकें तो रोकते रहें परन्तु मैं कल कन्हैया को मथुरा नहीं जाने दूँगी। हम सब मिलकर कन्हैया को लौटा लायेंगी। कन्हैया को भी हमारी बात माननी चाहिए। जाने से पहले वह भी एक बार सोचेगा कि ब्रजगोपियों के बिना मथुरा में मेरा मन कैसे लगेगा, इन गोपियों का स्मरण मुझे हमेशा सतायेगा फिर मैं मथुरा जाकर क्या करूँगा ?'

इधर यशोदा मैया को रात भर नींद नहीं आई, बिस्तर पर बार-बार करवट बदलती रहीं। सबेरा होने पर वे उठकर रोने लगीं। मैया का रुदन गोपालजी से देखा नहीं गया, वे दौड़कर मैया के पास गये और उनके आँसू पोंछते हुए बोले – 'मैया ! तू इतना क्यों रो रही है ?' मैया

बोलीं – 'लाला ! तू मथुरा जा रहा है । अब मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, किसको अपने साथ सुलाऊँगी, किसको अपने हाथ से भोजन कराऊँगी । यदि तूने मथुरा गमन किया तो मेरा मन अत्यधिक शोकाकुल हो जायेगा । इसलिए तू ब्रज छोड़कर मत जा ।' श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! यदि तू मेरी पूछे तो मेरे मन में तो मथुरा जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं है । परन्तु बाबा ऐसा चाहते हैं कि हम दोनों भैया इसी बहाने मथुरापुरी घूम आयें क्योंकि इस प्रकार का आना-जाना बार-बार तो होता नहीं है, मथुरा दूर भी है । इसलिए अब बाबा के साथ घूमना भी हो जायेगा । तू चिन्ता मत कर, दो दिन के बाद मैं लौट आऊँगा । तेरे बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा ?'

कन्हैया की बात सुनकर मैया ने अपने लाला का श्रृंगार किया । कन्हैया की आँखों में अंजन लगाया, मस्तक पर तिलक लगाया, उसके केशों को सँवारा । इसके बाद मैया ने अपने हाथों से कन्हैया को भोजन कराया । मैया ने मन में यह भी सोचा कि कहीं ये वह अवसर तो नहीं है कि मैं अपने कन्हैया का अन्तिम दर्शन कर रही हूँ । कहीं ऐसा न हो कि आज के बाद मुझे अपने कन्हैया का कभी दर्शन ही न हो । कहीं ऐसा ही अवसर तो नहीं आ गया ? मैया रोती भी जा रही है और अपने लाला को भोजन भी खिलाती जा रही है । उसी समय अक्रूरजी रथ लेकर द्वार के सामने आ गये । दाऊ भैया मैया को प्रणाम करके रथ पर बैठ गये । श्यामसुन्दर ने भी जब यशोदा मैया को प्रणाम किया और जाने की अनुमति माँगी तो मैया ने कहा – 'लाला ! तू थोड़ी देर और रुक जा, मैं तुझको ऐसे नहीं जाने दूँगी ।' मैया यशोदा ने बड़े-बड़े ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब बढ़िया सा मुहूर्त देखो, कौन सा मुहूर्त मेरे लाला की यात्रा को मंगलमय करेगा, मैं उसी मुहूर्त में लाला को यहाँ से भेजूँगी क्योंकि मेरा लाला शत्रु की नगरी में जा रहा है, असुर की नगरी में जा रहा है, कहीं वहाँ उसका अनिष्ट न हो जाये । मथुरा से कंस के भेजे बड़े-बड़े असुर यहाँ आये और वहाँ तो

ऐसे बहुत से असुर हैं, मथुरा तो असुरों का पूरा गढ़ है । मेरा लाला असुरों की नगरी में जा रहा है तो बढ़िया से मुहूर्त में इसका प्रस्थान होना चाहिए, जिससे कि इसका कोई अमंगल न हो, मंगल ही मंगल हो । ज्योतिषी आये और यशोदाजी से बोले – 'मैया ! तू चिन्ता मत कर । तेरा बालक मथुरा में जाकर असुरों का वध ही करेगा, उन पर विजय प्राप्त करेगा । इतना ही नहीं, कंस का भी वध करके यह लक्ष्मीपति बन जायेगा ।' ज्योतिषियों की बात सुनकर मैया को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें थोड़ा धैर्य हुआ । मैया ने सोचा कि चलो, मेरे लाला के वहाँ जाने से मंगल ही होगा, उसका कुछ अनिष्ट नहीं होगा । श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! तू देख, हमारे यहाँ गोधन बढ़ रहा है, गायों की वृद्धि हो रही है । गायों का उत्कर्ष बढ़ने का लक्षण यही है कि जिस देश में गायों की वृद्धि होती है, उस देश का, वहाँ के निवासियों का कभी अमंगल नहीं होता है । इसलिए गोवंश के वर्धन से ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा में मेरा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा । मैया ! तू शंका मत कर । कोई वहाँ मेरा अमंगल नहीं कर पायेगा । मंगल ही मंगल होगा क्योंकि गोवंश की कृपा हमारे ऊपर बराबर बनी हुई है । जहाँ गोवंश सुरक्षित रूप से, स्वतन्त्र रूप से श्वास ग्रहण करता है, वह देश निरन्तर वृद्धि को ही प्राप्त हुआ करता है । जहाँ बहुत सी गायें रहती हैं और ऐसी गायें, जो पूर्णतया सुखी हों, सन्तुष्ट-पुष्ट हों, उन गायों के रहने से उस देश का, उस स्थान का मंगल ही मंगल हुआ करता है ।' इस प्रकार गोपालजी ने अपनी मैया को समझाया । अब मैया से अनुमति लेकर कृष्ण जैसे ही रथ पर बैठे और थोड़ी दूर ही रथ गया तो देखा कि गोपियों ने मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है । अक्रूरजी ने गोपियों से प्रार्थना की कि तुम लोग मुझे मार्ग देने की कृपा करो किन्तु किसी ने भी उन्हें मार्ग नहीं दिया । किसी गोपी ने अक्रूरजी का हाथ पकड़ लिया, किसी ने घोड़ों की लगाम पकड़ ली, कोई कृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें समझाने लगी, कोई दाऊ भैया का हाथ पकड़कर समझाने लगी । श्रीकृष्ण ने उन सब

गोपियों को सान्त्वना देते हुए कहा – 'हे ब्रजदेवियो ! केवल अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मन की वृत्ति सदा प्रेमास्पद में लगी रहे, चाहे प्रेमी कहीं भी हो, किसी भी देश में किसी भी जगह हो लेकिन मन यदि प्रेमी में है तो प्रेम का यही सच्चा लक्षण है, यही प्रेम की परिभाषा है । अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मैं सदा तुम्हारे पास ही रहूँ, यह प्रेम नहीं है । मैं तुमसे दूर भी चला जाऊँ, तब भी तुम निरन्तर मेरा स्मरण करती रहो, इसी का नाम प्रेम है और हे देवियो ! तुम्हारे प्रेम का बदला तो मैं कभी चुका ही नहीं सकता । तुम जब भी मेरा स्मरण करोगी, उसी समय तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायेगा । मैं दो दिन में लौटकर शीघ्र ही ब्रज में आ जाऊँगा । तुम्हारे बिना मथुरा में भी मेरा मन कैसे लगेगा ?' इस प्रकार श्यामसुन्दर ने ब्रजगोपिकाओं को आश्वस्त किया और रथ को आगे बढ़ाने की अक्रूरजी को उन्होंने अनुमति दी । इधर यशोदा मैया विचार करने लगीं कि मेरे रोकने पर तो कन्हैया नहीं माना पर कम से कम गोपियों के रोकने पर तो मान जाता, ऐसा मेरा भरोसा था । अब तो इसने गोपियों को भी न जाने क्या पाठ पढ़ा दिया कि वे भी लाला को रोक नहीं रही हैं । आज की रात्रि मैं कैसे व्यतीत करूँगी ? कन्हैया के बिना यह ब्रज मुझे अनाथ सा लग रहा है । मैं कन्हैया के बिना यहाँ कैसे रहूँगी, ऐसा सोचते हुए अत्यधिक शोक वेदना के कारण मैया धरती पर गिर पड़ीं । श्यामसुन्दर रथ से उतरे और मैया के पास जाकर उनके अश्रु पोंछते हुए बोले – 'मैया ! जब तक तू सप्रसन्न मुझे जाने की अनुमति नहीं देगी तब तक मैं मथुरा गमन नहीं करूँगा । तू क्यों इतना रो रही है ?' यशोदा मैया ने कहा – 'लाला ! मैंने ऐसा सुना है कि तू मेरा पुत्र नहीं है, तू तो देवकी का पुत्र है । तू मथुरा जा रहा है तो मेरा इतना सन्देश देवकी को अवश्य दे देना कि वह मुझे तेरी माँ समझे अथवा न समझे परन्तु मुझे तेरी धाय, तेरी दासी तो समझती ही रहे । इतनी कृपा वह मुझ पर करती ही रहे । यह सन्देश मैया देवकी को अवश्य दे देना ।' यशोदा मैया की ऐसी बात सुनकर श्यामसुन्दर के

कमल सरीखे नेत्रों में अश्रु भर आये, उन्होंने कहा – 'मैया ! यदि तू ऐसी बात पुनः कहेगी तो तेरा लाला फूट-फूटकर रोने लग जायेगा । देवकी मैया ने भले ही मुझे जन्म दिया हो परन्तु अनेकानेक कष्टों को सहकर मेरा लालन-पालन तो तूने ही किया है । इतना ऊधम यहाँ मैंने किया किन्तु तूने मुझे कभी डाँटा-फटकारा भी नहीं । मैया ! मैं तेरी सेवा, तेरे प्रेम को कभी भूल नहीं पाऊँगा । तू चिन्ता मत कर और सप्रसन्न मुझे मथुरा जाने की अनुमति दे । मैं अति शीघ्र वापस आ जाऊँगा ।' ऐसा कहकर गोपालजी ने मैया का चरण स्पर्श किया । यशोदा मैया के चरण स्पर्श करके और उनकी अनुमति लेकर तब श्यामसुन्दर रथ पर विराजे । इधर नन्दबाबा ग्वालबालों के साथ गोरस इकठ्ठा करके पहले ही छकड़ों पर बैठकर मथुरा के लिए प्रस्थान कर गये । कृष्ण-बलराम के साथ अक्रूरजी बात करते हुए धीरे-धीरे मथुरा की ओर बढ़े । मार्ग में ही अक्रूरजी ने यमुनाजी में स्नान किया । यमुना जल में डुबकी लगाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने ऐश्वर्यमय रूप का दर्शन कराया । यह देखकर अक्रूरजी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।

इसके बाद अध्याय – ४० में अक्रूरजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।

अध्याय – ४१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अक्रूरजी द्वारा स्तुति कर लेने के बाद भगवान् ने अपने ऐश्वर्यमय रूप को छिपा लिया । जब अक्रूरजी ने देखा कि भगवान् का वह दिव्य रूप अन्तर्धान हो गया तब वे जल से बाहर निकल आये और रथ हाँककर श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को लेकर दिन ढलते-ढलते मथुरा पहुँच गये । नन्दबाबा आदि ब्रजवासी तो पहले ही वहाँ पहुँच गये थे और मथुरापुरी के बाहरी उपवन में रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उनके पास पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कहा कि अब आप कंस के पास जाइये और हमारे यहाँ आने की उसे

सूचना दे दीजिये । कल हम लोग नगर देखने के लिए आयेंगे । अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की – 'प्रभो ! आप मेरे घर पधारिये ।' श्रीकृष्ण ने कहा कि कंस वध के बाद ही मैं दाऊ भैया के साथ आपके घर आऊँगा ।

अक्रूरजी ने कंस के पास जाकर श्रीकृष्ण और बलरामजी के आगमन की सूचना दे दी । इधर राम-कृष्ण, नन्दबाबा और ग्वालबालों ने रात्रि में विश्राम घाट पर शयन किया । अगले दिन सुबह होने पर ग्वालबालों ने श्रीकृष्ण से कहा कि हम लोग इतनी दूर से मथुरा आये हैं और यहाँ आकर भी मथुरा नगरी में नहीं घूमे तो आने का क्या लाभ ? जल्दी चल, आज हम लोग मथुरा घूम लें, देख लें कि यह नगरी कैसी है, कैसे यहाँ के महल-दुमहले हैं ? ग्वालबालों ने मथुरा भ्रमण के लिए नन्दबाबा से आज्ञा माँगी तो उन्होंने मना करते हुए कहा कि मथुरा कंस की नगरी है, यहाँ असुर रहते हैं, कंस वैसे ही बहुत दुष्ट है और तुम ग्वालबाल बहुत चपल हो । तुम लोगों ने नगर में यदि ऊधम कर दिया तो हम लोगों के ऊपर बड़ी विपत्ति आ जाएगी । नन्दबाबा की बात सुनकर दाऊजी बोले – 'बाबा ! तुम चिन्ता न करो । मैं अपने संरक्षण में ग्वालबालों को लेकर जाऊँगा और कोई भी बालक किसी प्रकार की चपलता नहीं करेगा ।' दाऊजी द्वारा इस प्रकार आश्वासन देने पर नन्दबाबा ने उन सभी को मथुरा भ्रमण के लिए आज्ञा दे दी । ग्वालबालों के साथ जब कृष्ण-बलराम मथुरा घूमने के लिए गये तो सारे नगर में चारों ओर हल्ला मच गया कि श्रीकृष्ण अपने बड़े भैया दाऊजी और ग्वालबालों के साथ आये हैं । अब तो जितने भी मथुरा के नर-नारी थे, वे सभी बड़े प्रसन्न हुए । मथुरा की नारियाँ श्रीकृष्ण की अनुपम रूपमाधुरी का दर्शन करने के लिए अपनी अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं और उन पर पुष्प वर्षा करने लगीं । जहाँ से भी श्रीकृष्ण-बलराम निकलते, चारों वर्णों के लोग अनेक प्रकार की भेंट सामग्रियों से उनकी

पूजा करते, उन पर पुष्प वर्षा करते । ग्वालबाल आश्चर्यचकित होकर श्रीकृष्ण से बोले कि इस नगरी में तो तेरा बड़ा स्वागत हो रहा है । श्रीकृष्ण ने कहा कि यह तो मेरे मामा की नगरी है । इसलिए मामा की नगरी में भांजे का स्वागत होना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है । ग्वालबालों ने कन्हैया से कहा कि इस मथुरापुरी में तो सभी नर-नारी सुन्दर वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित हैं और हम लोगों के पास तो पर्याप्त वस्त्र भी नहीं हैं । तू तो बढ़िया वस्त्र पहने अथवा न पहने, सदा ही सुन्दर लगता है किन्तु हमें तो सुन्दर दिखने के लिए बढ़िया वस्त्र पहनने की आवश्यकता है । अतः तू इस नगर में हमारे पहनने के लिए सुन्दर वस्त्रों की व्यवस्था कर । ग्वालबालों की इच्छा पूर्ति के लिए श्यामसुन्दर ने मार्ग में जा रहे कंस के रजक(धोबी) से उत्तम वस्त्र माँगे परन्तु वस्त्र देना तो दूर रहा, वह तो क्रोध में भरकर उन्हें बहुत से कटु वचन कहने लगा । उसकी इस दुष्टता को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने एक ही थप्पड़ लगाकर उसका वध कर दिया । यह देखकर उस धोबी के अधीन काम करने वाले जितने भी धोबी थे, वे सभी भयभीत होकर सब के सब वस्त्रों के गट्ठर वहीं छोड़कर भाग गये । अब तो श्यामसुन्दर ने ग्वालबालों से कहा कि इन वस्त्रों में जो भी वस्त्र तुम्हें बढ़िया लगे, उसे पहन लो । ग्वालबालों ने देखा कि वे वस्त्र बहुत बड़े थे क्योंकि उन्हें कंस पहनता था और वह तो लम्बा-चौड़ा था जबकि ये बालक तो छोटे-छोटे थे, तब श्रीकृष्ण एक भक्त दर्जी पर कृपा करने के लिए उसके पास गये । उस दर्जी ने उन रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रों को बढ़िया माप के साथ ग्वालबालों के शरीर पर ऐसे ढंग से सजा दिया कि उनकी अपूर्व शोभा हो गयी । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा माली के घर गये । सुदामा माली प्रभु को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । प्रेम और आनन्द के आवेग के कारण उसे यह समझ ही नहीं आया कि मैं प्रभु की सेवा कैसे करूँ ? उसने श्रीकृष्ण को वनमाला धारण करायी, पान की बीड़ी का भोग लगाया

और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगा – 'हे प्रभो ! मेरे योग्य तो यही सेवा है, इसके अतिरिक्त मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? मेरे अन्दर कोई योग्यता नहीं है ।'

जब भगवान् ने सुदामा माली से वरदान माँगने के लिए कहा तो उसने प्रभु की अखण्ड भक्ति का वरदान माँगा । अखण्ड भक्ति के साथ ही भगवान् ने उसे आयु, धन और कीर्ति से भी सम्पन्न कर दिया ।

अध्याय – ४२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इसके बाद आगे चलने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कुबड़ी स्त्री कुब्जा को सुन्दर स्वरूप प्रदान किया और फिर कंस की रंगशाला में पहुँचे, जहाँ धनुष यज्ञ का उत्सव मनाया जा रहा था । भगवान् ने वहाँ रखे धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने के बहाने उसके दो टुकड़े कर दिए । जिस समय वह धनुष टूटा तो उसकी भीषण ध्वनि को सुनकर कंस काँप गया । धनुष के रक्षक दौड़कर कंस के पास पहुँचे और उसे बताया कि जिस धनुष के यज्ञ का उत्सव मनाया जाने वाला था, उसे ब्रज से पधारे बालक कृष्ण ने तोड़ दिया और उसके दो टुकड़े कर दिए । यह सुनकर तो कंस को और भी अधिक भय हो गया, उसने विचार किया कि कहीं ऐसा तो नहीं कि कृष्ण को मथुरा में बुलाकर मैंने अपने काल को बुला लिया है । रात भर कंस को नींद नहीं आयी ।

अध्याय – ४३

अगले दिन रंगभूमि फिर से सजी । मार्ग के मध्य में अति भयंकर और हिंसक कुवलयापीड़ हाथी को खड़ा किया गया । जैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण ने मथुरापुरी के भीतर प्रवेश किया तो इस हिंसक हाथी के द्वारा उनका मार्ग अवरुद्ध करा दिया गया । तब भगवान् ने वहाँ कुवलयापीड़ का वध किया । कुवलयापीड़ को मारने के बाद भगवान्

श्रीकृष्ण ने उसके दाँतों को हाथ में लेकर रंगभूमि में प्रवेश किया । वहाँ उन्होंने देखा कि चाणूर और मुष्टिक आदि बड़े-बड़े पहलवान खड़े हैं । उन पहलवानों को देखकर श्रीकृष्ण के सखा ग्वालबाल तो अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये । पहलवानों ने श्रीकृष्ण से कहा – 'अरे कृष्ण ! हमने ऐसा सुना है कि तू मल्ल क्रीड़ा में बड़ा कुशल है । देख, हम लोग हैं प्रजा और हमारे राजा हैं कंस । अतः अब अपने राजा कंस की प्रसन्नता के लिए हम लोग यहाँ मल्ल क्रीड़ा करेंगे ।' श्यामसुन्दर बोले – 'क्रीड़ा तो करेंगे परन्तु हम लोग अभी बालक हैं, इसलिए हम अपने समान बल वाले बालकों के साथ ही मल्ल क्रीड़ा करेंगे । मल्ल क्रीड़ा का एक नियम होता है । जो समान आयु के बालक होते हैं, उनके साथ ही मल्ल युद्ध होता है । तुम लोग तो वज्र जैसे पहलवान हो और हम छोटे से बालक हैं । यह समानता नहीं है, इसलिए हम तुम्हारे साथ मल्ल युद्ध नहीं करेंगे ।' भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर क्रोध में भरकर चाणूर ने कहा – 'अरे ! अभी तुम दोनों ने हजार हाथियों का बल रखने वाले कुवलयापीड़ हाथी को खेल ही खेल में मार डाला । बड़े-बड़े असुरों को तुमने मार दिया । इसलिए तुम अब बालक नहीं हो । तुम दोनों को हम जैसे बलवानों के साथ ही लड़ना चाहिए ।'

अध्याय – ४४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण ने विचार किया कि जब ये लोग स्वयं ही मरना चाहते हैं तो मुझे इन्हें मारने में क्या देर लगेगी ? अब तो चाणूर का कृष्ण के साथ और मुष्टिक का बलरामजी के साथ मल्ल युद्ध आरम्भ हो गया । जैसे ही मल्ल क्रीड़ा प्रारम्भ हुई तो वहाँ अभिनेताओं की भाँति पैंतरे बदले जाने लगे । वे लोग पंजों से पंजे, घुटनों से घुटने, माथे से माथा और छाती से छाती भिड़ाकर एक दूसरे पर चोट करने लगे । कभी वे एक दूसरे को घुमाते, कभी पटकते, कभी

गिर जाते, फिर उठकर पुनः लड़ते । इस प्रकार बड़ा भीषण मल्ल युद्ध हुआ । उस समय इस दंगल को देखने के लिए आयी हुई मथुरा की स्त्रियाँ कंस की निन्दा करते हुए आपस में कहने लगीं – 'अरे देखो ! यहाँ छोटे-छोटे बालकों का वज्र जैसे पहलवानों के साथ मल्ल युद्ध कराया जा रहा है । यह बहुत बड़ा अन्याय है । बहुत सी स्त्रियाँ तो वहाँ से उठकर चली गयीं ।'

कृष्ण-बलराम ने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल आदि पाँचों पहलवानों को समाप्त कर दिया । किसी को तिनके की तरह चीर दिया, किसी को ठोकर मारकर समाप्त कर दिया, किसी को घूँसे के प्रहार से समाप्त कर दिया, किसी का एक तमाचे में ही सिर अलग कर दिया । इस प्रकार कंस के इन सभी बलशाली पहलवानों का प्राणान्त हो गया । यह देखकर कंस बहुत घबरा गया । वह विचार करने लगा कि अब तो मेरे सभी वीर पहलवानों को इन दोनों बालकों ने मार डाला, अब तो इनसे लड़ने वाला कोई नहीं है तो उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी – 'इन लड़कों को नगर से बाहर निकाल दो । गोपों का सारा धन छीन लो, नन्द को कैद कर लो और वसुदेव को मार डालो ।'

कंस जब इस प्रकार बढ़-बढ़कर बकवाद कर रहा था तो श्रीकृष्ण क्रोधित होकर फुर्ती से उछलकर वेगपूर्वक उसके ऊँचे मंच पर जा चढ़े । जब कंस ने देखा कि मेरे मृत्युरूप कृष्ण सामने आ गये हैं तब वह अपने सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया तथा हाथ में ढाल और तलवार उठा ली । भगवान् ने बलपूर्वक उसे पकड़ लिया । उस समय कंस का मुकुट गिर गया । भगवान् ने उसके बाल पकड़कर उसे ऊँचे मंच से रंगभूमि में गिरा दिया और फिर उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े । उनके कूदते ही कंस की मृत्यु हो गयी ।

बोलो कन्हैया लाल की जय !

कंस के कङ्क और न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाई थे । वे अपने बड़े भाई का बदला लेने के लिए अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी की ओर दौड़े । उस समय बलराम जी ने श्रीकृष्ण से कहा – 'कन्हैया ! तूने यहाँ बहुत से पहलवानों और योद्धाओं को मार दिया । अब कंस के इन भाइयों को मुझे सौंप दे ।' ऐसा कहकर बलरामजी ने कंस के इन सभी भाइयों का वध कर दिया ।

कंस वध के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कारागार में जाकर अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव को बन्धन से छुडाया और उनके चरणों की वन्दना की ।

अध्याय – ४५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अपने नाना उग्रसेनजी को भी कारागार से मुक्त करके श्रीकृष्ण ने उनको यदुवंशियों का राजा बना दिया । इसके बाद श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई नन्दबाबा के पास आये और उनसे कहने लगे – 'बाबा ! अब आप ब्रज को चले जाओ, वहाँ मैया को समझा देना कि हम दोनों भाई शीघ्र ही ब्रज में लौटेंगे । आप लोग अभी ब्रज में रहिये । हम दोनों भाई अभी मथुरा में कुछ समय तक रहकर अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव और यहाँ के अन्य सुहृद-सम्बन्धियों को सुखी करके आप लोगों से मिलने के लिए ब्रज में अवश्य ही आयेंगे ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा और दूसरे ब्रजवासियों को इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़े आदर के साथ वस्त्र-आभूषण और अन्य भेंट सामग्रियाँ देकर उनका सत्कार किया । नन्दबाबा की अपने लाला को छोड़ने की बिलकुल भी इच्छा नहीं थी परन्तु श्रीकृष्ण के प्रेमपूर्ण अनुरोध के कारण उन्हें ब्रजवासियों के साथ ब्रज लौटना पड़ा ।

इधर देवकी-वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्यजी के द्वारा श्रीकृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया और उसके बाद विद्याध्ययन करने के लिए सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में

अवन्तीपुर(उज्जैन)भेज दिया । वहाँ श्रीकृष्ण और बलराम ने केवल चौंसठ दिन-रात में ही चौंसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया और शीघ्र ही विद्याध्ययन समाप्त करके मथुरा लौट आये ।

अध्याय – ४६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - जब से श्रीकृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा में आये, तभी से उनका चित्त बड़ा विक्षिप्त रहा करता था । श्रीकृष्ण ब्रज की स्मृति में बड़े ही उदास रहा करते थे और प्रायः रुदन किया करते थे । उद्धवजी प्रभु के प्रिय सखा और उनके मन्त्री भी थे । वे देवगुरु बृहस्पति के शिष्य थे । भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी ज्ञानी तो बहुत हैं और देवगुरु बृहस्पति के शिष्य भी हैं । इनके ज्ञान में तो कोई कमी नहीं है किन्तु अभी प्रेम के अभाव में इनका ज्ञान शुष्क है, नीरस है और इस ज्ञान का कोई लाभ नहीं है । इनको मैं ऐसी कौन सी पाठशाला में भेजूँ, जहाँ से उद्धवजी प्रेम की शिक्षा प्राप्त करके प्रेम से परिपूर्ण हो जाएँ । भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी को प्रेम की शिक्षा दिलाने के लिए ब्रजभूमि ही सर्वोत्तम पाठशाला है क्योंकि जो भूखा है, जिसका स्वयं का पेट नहीं भरा, वह दूसरे की भूख क्या मिटायेगा ? जिनका हृदय मेरे प्रेम से पूर्णतया परिपूर्ण है, ऐसी प्रेम की आचार्या ब्रजगोपियों के पास यदि उद्धवजी को भेजा जाये, तब इनका ज्ञान भी जब प्रेम से सिञ्चित होगा तो यह ज्ञान सरस होगा, यह ज्ञान बढ़िया हो जायेगा ।

श्रीकृष्ण मथुरा में ब्रज की याद में प्रायः रुदन किया करते और उद्धवजी से कहते थे –

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं । उद्धवजी श्रीकृष्ण से कहते कि प्रभु आप ये क्या कह रहे हैं ? आप संसार के लोगों को तो सिखाते हैं कि मोह नहीं करना चाहिए परन्तु अब इस विकट मोह ने आपको कैसे

ग्रसित कर लिया, आप तो स्वयं ही मोहग्रस्त हो गये हैं । मैंने पहले तो कभी आपको रोते हुए नहीं देखा था किन्तु अब तो इस प्रकार आप रो रहे हैं कि अश्रुधारा रोके नहीं रुक रही है । एक दिन श्यामसुन्दर उद्धवजी के साथ यमुना तट पर घूमने के लिए गये । श्यामसुन्दर ने जैसे ही यमुनाजी के उस नीले प्रवाह को देखा तो उन्होंने अपनी चरण पादुका को उतारकर यमुनाजी को प्रणाम किया और रोने लगे । श्यामसुन्दर ने उद्धवजी से कहा कि जिस समय मैंने गोलोक धाम में श्रीराधारानी के साथ विहार किया, अन्तरंग लीलायें कीं, उस समय मेरे और श्रीजी के मुखमण्डल पर स्वेद बिंदु उभर आये । उन्हें देखकर सब सखियों ने हम दोनों से प्रार्थना की – 'हे युगल सरकार ! आपके मुख पर लीलाविहार से उत्पन्न हुए जो श्रम बिन्दु हैं, ये हमें पीने के लिए मिल जाएँ, आप ऐसा कोई उपाय कीजिये ।' सखियों की प्रार्थना से अपने स्वेद बिन्दुओं को सखियों के पीने योग्य बनाने के लिए ही हमने उन स्वेद बिन्दुओं से यमुनाजी को प्रकट किया । अतः हम राधा-माधव के लीलाविहार के समय हमारे मुख पर जो स्वेद बिंदु उत्पन्न हुए, वे स्वेद बिन्दु ही यमुना जी के रूप में प्रवाहित हो रहे हैं । राधा-माधव का प्रेम ही यमुनाजी के रूप में प्रवाहित हो रहा है । उस यमुनाजी को देखकर श्यामसुन्दर स्वयं को रोक नहीं पाए और जोर-जोर से रुदन करने लगे । उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! आप इस प्रकार रुदन क्यों कर रहे हैं ?' उस समय श्यामसुन्दर ने उद्धवजी को श्रीजी की अन्तरंग लीलाओं के बारे में बताया । श्यामसुन्दर भूमि पर अपने चरणों को रखकर और हाथ जोड़कर श्रीजी से प्रार्थना करने लगे - 'हे स्वामिनी जू ! मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया, जिसके कारण आपने मुझे ब्रज से बाहर निकाल दिया ।' श्यामसुन्दर बार-बार राधारानी से प्रार्थना करने लगे –

हे वृषभानुसुते ललिते मैं कौन कियो अपराध तिहारो
काढि दियो ब्रजमंडल सों कछु और हू दण्ड रह्यो अति भारो ।
आपनो जान दया की निधान भई सो भई अब वेगि निवारो
देहु सदा ब्रज को बसिबो वह कुञ्ज कुटीर यमुना को किनारो ॥

श्यामसुन्दर ने श्रीजी से प्रार्थना की कि मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया कि सदा-सर्वदा के लिए आपने मुझे ब्रज के बाहर कर दिया, ब्रज से निकाल दिया । हे स्वामिनी जू ! अब कृपा करो, पुनः मुझे ब्रज में बुलाओ । ऐसा कहकर श्यामसुन्दर रोने लगे । उद्धवजी ने उन्हें सँभाला और पूछा कि प्रभो ! आप इतना क्यों रोते हैं ? श्यामसुन्दर ने कहा – 'उद्धव ! यदि गोपीजन रोना बंद कर दें तो मेरा भी रोना बन्द हो जायेगा । यदि वे रोती रहीं तो मैं भी रोता रहूँगा क्योंकि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

यदि वे रो-रोकर मेरी याद करती हैं तो मेरे लिए भी रो-रोकर उनका स्मरण करना स्वाभाविक है ।'

उद्धवजी अपने ब्रह्मज्ञान में डूबे हुए सोचने लगे कि मैं एक बार ब्रज चला जाऊँ तो गोपियों का रोना बन्द हो जायेगा और यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी तो कृष्ण का रोना अपने-आप ही बन्द हो जायेगा । उद्धवजी ने श्रीकृष्ण से आज्ञा माँगी – 'प्रभो ! क्या मैं एक बार ब्रज में जाकर गोपियों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश से संतुष्ट कर आऊँ ? यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी फिर आप भी तो नहीं रोयेंगे ।' श्रीकृष्ण बोले – 'उद्धव ! यदि ब्रजवासी नहीं रोयेंगे तो मैं भी नहीं रोऊँगा ।'

उद्धवजी ब्रज जाने को तैयार हो गये । श्यामसुन्दर ने अपना पीताम्बर उतारकर उन्हें दिया और कहा –

'उद्धव ! यह पीताम्बर लेते जाओ । ये मेरा उत्तरीय लेते जाओ, मेरी वनमाला लेते जाओ । इनको धारण करके ही ब्रज में जाना क्योंकि

यदि ब्रज में तुमने मेरा उत्तरीय धारण नहीं किया तो ब्रजवासी तुमसे बात भी नहीं करेंगे । ये ब्रजवासी ब्रह्मज्ञानी-वेदान्तियों से बात नहीं करते । यदि तुम मेरा उत्तरीय धारण करके जाओगे तो ब्रजवासी सोचेंगे कि इस व्यक्ति ने कृष्ण का सा वस्त्र धारण किया है, ऐसा लगता है कि यह कृष्ण का कोई परिचित है, कृष्ण का कोई घनिष्ठ सम्बन्धी है तो वे ब्रजवासी तुमसे बात करेंगे ।'

श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उद्धवजी ब्रज पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा –

इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१०)

गायें भी बड़ी पुष्ट हैं, बछड़े भी पुष्ट हैं । गायों के छोटे-छोटे बछड़े इधर-उधर उछल-कूद रहे हैं । उद्धवजी सोचने लगे कि कृष्ण तो कहते थे कि सारा ब्रज मेरे विरह में रोता है, ब्रज के पशु-पक्षी तक मेरी याद करके रोते हैं परन्तु यहाँ तो इसके विपरीत हो रहा है । बछड़े आनन्द से उछल-कूद रहे हैं । ऐसा क्यों हुआ तो इसका उत्तर यह है कि ब्रज का प्रत्येक ब्रजवासी यह चाहता है कि कृष्ण कहके गये हैं कि मैं एक दिन ब्रज में लौटूँगा तो कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण लौटकर ब्रज में आ जाएँ और हमारा शरीर कृष्ण के विरह में एकदम जर्जर हो जाये तो यह देखकर कृष्ण को कितना कष्ट होगा । जब हम ब्रजवासी कृष्ण को दुर्बल दिखायी देंगे तो उन्हें कितना कष्ट होगा, अतः श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए गाय-बछड़े खाते हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए गोपियाँ श्रृंगार करती हैं । एक बार एक गोपी ने अपनी सखी से कहा कि मैंने तो श्रृंगार करना छोड़ दिया है ।

हौं ता दिन कजरा दैहौं ।
जा दिन नन्दनन्दन के नैनन, अपने नैन मिलैहौं ।

मैं तो अपने नेत्रों में काजल ही नहीं लगाऊँगी, मैंने तो सब श्रृंगार त्याग दिया है । उसकी बात सुनकर दूसरी गोपी ने कहा – 'अरी ! तू बावरी हो गयी है । मान ले आज संध्या तक यदि कृष्ण आ गये और तूने श्रृंगार नहीं किया है तो जब वे तुझे श्रृंगारविहीन अवस्था में देखेंगे तो क्या उन्हें प्रसन्नता होगी ? कृष्ण का मन कितना दुखी होगा और यदि कृष्ण का मन दुखी होगा तो क्या तू प्रसन्न हो जाएगी ?'

अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ श्रृंगार करती हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ भोजन करती हैं । ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने गोपियों के बारे में अर्जुन से कहा है –

'निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते'

तभी तो गोपियों को भगवान् ने अपना सर्वोच्च भक्त माना है क्योंकि वे अपने शरीर को भी अपना समझकर नहीं सजाती हैं, वे तो अपने शरीर को भी कृष्ण का शरीर मानकर कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उसे सजाती हैं । उद्धवजी जब ब्रज में पहुँचे तो नन्दबाबा से मिले । नन्दबाबा और उद्धवजी के संवाद का भागवत में वर्णन है । नन्दबाबा ने उद्धवजी के मुख से जब सुना कि कंस की मृत्यु हो गयी, जबकि उनके सामने ही कृष्ण के द्वारा कंस का वध हुआ था परन्तु उन्होंने कहा –

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१७)

उद्धव जी ! यह बहुत बढ़िया हुआ कि दुष्ट कंस मर गया ।

नन्दबाबा का वात्सल्य देखो, उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरे लाला ने कंस को मारा, उन्होंने कहा कि कंस तो अपने पापों के कारण मर गया । हमारे कुलदेवता नारायण भगवान् ने उसको मार दिया अन्यथा मेरा लाला तो छोटा सा है, उसमें कहाँ इतनी ताकत है, जो

इतने बलशाली कंस को मार सके । नन्दबाबा ने आगे कहा – 'उद्धवजी ! मैं कृष्ण की कुशलता के बारे में आपसे नहीं पूछूँगा । मैं तो बस एक ही बात जानना चाहता हूँ, मुझे एक बार यह बता दो कि कृष्ण ब्रज में कभी आयेंगे कि नहीं ।' यदि उद्धवजी के मुख से भूल से भी यह निकल जाता कि कृष्ण नहीं आयेंगे तो नन्दबाबा तो उसी क्षण अपने प्राण त्याग कर देते । उद्धवजी ब्रजवासियों की दशा को देखते ही यह समझ गये कि इनको मैं कभी भूलकर भी यह नहीं कहूँगा कि कृष्ण नहीं आयेंगे । उद्धवजी और नन्दबाबा के संवाद का तो भागवत में वर्णन भी है किन्तु यशोदा मैया और उद्धवजी के संवाद का शुकदेवजी ने वर्णन ही नहीं किया । यशोदा मैया के संवाद के वर्णन करने का शुकदेवजी साहस ही नहीं कर सके क्योंकि उनका ऐसा निश्छल प्रेम था कि जो अवर्णनीय है । यशोदाजी की स्थिति उद्धवजी ने देखी –

जब से बिछुडे हैं ब्रजराज नैनन की परतीति गयी ।

मैया तो कृष्ण के विरह में अन्धी सी हो गयी थी । उसे कुछ दिखायी ही नहीं देता था । उद्धवजी ने नन्दबाबा और यशोदा मैया को संतुष्ट करने के लिए कहा –

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/३४)

'नन्दबाबा और यशोदा मैया ! आप लोग चिन्ता मत करिए । कृष्ण-बलराम दोनों भैया ब्रज में शीघ्र ही लौटेंगे ।' उद्धवजी के मुख से ऐसा सुनते ही नन्दबाबा को तो बहुत अधिक प्रसन्नता हुई । उन्होंने उद्धवजी का हाथ पकड़ लिया । यशोदा मैया भी आनन्द से भरकर नन्दभवन में मिठाइयाँ बाँटने लगीं । 'मेरा लाला लौटेगा, मेरा कनुआ वापस आएगा' – इतना सुनते ही मैया की प्रसन्नता की तो कोई सीमा

ही नहीं रही । इधर, उद्धवजी के मन में ब्रजगोपियों से मिलने की इच्छा हुई । गोपिकायें नन्दभवन के बाहर के मार्ग से होकर निकल रही थीं । उन्होंने देखा कि नन्दभवन के बाहर एक रथ खड़ा हुआ है । एक गोपी ने अपनी सखियों से कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अक्रूर फिर से आ गया है । दूसरी गोपी ने कहा कि अक्रूर तो स्वामिभक्त था । उसका गुण देखो कि अपने स्वामी का हित करने के लिए हम गोपियों की हत्या करके चला गया परन्तु अब पुनः यह अक्रूर क्यों आया है ? अब तो इसका स्वामी कंस भी मर गया तो फिर अब यह किसका काम बनाने आया है ? एक अन्य गोपी ने कहा कि मरने के बाद मृत जीवात्मा का पिण्ड दान किया जाता है तो ऐसा लगता है कि अब अक्रूर हम लोगों को ले जाकर कंस का पिण्ड दान करेगा । इस प्रकार सभी गोपियाँ परस्पर चर्चा कर रही थीं कि तब तक उद्धवजी वहाँ आ गये ।

अध्याय – ४७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – गोपियों ने उद्धवजी को देखा तो उन्हें देखकर वे थोड़ा संकोच करने लगीं । उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी की आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्ण से मिलती जुलती है । समस्त गोपिकायें उनका परिचय प्राप्त करने के लिए उद्धवजी को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गयीं । जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो हमारे प्यारे श्यामसुन्दर का सन्देश लेकर आये हैं तो गोपियों ने उद्धवजी से कहा –

निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/७)

'उद्धवजी ! श्रीकृष्ण हमको छोड़कर इस प्रकार चले गये, जैसे धनहीन पुरुष को वेश्या छोड़ देती है । विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद

जैसे शिष्य अपने गुरु को छोड़ देते हैं, दान-दक्षिणा लेने के बाद ऋत्विज अपने यजमानों को छोड़ देते हैं और फलहीन वृक्षों को पक्षीगण छोड़ देते हैं, ऐसे ही श्रीकृष्ण हमें छोड़कर चले गये । ब्रज अनाथ हो गया है, केवल श्रीकृष्ण के स्मरण से हमारे प्राण टिके हुए हैं । श्रीकृष्ण स्मरण ही हमारा प्राणाधार बना हुआ है ।'

इसके बाद ब्रजगोपियों ने भ्रमर गीत का वाचन किया । श्रीराधारानी के चरणों के आसपास एक भ्रमर मंडराने लगा । उस भ्रमर को श्रीजी ने बहुत कूट शब्द कहे, मानो उस भ्रमर के बहाने श्रीजी उद्धवजी को प्रेम सिखा रही हैं कि उद्धव ! प्रेम किसे कहते हैं ? कृष्ण तो प्रेम करना नहीं जानते हैं । चरणों के पास मड़राते हुए भ्रमर से श्रीजी ने कहा –

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/१२)

अरे धूर्त, कपटी ! भाग जा यहाँ से, तू मेरी मनुहार करने के लिए आया है । जाकर दर्पण में देख, तेरी मूँछों पर हमारी सौतों का कुंकुम लगा हुआ है । श्रीकृष्ण ने अवश्य ही मथुरा की उन नारियों को आलिंगन दान दिया होगा । आलिंगन काल में उन नारियों के वक्षःस्थल पर जो कुंकुम लगी होगी, वह कृष्ण की वनमाला पर लग गयी होगी और कृष्ण की वनमाला से उस कुंकुम को लेकर तू यहाँ आ गया है । तेरा मुख अपवित्र है । तू हमारी सौतों का स्पर्श करके आया है, उनके कुंकुम को ढोकर यहाँ लाया है, इसलिए हम तुझे अपना स्पर्श दान नहीं देंगी । हमें छू मत, दूर हो जा ।

भ्रमर की वृत्ति कैसी होती है, पहले वह फूल के पास आता है, उसको खूब मनाता है । बेचारा फूल उसको अपना सब कुछ दे देता है किन्तु भ्रमर उसके रस का पान करके उड़कर चला जाता है, मुड़कर फूल की ओर देखता भी नहीं है । ऐसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । महारास में उन्होंने हमारे साथ रास-विलास किया, रमण किया, रति दान किया किन्तु अब हम ब्रजगोपियों को अनाथ छोड़कर चले गये । पुष्प का रस लेकर जैसे भ्रमर उड़ जाता है, वैसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । वे कहकर गये थे कि मैं दो दिन में लौट आऊँगा किन्तु उन्होंने आज तक भी हमारी सुधि नहीं ली । अब भी स्वयं नहीं आये, तुझे यहाँ भेज दिया, मनुहार कराने के लिए । तू हमें कृष्ण की चर्चा मत सुना । वे हमारे लिए नये नहीं हैं । हम उन्हें बहुत पहले से जानती हैं । एक बात बता, किस अवतार में, किस रूप से उन्होंने भलाई की है ? वामन के रूप में आये तो बेचारे बलि का सब कुछ छीन लिया, उसे पाश में बाँध दिया, उसके अनुचर दैत्यों को अपने पार्षदों से पिटवाया । क्या इसी को भलाई कहा जाता है ? रामावतार को धर्मरूप कहा जाता है, उसमें भी उन्होंने क्या किया, शूर्पणखा को विरूप कर दिया । किसलिए वे इतने सुन्दर हुए, बेचारी शूर्पणखा उनके रूप से मोहित होकर उनके पास आयी थी । उसका क्या दोष था ? चलो, उससे विवाह न करते परन्तु उन्होंने तो उसे विवाह के योग्य भी नहीं छोड़ा, उसके नाक-कान काट लिए । सोच लिया कि न मैं इसके साथ विवाह करूँगा और न ही किसी और के साथ इसका विवाह होने दूँगा । यह कौन सा धर्म है, यह कौन सा न्याय है ? इसलिए भ्रमर ! हमारे सामने तू उस निष्ठुर की चर्चा मत कर, उसका नाम भी मत ले ।

उद्धवजी से रहा नहीं गया, उन्होंने गोपियों से पूछा कि जब तुम कृष्ण की चर्चा सुनना नहीं चाहती हो तो फिर उनकी चर्चा करती क्यों हो ? ब्रजगोपियों ने कहा –

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।

श्रीकृष्ण की लीला-कथा ऐसा अमृत है कि इस अमृत बिन्दु का एक बार भी चस्का यदि किसी को लग गया तो वह अपना घर-द्वार स्वाहा कर देगा परन्तु इस अमृत को छोड़ नहीं पायेगा । उद्धवजी ! अब उसकी चर्चा ही तो हमारा प्राणाधार रह गयी है । यदि उसकी चर्चा भी हमने छोड़ दी तो हमारे प्राण नहीं बचेंगे ।

गोपियों के लिए प्राण त्याग करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी । वे यदि चाहतीं तो जिस समय कृष्ण ब्रज छोड़कर गये, उसी समय अपने प्राण त्याग देतीं परन्तु ब्रजाङ्गनाओं के लिए प्राण त्याग करना बड़ी बात नहीं थी, उनकी तो यही धारणा थी कि कृष्ण कहीं ब्रज में कभी भी आ गये और हम लोग मृत्यु को प्राप्त हो गयीं तो उन्हें कितना कष्ट होगा । अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों को धारण कर रखा था, कृष्ण के सुख के लिए ही वे जीवित थीं । उनके जीवित रहने का और कोई दूसरा प्रयोजन नहीं था । उद्धवजी ने गोपियों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करने का प्रयास किया परन्तु ब्रजदेवियों ने उनके एक-एक उपदेश का खण्डन कर दिया । उद्धवजी निर्गुण-निराकार ज्योति की उपासना बताने लगे तो ब्रजगोपियों ने उनसे कहा कि यह सीख जाकर किसी और को सिखाना । उन्होंने कहा – **जो मुख नाहिन होतो कहो किन माखन खायो** आप कहते हैं कि उनके (परब्रह्म कृष्ण के) मुख नहीं है किन्तु हमने तो श्यामसुन्दर को अपने हाथों से माखन खिलाया है । हम कैसे इस बात को स्वीकार कर लें कि हमारा कन्हैया बिना मुख वाला है । **पाँयन बिन गो संग कहो बन-बन को धायो** – आप कहते हैं कि उनके चरण नहीं हैं । यदि उनके चरण नहीं हैं तो फिर वे वन-वन में गायों के पीछे कैसे दौड़े ? गो चारण के लिए बिना चरणों के वे वन में कैसे जाते ?

आँखन में अंजन दयो गोवर्धन लयो हाथ
नन्द-जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रज नाथ

हमने अपने हाथों से कृष्ण के नेत्रों में अंजन लगाया है । इसलिए हे उद्धवजी ! आप हमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना मत बताइये । यह उपासना हमारे योग्य नहीं है । इसे हम धारण नहीं कर सकेंगी ।

इस तरह गोपिकाओं ने उद्धवजी के प्रत्येक उपदेश का खण्डन कर दिया और उन्हें अपने प्रेम रूपी ज्ञान से परिपूर्ण कर दिया । उद्धवजी आये तो इस लक्ष्य से थे कि गोपियों को ज्ञान का उपदेश करके ब्रज लौट जाऊँगा परन्तु ब्रजगोपियों के प्रेम की उच्च अवस्था को देखकर उन्हें ब्रज में रहते छः महीने व्यतीत हो गये, जाने का नाम ही नहीं लिया । मथुरा में वे कृष्ण से कहा करते थे कि आप परब्रह्म होकर रोते क्यों हैं, आपको रोना नहीं चाहिए किन्तु ब्रज में गोपियों के साथ स्वयं रोते थे क्योंकि गोपियों ने उन्हें सिखाया कि प्रेम कैसे किया जाता है ? यदि रुदन नहीं करोगे, प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए हृदय में यदि उत्कण्ठा नहीं होगी तो कैसे प्रेम करोगे । इस प्रकार ब्रजगोपियों ने उद्धवजी को उत्कृष्ट प्रेम से परिपूर्ण कर दिया । एक दिन स्वयं श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धव ! तुम्हारे मित्र श्रीकृष्ण मथुरा में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । इसलिए अब तुम मथुरा वापस चले जाओ ।' मथुरा के लिए चलते समय उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना की – 'हे प्रभो ! मेरे द्वारा यदि कोई सुकृत हुआ हो तो आप मुझ पर यही कृपा कीजिये कि इस ब्रजभूमि का कोई झाड़, लता-औषधि आप मुझे बना दीजिये ।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

मुझे ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं चाहिए, ऊँचा कुल मुझे नहीं चाहिए । ब्रज-वृन्दावन धाम में किसी भी योनि में, किसी भी जाति में मेरा जन्म हो जाये तो मेरा जीवन धन्य हो जायेगा । ब्रजभूमि में यदि मैं पाषाण ही बन जाऊँगा तो जब मार्ग के मध्य पड़ा रहूँगा तब ब्रजगोपिकाएँ जब दधि विक्रय के लिए जाएँगी तो अपने चरण तल से मुझ निश्चेष्ट पाषाण को जब एक ओर कर देंगी तो इनके पाद स्पर्श मात्र से मेरे तो जन्म-जन्मान्तर धन्य हो जायेंगे, मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा ।

ऐसा कहकर उद्धवजी गोपियों की चरण रज की वन्दना करने लगे –

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/६३)

मैं नन्दबाबा के ब्रज में रहने वाली गोपिकाओं की चरण रज की वन्दना करता हूँ । इन व्रजाङ्गनाओं के द्वारा श्रीकृष्ण यश का जो गायन किया गया है, उससे केवल पृथ्वी ही नहीं अपितु त्रिलोकी पवित्रता को प्राप्त हो रही है।

ब्रज से मथुरा जाते समय श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धवजी ! कृष्ण का सन्देश तो तुमने मुझसे कह दिया, कृष्ण की स्थिति भी मुझे बता दी किन्तु मैं तो हूँ वज्रमयी, मुझे कुछ नहीं हुआ परन्तु कन्हैया का मन नवनीत खा-खाकर माखन की तरह बन गया है । इसलिए श्रीकृष्ण को हम गोपियों की स्थिति के बारे में तुम जरा भी संकेत मत करना, अन्यथा उनका हृदय द्रवित हो जायेगा, उनको बहुत कष्ट होगा । '

श्रीजी व ब्रजगोपियों के चरणकमलों की वन्दना करके उद्धवजी मथुरा पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका गाढ़ आलिंगन किया

और उनसे कहा – 'उद्धव ! यह तुम्हारी वही देह है जो ब्रज रज से, ब्रज प्रेम से लिप्त होकर आई है । अब तुम समझे हो कि प्रेम किसे कहते हैं, अब तुम प्रेम को जान पाए हो ।' उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! अब मैं समझ गया कि पहले आप क्यों रोया करते थे ?' ऐसा कहकर वे स्वयं रोने लगे । उन्हें रोते देखकर श्यामसुन्दर हँसने लगे और बोले – 'चलो, अब जो मेरी इच्छा थी, वह पूरी हो गयी । अब तक तो यहाँ मैं एक ही रोने वाला था, अब दूसरा रोने वाला भी साथ मिल गया । अब हम दोनों साथ में बैठकर रोया करेंगे और ब्रजगोपियों का स्मरण किया करेंगे ।'उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! उन ब्रजदेवियों के विरह का दुःख आपके ब्रज जाये बिना दूर नहीं होगा । मैंने तो सोचा था कि ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा उनके शोक को दूर करके आऊँगा परन्तु मैं असमर्थ रहा । उनके दुःख को दूर नहीं कर सका । जब तक आप ब्रज में नहीं जायेंगे तब तक वे ब्रजगोपियाँ आपके वियोग में सदा व्याकुल ही रहेंगी । वे भी रोती रहेंगी, आप भी रोते रहेंगे और अब आपके साथ मैं भी रोता रहूँगा ।'

इस प्रकार उद्धवजी को भगवान् कृष्ण ने गोपिकाओं के द्वारा प्रेम का ज्ञान दिलवाया ।

अध्याय – ४८

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – एक बार भगवान् कुब्जा का प्रिय करने, उसको सुख देने की इच्छा से उसके घर गये । कुब्जा ने भगवान् का बड़ा ही आदर सत्कार किया तथा विविध उपचारों से विधिपूर्वक उनकी पूजा की । कुब्जा ने भगवान् के अनन्य भक्त उद्धवजी की भी पूजा की । इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण उसकी बहुमूल्य सेज पर जाकर बैठ गये और उसके साथ क्रीड़ा करने लग गये । कुब्जा को श्रीकृष्ण मिलन का दुर्लभ सौभाग्य मिला फिर भी यहाँ शुकदेवजी ने उसकी निन्दा की है ।

कहीं विवाह समारोह में दूल्हा के साथ बारात जा रही हो, उस समय नियम है कि सबको मंगलमय बात ही कहनी पड़ती है । उस समय कोई वहाँ जाकर कह दे – 'राम नाम सत्य है' तो सबको बुरा लगेगा । जबकि राम नाम तो सदा सत्य है और सत्य रहेगा । परन्तु यह परम्परा चली आ रही है कि केवल मृत्यु के समय ही 'राम नाम सत्य है' बोला जाता है । अतः मंगलमय अवसर पर अमंगल वाणी नहीं बोलनी चाहिए । शुकदेवजी ने गोपियों के श्रीकृष्ण के साथ रास में मिलन, विहार आदि में उनकी खूब प्रशंसा की और विरह होने पर भी उनकी खूब प्रशंसा की । परन्तु जब कुब्जा के साथ श्रीकृष्ण का साक्षात् मिलन हुआ तो शुकदेवजी ने कहा –

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४८/८)

कुब्जा ने केवल अङ्गराग समर्पित किया था, उतने से ही उसे उन भगवान् की प्राप्ति हुई, जो कैवल्य मोक्ष के अधीश्वर हैं और जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है परन्तु उस दुर्भगा ने उन्हें प्राप्त करके भी अत्यन्त तुच्छ विषय सुख माँगा ।

शुकदेवजी ने कुब्जा को दुर्भगा कहकर उसकी निन्दा की ।

कोई कह सकता है कि वह तो कृष्ण प्रेयसी बन गयी थी, कृष्ण से उसका मिलन हुआ, फिर भी उन्होंने उसकी निन्दा की, यह तो ठीक नहीं है । परन्तु भागवत के टीकाकार सभी आचार्यों ने भी शुकदेवजी की बात का समर्थन किया है और कुब्जा को दुर्भगा माना है ।

श्रीधर स्वामी लिखते हैं –

काममेव प्राकृतदृष्टया अयाचत न च गोप्य इव सा तन्निष्ठेति दुर्भगेत्युक्तम् । (श्रीधरस्वामी, भावार्थदीपिका)

कुब्जा ने श्रीकृष्ण से प्राकृत काम ही माँगा, गोपियों की तरह उसने निष्ठा नहीं माँगी ।

गोपियाँ कृष्ण के प्रति निष्ठावान थीं अर्थात् श्रीकृष्ण के साथ उनका मिलन प्राकृत काम से ऊपर था । इस बात को अद्वैत मत के सभी आचार्य मानते हैं कि गोपियों की प्रीति प्राकृत काममयी नहीं थी, विलक्षणा थी । अन्य आचार्य कहते हैं कि दुर्भगा उसको कहते हैं, जिसका भाग्य फूट गया हो ।

श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

'पूर्वं कुब्जात्वदासीत्वलक्षणदौर्भाग्ययुक्तापि'

कुब्जा पहले तो दुर्भगा इसलिए थी क्योंकि वह कंस की दासी थी और तीन जगह से टेढ़ी थी तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं कि कृष्ण मिलन काल में भी दुर्भगा इसलिए थी क्योंकि वह श्रीकृष्ण से चाहती थी – **'मयैव सह रमस्व'**

वह कृष्ण पर अपना अधिकार चाहती थी । यदि कहा जाए कि गोपियाँ भी तो श्रीकृष्ण पर अधिकार चाहती थीं तो श्रीजीवगोस्वामीजी ने लिखा है – **'न तु श्रीगोपीवत् स्वतः श्रीविजयितत्तद्गुणयुक्ता'** चाहने से अधिकार नहीं होता है । एक तो यह लक्षण होता है कि पति स्वतः ही आधीन होता है स्त्री के गुणों के कारण । जैसे श्रीजी के बारे में कहा गया है –

धनि तेरो अचल सुहाग श्री राधा नागरि,
तेरे ही रंग रंग्यो नन्दनन्दन मानत है बड़ भाग ।

जीवगोस्वामीजी लिखते हैं कि गोपीजनों के अन्दर श्री विजयी गुण है, लक्ष्मी से अधिक गुण है । स्त्री के स्वयं के गुणों के कारण पति स्वतः ही उसके आधीन रहता है, यह तो ठीक है । ऐसी स्त्री को स्वाधीन भर्तृका कहते हैं । जो स्त्री चाहती है कि पति हमारे आधीन रहे, वह

स्वाधीन भर्तृका नहीं है । वह तो प्रेमिका नहीं निकृष्टा है, जो अपना अधिकार चाहती है । बिना चाहे जिसके गुणों के कारण पति स्वयं आधीन रहता है, वह है स्वाधीन भर्तृका । वह कहती है कि मेरे प्रेमास्पद को जिस प्रकार सुख मिले, वही ठीक है और जो नीच स्त्रियाँ हैं, उनमें गुण तो होता नहीं एवं पति पर अपना अधिकार जमाना चाहती हैं, इससे लड़ाई होती है । ऐसी स्त्री पति पर शासन करने का प्रयास करती है, इससे दोनों में प्रेम नहीं रह पाता है । यह तो दुकानदारी, नीचता है, प्रेम नहीं है । इसीलिए शुकदेवजी ने कुब्जा को दुर्भगा बताया है क्योंकि उसमें गोपियों की तरह कोई दिव्य गुण तो थे नहीं और चाहती थी कि मेरा श्रीकृष्ण पर एकाधिकार रहे, ऐसी स्थिति में वह दुर्भगा ही तो रही । अतः शुकदेवजी, वैष्णव आचार्य, अद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्रीधर स्वामी आदि सभी ने एकमत से कुब्जा को दुर्भगा मान लिया ।

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४८/११)

शुकदेवजी ने इस श्लोक में उन सभी स्त्रियों को दुर्भगा बताया है, जो भगवान् से मन को प्रिय लगने वाले विषय सुख माँगती हैं । वे सभी लोग अभागे हैं, उनके कर्म फूट गये हैं, जो भगवान् से विषय सुख माँगते हैं ।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजी के भवन गये । अक्रूरजी ने भगवान् की विधिवत् पूजा करने के बाद उनकी स्तुति की और अन्त में कहा कि आप मेरे सभी कर्मबन्धनों को काट दीजिये । भगवान् ने अक्रूरजी से कहा – 'आप तो हमारे चाचा और गुरु हैं ।'

भगवान् ने उनसे एक महत्वपूर्ण श्लोक कहा जो भागवत में अन्य स्थानों पर भी आया है । भगवान् ने कहा –

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४८/३१)

लोग जल (नदी, सरोवर) में नहाते हैं, वे तीर्थ नहीं हैं । मिट्टी और पाषाण की बनी हुई प्रतिमायें भी देवता नहीं हैं । इनकी तो बहुत दिनों तक सेवा की जाए तब पवित्र करते हैं परन्तु भगवान् के भक्त तो अपने दर्शन मात्र से पवित्र कर देते हैं ।

भगवान् ने अक्रूरजी से कहा कि आप धृतराष्ट्र के पास चले जाइये और देखिये कि वे क्या रहे हैं ? अक्रूरजी बोले – 'प्रभो ! आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य ही जाऊँगा ।'

अध्याय – ४९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान की आज्ञा से अक्रूरजी हस्तिनापुर गये । कुछ दिनों तक वे वहीं रहे । कुन्ती जी उनसे मिलकर रोने लगीं और कहने लगीं कि मुझ अभागिन को कौन याद करेगा ? वे कृष्ण को बार-बार स्मरण करके रोने लगीं । अक्रूरजी ने कुन्ती को सान्त्वना दी, इसके बाद वे विदुरजी से मिले । तदनन्तर अक्रूरजी ने धृतराष्ट्र के पास जाकर उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाया ।

अक्रूरजी ने कहा –

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४९/२१)

जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है । अपनी करनी-धरनी का, पाप-पुण्य का फल भी उसे अकेले ही भोगना पड़ता है ।

इस प्रकार उन्होंने धृतराष्ट्र को बहुत समझाया किन्तु **'विनाश काले विपरीत बुद्धिः'** के अनुसार जिसके विनाश का समय आ जाता है, उसकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। अतः अक्रूरजी के समझाने का धृतराष्ट्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में वे अक्रूरजी से बोले –

अक्रूरजी ! आप मेरे कल्याण के लिए उपदेश तो बहुत अच्छा दे रहे हैं किन्तु

'हृदि न स्थीयते चले' – (श्रीभागवतजी - १०/४९/२७)

मेरे हृदय में आपका उपदेश टिक नहीं रहा है।

ऐसा क्यों ? जैसे फूटी कड़ाही में कोई घी डालकर पूड़ी बनाना चाहे तो पूड़ी कहाँ बनेगी, जब उसमें घी ही नहीं रुकेगा।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार अक्रूरजी धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानकर मथुरा लौट आये और भगवान् कृष्ण से बताया कि आपके उपदेश का धृतराष्ट्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

अध्याय – ५०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – कंस की दो रानियाँ थीं –अस्ति और प्राप्ति। अपने पति की मृत्यु से दुखी होकर वे अपने पिता जरासन्ध के पास जाकर बहुत रोयीं और कंस के मारे जाने का उसे पूरा कारण बताया। जरासन्ध यह जानकर बहुत क्रोधित हुआ और तेईस अक्षौहिणी सेना को साथ लेकर उसने मथुरा को चारों ओर से घेर लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने जरासन्ध की विशाल सेना को देखकर विचार किया कि अभी मैं जरासन्ध को तो नहीं मारूँगा, इसकी सेना का विनाश करूँगा। यह जीवित रहेगा तो फिर से इसी प्रकार बहुत सी सेना इकट्ठी करके लायेगा और उसे मारकर मैं पृथ्वी का बोझ हल्का कर

दूँगा । भगवान् इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय आकाश से दो रथ उतरकर आये । उनमें युद्ध की सारी सामग्रियाँ थीं । इसी समय भगवान् के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये । अब यहाँ से भगवान् आयुध छूते हैं, हथियारों का प्रयोग करते हैं । भगवान् ने ब्रज में हथियारों को ग्रहण नहीं किया था । जितने भी दुष्टों का उन्होंने ब्रज में संहार किया तो पूतना का स्तन पानकर, तृणावर्त का गला घोटकर, कालिय नाग का नाच-नाचकर दमन किया । इसका कारण यही है कि ब्रज में भगवान् माधुर्य रस को लेकर चलते हैं । कंस जैसा प्रतापी असुर, जिसने दिग्विजय में सभी लोक जीत लिए, उसको भी भगवान् ने सिंहासन से नीचे पटककर घूँसा मारकर संहार कर दिया । उसको भी उन्होंने हथियार से नहीं मारा । परन्तु अब मथुरा से वे हथियारों का स्पर्श करते हैं क्योंकि अब माधुर्य की लीला समाप्त हो गयी । प्रभु ऐसा क्यों करते हैं, रस के लिए तदनुकूल उद्दीपन सामग्री वेषभूषा आदि सब कुछ रखे जाते हैं । ब्रज में श्रीकृष्ण का दूसरा रूप था और मथुरा तथा द्वारका में उनका दूसरा रूप था ।

बरसाना के रसिक संत नागरीदासजी ने कहा है कि कृष्ण के अनेक रूप हैं, कैसे ? तो वे कहते हैं कि कृष्ण चतुर्भुज भी हैं । मथुरा, द्वारका में इसी रूप से उन्होंने लीला की परन्तु हमारे कृष्ण अलग हैं । वे केवल माधुर्य रस से युक्त हैं । उन्होंने निर्णय कर दिया –

हमारो मुरली वारो स्याम ।
बिन मुरली वनमाल चन्द्रिका, नहिं पहचानत नाम ।

हमारे कृष्ण की पहचान है – मुरली, वनमाला और मयूर पंख । यह माधुर्य का रूप है ।

गोप रूप वृन्दावनचारी, ब्रज जन पूरन काम ।

पूछा जाए कि जो कृष्ण मथुरा-द्वारका के हैं, उनके बारे में आपकी क्या राय है ? नागरीदासजी बोले कि हमारे श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर ब्रज चौरासी कोस से बाहर नहीं जाते ।

नन्दीश्वर गोवर्धन गोकुल, बरसानो विश्राम ।

नन्दगाँव, गोवर्धन, गोकुल, बरसाना आदि में ही हमारा विश्राम है । हमारे मुरली वारे श्याम तो इन्हीं स्थलों में विराजते हैं ।

नागरिदास द्वारका मथुरा, इनसो कैसो काम ।

नागरीदासजी कहते हैं कि मथुरा-द्वारका में चतुर्भुज धारी कृष्ण रहते हैं, अतः इन स्थानों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ।

मथुरा-द्वारका की लीला में तो माधुर्य रस न होकर ऐश्वर्य की ही प्रधानता है । इसीलिए जब आकाश से दो रथ और भगवान् के आयुध उनके पास आ गये तो उन्होंने बलरामजी से कहा – 'भैया, अब रथ पर सवार हो जाइये ।' श्रीकृष्ण को देखकर जरासन्ध बोला – 'कृष्ण ! तेरे साथ मैं नहीं लड़ूँगा क्योंकि तू एक तो अभी बालक है, दूसरे तू अपने मामा का हत्यारा है । तेरे साथ मैं क्या लड़ूँ ? हाँ, बलराम ! यदि तेरी इच्छा है तो मुझसे आकर लड़ ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'जो शूरवीर होते हैं, वे तेरी तरह डींग नहीं हाँकते । तू बढ़-चढ़कर बातें क्यों बनाता है, युद्ध में अपना पराक्रम दिखा ।'

उस समय जरासन्ध ने अपनी बहुत बड़ी बलवान और अपार सेना के द्वारा कृष्ण, बलराम और उनकी सारी सेना को चारों ओर से घेर लिया । भगवान् श्रीकृष्ण की गरुड़ चिह्न से चिह्नित और बलरामजी की ताल चिह्न से चिह्नित ध्वजा वाले रथ का दिखना भी बंद हो गया । बहुत देर बाद भगवान् श्रीकृष्ण बाहर निकले और उन्होंने जरासन्ध की तेईस अक्षौहिणी सेना का विनाश कर दिया । बलरामजी ने बलपूर्वक

जरासन्ध को पकड़ लिया तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा – 'दाऊ भैया ! अभी इसे छोड़ दो । यह यहाँ से जाएगा तो फिर बहुत बड़ी सेना लेकर आएगा । हम लोग दुष्टों से लड़ने कहाँ-कहाँ जायेंगे, यह स्वयं ही बार-बार सबको लेकर यहाँ लाएगा तो हम उन सबका विनाश कर देंगे ।' बलरामजी बोले – 'हाँ, अब यह बात मेरी समझ में आई, तुम ठीक कहते हो, इसे छोड़ देना चाहिए ।'

बलरामजी के हथियार हैं – हल और मूसल । हल को चाहे जितना बड़ा किया जा सकता है । बलरामजी दुष्टों की सेना को उसके आकार के हिसाब से अपना हल बढ़ाकर सभी को समेटकर एक जगह इकठ्ठा कर देते थे और ऊपर से उन पर मूसल का प्रहार करके दुष्टों का विनाश करते थे । बाण चलाकर घंटों तक कौन लड़े, बलरामजी तो इकठ्ठा ही सबको समेटकर उन्हें मूसल से पीस दिया करते थे जैसे पुराने ज़माने में स्त्रियाँ धान को ऊखल में डालकर, मूसल से उस पर चोट किया करती थीं ।

इधर जरासन्ध को दीन की भाँति दया करके कृष्ण-बलराम द्वारा छोड़े जाने पर बड़ी लज्जा मालूम हुई । वह तपस्या करने के लिए चल दिया किन्तु उसके साथी राजाओं ने उसे बहुत समझाया और तपस्या करने से उसे रोक दिया, अतः जरासन्ध मगध चला गया । भगवान् श्रीकृष्ण जब मथुरा में लौटे तो प्रजा ने उनका बहुत सम्मान किया ।

जरासन्ध सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा में श्रीकृष्ण से युद्ध करने आया किन्तु हर बार उसकी सारी सेना को नष्ट करके भगवान् श्रीकृष्ण उसे छोड़ देते थे । अठारहवीं बार जब वह तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर से आया, उसी समय तीन करोड़ म्लेच्छों को लेकर कालयवन ने भी मथुरा को घेर लिया ।

भगवान् ने विचार किया कि अब तो दोनों ओर से कठिनाई आ गयी है । यदि मैं और बलरामजी कालयवन से युद्ध करेंगे तो उधर से जरासन्ध हमारे मथुरावासियों को मारेगा । ऐसा विचारकर मथुरावासी

यदुवंशियों की रक्षा के लिए भगवान् ने समुद्र के भीतर अडतालीस कोस की द्वारका पुरी बसायी। उस पुरी का शुकदेवजी ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उस पुरी में भगवान् श्रीकृष्ण के लिए देवराज इन्द्र ने पारिजात वृक्ष और सुधर्मा सभा को भेज दिया। वरुणजी ने ऐसे बहुत से श्वेत घोड़े भेज दिए, जिनका एक-एक कान श्याम वर्ण का था। भगवान् श्रीकृष्ण ने योग के प्रभाव से अपने सभी स्वजन-सम्बन्धियों को एक ही रात में द्वारका में भेज दिया। इसके बाद भगवान् युद्ध के मैदान से भागने की लीला करेंगे। लीलाधीश की लीला देखो, उन्होंने विचार किया कि मैंने सब तरह की लीलायें कीं, रास लीला की, प्रेम लीला की, युद्ध में शत्रुओं को पराजित भी किया। अब यह भी लीला करनी चाहिए कि युद्ध के मैदान से भाग चलूँ।

अध्याय – ५१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगर के मुख्य द्वार से निकले, उसी समय कालयवन ने उनको देखा।

कालयवन कौन था, इसके बारे में जानो। विष्णु पुराण में यह कथा है कि गार्ग नामक एक ऋषि थे, एक बार वे एक सभा में पहुँचे, जिसमें यदुवंशी लोग बैठे थे। उस सभा में ऋषि का साला भी बैठा था। लोकरीति के अनुसार जीजा-साले का आपस में मजाक का सम्बन्ध होता है। इसीलिए अपने जीजा को आते देख उनके साले ने मजाक में कहा – 'देखो, नपुंसक आ रहा है।' इस बात को सुनकर सभी यदुवंशी जोर-जोर से हँसने लगे और ऋषि का उपहास करने लगे। यह देखकर ऋषि क्रोधित हो गये और उन्होंने तपस्या करके शिवजी से यह वरदान माँगा कि यदुवंशियों के लिए भयदाता पुत्र आप मुझे दीजिये। किसी स्थान पर एक यवन राजा भी तपस्या कर रहा था। उसी की रानी से योग के द्वारा इन ऋषि ने यदुवंशियों के लिए

भयदाता पुत्र उत्पन्न किया । वही पुत्र कालयवन था । इसीलिए कालयवन के मथुरा में आने से यदुवंशियों के लिए भय उत्पन्न हुआ तो भगवान् ने उन्हें रातों-रात द्वारका में पहुँचा दिया । इस प्रकार गार्ग ऋषि को शिवजी ने जो वर दिया, वह भी भगवान् ने सत्य सिद्ध किया ।

भगवान् ने बलरामजी से युद्ध मैदान से भाग चलने को कहा और बोले कि हमें शिवजी का वरदान भी सफल करना है । इसलिए श्रीकृष्ण कालयवन को देखकर भाग चले, उनके पीछे-पीछे कालयवन भी दौड़ा । श्रीकृष्ण इस प्रकार भाग रहे थे कि हर बार काल यवन उनसे चार अँगुल की दूरी पर रहता और बार-बार यही समझता कि अब पकड़ा, अब पकड़ा । श्रीकृष्ण तो बड़े खिलाड़ी हैं, उनके पीछे भागता हुआ कालयवन कहने लगा – 'अरे कृष्ण ! तेरा इस प्रकार भागना ठीक नहीं है ।' ठाकुरजी उससे कुछ नहीं बोले किन्तु मन ही मन कह रहे थे – 'तू मेरे पीछे-पीछे बस चला ही आ ।' किसी संहिता में लिखा है कि भगवान् इसलिए भी युद्ध भूमि से भागे क्योंकि जरासन्ध अपनी सेना में ब्राह्मणों को भी लेकर आया था । भगवान् ने सोचा कि यहाँ से भाग चलना ही ठीक है, नहीं तो युद्ध करने पर ब्राह्मण भी मारे जायेंगे । इसलिए भगवान् के भागने के तीन-चार कारण हैं । इसके अलावा उन्हें भागने की लीला भी करनी थी, अपना नाम रणछोड़ रखवाना था । भागते-भागते भगवान् एक पर्वत की गुफा में घुस गये । उस गुफा में मुचुकुन्दजी सो रहे थे । उनको देवताओं की ओर से वर प्राप्त था कि सोते समय उनको जो जगायेगा, वह भस्म हो जाएगा । इसीलिए श्रीकृष्ण उस गुफा में घुस गये और मुचुकुन्दजी के शरीर को अपने पीताम्बर से ढक दिया ताकि कालयवन उनको कृष्ण समझे । मुचुकुन्द को पीताम्बर से ढककर स्वयं श्रीकृष्ण अँधेरे में छिप गये । कालयवन 'श्रीकृष्ण' के पीछे भागता हुआ गुफा में आया तो मुचुकुन्दजी को पीताम्बर से ढका हुआ देखकर सोचने लगा कि यह कृष्ण बड़ा चंचल

है, यहाँ आकर पीताम्बर ओढ़कर सो रहा है । अब ये बचकर कहाँ जाएगा ? ऐसा सोचकर उसने मुचुकुन्दजी के शरीर पर जोर से लात मारी । पैर की ठोकर लगने से मुचुकुन्द जी की नींद टूटी, वह उठकर बैठ गये और आँख खोलकर उन्होंने जैसे ही कालयवन को देखा, वह क्षण भर में जलकर राख का ढेर हो गया ।

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! इसका कारण क्या है, कालयवन उस पुरुष के देखते ही जलकर भस्म कैसे हो गया ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – मुचुकुन्द जी महाराज मान्धाता के पुत्र थे । देवासुर संग्राम में इन्होने देवताओं की ओर से दैत्यों से युद्ध किया था । उस समय कार्तिकेयजी नहीं थे, इसलिए मुचुकुन्दजी देवताओं के सेनापति बने और दैत्यों से युद्ध किया । जब कार्तिकेयजी आ गये तो वे ही देवताओं के सेनापति बनाये गये और देवताओं ने मुचुकुन्दजी से कहा कि अब तुम विश्राम करो । देवताओं ने मुचुकुन्द से वर माँगने को भी कहा । मुचुकुन्द बोले – 'इस समय तो मुझे बड़ी नींद आ रही है ।' देवताओं ने कहा – 'तुम सो जाओ, जो तुमको जगायेगा, वह जलकर भस्म हो जायेगा ।'

अब इन कथाओं से शिक्षा लेना चाहिए । कालयवन के पूर्वजन्म से यह शिक्षा मिलती है कि किसी की हँसी नहीं उड़ाना चाहिए । जैसे जीजा-साले का आपस में परिहास हुआ तो ऋषि को कष्ट हुआ । किसी का इस तरह उपहास नहीं करना चाहिए, जिससे उसे कष्ट हो । हास्य करे तो सूक्ष्म हास्य करे, अधिक हास्य नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार कालयवन ने जैसे सोते हुए मुचुकुन्दजी को जगाया तो इस तरह से किसी सोते हुए मनुष्य को नहीं जगाना चाहिए । एक मनोविज्ञान भी है कि सोते हुए मनुष्य को अचानक जगा देने पर उसके सिर में दर्द हो सकता है । लाड़ली-लाल जब शयन करते हैं तो सखियाँ प्रातःकाल उन्हें संगीत के माध्यम से जगाती हैं । श्यामसुन्दर जब सोते हैं तो उन्हें

जगाने के लिए वीणा बजायी जाती है । मधुर ढंग से जगाया जाता है । लाड़िलीजी जब शयन करती हैं तो सहचरियाँ प्रातःकाल जगाने आती हैं, तब ऐसा नहीं कहती हैं कि 'महारानीजी उठो ।' इस तरह वे नहीं बोलती हैं ।

प्रात समय नव कुञ्ज द्वार है,
ललिता जू ललित बजायी बीना ।

ललिताजी वीणा बजाकर श्रीजी को जगाती हैं । अतः सोते हुए व्यक्ति को मीठे ढंग से जगाना चाहिए ।

पौरे सुनत श्याम श्री श्यामा,
दम्पति चतुर प्रवीन प्रवीना ।
अति अनुराग सुहाग परसु सब,
कोक कला गुन निपुन नवीना ।
बिहारिनि दासी बलि-बलि दम्पति पर,
मुदित प्राण न्यौछावर कीना ।

इसलिए जोर से झकझोर कर किसी को जगाना नहीं चाहिए । पाँव के प्रहार से सोते व्यक्ति को जगाने के कारण ही कालयवन को भस्म होना पड़ा ।

मुचुकुन्दजी जब सोकर उठे तो उन्होंने अपने सामने श्यामसुन्दर को देखा किन्तु यहाँ उनका चतुर्भुज रूप था । नन्दनन्दन की लीला तो ब्रज में ही रह गयी, अब ब्रज के बाहर तो वसुदेवनन्दन की लीला चल रही है । मुचुकुन्दजी ने उनको देखकर कहा – 'आप कौन हैं ? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा या अग्निदेव तो नहीं हैं ? मेरा परिचय तो यह है कि मैं इक्ष्वाकु वंशी क्षत्रिय हूँ, मेरा नाम मुचुकुन्द है ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा - 'मेरे जन्म और कर्म को तो कोई जान ही नहीं सकता है । इस समय मैंने वसुदेवजी के यहाँ अवतार लिया है,

इसलिए लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं । यह कालयवन था, जो तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया । मैं तुम पर कृपा करने के लिए ही इस गुफा में आया हूँ । तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं भक्तवत्सल हूँ । इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वरदान माँग लो ।'

जब भगवान् कृष्ण ने ऐसा कहा तो मुचुकुन्दजी को गर्ग ऋषि की बात याद आ गयी कि यदुवंश में भगवान् अवतरित होने वाले हैं । वे तो जान गये कि ये तो भगवान् हैं । तब उन्होंने भगवान् की स्तुति की ।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५१/५४)

कोई मनुष्य भवसागर के पार जाने वाला है, उसका लक्षण यही है कि उसे शुद्ध भक्त का सत्संग मिल जाता है । तब समझ जाना चाहिए कि वह सीधे कृष्ण के पास जायेगा । जब तक शुद्ध भक्त का सत्संग नहीं मिलता, तब तक मनुष्य को कृष्ण प्राप्ति नहीं हो सकती । कृष्ण को प्राप्त करने के ये लक्षण हैं । रामायण में भी कहा गया है –

संत विसुद्ध मिलहिं पुनि तेही । चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'मुचुकुन्द ! तुम मेरे वर के लोभ में नहीं आये । मैं तुमको अब अपनी भक्ति प्रदान करता हूँ । अगले जन्म में तुम ब्राह्मण बनोगे और मेरी प्राप्ति करोगे ।'

अध्याय – ५२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार मुचुकुन्दजी पर कृपा की, तब उन्होंने भगवान् को नमस्कार किया और

उत्तर दिशा की ओर चले गये तथा वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण में मन लगाकर तप किया ।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा पुरी में लौट आये और वहाँ जुटी हुई कालयवन की म्लेच्छों की सेना का संहार किया । उसी समय वहाँ जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ गया । उस समय श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्यों की सी लीला करते हुए भाग निकले । जरासन्ध ने उनका पीछा किया । बहुत दूर तक दौड़ने के बाद दोनों भाई बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये । जरासन्ध ने ईधन से भरे उस पर्वत के चारों ओर आग लगवाकर उसे जला दिया । तब दोनों भाई ४४ कोस ऊँचे पर्वत से नीचे धरती पर कूद गये । इसके बाद वे दोनों समुद्र से घिरी हुई द्वारका पुरी में चले आये ।

आनर्त देश के राजा रैवतजी ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से अपनी रेवती नाम की कन्या का बलरामजी के साथ विवाह कर दिया । वह कन्या सतयुग की थी । इसलिए बहुत लम्बी थी । बलरामजी से भी बहुत अधिक लम्बी थी । बलरामजी ने अपने हल की नोंक से उसे अपने बराबर कर लिया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी को हर लाये और उनसे विवाह कर लिया ।

राजा परीक्षित ने पूछा – महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी का हरण करके किस प्रकार उनसे विवाह किया, यह कथा आप मुझे सुनाइए ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – विदर्भ देश के राजा थे भीष्मक । उनके पाँच पुत्र और एक पुत्री थी । सबसे बड़े पुत्र का नाम रुक्मी था और कन्या का नाम था रुक्मिणी । रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर उन्हीं को अपना पति बनाना चाहती थीं किन्तु उनका भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से बड़ा द्वेष करता था और उसने कह दिया कि मैं तो रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करूँगा । रुक्मिणीजी ने एक ब्राह्मण को

अपना दूत बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास भेजा । रुक्मिणी ने उस ब्राह्मण के द्वारा एक प्रीति की पाती (पत्र) भगवान् के पास भेजी । रुक्मिणीजी पहले एकान्त में गयीं और सोचने लगीं कि मैं क्या लिखूँ ? उसके बाद उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रेम भरा पत्र लिखा । ऐसा श्रीधरस्वामीजी ने अपनी टीका में लिखा है ।

रुक्मिण्या स्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम् ।
मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिह्नामदर्शयत् ॥

(श्रीधरस्वामिकृतभावार्थदीपिका)

यहीं से कालिदासजी ने भी भाव ग्रहण किया और अपने ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में वर्णन किया कि शकुन्तला ने दुष्यन्त को प्रेम सन्देश युक्त पत्र लिखा था ।

ब्राह्मण देव रुक्मिणीजी का पत्र लेकर द्वारका पहुँचे तो वहाँ श्रीकृष्ण ने उनका बहुत आदर सत्कार किया । भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण देवता से कहा – 'जो ब्राह्मण संतोषी होते हैं, वे मेरे पूज्य हैं ।' ब्राह्मण देव ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणीजी का पत्र दिया । उसमें रुक्मिणीजी ने लिखा था – 'हे त्रिभुवनसुन्दर ! मेरा चित्त निर्लज्ज होकर आपमें प्रवेश कर रहा है । मेरा ही क्या, ऐसी कौन सी कुलवती कन्या होगी, जो आपको पति के रूप में न वरण करे, आपको छोड़ दे ।'

रुक्मिणीजी ने यहाँ श्रीकृष्ण के बारे में वही बात कही है, जैसा गोपियों ने कहा था –

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/२९/४०)

तीनों लोकों में ऐसी कौन सी स्त्री है, जो तुमको देखकर मोहित न हो जाए और आर्य मर्यादा से विचलित न हो ।

रुक्मिणीजी ने लिखा था – हे कृष्ण ! मैंने आपको पति के रूप में वरण कर लिया है । यदि आप मेरा वरण करने नहीं आयेंगे तो शिशुपाल आदि राजा आ जायेंगे । आप यहाँ आकर मेरा हरण करके ले जाइए । विवाह से एक दिन पहले जब मैं कुलदेवी के पूजन को जाऊँगी तब आप वहाँ पहुँचकर मुझे ले जाइए । यदि आप नहीं आये तो मैं व्रत द्वारा शरीर को सुखाकर प्राण छोड़ दूँगी ।

जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ।

(श्रीभागवतजी - १०/५२/४३)

ऐसा इसलिए क्योंकि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

(श्रीगीताजी - ८/६)

जो जिसके भाव से युक्त होकर शरीर का त्याग करता है, उसे निश्चित ही उसकी प्राप्ति होती है ।

अध्याय – ५३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – रुक्मिणीजी का पत्र पढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण देवता से कहा –

'जैसे रुक्मिणी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें चाहता हूँ । मुझे उनके बिना रात के समय नींद तक नहीं आती । मैं राजकुमारी रुक्मिणी को अवश्य ही लेकर आऊँगा ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने यह जानकर कि विवाह की लग्न परसों रात्रि में है, सारथि को रथ लेने की आज्ञा देकर, फिर रथ में ब्राह्मण देवता को

चढ़ाकर विदर्भ देश में पहुँच गये। कुण्डिन नरेश राजा भीष्मक ने नगर को अच्छी तरह सजवाया था। वहाँ पर रुक्मिणीजी के विवाह की तैयारी चल रही थी। इधर शिशुपाल भी दूल्हा बनकर वहाँ आ गया। बहुत सुन्दर उसका दूल्हे का वेष था। उसके साथ बहुत से श्रीकृष्ण के विपक्षी राजा भी बरातियों के रूप में आये थे। बलरामजी को पता चला कि श्रीकृष्ण अकेले ही रुक्मिणी का हरण करने गये हैं, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे बड़ी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर के लिए चल पड़े। उधर रुक्मिणीजी ने सोचा कि ब्राह्मण देवता अभी तक भगवान् श्रीकृष्ण के पास से नहीं लौटे, निश्चय ही यह मेरा दुर्भाग्य है अथवा गिरिजा देवी मुझसे नाराज हैं। इतने में ही उनकी बायीं भुजा फड़कने लगी, तब रुक्मिणी जी समझ गयीं कि अब ब्राह्मण देवता आने वाले होंगे। उसी समय ब्राह्मण देवता आ गये, उनको प्रसन्न देखकर रुक्मिणीजी समझ गयीं कि प्रभु ने मेरा प्रेम प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है, फिर भी उन्होंने पूछा – 'महाराज, क्या हुआ ?' ब्राह्मण देवता बोले – 'अरे, प्रभु तो यहाँ आ गये हैं।'

यह सुनकर आनन्द में भरकर रुक्मिणीजी ने ब्राह्मण देव को प्रणाम किया।

भगवान् ने पहले ही ब्राह्मण देव के सामने कहा था कि जो ब्राह्मण सन्तुष्ट रहता है, मैं उसकी पूजा करता हूँ। सन्तोष ही ब्राह्मण का तेज है। यदि ब्राह्मण किसी से कुछ नहीं लेता है तो वह ईश्वर रूप हो जाता है।

रुक्मिणीजी जानती थीं कि यह मुद्रा लेने वाला ब्राह्मण नहीं है। प्रभु ने सच्चे ब्राह्मण के बारे में पहले ही कह दिया था –

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान्।
निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसासकृत्॥

(श्रीभागवतजी - १०/५२/३३)

जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तु से सन्तोष कर लेते हैं, जो समस्त प्राणियों के परम हितैषी, अहंकार रहित और शान्त हैं, उन ब्राह्मणों को मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ ।

वहाँ प्रभु ने ब्राह्मण के लक्षण बताकर उसे नमस्कार करने की जो बात कही, उसे रुक्मिणीजी ने इन ब्राह्मण देवता को नमस्कार करके किया । इससे पता चलता है कि रुक्मिणी और कृष्ण शक्ति-शक्तिमान एक स्वरूप हैं । भगवान् ने कहा कि ऐसे ब्राह्मण के आगे मैं सदा झुका रहता हूँ, इसलिए रुक्मिणीजी भी इन ब्राह्मण देव के आगे झुक गयीं । रुक्मिणी जी ने सोचा कि जब प्रभु ही ऐसे ब्राह्मणों के आगे झुकते हैं तो मैं क्यों न झुकूँ । ये तो मुझसे कुछ लेंगे नहीं, अतः रुक्मिणी जी ने उन ब्राह्मण देव को प्रणाम कर लिया ।

विदर्भ देश के नागरिकों ने जब यह सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान् के निवास स्थान पर आये और उनकी रूप माधुरी का नेत्रों की अंजलि में भरकर रस पान किया । वे लोग आपस में कहने लगे – 'हमारी बेटी रुक्मिणी के लिए श्रीकृष्ण ही वर होने योग्य हैं । इस मूर्ख शिशुपाल को यहाँ रुक्मिणी से विवाह करने के लिए किसने निमन्त्रित कर दिया ?' परन्तु रुक्मी के भय के कारण वे इस विवाह का खुलकर विरोध नहीं कर सकते थे ।

इधर रुक्मिणीजी अपनी सखियों के साथ गिरिजा मन्दिर में देवी पूजन के लिए चलीं । वहाँ रुक्मिणीजी ने देवी से प्रार्थना की –

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५३/४६)

'हे अम्बिका माता ! आपकी गोद में बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजी को तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ । आप ऐसी कृपा कीजिये कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों ।'

रुक्मिणीजी उस समय मौन थीं, देवी की पूजा करने के बाद मन्दिर से बाहर निकलीं । रुक्मिणीजी के रूप का वर्णन किया गया है । उनके मुखमण्डल पर अलकें लटक रही थीं, उन अलकों के बीच से वे देख रही थीं कि श्रीकृष्ण आये कि नहीं । अचानक उनको अनुमान हो गया कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तब उन्होंने विचार किया कि यदि ऐसी स्थिति में प्रभु मेरा हरण करेंगे तो यहाँ उपस्थित सभी वीर सैनिक और अन्य राजा लोग उनसे युद्ध करेंगे तो उसके कारण देर हो जायेगी । इसलिए मुझे ऐसा कुछ करना चाहिए कि श्यामसुन्दर को लड़ना न पड़े । (रुक्मिणीजी की शक्ति देखिये)

ऐसा विचारकर रुक्मिणीजी ने अपने बालों को थोड़ा हटाकर नेत्रों से देखते हुए, पवित्र मुस्कान के साथ, हंसगामिनी चाल से चलते हुए जब अपना नूपुर बजाया तो वहाँ खड़े हुए वीर सैनिक और राजा लोग मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़े ।

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५३/५३)

युद्ध करने में बहुत विलम्ब होता परन्तु देवी रुक्मिणी ने तो अपनी रूप माधुरी का जो अस्त्र चलाया, उसके प्रभाव से जो वीर योद्धा हाथियों पर चढ़े थे, वे हाथियों से गिर पड़े, जो घोड़े पर चढ़े थे, वे घोड़ों से नीचे गिर पड़े, जो रथ पर बैठे थे, वे रथ से नीचे आ गिरे । उन सबको ऐसी मूर्च्छा आई कि उनके हाथों से तलवार आदि अस्त्र छूटकर गिर पड़े । उसी समय वहाँ श्यामसुन्दर आ गये, उन्होंने रुक्मिणीजी का हाथ पकड़कर उन्हें अपने रथ पर बैठा लिया और वहाँ से चल पड़े ।

लै गयो लै गयो रुक्मिणी ।
गिरिजा मन्दिर में चुप आयो,
अचक आय के गोद उठायो ।

जब सैनिक और अन्य राजा लोग श्रीकृष्ण पर हमला करने के लिए दौड़े तो बलरामजी ने उनका मुकाबला किया ।

अध्याय – ५४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – सभी राजा क्रोधित होकर श्रीकृष्ण से लड़ने की तैयारी करने लगे और तब तक वे रुक्मिणीजी को रथ पर बैठाकर ले गये । सभी राजा अपनी-अपनी सेना के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े । जरासन्ध की सेना के लोग श्रीकृष्ण के साथ चल रहे यदुवंशियों पर बाणों की वर्षा करने लगे । रुक्मिणीजी ने देखा कि मेरे पति पर संकट आ गया है । इनकी सेना तो शत्रुओं की बाण वर्षा से ढँक गयी है । वे भयभीत हो गयीं । भगवान् ने हँसकर उनसे कहा – 'डरो मत, हमारी सेना अभी शत्रुओं की सेना को नष्ट किये डालती है ।' अन्त में यदुवंशियों ने शत्रुओं की सेना को तहस-नहस कर डाला । जरासन्ध आदि सभी राजा पराजित होकर भाग खड़े हुए । उधर, शिशुपाल दूल्हे के वेष में सजा बैठा हुआ था । उसने सोचा था कि मेरे पक्ष के जरासन्ध आदि वीर राजा कृष्ण को हराकर रुक्मिणी को वापस लेकर मेरे पास आयेंगे किन्तु उसने देखा कि वे सब राजा तो कृष्ण से हारकर आ गये, रुक्मिणी को तो कृष्ण ले गये, तब तो वह बहुत दुखी हुआ । जरासन्ध और अन्य राजा शिशुपाल के आँसू पोंछते हुए कहने लगे – 'शिशुपालजी ! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं, यह उदासी छोड़ दीजिये ।' (अब वह बेचारा उदासी कैसे छोड़ सकता था क्योंकि दूल्हे के वेष में सजा बैठा था और अब ये लोग उसको ज्ञान दे रहे हैं ।) जरासन्ध ज्ञान की बातें कहने लगा – 'यह जीव तो कठपुतली के

समान है, भगवान् की इच्छा के अधीन रहकर सुख और दुःख के सम्बन्ध में यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है। मुझे देखो, मैं कितना बड़ा वीर और धैर्यवान हूँ। श्रीकृष्ण ने मुझे सत्तरह बार हराया। अठारहवीं बार मैंने उस पर विजय प्राप्त की। फिर भी इस बात को लेकर मैं कभी सुखी या दुखी नहीं होता हूँ। इस बार हमारे शत्रुओं की ही जीत हुई क्योंकि काल उनके अनुकूल था। जब काल हमारे दाहिने होगा तब हम भी उन्हें जीत लेंगे। तुम मुझसे शिक्षा लो, मैं सत्तरह बार कृष्ण से हारकर भी मूँछों पर ताव देता हूँ। इसलिए तुम भी मेरी तरह बन जाओ।'

जब इस प्रकार जरासन्ध ने शिशुपाल को समझाया तो वह अपनी राजधानी को लौट गया।

रुक्मिणीजी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से बहुत द्वेष करता था। उसने सबके सामने प्रतिज्ञा की – 'जब तक मैं युद्ध में श्रीकृष्ण को मारकर और अपनी बहन रुक्मिणी को लेकर नहीं आता, तब तक मैं अपनी राजधानी कुण्डिनपुर में पाँव नहीं रखूँगा।' ऐसा कहकर उसने एक अक्षौहिणी सेना ली और रथ पर सवार होकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। वह बड़े वेग से श्रीकृष्ण के पास पहुँचकर उन्हें ललकारने लगा – 'खड़ा रह, खड़ा रह कुलकलंकी ! मेरी बहन को लेकर कहाँ भागा जा रहा है, जैसे कौआ यज्ञ के भाग को ले जाए, इस प्रकार तू मेरी बहन को लिए जा रहा है।' श्रीकृष्ण ने उस पर छः बाण छोड़े। रुक्मी ने भी श्रीकृष्ण पर बाण चलाये किन्तु भगवान् ने उसका धनुष काट डाला। वह जो भी धनुष उठाता, उसके सभी धनुषों को श्रीकृष्ण काटते जाते। धनुष कट जाने पर वह तलवार लेकर श्रीकृष्ण को मारने दौड़ा। तब भगवान् ने उसकी तलवार काट दी और रुक्मी को मार डालने के लिए हाथ में तीखी तलवार निकाल ली। जब रुक्मिणीजी ने देखा कि ये तो मेरे भाई को अब मारने ही जा रहे हैं, तब वे रथ से नीचे कूद पड़ीं और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों पर गिरकर बोलीं –

'हे प्रभो ! ये मेरे भैया हैं, इन्हें आप मत मारिये ।' रुक्मिणीजी को भयभीत देखकर भगवान् ने रुक्मी को मार डालने का विचार छोड़ दिया । फिर भी उन्होंने रुक्मी को उसी के दुपट्टे से बाँध दिया तथा उसके दाढ़ी-मूँछ और केशों को मूँड दिया । जब इस प्रकार उसकी हजामत बना दी तब बलरामजी वहाँ आये और उन्होंने विचित्र नाटक किया । एक बार तो वे श्रीकृष्ण से बात करते और दूसरी बार रुक्मिणीजी से बात करते । बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा – 'कृष्ण ! यह तुमने ठीक नहीं किया, रुक्मिणी के भाई के तुमने केश और दाढ़ी-मूँछ मूँड दिए ।' इसके तुरन्त बाद रुक्मिणीजी से कहने लगे – 'देवि ! तुमको हम लोगों में दोष नहीं देखना चाहिए क्योंकि कृष्ण तुम्हारे पति हैं । तुमको तो इनमें दोष देखना ही नहीं चाहिए ।' फिर कृष्ण से बोले – 'यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करने योग्य अपराध करे तो भी अपने ही सम्बन्धियों के द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है, उसे छोड़ देना चाहिए । तुझे इन सब बातों का कुछ पता नहीं है ।' इसके तुरन्त बाद रुक्मिणीजी से बोले – 'देवि ! क्षत्रियों का धर्म ही ऐसा कठोर होता है । कृष्ण ने जो कुछ किया, ठीक किया । कृष्ण जो कुछ कर रहा है, यही क्षत्रिय धर्म है । तुम इसे जानती नहीं हो । क्षत्रिय धर्म में तो भाई ही भाई से लड़ता है ।'

इस तरह कभी बलरामजी रुक्मिणीजी को समझाते, कभी कृष्ण से बात करते । उन्होंने एक विचित्र ही नाटक किया । इस प्रकार दोनों को समझा-बुझाकर बलरामजी ने सारा मामला ठीक कर दिया । रुक्मी तो वहाँ से चला गया किन्तु अपनी राजधानी को नहीं लौटा । उसने अपने रहने के लिए भोजकट नाम की एक बहुत बड़ी नगरी बसायी ।

इधर रुक्मिणीजी का द्वारका में श्रीकृष्ण के साथ विधिवत् अच्छी प्रकार से विवाह हुआ । भगवती लक्ष्मीजी को रुक्मिणी के रूप में साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर द्वारका वासी नर-नारियों को परम आनन्द हुआ ।

अध्याय – ५५

यहाँ शुकदेवजी ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण श्लोक कहा है, जो विशेष रूप से समझने योग्य है ।

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५५/१)

इस श्लोक का अर्थ हम लोग नहीं समझ सकते हैं । भागवत के टीकाकार आचार्यों ने इसका वास्तविक अर्थ बताया है ।

कामदेव जो भगवान् वासुदेव का अंश है, उसे पहले शिवजी ने अपनी क्रोधाग्नि से जला दिया था । अब वह श्रीकृष्ण के वीर्य का आश्रय लेकर उनका पुत्र बना ।

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।

(श्रीभागवतजी - १०/५५/२)

रामायण के अनुसार भगवान् शिव ने कामदेव की स्त्री रति से कहा था – **कृष्ण तनय होइहि पति तोरा ।**

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ८८)

तेरा पति द्वापर में भगवान् श्रीकृष्ण का पुत्र होगा ।

किन्तु भागवत के टीकाकार आचार्य कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं है कि कामदेव कृष्ण का पुत्र था । यह बात श्लोक (१०/५५/२) में ही कट जाती है ।

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५५/२)

कृष्ण के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ प्रद्युम्न अपने पिता कृष्ण से किसी प्रकार कम नहीं था अर्थात् कृष्ण के ही समान था ।

इस सम्बन्ध में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं –

'नहीन्द्रभृत्यः प्राकृत कामः'

प्राकृत कामदेव तो इन्द्र का नौकर है, ब्रह्माण्ड में एक कामदेव है, वह इन्द्र का दास है, जब उसको इन्द्र आज्ञा देते हैं तो वह अप्सराओं को साथ लेकर जाता है और तपस्या करने वाले ऋषियों के तप में बाधा देता है । अतः इस प्रकार इन्द्र का दास जो प्राकृत कामदेव है, वह श्रीकृष्ण के समान कैसे हो सकता है ? दूसरी बात ये है कि एक काम भगवान् का भी स्वरूप कहा गया है । भगवान् ने गीता में कहा है –

'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः' – (श्रीगीताजी - १०/२८)

मैं सन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूँ ।

अतः जो काम भगवान का स्वरूप है, उसे शिवजी जला ही नहीं सकते हैं ।

सुबोधिनी में वल्लभाचार्यजी ने लिखा है –

'रुद्रो न दहेत्तदर्थं पुनर्नदहेत्त रुद्रो'

वस्तुतः शिव कामदेव को जला ही नहीं सकते हैं । फिर बात क्या है, समस्या कैसे सुलझे ? इस समस्या का समाधान करते हुए आचार्यों ने ही समझाया है कि सबके अंशी हैं कृष्ण और उनके चतुर्व्यूह में हैं – वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । जैसे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चतुर्व्यूह हैं, उसी प्रकार वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न को चतुर्व्यूह कहते हैं । कृष्ण अंशी हैं और प्रद्युम्न उनका अंश है । प्रद्युम्न अप्राकृत काम है । इन प्रद्युम्न के अंश हैं अनन्त काम अर्थात् प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में प्रद्युम्न के अंश कामदेव ही अनन्त रूपों में प्राकृत काम हैं। वे आकर प्रद्युम्न में लीन हो जाते हैं। अंश अंशी में लीन हो जाते हैं। इसलिए प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के समान हैं क्योंकि वे चतुर्व्यूह में आते हैं और इन्हीं में प्राकृत काम आकर लीन हो गया। प्राकृत काम कृष्ण जैसा नहीं हो सकता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने अपनी टीका में लिखा है –

तस्मात्तस्मिन् प्रद्युम्ने तदिच्छ्या स प्रविश्य स्थितो भगवति जगदिवेत्येवं श्रीनन्दादिष्वपि श्रीद्रोणादीनां स्थिति ।

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी, सारार्थदर्शिनी)

जैसे श्रीकृष्ण के जो नित्य माता-पिता यशोदा व नन्दजी हैं, द्रोण और धरा साधन करके उन्हीं में आकर लीन हो जाते हैं।

अस्तु, बालक प्रद्युम्न अभी दस दिन के भी नहीं हुए थे कि उन्हें शम्बरासुर हर ले गया क्योंकि उसे पता था कि यह मेरा शत्रु है और इसके हाथों मेरी मृत्यु होनी है। शम्बरासुर ने प्रद्युम्नजी का हरण करके उन्हें समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में एक मछली ने बालक प्रद्युम्न को निगल लिया। मछुओं ने जाल में फँसाकर दूसरी मछलियों के साथ इस मछली को भी पकड़ लिया। मछुआरों ने ले जाकर उस मछली को शम्बरासुर को भेंट कर दिया। शम्बरासुर के रसोइये उस अद्भुत बड़ी मछली को जब कुल्हाड़ियों से काटने लगे तो मछली के पेट में बालक को देखकर उसे शम्बरासुर की दासी मायावती को समर्पित कर दिया। यह मायावती कामदेव की पत्नी रति थी। वह शम्बरासुर के यहाँ रसोई बनाने का काम करती थी। नारदजी ने जाकर मायावती को बता दिया कि यह बालक तेरा पति है। मायावती उस बालक का पालन करने लगी। बालक प्रद्युम्न थोड़े दिनों में ही बड़े हो गये। अब रति शम्बरासुर के यहाँ दासी के रूप में कैसे आई, इसके पीछे एक गूढ़ कथा

है। आचार्यों ने मत्स्य पुराण की कथा के द्वारा इसे बताया है। कामदेव को जब शिवजी ने जला दिया था तो उसकी पत्नी रति अत्यन्त सुन्दर थी। उसे पाने के लिए शम्बरासुर ने कठोर तप के द्वारा शिवजी की आराधना की। असुरों की नीयत ऐसी ही खोटी होती है। इधर शम्बरासुर तपस्या कर रहा था कि मुझे रति मिल जाए और उधर रति तपस्या कर रही थी कि मुझे मेरा पति मिल जाए। दोनों ही महादेवजी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या कर रहे थे। महादेवजी की लीला भी विचित्र है। वे रति के सामने प्रकट हुए। उसने कहा कि मुझे मेरा पति मिल जाए। शिवजी बोले – 'ठीक है, मिल जायेगा।' दूसरी ओर वे शम्बरासुर के सामने प्रकट हुए तो उसने कहा – 'मुझे रति मिल जाए।' शिवजी बोले – 'मिल जाएगी।' शिवजी ने रति से कहा कि तू शम्बरासुर के यहाँ दासी बनकर रह, वहीं तुझे तेरा पति मिलेगा। नारदजी ने उसे आकर बताया कि कि तू तो कामदेव की पत्नी रति है और यह बालक ही तेरा पति है। नारदजी के कहने से वह बालक का प्रेम से पालन करने लगी। थोड़े ही दिनों में प्रद्युम्न जी जवान हो गये तो मायावती उन्हें तिरछी चितवन से लजाकर देखने लगी। प्रद्युम्न ने कहा – 'तुम तो मेरी माता हो, तुम्हीं ने बचपन से मेरा पालन किया है और तुम अब मुझे कामिनी की तरह देख रही हो।' रति बोली – 'प्रभो ! मैं आपकी माता नहीं हूँ। आपको इस रहस्य का पता नहीं है। आप कामदेव हैं और मैं आपकी सनातन पत्नी रति हूँ। ऐसा नारदजी ने मुझे बता दिया है।' ऐसा कहकर मायावती रति ने प्रद्युम्न को महामाया नाम की विद्या सिखाई। यह विद्या शिवजी ने रति को दी थी और कहा था कि इस महामाया के प्रभाव से तू शम्बरासुर को मोहित किये रहेगी और तेरा यह व्रत कि कामदेव ही मेरे एकमात्र पति हों, वह भी भ्रष्ट नहीं होगा। शिवजी ईश्वर हैं, कैसी-कैसी शक्तियाँ वे जीव को दे देते हैं। इसलिए उन्होंने रति को मोहनात्मिका माया दे

दी । जब-जब शम्बरासुर मायावती रति के पास संगम के लिए आता तो वह ऐसा मोहित हो जाता कि समझता कि मुझे रति मिल गयी है । यह सब माया की शक्ति शिवजी ने रति को दी थी । उन्होंने कहा कि जब मैं साँप देता हूँ तो साँप पकड़ने का मन्त्र भी देता हूँ । मैं ईश्वर हूँ । मुझे पागल मत समझना । रति ने शिवजी की दी हुई महामाया नामक विद्या प्रद्युम्न को सिखायी । उस विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न ने शम्बरासुर के पास जाकर उसे ललकारा । शम्बरासुर बहुत क्रोधित हुआ और उसने प्रद्युम्नजी के ऊपर गदा चलायी । प्रद्युम्नजी ने अपनी गदा के प्रहार से उसकी गदा नीचे गिरा दी । अब वह असुर आसुरी माया का प्रयोग करने लगा । उसके प्रभाव से आकाश से करोड़ों अस्त्र-शस्त्र गिरने लगे । तब प्रद्युम्नजी ने महामाया का प्रयोग किया, जो इनकी पत्नी ने इन्हें सिखाई थी । इस महाविद्या के प्रयोग से शम्बरासुर की आसुरी माया नष्ट हो गयी और तब प्रद्युम्नजी ने तीक्ष्ण तलवार लेकर शम्बरासुर का सिर काट दिया । इसके बाद मायावती रति अपने पति प्रद्युम्नजी को आकाश मार्ग से द्वारका पुरी में ले गयी । उन दोनों ने भगवान् के अन्तःपुर में प्रवेश किया । प्रद्युम्नजी को कृष्ण समझकर अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ लजाकर घरों में इधर-उधर छिप गयीं । उसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ गयीं । प्रद्युम्न को देखकर वे सोचने लगीं – 'मेरा पुत्र यदि जीवित होता तो इतना ही बड़ा होता । यह कौन है, इसका रूप मेरे प्रभु की तरह है ।' इतने में वहाँ नारदजी आ गये । उन्होंने रुक्मिणीजी को बताया कि यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न है । फिर उन्होंने प्रद्युम्न के बारे में सभी घटनाएँ रुक्मिणीजी को बतायीं ।

अब इस कथा के बारे में आचार्यों ने लिखा है कि प्रद्युम्नजी तो बहुत दिनों बाद आये । शम्बरासुर के यहाँ मायावती के द्वारा वह पाले-पोसे गये और फिर जवान हुए । उस कथा को यहाँ क्यों कहा गया ? श्रीधरस्वामीजी ने लिखा – **प्रद्युम्नप्रत्यागमनं उत्तरकालीनमपि** इस

घटना के पहले श्रीकृष्ण के अन्य विवाह भी हो चुके थे । जाम्बवती आदि स्त्रियों से उनका विवाह हो गया था, परन्तु पीछे वाली प्रद्युम्न की कथा को श्रीकृष्ण के अन्य विवाहों से पहले क्यों कहा गया ? श्रीधर स्वामीजी ने लिखा – **कथापर्यवसानाय** – शुकदेवजी कथा के आवेश में थे, उन्होंने सोचा कि प्रद्युम्न की कथा के बाद ही श्रीकृष्ण के अन्य विवाहों की कथा को मैं कहूँगा । इसलिए यहाँ पर कथा का क्रम बदल गया है ।

अध्याय – ५६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – सत्राजित ने श्रीकृष्ण को झूठा कलंक लगाया था, फिर अपने इस अपराध को नष्ट करने के लिए उसने स्यमन्तक मणि के सहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् कृष्ण को सौंप दी । राजा परीक्षित ने पूछा – महाराज ! यह बात मेरी समझ में नहीं आयी । सत्राजित् ने भगवान् कृष्ण का क्या अपराध किया था और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – सत्राजित् सूर्यदेव का बहुत बड़ा भक्त, उनका सखा था । सूर्यदेव ने ही उसे स्यमन्तक मणि दी थी । उस मणि को पहनकर जब सत्राजित् द्वारका में आया तो द्वारकावासी कहने लगे कि अरे, सूर्यदेव आ रहे हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'सूर्यदेव नहीं, यह तो सत्राजित् आ रहा है । स्यमन्तक मणि पहने हुए है, उसी के कारण इतना प्रकाश हो रहा है ।'

इस कथा में एक बहुत बड़ी शिक्षा है । थोड़ी-सी भूल के कारण ठाकुरजी को कलंक लग गया । भगवान् की सारी लीला शिक्षा के लिए होती है । किसी से कोई वस्तु मत माँगो । श्रीकृष्ण ने सत्राजित् से मणि को माँगा । क्यों ? अपने नाना उग्रसेनजी को देने के लिए । बड़े-बूढ़ों की इच्छा पूरी करनी ही पड़ती है । इसीलिए एक बार भगवान्

श्रीकृष्ण ने सत्राजित् से कहा कि स्यमन्तक मणि राजा उग्रसेन को दे दो। किन्तु सत्राजित् ने नहीं दी। एक दिन सत्राजित् का छोटा भाई प्रसेन उस मणि को गले में पहनकर घोड़े पर सवार होकर वन में शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह ने घोड़े सहित उसे मार डाला और मणि को छीन लिया। उस सिंह को भी जाम्बवानजी ने मार डाला और उससे मणि छीन ली।

किसी व्यक्ति के हाथ में सौ रुपये का नोट है। बाजार में यह दुकानदार के पास जाता है और फिर वहाँ से वह कितने ही लोगों के हाथ में जाता है। इसका कारण है कि लक्ष्मी चंचला है। जैसे यह स्यमन्तक मणि कहाँ-कहाँ गयी ? धन चंचल होता है, चाहे वह उपासना करके ही क्यों न मिले। मणि पहुँच गयी जाम्बवानजी के पास और इधर मणि के गायब होने से द्वारका में श्रीकृष्ण पर मणि चुराने का कलंक लग गया। यद्यपि हरिवंश पुराण में कलंक के पीछे दूसरी कथा लिखी है। एक बार गणेशजी कहीं जा रहे थे तो रास्ते में फिसलकर गिर पड़े। उनकी तोंद लम्बी और मोटी है तो वे अपनी तोंद को सँभाल नहीं सके। गणेशजी को इस प्रकार फिसलते देख चन्द्रमा उन पर बहुत हँसा। इस पर गणेशजी ने उसे शाप दे दिया कि आज के दिन जो तुझे देखेगा, उसे अवश्य ही कलंक लगेगा। एक बार श्रीकृष्ण ने उसी दिन (भाद्र मास में चतुर्थी या चौथ के दिन) चन्द्रमा देख लिया। नारदजी ने उनसे कहा कि आपने आज के दिन चन्द्रमा देखा तो आपको कलंक लग सकता है। हरिवंश पुराण में इस प्रकार कथा का उल्लेख है किन्तु भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने सत्राजित् से मणि माँगी, इसीलिए उन्हें कलंक लगा। दोनों कथायें सही हैं। नीति तो यही है कि किसी से कोई वस्तु नहीं माँगनी चाहिये। इससे मनुष्य का तेज नष्ट होता है और कलंक भी लगता है।

जब श्रीकृष्ण पर कलंक लगा तो वे मणि को ढूँढने के लिए वन में गये। वहाँ उन्हें मरा हुआ प्रसेन और उसका मरा घोड़ा दिखाई दिया। उसके आगे एक मरा हुआ सिंह दिखाई दिया। इसके बाद जाम्बवन्तजी की गुफा में भगवान् पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि उस मणि को जाम्बवानजी ने अपनी पुत्री को खेलने के लिए दे दी थी। जब वे मणि लेने के लिए बच्ची के पास गये तो उसकी धाय भयभीत होकर चिल्ला उठी। उसकी आवाज सुनकर वहाँ जाम्बवानजी आये और भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगे। पहले तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार किया, फिर शिलाओं का, उसके बाद वे वृक्ष उखाड़कर एक-दूसरे पर फेंकने लगे। अन्त में उनमें बाहु युद्ध होने लगा। अट्ठाईस दिनों तक बिना विश्राम किये वे दोनों रात-दिन लड़ते रहे। एक दूसरे पर कठोर घूँसों का प्रहार करते थे। कभी कृष्ण जाम्बवानजी को घूँसा मारते तो कभी जाम्बवानजी कृष्ण को घूँसा मारते। भगवान् श्रीकृष्ण ने यह लीला क्यों की ? इसका कारण यह है कि लंका के युद्ध से जाम्बवानजी की तृप्ति नहीं हुई थी। उनकी भुजा की खुजार नहीं मिटी थी। वे सोचते थे कि रावण तो मर गया किन्तु अभी तक मेरी भुजा की खुजार मिटाने वाला कोई नहीं मिला। वह वीर थे, वीर आदमी युद्ध करना चाहता है, इसीलिए भगवान् ने जाम्बवानजी को अवसर दे दिया कि जितना चाहो, अच्छी तरह मुझसे लड़ो। इसीलिए अट्ठाईस दिन-रात एक दूसरे पर घूँसों का प्रहार करते हुए दोनों लड़ते रहे। अन्त में श्रीकृष्ण के घूँसों की चोट से जाम्बवान के शरीर की एक-एक गाँठ टूट-फूट गयी, उत्साह चला गया और वे पसीने से लथपथ हो गये। तब वे समझ गये कि यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, यह तो परब्रह्म है। जाम्बवानजी ब्रह्माजी के अवतार थे, वे सोचने लगे कि मेरी नस-नस को कौन तोड़ सकता है ? ब्रह्मा की नस-नस को तो ब्रह्मा का

बाप ही तोड़ सकता है । इसीलिए अच्छी तरह पिटने के बाद जाम्बवानजी ने श्रीकृष्ण से कहा –

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५६/२६)

'मैं जान गया । आप तो मेरे प्रभु हैं । आप मेरे प्रभु राम हैं । मुझे स्मरण है कि जब आप सीताजी को लाने के लिए समुद्र पार लंका जा रहे थे और आपने अपनी तिरछी दृष्टि से नेत्रों में तनिक सा क्रोध का भाव लेकर समुद्र की ओर देखा था, उस समय समुद्र के भीतर रहने वाले बड़े-बड़े मत्स्य, मगरमच्छ आदि क्षुब्ध हो गये थे और समुद्र ने आपको मार्ग दे दिया था । फिर आपने उस पर पुल बाँधकर लंका का विनाश किया । आप मेरे वे ही प्रभु श्रीराम हैं । हे प्रभो ! आप यहाँ कैसे आ गये ?' प्रभु बोले – 'पहले तुम मेरे पास आओ, तब फिर मैं तुमसे बात करूँगा ।' श्रीकृष्ण के घूँसों की मार से जाम्बवानजी की नस-नस में दर्द हो रहा था । उन्हें बोलने में कठिनाई हो रही थी । बोलते समय भी उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी । इसीलिए भगवान् ने उन्हें अपने पास बुलाकर अपना हाथ उनके शरीर पर फेर दिया । प्रभु के हाथों का स्पर्श पाते ही जाम्बवानजी का सारा कष्ट दूर हो गया और वह पूर्ण स्वस्थ हो गये । तब भगवान् ने उनसे कहा कि मैं यह मणि लेने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ । मेरे ऊपर इस मणि की चोरी का मिथ्या कलंक लगाया गया है । जाम्बवानजी बोले – 'प्रभो ! आप इस मणि को ले लीजिये और मेरी कन्या को भी ग्रहण कीजिये ।' ऐसा कहकर उन्होंने मणि के साथ अपनी कन्या जाम्बवती भी भगवान् को अर्पित कर दी ।

इधर प्रभु के साथ मणि की खोज में कुछ द्वारका के लोग भी आये थे । उन्हें प्रभु ने गुफा के बाहर ही प्रतीक्षा करने के लिए कहा था ।

बारह दिनों तक उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा की । जब वे बाहर नहीं आये तब उन लोगों ने समझा कि अब श्रीकृष्ण समाप्त हो गये । तब वे अत्यन्त दुखी होकर द्वारका को लौट गये । अब तो सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुखी होकर सत्राजित् की निन्दा करने लगे और दुःख निवृत्ति के लिए दुर्गा देवी की उपासना करने लगे । दुर्गाजी ने प्रकट होकर उनसे कहा – 'तुम लोग घबराओ मत, प्रभु आने ही वाले हैं । अपने साथ मणि और नई दुल्हिन भी ला रहे हैं ।' उसी समय वहाँ मणि और नव वधू जाम्बवती के साथ श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण ने वह मणि सत्राजित् को देते हुए कहा – 'यह अपनी मणि ले लो, मैंने इसे नहीं चुराया था ।' मणि जैसे प्राप्त हुई थी, वह सारा हाल उन्होंने सत्राजित् को बता दिया । सत्राजित् बड़ा ही लज्जित और भयभीत हो गया । उसने सोचा कि अपने अपराध को दूर करने के लिए मुझे अपनी कन्या सत्यभामा स्यमन्तक मणि सहित श्रीकृष्ण को अर्पित कर देना चाहिए । तब सत्राजित् हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से बोला – 'प्रभो ! मेरी कन्या सत्यभामा को भी आप ग्रहण कर लीजिये और मणि को भी आप ही ले लीजिये । इससे मेरा भी कलंक दूर होगा ।' ऐसा कहकर सत्राजित् ने अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को अर्पित की, साथ ही दहेज में स्यमन्तक मणि भी दे दी । भगवान् ने सत्यभामा को तो स्वीकार कर लिया किन्तु स्यमन्तक मणि नहीं ली । उससे बोले – 'मैं यह मणि नहीं लूँगा, यह तो आफत की जड़ है । इस मणि ने बड़े अनर्थ उत्पन्न किये । इसे तो आप अपने ही पास रखो ।'

अध्याय – ५७

शुकदेवजी कहते हैं – जब भगवान् श्रीकृष्ण ने सुना कि कुन्ती और पाण्डव लाक्षागृह की आग से जल मरे, तब वे कुल परम्परा के अनुसार शोक प्रकट करने के लिए हस्तिनापुर गये । यद्यपि उन्हें इस

बात का पता था कि पाण्डवों का बाल भी बाँका नहीं हुआ है । हस्तिनापुर जाकर वे भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र और गान्धारी से मिले तथा उन लोगों से कहने लगे – 'अरे, यह तो बड़े ही कष्ट की बात हुई कि पाण्डवों की मृत्यु हो गयी ।'

इधर भगवान् श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर चले जाने पर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा के पास जाकर कहा – 'सत्राजित् ने पहले अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह हमसे करने का वचन दिया था और अब उसने अपनी कन्या का श्रीकृष्ण के साथ विवाह कर दिया । अतः जैसे उसका भाई प्रसेन मरा, इसी प्रकार सत्राजित् को भी मरना चाहिये । तुम जाकर उसका वध कर दो और उसकी स्यमन्तक मणि छीन लो ।'

अब यहाँ यह समझने की बात है कि अक्रूरजी कितनी गलत बात बोल रहे हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के ससुर को मरवाने का प्रयास कर रहे हैं, जबकि वह भगवान् के परम भक्त थे और जिस प्रकार श्रवण भक्ति के आचार्य परीक्षितजी हैं, कीर्तन भक्ति के आचार्य शुकदेवजी हैं, वैसे ही अक्रूर भी वन्दन भक्ति के आचार्य थे । इतने बड़े आचार्य होकर भी उनकी बुद्धि कहाँ पहुँच गयी, इसका विचार करो । गुरु होकर जो अपने शिष्य को ऐसा निकृष्ट काम सिखाये तो शिष्य की कैसी नारकीय गति होगी और वह गुरु भी कितना बड़ा नारकीय है । इसीलिए महापुरुषों ने कहा है –

हरै शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरक में परई ॥

जो गुरु शिष्य से धन ले लेता है और उसके अज्ञान को दूर नहीं करता, वह गुरु घोर नरक में जाता है । वन्दन भक्ति के आचार्य होकर भी अक्रूरजी ने शतधन्वा को कितना बुरा काम करने के लिए प्रेरित किया । अब इसके पीछे क्या रहस्य है, यह आचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – शतधन्वा अक्रूरजी के बहकाने पर गया और रात को सोते समय उसने भगवान् के ससुर सत्राजित् को मार डाला । सब स्त्रियाँ वहाँ रोने-चिल्लाने लगीं परन्तु उसने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और सत्राजित् का गला काटकर तथा उसकी मणि लेकर शतधन्वा वहाँ से भाग गया ।

सत्यभामाजी को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वे भी जोर-जोर से रोने लगीं – 'हाय, मेरे पिताजी को मार दिया' – इस प्रकार पुकार-पुकारकर वे बेहोश हो जातीं । इसके बाद उन्होंने अपने पिता के शव को तेल के कड़ाहे में रखवा दिया और स्वयं छाती पीटती, रोती हुई हस्तिनापुर गयीं । वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पिता की हत्या के बारे में बताया । यह सुनकर कृष्ण और बलराम मनुष्यों की सी लीला करते हुए रोने लगे – 'अरे ! यह तो बड़े कष्ट की बात है । हमारे ससुरजी मारे गये ।'

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी द्वारका लौट आये और उन्होंने शतधन्वा को ढूँढना शुरू किया ।

इधर यह भी विशेष रूप से जानने योग्य बात है कि इतने बड़े वन्दन भक्ति के आचार्य होते हुए भी अक्रूरजी की बुद्धि क्यों बिगड़ी ? इस पर विचार करना चाहिए, यह बहुत गम्भीर बात है ।

श्रीजीवगोस्वामीजी लिखते हैं –

श्रीभगवद्भक्तवरस्यास्याक्रूरस्येदृश्युक्तिर्नूनं
श्रीगोकुलजनकोपात्

(श्रीजीवगोस्वामीजी, वैष्णवतोषिणी)

जिस समय अक्रूरजी श्रीकृष्ण को लेने के लिए ब्रज गये थे तो उन्हें गोपियों की हाय लग गयी । वे कहने लगीं –

आयो री बैरी अक्रूर कहाँ क्रूर को

यह बैरी अक्रूर कहाँ से आ गया ?

इसलिए गोपियों की हाय ने अक्रूरजी की बुद्धि को नष्ट कर दिया ।

चाहे कोई जय-विजय की तरह नित्य धाम वैकुण्ठ का पार्षद बन जाए, चाहे अक्रूरजी की तरह भक्ति का आचार्य बन जाए परन्तु हर व्यक्ति को भक्तापराध से सदा डरना चाहिए । साधक भक्त को भी सिर-माथे पर देकर चलना चाहिए । भक्त को भगवान् से बड़ा मानो, तब तो भक्ति पथ है, नहीं तो मजाक है ।

भक्ति है क्या चीज ? गोस्वामीजी ने कहा है –

राम ते अधिक राम कर दासा

भगवान् के भक्त को भगवान् से बड़ा मानना ही पड़ेगा । अपने शरीर का अहंकार मत रखो । धन का अहंकार मत रखो । साधक भक्त में भी यदि दोष हैं तो उन्हें मत देखो, नहीं तो भक्ति नहीं मिलेगी । अक्रूर भी बन जाओगे तो भी पतन हो जायेगा ।

आगे की कथा यह है कि जब शतधन्वा को मालूम हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारने के लिए ढूँढ़ रहे हैं तो पहले तो उसने कृतवर्मा से सहायता माँगी । कृतवर्मा ने सहायता देने से मना कर दिया और कहा – 'भला बलराम – कृष्ण से लड़ने का मैं साहस भी कैसे कर सकता हूँ, क्या तू मुझे मरवाना चाहता है ?' जब कृतवर्मा ने उसकी सहायता करने से मना कर दिया तो शतधन्वा अक्रूरजी के पास सहायता माँगने के लिए पहुँचा और बोला – 'आप मेरी रक्षा कीजिए । कृष्ण-बलराम मुझे मारने के लिए आ रहे हैं । आपने ही मुझे सत्राजित् को मार डालने की सलाह दी थी । अब आप मेरी मदद करिए ।' उसकी बात सुनकर अक्रूरजी बोले – 'क्या तू पागल हो गया है ? कृष्ण-बलराम से लड़कर मरना कौन चाहेगा ? मैं उनका सामना नहीं कर सकता ।

जब श्रीकृष्ण केवल सात वर्ष के बालक थे तो उन्होंने विशाल गिरिराज गोवर्धन को अपने एक हाथ पर धारण कर लिया था। उनसे लड़ने की मेरी हिम्मत नहीं है।'

उनकी बात सुनकर शतधन्वा बोला – 'अच्छा, यह मणि आप अपने पास रख लीजिये, तब तक मैं अपने प्राण बचाने के लिये कहीं भाग जाता हूँ।' अक्रूरजी ने कहा – 'ठीक है, मणि मुझे दे दे।'

अक्रूरजी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। स्यमन्तक मणि के वे लोभी बन गये थे। इधर भगवान् ने शतधन्वा का पीछा किया। वह मिथिला तक भाग गया था। भगवान् ने अपनी तीखी धार वाले चक्र से उसका सिर काट दिया और उसके कपड़ों में मणि को ढूँढ़ा परन्तु मणि नहीं मिली। बलरामजी ने कहा कि निश्चय ही यह स्यमन्तक मणि किसी के पास रख आया है। ऐसा कहकर बलरामजी तो मिथिला पुरी में चले गये। वहीं आकर दुर्योधन ने बलरामजी से गदा युद्ध की शिक्षा ली। उधर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका चले गये। अक्रूर और कृतवर्मा द्वारका से भागकर काशी चले गये। वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ बड़ा ऐश्वर्य रहता था। सोने की वेदियों में बड़े-बड़े यज्ञ काशी में होने लगे। द्वारका वासी कहने लगे कि काशी नरेश का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। भगवान् कृष्ण ने बताया कि यह काशी नरेश का प्रभाव नहीं है। अक्रूर जी काशी पहुँच गये हैं, उनके पास जो स्यमन्तक मणि है, यह उसी का प्रभाव है। इसके बाद भगवान् ने दूत भेजकर अक्रूरजी को काशी से बुलवाया। जब अक्रूरजी द्वारका आ गये तो भगवान् ने उनसे कहा – 'हमें यह पता है कि शतधन्वा स्यमन्तक मणि को आपके पास छोड़ गया था, जो बड़ी ही प्रकाशमान और धन देने वाली है। उस स्यमन्तक मणि के उत्तराधिकारी मेरे पुत्र हैं क्योंकि सत्राजित के कोई पुत्र नहीं है, इसलिए उनकी पुत्री के पुत्र ही उन्हें तिलांजलि और पिण्ड दान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे तथा जो कुछ बचा रहेगा, उसके

उत्तराधिकारी होंगे । इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से वह स्यमन्तक मणि हमारे पुत्रों को मिलनी चाहिए फिर भी मैं यह मणि नहीं लेना चाहता क्योंकि धन सारे अनर्थों की जड़ है । इस मणि को आप ही रखिये परन्तु मेरे भाई बलराम सोचते हैं कि मैंने यह मणि कहीं छिपा दी है, इसलिए आप वह मणि दिखाकर सबका सन्देह दूर कर दीजिये ।'

इस कथा में बहुत बड़ी शिक्षा छिपी है कि धन-सम्पत्ति की आसक्ति मनुष्य को कितना नीचे गिरा देती है । आज भाई-भाई धन के पीछे लड़ जाते हैं, मुकदमेबाजी होती है । घर-घर झगड़ा धन के कारण होता है । यह भगवान् ने पहले से ही दिखा दिया कि धन सारे अनर्थों की जड़ है । बलरामजी भी सोचने लगे कि कृष्ण ने मणि को कहीं छिपा दिया, इसीलिए भगवान् ने अक्रूरजी से कहा कि आप इस मणि को दिखा दीजिये । भगवान् श्रीकृष्ण ने वह मणि अपने जाति भाइयों को दिखाकर अपना कलंक दूर किया और उसे पुनः अक्रूर जी को लौटा दिया ।

इस आख्यान को जो पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह मिथ्या कलंक से छूट जाता है ।

अध्याय – ५८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ गये । वहाँ वे सभी पाण्डवों से मिले, कुन्तीजी से मिले । द्रौपदी नवविवाहिता थीं, उनसे भी मिले । युधिष्ठिरजी ने कहा कि आप कुछ दिन हमारे पास ही विराजिये । तब पाण्डवों के प्रेमवश भगवान् वहाँ वर्षा के चार महीने तक रहे ।

एक बार श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर नदी के किनारे गये तो वहाँ उन्होंने देखा कि एक देवी तपस्या कर रही थी । भगवान् के भेजने पर अर्जुन उनके पास गये और पूछा – 'तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो, कहाँ से आई हो और क्या करना चाहती हो ?' उस देवी ने कहा – 'मेरा नाम

कालिन्दी है, मैं भगवान् सूर्यदेव की पुत्री हूँ और यमुना जल में रहती हूँ । मैं भगवान् को पति बनाना चाहती हूँ, इसीलिए तपस्या कर रही हूँ ।'

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाकर सारी बातें कहीं । भगवान् ने कालिन्दी को अपने रथ पर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिर के पास ले आये । इसके बाद भगवान् ने अर्जुन के द्वारा खाण्डव वन का दाह करवाया । अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को गाण्डीव धनुष, चार सफेद घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणों वाले तरकस और एक ऐसा कवच दिया, जिसे कोई अस्त्र-शस्त्रधारी भेद न सके । खाण्डव दाह के समय अर्जुन ने मय दानव को जलने से बचा लिया, इसलिए उसने अर्जुन से मित्रता करके पाण्डवों के लिए एक परम अद्भुत सभा बना दी । इसके बाद भगवान् द्वारका लौट आये और कालिन्दीजी से विवाह किया । ये भगवान् श्रीकृष्ण की चौथी पत्नी थीं । अवन्ती (उज्जैन) देश के राजा थे विन्द और अनुविन्द । उनकी बहन मित्रविन्दा ने स्वयम्वर में भगवान श्रीकृष्ण को ही अपना पति बनाना चाहा । मित्रविन्दा श्रीकृष्ण की बुआ की कन्या थी । भगवान् श्रीकृष्ण उसका हरण करके लाये और उसके साथ विवाह किया । इस प्रकार मित्रविन्दा भगवान् की पाँचवीं पत्नी थी । भगवान् की छठी पत्नी अयोध्या की थी । अयोध्या के राजा थे नग्नजित्, उनकी कन्या का नाम था सत्या । पहले तो यह समझना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर हैं । ईश्वर होने के नाते किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि उन्होंने अपनी बुआ की कन्या से कैसे विवाह किया और दूसरी बात यह कि उस समय की प्रथा ऐसी थी ।

राजा नग्नजित के यहाँ सात बैल थे, जिन्हें कोई वीर जीत नहीं सका था । राजा की प्रतिज्ञा थी कि जो इन बैलों को जीत लेगा, वही मेरी कन्या से विवाह कर सकता है । भगवान् श्रीकृष्ण अयोध्या गये

और सात रूप बनाकर खेल-खेल में ही उन बैलों को नाथ दिया । इस प्रकार सत्या का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ विवाह हो गया । राजा नग्नजित् ने दस हजार गायें, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेज़ में दिए । राजा नग्नजित् के बैलों से हारे हुए बहुत से राजा भगवान् श्रीकृष्ण की विजय सहन न कर पाए । वे रास्ते में भगवान् श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए आये । उन सबको अर्जुन ने हराकर भगा दिया । भगवान् श्रीकृष्ण की सातवीं पत्नी भी उनकी बुआ की पुत्री थी । उसका नाम था भद्रा । उसके माता-पिता और भाई ने स्वयं ही बड़ी प्रसन्नता से अपनी कन्या भगवान् श्रीकृष्ण को दे दी और उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया । आठवीं पत्नी थीं लक्ष्मणा । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयम्वर में अकेले ही उसे हरकर लाये थे । इस प्रकार ये भगवान् की आठ पटरानियाँ थीं । भगवान् श्रीकृष्ण की और भी सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं । भौमासुर को मारकर भगवान् इनको उसके बन्दीगृह से छुड़ाकर लाये थे ।

अध्याय – ५९

राजा परीक्षित ने पूछा – महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण ने भौमासुर को, जिसने उन स्त्रियों को बन्दीगृह में डाल रखा था, क्यों और कैसे मारा ? आप मुझे भगवान् श्रीकृष्ण का यह चरित्र सुनाइए ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – एक बार इन्द्र द्वारका में आये और भगवान् से प्रार्थना की कि भौमासुर ने वरुण का छत्र, माता अदिति के कुण्डल और मेरु पर्वत पर स्थित देवताओं का मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया है । इसलिए आप इस असुर का वध कीजिये और उसके द्वारा देवताओं के उपयोग की छीनी गयी वस्तुओं को वापस दिला दीजिये । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामा को साथ लेकर, गरुड़ पर सवार होकर उस असुर से लड़ने के लिए गये । भगवान्

सत्यभामाजी को लेकर युद्ध में क्यों गये थे, इस प्रसंग की कथा हरिवंश पुराण में वर्णित है ।

एक बार भौमासुर ने तप किया तो उसकी माता पृथ्वी ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि मेरे पुत्र को आप अमर कर दीजिये । भगवान् ने कहा कि इस संसार में अमर तो कोई हो ही नहीं सकता । तब पृथ्वी ने कहा था कि जब मैं आपसे अनुरोध करूँ, तभी आप इसका वध कीजिये अर्थात् मेरी इच्छा से ही इसकी मृत्यु होवे । पृथ्वी ने सोचा कि कोई माँ कभी भी अपने पुत्र के मरने की बात नहीं कहेगी, इस तरह मेरा पुत्र अमर हो जायेगा । इसीलिए भौमासुर का वध करने जाते समय भगवान् सत्यभामा को अपने साथ ले गये क्योंकि वे पृथ्वीरूपा थीं और जब वे युद्ध में घबरायेंगी और भय के कारण भगवान् से कहेंगी – 'इसे मारो-मारो' तब भगवान् उसको मारेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाजी के साथ गरुड़ पर सवार होकर भौमासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर में गये । प्राग्ज्योतिषपुर में प्रवेश करना बड़ा कठिन था । भौमासुर ने अपनी इस नगरी की रक्षा में इतनी अधिक वैज्ञानिक युक्तियाँ की थीं कि आजकल के वैज्ञानिकों के लिए सुरक्षा के ऐसे उपाय की कल्पना करना भी मुश्किल है ।

पहले तो प्राग्ज्योतिषपुर के चारों ओर पहाड़ों की किलेबंदी थी । उसके बाद शस्त्रों का घेरा लगाया हुआ था, फिर जल से भरी खाई थी, उसके बाद आग या बिजली की चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बन्द करके रखी गयी थी । इसके भी भीतर मुर दैत्य ने नगर के चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ़ फन्दे (जाल) बिछा रखे थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी गदा की चोट से पहाड़ों को तोड़-फोड़ डाला तथा बाणों से शस्त्रों की घेराबन्दी को छिन्न-भिन्न कर दिया । अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा अग्नि, जल और वायु की चहारदीवारियों को तहस-नहस कर दिया तथा मुर दैत्य के फंदों को तलवार से काट-काटकर

अलग रख दिया । जो बड़े-बड़े यन्त्र (मशीनें) वहाँ लगे हुए थे, उनको भगवान् ने अपने शंखनाद से नष्ट कर दिया और नगर के परकोटे को भगवान् ने अपनी भारी गदा से ध्वंस कर डाला । मुर दैत्य, जिसके पाँच सिर थे, उसने भगवान् की ओर एक त्रिशूल चलाया । भगवान् ने उस त्रिशूल को काट डाला । फिर उसने गदा चलायी तो भगवान् ने उसकी गदा काट दी । इसके बाद भगवान् ने चक्र से उसका सिर काट दिया । उसके सात पुत्र पीठ नामक दैत्य को अपना सेनापति बनाकर लड़ने आये, भगवान् ने उनका भी संहार कर दिया । अन्त में भौमासुर स्वयं युद्ध करने आया । उसने भगवान् पर तोप चलायी । उन्होंने उसे निष्फल करके बाण चलाये । तब भौमासुर ने भगवान् के ऊपर एक शक्ति छोड़ी । उस शक्ति को देखकर सत्यभामाजी घबरा गयीं और भगवान् से बोलीं कि इसका सिर काट दीजिये । अब सत्यभामा के कहने से भगवान् ने अपने चक्र से भौमासुर का सिर काट दिया । भौमासुर की मृत्यु होने पर पृथ्वी देवी भगवान के पास आयीं और अदिति माता के कुण्डल, वरुण का छत्र और एक महामणि उन्होंने भगवान् को दीं ।

यहाँ शंका होती है कि पृथ्वी देवी का पुत्र असुर क्यों हुआ ? जबकि पृथ्वी देवी तो विष्णु पत्नी हैं । उन्हें प्रणाम किया जाता है –

'विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यम्' – विष्णुपत्नी को नमस्कार है ।

पृथ्वी विष्णु पत्नी हैं, भगवद् अंश से जब इनको गर्भ रहा, उसी समय हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वी को हरके रसातल में ले गया । उनके मन में हिरण्याक्ष का भय इतना अधिक उत्पन्न हो गया कि दिन-रात उसी का चिन्तन करती रहती थीं । इसीलिए उनके पुत्र के अन्दर आसुरी लक्षण आ गये और वह असुर बना ।

पृथ्वी देवी भौमासुर के पुत्र भगदत्त को भगवान् के पास लायीं और बोलीं – 'प्रभो ! इसे अपनी शरण में लेकर आप इसकी रक्षा

कीजिये ।' भगवान् ने भगदत्त को अभयदान दिया । इसके बाद भगवान् भौमासुर के महल में गये, वहाँ उसने सोलह हजार राजकुमारियाँ बलपूर्वक राजाओं से छीनकर कैद कर रखी थीं । उन राजकुमारियों ने भगवान् को देखकर मन ही मन अपने पति के रूप में वरण किया । उन राजकुमारियों में से प्रत्येक ने अपने मन में यही निश्चय किया कि श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों । तब भगवान् कृष्ण ने उन राजकुमारियों को सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाकर पालकियों द्वारा द्वारका भेज दिया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़ पर सत्यभामाजी के साथ बैठकर स्वर्ग लोक को गये । भगवान् ने सत्यभामाजी की प्रेरणा से कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुड पर रख लिया, तब सब देवता उनसे लड़ने के लिए आ गये । भगवान् इन्द्र सहित समस्त देवताओं को जीतकर कल्पवृक्ष को द्वारका ले गये ।

देवता कितने स्वार्थी होते हैं, इन्हीं देवताओं की रक्षा के लिए, इनकी प्रार्थना से भगवान् ने भौमासुर का वध किया, इसके पहले भी गिरिराज पर्वत उठाकर भगवान् ने इन्द्र का अहंकार नष्ट किया था किन्तु भगवान् द्वारा कल्पवृक्ष लेने पर ये देवता इन्द्र के नेतृत्त्व में उनसे लड़ने के लिए आ गये । इसीलिए शुकदेवजी ने देवताओं के बारे में कहा –

'अहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ।'

(श्रीभागवतजी - १०/५९/४१)

इन देवताओं के अन्दर भी अन्धकार ही अन्धकार भरा है ।

जो भोग भोगेगा, वह अँधेरे में ही रहेगा, चाहे देवता हो अथवा कोई भी हो । इसीलिये शुकदेवजी ने कहा कि ये देवता भोगी हैं और तभी तो इनमें तमोगुण ही भरा है । केवल नाम है कि देवता सतोगुणी होते हैं ।

वस्तुतः जो कोई भी भोग भोगता है, चाहे देवता ही क्यों न हो, वह तमोगुण से युक्त हो जाता है । इसलिए मनुष्य को अपनी इन्द्रियों

को कृष्ण में लगाना चाहिए। भोग भोगना तो केवल अन्धकार में ही जाना है।

अस्तु, भगवान ने द्वारका में उन सोलह हजार से अधिक राजकुमारियों से विवाह किया। अन्त में शुकदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की रानियों की प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रत्येक रानी के पास सैकड़ों दासियाँ थीं, किन्तु फिर भी भगवान् की सारी सेवा वे अपने हाथों द्वारा स्वयं करती थीं अर्थात् स्त्री वही है, उसका सच्चा प्रेम यही है कि अपने पति की सेवा के सभी कार्य स्वयं अपने ही हाथों करे और जो नौकरों के द्वारा सेवा कराती है तब फिर उस स्त्री का अपने पति में कोई प्रेम नहीं है। प्रेम तो वही है, जिसमें स्वयं अपने हाथों दासता (सेवा) की जाए। नौकर-चाकर लगाकर जो काम कराता है तो उस व्यक्ति का अपने प्रेमास्पद में प्रेम नहीं है।

अध्याय – ६०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी के पलंग पर आराम से बैठे हुए थे। रुक्मिणीजी उन्हें पंखा झल रही थीं। उस समय श्रीकृष्ण ने परिहास करते हुए रुक्मिणीजी से कहा – 'अरे ! तुमने मेरा वरण क्यों कर लिया ? मैं तो निष्किञ्चन हूँ और निष्किञ्चन लोगों से ही प्रेम भी करता हूँ। हम लोग तो भगोड़े हैं, युद्ध के मैदान से पीठ दिखाकर भाग गये और डकैतों की तरह समुद्र के भीतर रह रहे हैं। राजसिंहासन भी हमारे पास नहीं है। साधु बाबा जी लोग हमारी प्रशंसा कर देते हैं। तुम्हें तो किसी अच्छे वीर राजा को अपना पति बनाना चाहिए था।'

मन्यमानामविश्लेषात् तद्दर्पघ्न उपारमत्।

(श्रीभागवतजी - १०/६०/२१)

रुक्मिणीजी के पास हर समय ठाकुरजी बने रहते थे, इसलिए उन्हें कुछ मद हो गया था। उसे दूर करने के लिए भगवान् ने इस तरह परिहास किया था किन्तु भगवान् के ऐसे परिहास भरे वचन सुनकर वे भय से काँपने लगीं और धरती पर गिर पड़ीं, पंखा उनके हाथ से छूट गया। तब भगवान् ने उन्हें उठाया और प्रेम से समझाने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'रुक्मिणी ! तुम हँसी-मजाक नहीं जानती हो। मैं तो ब्रज का रहने वाला हूँ। ब्रजवासियों का स्वभाव होता है हँसी-मजाक करने का, इसीलिए मैं तो तुमसे परिहास कर रहा था। गृहस्थियों के लिए यही तो लाभ है कि अपनी पत्नी के साथ कुछ हास-परिहास करें, इससे समय सुख से बीत जाता है।'

रुक्मिणीजी समझ गयीं कि मेरे प्रियतम तो परिहास ही कर रहे थे। इनकी हँसी-मजाक करने की आदत गयी नहीं है। बचपन की आदत इनकी छूटी नहीं, चाहे भले ही ये राजा बन गये हैं। अब रुक्मिणीजी भगवान् के परिहास का बहुत श्रेष्ठ उत्तर देते हुए कहने लगीं – प्रभो ! आपने जो यह कहा कि मैं राजाओं के भय से समुद्र के भीतर आ छिपा हूँ तो ऐसा नहीं है, वस्तुतः वे राजा हैं दुष्ट इन्द्रियाँ। इनसे तो आपका वैर है ही। आपने कहा कि मैं समुद्र में छिपकर रह रहा हूँ तो आप चैतन्य घन सिन्धु में रहते हैं। समुद्र क्या है, समुद्र है – आपका चैतन्य घन आनन्द स्वरूप। आपने कहा कि मैं निष्किञ्चन हूँ परन्तु इसका अर्थ दरिद्रता नहीं है। उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण आप ही सब कुछ हैं। आपने कहा कि तुमने अन्य राजाओं को छोड़कर मेरा वरण क्यों किया ? इसका उत्तर यह है कि कौन ऐसी मूर्ख स्त्री होगी, जो आपको छोड़कर मनुष्यों को अपना पति बनायेगी।

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविड्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥

(श्रीभागवतजी - १०/६०/४५)

संसारी पतियों के शरीर में दाढ़ी-मूँछ, माँस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वायु आदि दूषित पदार्थ भरे पड़े हैं । ये तो जीवित मुर्दा हैं । जो स्त्री आपका भजन करती है, वही स्त्री है, अन्य स्त्रियाँ जो मल-मूत्र आदि विकारों से युक्त पति का सेवन करती हैं, वे तो मूढ़ हैं ।

अनन्य कृष्ण प्रेम दीवानी, कलिकाल में द्वापर की गोपिकाओं के सुर-मुनि वाञ्छित प्रेम को प्रकट दर्शाने वाली श्रीमीराजी ने निर्भीकतापूर्वक कह दिया –

ऐसे वर को का वरूँ, जो जनमे और मर जाए ।
वर तो वरूँ मैं साँवरो, म्हारो चुड़लो अमर है जाए ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी की बात सुनकर कहा –

'हे राजकुमारी ! तुम ठीक कह रही हो । तुम्हारे मुख से ऐसी बातें सुनने के लिए ही मैंने परिहास किया था । तुम्हारे समान मुझसे प्रेम करने वाली और कोई पत्नी मुझे दिखाई नहीं देती ।'

इस प्रकार भगवान् ने रुक्मिणीजी की बहुत प्रशंसा की ।

अध्याय – ६१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्येक रानी के गर्भ से दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए । वे रानियाँ श्रीकृष्ण के मन को जीत नहीं सकीं । रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, सुचारु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए । सत्यभामा के भानु, सुभानु आदि दस पुत्र थे । जाम्बवती के भी साम्ब आदि दस पुत्र थे । नाग्नजिती सत्या के भी वीर, चन्द्र आदि दस पुत्र थे । कालिन्दी के श्रुत, कवि आदि दस पुत्र थे ।

इस प्रकार शुकदेवजी ने भगवान् की आठों पटरानियों के दस-दस पुत्रों के नामों का वर्णन किया है । प्रद्युम्न का विवाह मायावती रति के अतिरिक्त रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से भी हुआ था । उसी के गर्भ से अनिरुद्ध का जन्म हुआ था ।

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! रुक्मी तो भगवान् श्रीकृष्ण से बहुत द्वेष करता था । ऐसी स्थिति में उसने अपने शत्रु के पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह कैसे कर दिया ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – ऐसा उसने अपनी बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए किया था ।

इस तरह प्रद्युम्नजी का विवाह रुक्मी की पुत्री रुक्मवती के साथ भी हुआ था । प्रद्युम्न और रुक्मवती से अनिरुद्ध का जन्म हुआ । अपनी बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना का विवाह रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध के साथ किया । रुक्मिणीजी के एक परम सुन्दरी कन्या भी थी, उसका नाम था चारुमती । कृतवर्मा के पुत्र बली ने उसके साथ विवाह किया था ।

रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना का विवाह भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ कैसे कर दिया, यह तो अधर्म है । श्रीजीव गोस्वामीजी ने इसके बारे में लिखा है –

'मातुलकन्यापरिणयशास्त्रे आचारे सत्यपि ।'

ऐसा उसने इसलिए किया क्योंकि – **'स्वसृप्रियचिकीर्षाया'**

रुक्मी अपनी बहन रुक्मिणी से बहुत प्रेम करता था, अतएव उसको प्रसन्न करने के लिए ही उसने यह विवाह सम्बन्ध किया । विवाहोत्सव के समय कलिंग नरेश आदि राजाओं ने रुक्मी से कहा कि तुम युद्ध में तो कृष्ण-बलराम को जीत नहीं पाए किन्तु इस समय अच्छा अवसर है । बलरामजी को पासे डालने तो आते नहीं परन्तु उन्हें चौसर

खेलने का बहुत बड़ा व्यसन है तो उन्हें निमन्त्रित करके चौसर का खेल खिलाकर उन्हें हराओ, उनका अपमान करो ।

कुसंग से बहुत जल्दी मनुष्य नष्ट हो जाता है । दुष्ट राजाओं के बहकाने से रुक्मी ने बलरामजी को बुलवाया और उनके साथ चौसर खेलने लगा । बलरामजी जो-जो दाँव लगाते, रुक्मी जीत लेता । रुक्मी की जीत होने पर कलिंग नरेश दाँत दिखा-दिखाकर हँसने लगा और दाऊजी से बोला – 'अरे, आप तो हार गये । भला, इस खेल को खेलना आप लोग क्या जानो ?' दाऊजी बार-बार दाँव लगाते । इसके बाद रुक्मी ने एक लाख मुहरों का दाँव लगाया । होनहार की बात कि उसे बलरामजी ने जीत लिया किन्तु रुक्मी ने बेईमानी करते हुए कहा – 'मेरी जीत हुई है ।' बलरामजी बहुत अधिक नाराज हो गये । अबकी बार उन्होंने दस करोड़ मुहरों का दाँव लगाया । इस बार भी उनकी ही जीत हुई । परन्तु रुक्मी ने छल करते हुए कहा – 'मेरी जीत हुई ।' कलिंग नरेश आदि सभासद् बोले – 'हाँ-हाँ, बलरामजी हार गये ।' उसी समय आकाशवाणी हुई, उसने कहा – 'यह दाँव बलरामजी ने जीता है ।' परन्तु रुक्मी ने आकाशवाणी पर कोई ध्यान नहीं दिया और बलरामजी की हँसी उड़ाते हुए बोला – 'आप लोग वन-वन में गायें चराने वाले हैं, पशु चराना ही आप लोगों को आता है । पासा खेलना आप क्या जानें ? पासों और बाणों का प्रयोग करना तो केवल राजा लोग ही जानते हैं, आप जैसे नहीं । युद्ध में आप हल-मूसल से लड़ते हैं, बाण चलाना आपको आता नहीं ।' रुक्मी की बातें सुनकर बलरामजी बहुत अधिक क्रोधित हो गये और उन्होंने मुद्गर की चोट से रुक्मी को मार डाला । कलिंग नरेश, जो बहुत हँसता था, उसे बलरामजी ने बुलाया – 'इधर आ ।' वह बोला – 'अरे, मैंने तो कुछ नहीं कहा ।' बलरामजी बोले – 'मैं तुझे मारूँगा नहीं, इधर तो आ ।' बलरामजी ने उसके दाँत तोड़ दिए और बोले – 'तू बहुत दाँत दिखाकर हँस रहा था, अब ले उसका मजा ।' ऐसा कहकर दाऊजी ने उसे वेदान्ती (बिना दाँत

वाला) बना दिया । दाऊजी नाराज न हों, इसलिए रुक्मिणीजी अपने भाई का वध होने पर भी कुछ बोल नहीं पायीं । इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने भी भला-बुरा कुछ नहीं कहा, जिससे कि रुक्मिणीजी और दाऊजी अप्रसन्न न हों । इसके बाद अनिरुद्ध और नवविवाहिता दुल्हिन के साथ सब लोग द्वारका पुरी को चले गये ।

अध्याय – ६२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजा बलि के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था बाणासुर । उसके एक हजार भुजायें थीं । वह शिवजी का बहुत बड़ा भक्त था । एक बार जब भगवान् शंकर ताण्डव नृत्य कर रहे थे तब उसने अपने एक हजार हाथों से अनेक वाद्य बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ।

कोई व्यक्ति यदि भगवान् के कीर्तन में ढोलक, झाँझ आदि वाद्य बजाता है तो यह भजन है । कोई कीर्तन में नृत्य करता हो तो उस समय वाद्य बजाना भजन है, भगवान् की सेवा है । बाणासुर द्वारा वाद्य बजाने से महादेवजी प्रसन्न हो गये और बाणासुर से बोले – 'मुझसे वरदान माँग लो ।' बाणासुर ने कहा – 'भगवन् ! आप मेरे पुर की रक्षा करने वाले चौकीदार बन जाइये ।' महादेवजी ने उसकी इच्छा पूरी की और उसके नगर की रक्षा करने लगे । एक बार बाणासुर की भुजाओं में युद्ध करने की बहुत खुजलाहट हुई तो वह शिवजी के पास जाकर कहने लगा – 'मेरी हजार भुजाओं में बहुत खुजलाहट हो रही है । मुझे अब तक कोई अपने समान वीर लड़ने के लिए नहीं मिला । इसलिए आप ही आकर मुझसे कुश्ती लड़ लीजिये । मुझे आपके समान लड़ने वाला वीर तो कोई और मिल भी नहीं सकता ।'महादेवजी बाणासुर की बात सुनकर क्रुद्ध हो गये और बोले – 'मैं तुझसे क्या युद्ध करूँगा, तूने मेरी उपासना की और मैंने ही तुझे वरदान दिया । बड़े का छोटे के साथ लड़ना ठीक नहीं होता परन्तु मूढ़ ! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर

जाएगी तब तुझे लड़ने वाला योद्धा मिलेगा और वह तुझे मजा चखायेगा ।'

विष्णु पुराण में भी इस सम्बन्ध में एक कथा है, जिसे जानना आवश्यक है ।

बाणासुर की एक कन्या थी । उसका नाम था ऊषा । एक बार वह कैलाश पर्वत पर गयी । वहाँ पर पार्वतीजी और महादेवजी विहार कर रहे थे ।

श्रृंगार रस की लीला का हर व्यक्ति अधिकारी नहीं हो सकता । रसिकों ने भी कहा है –

ललिता सखी उपासना ज्यों सिंहिनी को क्षीर

श्रृंगार रस की उपासना को सिंहिनी का दूध कहा गया है ।

कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती के विहार को देखकर ऊषा के मन में कामना उत्पन्न हुई कि मुझे भी कोई अत्यन्त सुन्दर पति मिले । उसकी मनोकामना को पार्वतीजी जान गयीं । पार्वतीजी कन्याओं को वर देने वाली हैं । सीताजी ने उनकी उपासना की तो वर के रूप में उन्हें रामजी मिले । रुक्मिणीजी ने उनकी उपासना की तो कृष्ण की प्राप्ति हुई । ब्रज की गोपियों ने कात्यायनी रूप से उनकी उपासना की तो उन्हें रास में वर रूप से श्यामसुन्दर मिले । अतः पार्वतीजी ने ऊषा से भी कहा कि तुम्हें उत्तम पति की प्राप्ति होगी । वैशाख शुक्ल द्वादशी को जिस युवक को तुम स्वप्न में देखोगी, वही तुम्हें पति रूप में प्राप्त होगा और तुमको तृप्त करेगा । ऊषा पार्वतीजी से वर प्राप्त कर अपने घर लौट आई और वैशाख शुक्ल द्वादशी की रात को पार्वतीजी की कृपा से स्वप्न में उसे श्याम रंग का बहुत सुन्दर युवक दिखाई पड़ा । उसने स्वप्न में ही ऊषा का चुम्बन किया और उसे अपना अधरामृत पिलाया तथा चला गया । स्वप्न में ही उस पुरुष के चले जाने पर ऊषा विकल हो गयी । ऊषा की एक सहेली थी, उसका नाम चित्रलेखा था । वह

योगिनी थी । उसने यह विद्या नारदजी से प्राप्त की थी । यह कथा हरिवंश पुराण में है । चित्रलेखा ने बहुत से चित्र बनाये । देवता, गन्धर्व, सिद्ध और मनुष्यों के चित्र बनाये । वसुदेवजी, बलराम, श्रीकृष्ण आदि के चित्र बनाये । प्रद्युम्नजी का चित्र देखकर ऊषा लजा गयी । जब चित्रलेखा ने अनिरुद्ध का चित्र बनाया तो लज्जित होकर ऊषा बोली – 'यही है, यही है मेरा प्रियतम ।' योगिनी चित्रलेखा आकाश मार्ग से द्वारका पहुँचकर वहाँ पलंग पर सोते हुए अनिरुद्धजी का हरणकर अपनी सखी ऊषा के पास ले आई । अनिरुद्ध को पाकर ऊषा उनके साथ अपने महल में विहार करने लगी । पहरेदारों ने बाणासुर से जाकर कहा – 'महाराज ! आपकी कन्या का कुआँरापन नष्ट सा हो गया है । उसके लक्षण ऐसे ही दिखाई देते हैं । महल के भीतर तो कोई पुरुष पहुँच नहीं सकता, फिर भी वहाँ से किसी पुरुष की आवाज आती है ।' पहरेदारों की बात सुनकर बाणासुर बहुत क्रोधित हुआ और वह तुरन्त ही ऊषा के महल के भीतर गया तो देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं । उसने अपने बहुत से सैनिक अनिरुद्धजी को पकड़ने के लिए भेजे । अनिरुद्धजी ने सभी सैनिकों को परास्त कर दिया । अन्त में बाणासुर ने अनिरुद्धजी को नागपाश में बाँध दिया ।

अध्याय – ६३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – बरसात के चार महीने बीत गये परन्तु अनिरुद्धजी का कहीं पता नहीं चला । नारदजी ने द्वारका में आकर अनिरुद्धजी का सारा समाचार सुनाया । तब श्रीकृष्ण के नेतृत्त्व में यदुवंशियों ने बाणासुर की नगरी शोणितपुर पर चढ़ाई कर दी ।

अब तो भगवान् श्रीकृष्ण और शंकरजी का आपस में युद्ध होने लगा क्योंकि शिवजी बाणासुर और उसकी पुरी के रक्षक थे । प्रद्युम्नजी से स्वामी कार्तिक का युद्ध हुआ । इस युद्ध को देखने के लिए ब्रह्मा आदि

बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, गन्धर्व-अप्सरायें आदि आ पहुँचे । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से सभी योद्धाओं को पराजित कर दिया । अन्त में बाणासुर भगवान् कृष्ण से लड़ने के लिए आया । उसने अपनी एक हजार भुजाओं से एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एक पर दो-दो बाण चढ़ाये परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके सारे धनुष काट डाले और उसके सारथि, रथ तथा घोड़ों को भी धराशायी कर दिया तथा बाणासुर का वध करने ही जा रहे थे कि उसकी माता कोटरा बाणासुर की रक्षा के लिए नग्न होकर युद्ध क्षेत्र में आई और भगवान् श्रीकृष्ण के सामने आकर खड़ी हो गयी ।

यह कोटरा कौन है, इसे समझना चाहिए । भागवत के टीकाकार आचार्यों ने इस रहस्य को खोला है । कोटरा के बारे में स्पष्ट बात यह है कि वह पार्वतीजी का ही एक रूप है । ऐसा हरिवंश पुराण में लिखा है । बाणासुर की माता का नाम कोटरा नहीं था । चूँकि कोटरा ईश्वरी हैं, इसलिए उन्हें कृष्ण के सामने नग्न होकर जाने में कोई हानि नहीं थी और इसी विधि से बाणासुर को बचाया भी जा सकता था । हरिवंश पुराण में लिखा है कि स्वयं शिवजी ने पार्वतीजी को आज्ञा दी –

"गच्छेतिलम्बे शीघ्रं त्वं बाणसंरक्षणं प्रति"

'जाओ, पुत्र मारा जा रहा है, उसकी रक्षा करो ।'
पार्वतीजी के दो नाम हैं – लम्बे और कोटरा ।

कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शयत् पार्श्वमागता ।
अन्तर्धानमुपागम्य त्यक्त्वा सा वाससी पुनः ॥
परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता पुनः ।
प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासाः कोटरी खिता ॥

(हरिवंश पुराण)

पहले तो पार्वतीजी अन्तर्धान विद्या के द्वारा आयीं ताकि उनको कोई अन्य व्यक्ति देख न सके । उनके रूप को भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं देख सका । बाद में वे वस्त्रहीन हो गयीं । भगवान् कृष्ण ने उस समय बाणासुर को छोड़ दिया । वह अपने नगर में चला गया । इधर भगवान् शंकर का छोड़ा हुआ ज्वर दसों दिशाओं को जलाता हुआ भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा । भगवान् कृष्ण ने उसे अपने वैष्णव ज्वर के द्वारा परास्त कर दिया । उस समय माहेश्वर ज्वर ने भगवान् कृष्ण की स्तुति की । भगवान् कृष्ण ने उससे कहा कि जो कोई हम दोनों के संवाद का स्मरण करेगा, उसे तुमसे कोई भय नहीं रहेगा । इसके बाद बाणासुर भगवान् कृष्ण से युद्ध करने के लिए फिर आ गया । वह भगवान् पर बाणों की वर्षा करने लगा । तब भगवान् अपने चक्र से उसकी भुजायें काटने लगे । उस समय भगवान् शंकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये और बोले – 'प्रभो ! मैंने इसे अभयदान दे दिया है, अतः आप इसका वध न करें ।' भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'आप तो इसे अभयदान दे चुके हैं और मैं भी इसका वध नहीं कर सकता क्योंकि मैंने प्रह्लाद को वर दे दिया है कि तुम्हारे वंश में पैदा होने वाले किसी भी दैत्य का वध मैं नहीं करूँगा । अब इसकी चार भुजायें बच रही हैं । ये अजर, अमर बनी रहेंगी ।'

श्रीकृष्ण से इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुर ने उन्हें प्रणाम किया और अनिरुद्धजी को अपनी पुत्री ऊषा के साथ रथ पर बैठाकर ले आया तथा भगवान् को अर्पित कर दिया । तब भगवान् कृष्ण ऊषा और अनिरुद्ध को साथ लेकर द्वारका चले गये ।

जो मनुष्य इस कथा को सुनता है, स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती है ।

श्री राधा

अध्याय – ६४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न आदि यदुवंशी राजकुमार एक उपवन में खेल रहे थे । उस समय उन्हें प्यास लगी तो वे एक कुएँ के पास गये । उस कुएँ के भीतर पर्वत के समान आकार का एक गिरगिट था । राजकुमारों ने उसे बाहर निकालने का प्रयास किया । जब उनके प्रयास से वह बाहर नहीं निकला तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को जाकर इस बारे में बताया । भगवान् कृष्ण उस कुएँ पर आये । उन्होंने अपने बायें हाथ से अनायास ही उसको बाहर निकाल दिया । भगवान् श्रीकृष्ण के हाथों का स्पर्श होते ही उसका गिरगिट रूप जाता रहा और उसका शरीर एक दिव्य स्वर्गीय देवता जैसा हो गया । भगवान् श्रीकृष्ण ने उससे पूछा – 'तुम कौन हो ? किस कर्म के कारण तुम्हें इस योनि में आना पड़ा था ?' उस दिव्य पुरुष ने कहा – प्रभो ! मैं महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ । पूर्व जन्म में मैंने अगणित गायों का दान किया था । एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेने वाले) तपस्वी ब्राह्मण की एक गाय बिछुड़कर मेरी गायों में आ गयी । मुझे इस बात का बिलकुल पता नहीं चला । इसलिए मैंने उसे अनजान में किसी दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया । जब उस गाय को वे ब्राह्मण ले चले तब उस गाय के असली स्वामी ने कहा – 'यह गाय मेरी है ।' दान ले जाने वाले ब्राह्मण ने कहा – 'मुझे राजा नृग ने इसका दान किया है, अतः यह मेरी है ।' वे दोनों आपस में बहस करने लगे और झगड़ा करने लगे, मेरे पास आये तो मैंने उनको बहुत समझाया और कहा कि इसके बदले में एक लाख उत्तम गायें दूँगा किन्तु गाय का स्वामी यह कहकर चला गया कि इस गाय के बदले में मैं कुछ नहीं लूँगा । दूसरा ब्राह्मण बोला – 'तुम इसके बदले में एक लाख ही नहीं, दस हजार गायें और दो तब भी मैं नहीं लूँगा ।' इस प्रकार कहकर वह भी चला गया ।

मेरी आयु समाप्त होने पर यमदूत आये और मुझे यमराज के पास ले गये। यमराज ने पूछा – 'तुम पहले अपने उत्तम कर्मों का फल भोगना चाहते हो कि बुरे कर्मों का ?' मैंने कहा – 'मैं पहले बुरे कर्मों का फल भोगना चाहता हूँ।' उसी समय यमराज ने कहा – 'तुम गिर जाओ।' उनके ऐसा कहते ही मैं नीचे गिरा और गिरगिट हो गया।

राजा नृग ने भगवान् की स्तुति की, उन्हें प्रणाम किया, फिर वे श्रेष्ठ विमान पर सवार होकर देवलोक में चले गये। जब राजा नृग चले गये तो भगवान् ने अपने कुटुम्ब के लोगों से कहा – 'जो ब्राह्मणों का धन हड़प लेता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियों तक का विनाश हो जाता है। साठ हजार वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा बनना पड़ता है। यदि ब्राह्मण अपराध करे तो भी उससे द्वेष मत करो। ब्राह्मण कैसा भी हो, मारे-पीटे, गाली दे, शाप दे, उसे सहन कर लेना चाहिए।'

अध्याय – ६५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – बलरामजी के मन में ब्रजवासियों से मिलने की बहुत इच्छा थी, इसलिए एक बार उनसे मिलने के लिए वे नन्दगाँव में आये। वहाँ वे नन्दबाबा और यशोदा मैया से मिले, उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद वे ब्रज के गोपों से तथा अपने साथी ग्वालबालों से मिले। उनसे मिलकर सभी ब्रजवासी बड़े ही आनन्दित हुए। बलरामजी दो महीने तक ब्रज में ही रहे और गोपियों के साथ रमण किया।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि बलरामजी ने कौन सी गोपियों के साथ रमण किया ? इसका उत्तर श्रीजीव गोस्वामी ने अपनी टीका में दिया है – **नहि सर्वत्र गोपीशब्देन श्रीकृष्णप्रेयस्य**

बलरामजी ने श्रीकृष्ण प्रेयसी गोपिकाओं के साथ रमण नहीं किया क्योंकि इससे मर्यादा भंग होती है। इसीलिए श्रीमद्भागवत को

आचार्यों के माध्यम से ही समझना चाहिए, नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा । बड़े-बड़े आचार्यों ने जो श्रीमद्भागवत पर टीका लिखी है, उसके द्वारा ही भागवत को समझा जा सकता है । स्वतन्त्र रीति से भागवत के श्लोकों का अर्थ हम लोग करेंगे तो वह गलत होगा ।

आचार्यों ने बताया है कि जैसे श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाली गोपियाँ थीं, उसी प्रकार बलरामजी से प्रेम करने वाली उनकी प्रेयसी गोपिकायें भी थीं, जैसे शंखचूड वध के समय जब भगवान् कृष्ण और बलरामजी गोपियों के साथ विहार कर रहे थे, उस समय बलरामजी की प्रेयसी, उनके दल की गोपिकायें भी थीं । इस प्रकार बलराम जी दो महीने ब्रज में रहकर अपने दल की गोपियों के साथ विहार करते थे । एक बार वे उन गोपियों के साथ यमुना तट पर रासविलास कर रहे थे । उस समय वरुण देव ने अपनी पुत्री वारुणी देवी को वहाँ भेज दिया । वह एक वृक्ष के कोटर से बह निकली । उसने अपनी सुगन्ध से सारे वन को सुगन्धित कर दिया । उसकी महक से आकृष्ट होकर बलदेवजी गोपियों को लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया । इसके बाद बलदाऊजी ने जल क्रीड़ा करने के लिए यमुनाजी को पुकारा किन्तु वह नहीं आयीं तब दाऊजी ने क्रोधपूर्वक अपने हल की नोक से उन्हें खींचा और कहा – 'पापिनी ! तू मेरी अवज्ञा करती है, हे कामचारिणी ! मैं अपने हल की नोंक से तेरे सौ टुकड़े कर दूँगा ।'

उस समय यमुनाजी भयभीत होकर बलरामजी के चरणों में गिर पड़ीं और क्षमा माँगने लगीं ।

अब यहाँ यह समझना चाहिए कि ये यमुनाजी कौन हैं, जिनको दाऊजी ने इस तरह फटकारा । एक यमुनाजी तो वह हैं, जो श्रीकृष्ण की पटरानी हैं, एक यमुनाजी राधा दासी हैं । स्कन्द पुराण के भागवत माहात्म्य के अनुसार पृथ्वी पर अपनी लीला समाप्त करके श्रीकृष्ण के नित्य धाम गमन करने के उपरान्त उनके विरह से दुखी द्वारिका की रानियों ने ब्रज में आकर आनन्द से प्रवाहित होती हुई यमुनाजी से

कहा – 'श्रीकृष्ण तो नित्य धाम में चले गये, हम लोग उनके विरह से बहुत दुखी हैं किन्तु हे यमुने ! तुम तो दुखी दिखाई नहीं देती, इसका क्या कारण है ?' उस समय यमुनाजी ने कहा –

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥

(स्कन्द पुराणोक्त श्रीभागवतमाहात्म्य - २/११)

'मैं किशोरीजी की दासी हूँ । उनकी सेवा के प्रभाव से श्रीकृष्ण का विरह मुझे स्पर्श भी नहीं करता है ।'

आत्माराम श्रीकृष्ण की आत्मा हैं श्रीराधारानी । अतः जो उनकी सेवा करेगा, उसे श्रीकृष्ण विरह कहाँ से होगा ?

अतः स्कन्द पुराण के इस प्रमाण से पता चलता है कि यमुनाजी का एक स्वरूप तो यह है कि वे श्रीराधारानी की दासी हैं । यमुनाजी का एक अन्य स्वरूप यह है कि वे द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानी हैं । उनका एक अन्य स्वरूप यह है कि वे अपने अंश रूप से नदी रूपा हैं । हरिवंश पुराण आदि में ऐसा उल्लेख किया गया है । आचार्यों ने यह प्रमाण दिया है । ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जो यमुना राधा दासी हैं, उन्हें दाऊजी ने अपने हल से खींचा । उनका अपमान दाऊ भैया नहीं कर सकते हैं । इसलिए आचार्यों ने जैसा अपनी टीका में बताया है, उसी के अनुसार समझकर हमें इन लीलाओं को समझना है, नहीं तो अनर्थ हो जायेगा, अपराध हो जायेगा । श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने लिखा है –

यमुनेयं नदीरूपा समुद्रभार्य्या कालिन्द्याविभूतिर्ज्ञेया नतु सा तथा च हरिवंशे "प्रत्युवाचार्णववधूम्" इति ।

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिकृतसारार्थदर्शिनी)

यमुनाजी का एक रूप यह है कि वह समुद्र पत्नी हैं । नदियों का पति समुद्र है, अतः नदी वाला जो यमुनाजी का रूप है तो वह समुद्र

पत्नी हैं । इस रूप में वह कृष्ण पत्नी नहीं हैं । अतः समुद्र पत्नी यमुना को बलरामजी ने अपने हल से खींचा था । जीव गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने ऐसा ही लिखा है । वल्लभाचार्यजी ने लिखा है –

केवलं निग्रहार्थमाकारणे

बलरामजी ने केवल जल क्रीड़ा करने के लिए यमुनाजी को बुलाया था । हल से खींचने का मतलब यह है कि बलरामजी जलक्रीड़ा करने के लिए नहर रूप में उन्हें बनाकर ले गये ।

इसके बाद बलरामजी गोपियों के साथ जलक्रीड़ा करने लगे । जब वे जलविहार करके बाहर निकले, उस समय वहाँ लक्ष्मीजी आयीं । उन्होंने बलरामजी को नीलाम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोने का सुन्दर हार दिया ।

भगवान् श्रीकृष्ण के चतुर्व्यूह में संकर्षणजी भी हैं । महाविष्णु संकर्षण के ही अंश हैं । इसलिए महाविष्णु की पत्नी लक्ष्मीजी ने संकर्षण रूप बलरामजी का वहाँ आकर सम्मान किया ।

अध्याय – ६६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब बलरामजी ब्रज में गये हुए थे, श्रीकृष्ण ही द्वारका में थे तब करुष देश के राजा मिथ्या वासुदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजा ।

यह करुष देश वर्तमान में मिर्जापुर कहलाता है और काशी के निकट ही है । इस करुष देश के राजा और काशी के राजा में बड़ा प्रेम था । इसीलिए काशीराज ने करुष नरेश को सहायता दी ।

मिथ्या वासुदेव का नाम पौण्ड्रक था । उसका दूत द्वारका में आया और राजसभा में बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को उसने अपने राजा का यह संदेश सुनाया – 'मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ । प्राणियों पर कृपा करने के लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है । तुमने झूठे ही अपना नाम वासुदेव

रख लिया है, उसे छोड़ दो । इसी प्रकार तुमने जो मेरे शंख, चक्र आदि चिह्न धारण किये हैं, इन्हें भी छोड़ दो । असली कृष्ण मैं हूँ । तुम नकली हो और मेरी शरण में आओ । यदि तुम मेरी बात स्वीकार नहीं करते हो तो मुझसे युद्ध करो ।'

पौण्ड्रक का यह सन्देश सुनकर द्वारका की सभा में बैठे हुए सभी लोग जोर-जोर से हँसने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत से कहा – 'तुम अपने राजा से जाकर कहना कि मूर्ख ! मैं अपने चक्र आदि चिह्न ऐसे ही नहीं छोड़ूँगा, इन्हें मैं तुझ पर छोड़ूँगा । उस समय जब तू मरकर पृथ्वी पर गिरेगा तब चील, गीध और कौवे तेरा माँस नोच-नोचकर खायेंगे तब तेरे होश ठंडे पड़ जायेंगे ।'

इधर भगवान् श्रीकृष्ण ने रथ पर सवार होकर काशी पर चढ़ाई कर दी क्योंकि उस समय पौण्ड्रक अपने मित्र काशी के राजा के पास रह रहा था । भगवान् कृष्ण के आक्रमण का समाचार पाकर पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेना के साथ नगर से बाहर आया । काशी का राजा पौण्ड्रक का मित्र था । अतः वह भी तीन अक्षौहिणी सेना लेकर उसकी सहायता के लिए आया । पहले तो भगवान् कृष्ण ने मिथ्या वासुदेव को देखा कि मेरे ही रूप की नक़ल किये हुए इस राजा का वेष कैसा है ? पौण्ड्रक ने शंख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स चिह्न आदि धारण कर रखे थे । उसके वक्षःस्थल पर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी । उसका सारा वेष बनावटी था । उसकी वेष-भूषा अपने जैसी देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे । उन्होंने पौण्ड्रक से कहा – 'रे पौण्ड्रक ! तूने दूत के द्वारा कहलाया था कि मेरे चिह्न अस्त्र-शस्त्र आदि छोड़ दो । इसलिए अब मैं उन्हें तुझ पर छोड़ रहा हूँ ।' ऐसा कहकर भगवान् ने अपने चक्र से उसका सिर काट दिया । इसी प्रकार भगवान् ने अपने बाणों से काशी नरेश का सिर भी धड़ से अलग कर दिया । इस प्रकार काशी नरेश और पौण्ड्रक को

मारकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका में लौट गये । काशी नरेश का पुत्र सुदक्षिण अपने पिता का कटा सिर देखकर शंकरजी की आराधना करने लगा । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने वर माँगने को कहा । सुदक्षिण ने वर माँगा – 'मुझे मेरे पितृघाती के वध का उपाय बताइए ।' भगवान् शंकर ने कहा – 'इसके लिए तुम अभिचार करो ।' शिवजी की आज्ञा प्राप्त करके वह अभिचार करने लगा । उस अभिचार से अत्यन्त भीषण अग्नि प्रकट होकर द्वारका जा पहुँची । द्वारका के लोगों ने भगवान से रक्षा की प्रार्थना की । भगवान् ने कहा – 'डरो मत, मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा ।' ऐसा कहकर उसके प्रतीकार के लिए भगवान् ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी । सुदर्शन चक्र की शक्ति से कृत्या रूप अग्नि का मुँह टूट-फूट गया, उसकी शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँ से लौटकर काशी गयी तथा उसने सुदक्षिण को जलाकर भस्म कर दिया । उसके साथ ही चक्र ने सारी काशी को जलाकर भस्म कर दिया । एक व्यक्ति के पाप से कितना बड़ा नुकसान हुआ । जिस काशी का प्रलय में भी नाश नहीं होता, भगवद् अपराध से सुदक्षिण के कारण उसका भी नाश हो गया ।

अध्याय – ६७

श्रीशुकदेवजी ने कहा – द्विविद नाम का एक वानर था । रामावतार में वह सुग्रीव का मन्त्री था, उसमें दस हजार हाथियों का बल था । वह लक्ष्मणजी से बहुत द्वेष करता था । एक बार बलरामजी रैवतक पर्वत पर युवतियों के झुण्ड में विराजमान थे । वे सुमधुर संगीत गा रहे थे । द्विविद बलरामजी के सामने ही उन स्त्रियों की अवहेलना करने लगा । कभी उन्हें अपनी गुदा दिखाता तो कभी घुड़कता, स्त्रियों के वस्त्र भी उसने फाड़ दिए । बलरामजी ने उसको मार डालने के लिए अपना हल-मूसल उठाया । द्विविद ने भी एक बहुत बड़ा पेड़ उखाड़ लिया और बलरामजी के सिर पर दे मारा । बलरामजी ने उस पेड़ को पकड़ लिया

और मूसल से उसके ऊपर प्रहार किया, उससे द्विविद का मस्तक फट गया किन्तु वह बड़ा वीर था, मरा नहीं । वह पेड़ों के द्वारा लड़ने लगा । उसने दूसरा वृक्ष उखाड़ा और बलरामजी पर बड़े जोर का प्रहार किया । बलरामजी ने उस वृक्ष के सैकड़ों टुकड़े कर दिए । इसके बाद उसने वृक्षों को उखाड़कर उनके द्वारा लड़ते-लड़ते सारे वन को ही वृक्षहीन कर दिया । इसके बाद उसने बलरामजी की छाती पर जोर से प्रहार किया । तब बलरामजी ने उसकी हँसली पर अपने दोनों हाथों से प्रहार किया तो वह मर गया । उसकी मृत्यु से सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए और बलरामजी पर फूलों की वर्षा करने लगे ।

अध्याय – ६८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने स्वयंवर में दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा का हरण कर लिया । इससे कौरव बहुत नाराज हुए । उन्होंने साम्ब को बाँध लिया । नारदजी ने द्वारका जाकर यह समाचार यदुवंशियों को सुनाया । यदुवंशी नाराज होकर कौरवों पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे । बलरामजी ने यदुवंशियों को समझाते हुए कहा कि दुर्योधन मेरा शिष्य है, मैं चलकर कौरवों से समझौता कराता हूँ । तुम लोग अभी उनसे युद्ध मत करो । बलरामजी अकेले ही हस्तिनापुर गये और उन्होंने उद्धवजी को कौरवों के पास भेजा । कौरव आकर बलरामजी से मिले । बलरामजी ने कौरवों से कहा कि महाराज उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोगों ने साम्ब को बन्दी बना लिया है, यह ठीक नहीं है । यह सब हम इसलिए सहन कर रहे हैं ताकि हम लोगों में परस्पर फूट न पड़े । बलरामजी की बात सुनकर कौरव बिगड़ गये और अनाप-शनाप बकने लगे । बलरामजी उनकी बातें सुनकर कहने लगे – 'अरे देखो, ये लोग मुझसे किस प्रकार बात कर रहे हैं कि श्रीकृष्ण राजसिंहासन पर बैठने के अधिकारी नहीं हैं । इससे यह पता पड़ता है कि पशु तो केवल डंडे

से ही नियन्त्रण में आता है । लातों के भूत बातों से नहीं मानते । कौरवों ने यहाँ तक कहा कि पैरों की जूती आज हमारे मुकुट पर चढ़ना चाहती है । इन्होंने यदुवंशियों को जूती बता दिया ।' बलरामजी ने निर्णय कर लिया कि अब मैं पृथ्वी को कौरवहीन कर डालूँगा । उन्होंने अपना हल उठाया और उसकी चोट से हस्तिनापुर को उखाड़ लिया और उसे डुबाने के लिए बड़े क्रोध से गंगाजी की ओर खींचने लगे क्योंकि हस्तिनापुर में कौरव ही भरे पड़े थे । बलरामजी ने गंगाजी में डुबाकर कौरवों को मारने का प्रयास किया । जब हस्तिनापुर हिलने लगा तो कौरवों की अक्ल ठिकाने लग गयी । वे सब घबराकर बलरामजी की शरण में गये और उनकी स्तुति करने लगे तथा अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगे ।

जब कौरव इस प्रकार बलरामजी की शरण में आये और उनकी स्तुति-प्रार्थना करने लगे तो उन्होंने कौरवों को अभयदान दिया । कौरव अपने साथ साम्ब और दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को भी लेकर आये थे । दुर्योधन ने अपनी पुत्री के विवाह हेतु बहुत सा दहेज बलरामजी को दिया । बलरामजी लक्ष्मणा और साम्ब को लेकर द्वारका में आ गये ।

अध्याय – ६९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार नारदजी के मन में आया कि भगवान् ने सोलह हजार से अधिक राजकुमारियों से विवाह किया है तो उनका गृहस्थ जीवन चलकर देखना चाहिए । किसी व्यक्ति की दो पत्नियाँ हों तो भी उनके साथ निर्वाह करना बहुत कठिन हो जाता है, भगवान् की तो सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियाँ हैं । उनके साथ वे कैसे रहते होंगे ? इसी उत्सुकता के साथ नारदजी द्वारका गये । सबसे पहले वे रुक्मिणीजी के महल में पहुँचे, वहाँ रुक्मिणीजी अपने हाथों चँवर से भगवान् को हवा कर रही थीं । नारदजी को देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर उन्हें

अपने आसन पर बैठाया । भगवान् ने नारदजी से कहा – 'प्रभो ! आप तो स्वयं समग्र ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश, श्री और ऐश्वर्य से पूर्ण हैं । आपकी हम क्या सेवा करें ?' देवर्षि नारद ने कहा – 'हे नाथ ! आपके चरण-कमल संसार रूपी कुएँ में गिरे हुए लोगों को बाहर निकालने के लिए अवलम्बन हैं । आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये कि आपके उन चरणकमलों की स्मृति सदा बनी रहे और मैं जहाँ भी रहूँ, सर्वदा उनके ध्यान में तन्मय रहूँ ।'

इसके बाद नारदजी भगवान् कृष्ण की दूसरी पत्नी के महल में गये । वहाँ देखा कि भगवान् कृष्ण अपनी दूसरी पत्नी और उद्धवजी के साथ चौसर खेल रहे थे । वहाँ भी भगवान् ने खड़े होकर नारदजी का स्वागत किया और आसन पर बैठाया । भगवान् ने अनजान की तरह नारदजी से पूछा – 'आप यहाँ कब पधारे ? आप हमें अपनी सेवा का अवसर देकर हमारा जन्म सफल कीजिये ।' तदनन्तर नारदजी दूसरे महल में गये, वहाँ देखा तो भगवान् कृष्ण अपने छोटे बच्चों को प्यार कर रहे थे । अन्य महल में गये तो देखा कि श्रीकृष्ण स्नान की तैयारी कर रहे हैं । किसी महल में वे यज्ञ कुण्डों में हवन कर रहे थे, कहीं संध्या कर रहे थे, कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौओं का दान कर रहे थे । इस प्रकार नारदजी सोलह हजार रानियों के महलों में गये और उनको विविध कार्यों में संलग्न देखा । अन्त में नारदजी ने भगवान् की स्तुति की, तब भगवान् ने नारदजी को पुत्र कहकर सम्बोधित किया और कहा – 'मैं ही धर्म का उपदेशक, पालन करने वाला और उसका अनुष्ठान करने वालों का अनुमोदन कर्ता भी हूँ । इसलिए संसार को धर्म की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही मैं इस प्रकार धर्म का आचरण करता हूँ । मेरे प्यारे पुत्र ! तुम मेरी यह योगमाया देखकर मोहित मत होना ।'

नारदजी भगवान् का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये । भगवान् के इस प्रसंग को जो सुनता है, उसे भगवान् के चरणों में भक्ति की प्राप्ति होती है ।

अध्याय – ७०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब सबेरा होने लगता, मुरगे बोलने लगते तब श्रीकृष्ण पत्नियाँ उस मुरगे से कहतीं कि तू क्यों बोल रहा है, हमारे प्राण प्यारे हमारे साथ सो रहे हैं । तेरे बोलने से वे जाग जायेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थ धर्म की शिक्षा देते हुए प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में ही उठ जाते और संध्या आदि करते । कुल के बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करते । प्रतिदिन वे ब्राह्मणों को तेरह हजार चौरासी गौएँ दान करते । इसके बाद भगवान् समस्त यदुवंशियों के साथ सुधर्मा नाम की सभा में जाते ।

एक दिन की बात है, जरासन्ध के द्वारा बन्दी बनाये गये बीस हजार राजाओं ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजा । दूत के द्वारा उन्होंने यह सन्देश भेजा था – 'भगवन् ! आप हमें जरासन्ध के बन्धन से छुड़ाइये । यह अकेला ही दस हजार हाथियों की शक्ति रखता है और हम लोगों को उसी प्रकार बन्दी बनाये हुए है, जैसे सिंह भेड़ों को घेर रखे । हम लोग उसके कारागार में सड़ रहे हैं । वह यह जानकर हम लोगों को और भी सताता है कि हम आपके भक्त हैं, आपकी प्रजा हैं, अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजाओं का दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में वहाँ नारदजी आ गये । भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा – 'युधिष्ठिर आदि पाण्डव कुशल से हैं ?' नारदजी ने कहा – 'युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के द्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं ।'

अब श्रीकृष्ण के सामने यह दुविधा की स्थिति आ गयी कि बन्दी राजाओं को छुड़ाने के लिए, जरासन्ध को जीतने के लिए जाना चाहिए या युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने । इसके लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धव ! अब तुम्हीं बताओ कि इस विषय

में हमें क्या करना चाहिए ? हम तुम्हारी सलाह के अनुसार ही काम करेंगे ।'

अध्याय – ७१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् ने जब उद्धवजी से सलाह माँगी तो उन्होंने कहा –

भगवन् ! चाहे युधिष्ठिरजी राजसूय यज्ञ करें अथवा आप बन्दी राजाओं को जरासन्ध की कैद से छुडाने जाएँ, दोनों ही स्थिति में जरासन्ध का मरना आवश्यक है । जरासन्ध के मरे बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता है और जरासन्ध से लड़ने में बहुत दिन लगेंगे । जरासन्ध बहुत बड़ा ब्राह्मण भक्त है । यदि ब्राह्मण उससे किसी बात की याचना करते हैं तो वह कभी कोरा जवाब नहीं देता । इसलिए भीमसेन ब्राह्मण के वेष में जाएँ और उससे युद्ध की भिक्षा माँगें । यदि आपकी उपस्थिति में भीमसेन और जरासन्ध का द्वन्द्व युद्ध हो तो भीमसेन उसे मार डालेंगे ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – उद्धवजी की सलाह सब प्रकार से कल्याणकारी और निर्दोष थी । देवर्षि नारद, यदुवंश के वयोवृद्धगण एवं भगवान् कृष्ण ने भी उनकी बात का समर्थन किया ।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ को चल दिए, उनकी रानियाँ भी साथ में गयीं । भगवान् ने जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं के दूत से कहा – 'तुम जाकर अपने राजाओं से कहना कि डरो मत । मैं जरासन्ध को मरवा दूँगा ।' भगवान् की आज्ञा पाकर दूत चला गया और बन्दी राजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुना दिया ।

भगवान् कृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये तो युधिष्ठिरजी ने उनकी बहुत अगवानी की । नगर की स्त्रियों ने रानियों के सहित भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन किया और उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा की । भगवान् कृष्ण

पाँचों पाण्डवों से मिले, कुन्तीजी से मिले । द्रौपदी ने भगवान् की अष्ट पटरानियों तथा अन्य रानियों का यथायोग्य सत्कार किया ।

अध्याय – ७२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक दिन महाराज युधिष्ठिर बहुत से मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, अपने भाइयों के साथ राजसभा में बैठे हुए थे । उस समय उन्होंने भगवान् कृष्ण से कहा – 'गोविन्द ! आपके भक्त तो मुक्ति भी नहीं चाहते हैं परन्तु बात यह है कि मैं राजसूय यज्ञ के द्वारा आपका यजन करना चाहता हूँ ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा –

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/७२/११)

संसार में कोई बड़े से बड़ा देवता, धनवान व्यक्ति, तेजस्वी एवं विभूतिवान पुरुष भी मेरे भक्त का तिरस्कार नहीं कर सकता, उसे दबा नहीं सकता ।

अतः आप अवश्य ही राजसूय यज्ञ करिए । इससे समस्त लोकों में आपकी मंगलमयी कीर्ति का विस्तार होगा ।

युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को चारों दिशाओं में दिग्विजय करने के लिए भेज दिया । अनन्तर भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण – ये तीनों ही जरासन्ध की राजधानी में ब्राह्मण का वेष धारण करके गये । ये तीनों जरासन्ध के पास पहुँचे और बोले कि हम लोग याचक हैं, हम आपसे कुछ चाहते हैं, वह आप हमें अवश्य दीजिये ।

जरासन्ध उन तीनों को देखकर समझ गया कि ये ब्राह्मण तो नहीं हैं, ये तो क्षत्रिय हैं, फिर भी मेरे भय से ब्राह्मण का वेष बनाकर आये हैं । अब ये भिक्षा माँग रहे हैं तब ये जो कुछ भी माँगेंगे, मैं इन्हें दूँगा ।

जरासन्ध ने कहा – 'ब्राह्मणो ! आप लोग जो भी चाहें माँग लें । यदि प्राण भी माँगेंगे तो मैं दे दूँगा ।' भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'यदि आपकी इच्छा हो तो हमें द्वन्द्व युद्ध की भिक्षा दीजिये । देखो, ये पांडु पुत्र भीमसेन हैं और यह इनका भाई अर्जुन है तथा मैं इन दोनों का ममेरा भाई व आपका पुराना शत्रु कृष्ण हूँ ।' जरासन्ध बोला – 'यदि तुम्हें युद्ध की ही इच्छा है तो मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ । परन्तु कृष्ण तू तो बड़ा डरपोक है, तुझसे मैं नहीं लड़ूँगा । तू तो मुझसे युद्ध में पहले ही पराजित हो चुका है, अतः तुझसे मैं क्या युद्ध करूँगा ? अर्जुन भी कोई योद्धा नहीं है । आयु में मुझसे छोटा और कोई विशेष बलवान भी नहीं है । इससे भी मैं नहीं लड़ सकता । भीमसेन अवश्य मेरे समान बलवान है, इसके साथ मैं लड़ लूँगा ।' जरासन्ध ने भीमसेन को बहुत बड़ी गदा दे दी और स्वयं दूसरी गदा लेकर नगर से बाहर निकल आया । अखाड़े में उन दोनों वीरों के बीच बहुत बड़ी लड़ाई हुई । सत्ताईस दिन बीत गये । अंत में भीमसेन श्रीकृष्ण से बोले – 'मैं युद्ध में जरासन्ध को जीत नहीं सकता ।' भगवान् कृष्ण जरासन्ध के जन्म और मृत्यु का रहस्य जानते थे । अतः उन्होंने एक तिनके को बीच में चीर दिया और इशारे से भीमसेन को दिखाया । वे समझ गये कि इस उपाय से ही जरासन्ध मरेगा । अतः उन्होंने जरासन्ध के पैर पकड़कर उसे धरती पर दे मारा । फिर उसके एक पैर को अपने पैर के नीचे दबाया और दूसरे पैर को दोनों हाथों से पकड़कर गुदा की ओर से चीर डाला । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने भीमसेन के द्वारा जरासन्ध का वध करवा दिया ।

अध्याय – ७३

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – जरासन्ध ने बीस हजार आठ सौ राजाओं को जीतकर कैद कर रखा था । भगवान कृष्ण ने उन्हें कारागार

से मुक्त कर दिया । जब वे लोग कारागार से बाहर निकले तो उन्हें भगवान् कृष्ण का दर्शन हुआ । कृष्ण के दर्शन से ही उन राजाओं के सारे दुःख दूर हो गये, जिस प्रकार किसी गुफा में लाखों वर्षों का अंधकार हो अथवा एक दिन का अंधकार हो, जब दीपक का वहाँ प्रकाश होता है तो वह सारे अन्धकार को दूर कर देता है । इसी प्रकार जिस दिन हम लोगों को श्रीकृष्ण की प्राप्ति होगी, उस दिन हमारी अनादिकाल की अविद्या का अंधकार भी दूर हो जायेगा जैसे लाखों वर्षों का अंधकार दीपक के प्रकाश से दूर हो जाता है ।

अस्तु, राजाओं ने भगवान् कृष्ण को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की । राजा लोग बोले – 'भगवन् ! हम लोग राज मद से, धन-सम्पत्ति के घमण्ड से चूर हो रहे थे किन्तु आपकी अहैतुकी कृपा से हमारा घमण्ड चूर-चूर हो गया ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'तुम लोगों को मेरी भक्ति की प्राप्ति कराने के लिए ही श्री मद से भ्रष्ट किया गया । अब तुम लोगों की निश्चय ही मेरे प्रति सुदृढ़ भक्ति होगी ।'

भगवान् ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव के द्वारा उन राजाओं का खूब राजोचित सम्मान करवाया और फिर उन्हें उनके देशों को भेज दिया ।

अध्याय – ७४

अब भगवान कृष्ण, भीमसेन और अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौट आये और राजा युधिष्ठिर को सारा समाचार सुनाया । यह सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् कृष्ण की स्तुति की ।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में व्यास देव, भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम,कश्यप आदि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आये थे । उस यज्ञ में ब्रह्माजी और शिवजी भी आये थे । अब वहाँ उपस्थित सभासद लोग इस विषय पर विचार करने लगे कि यहाँ सबसे पहले किसकी पूजा होनी

चाहिए । उस समय सहदेव जी खड़े होकर बोले – 'भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा ही सबसे पहले होनी चाहिए ।'

उस समय युधिष्ठिरजी की यज्ञसभा में उपस्थित सभी लोग बोल उठे – 'वाह-वाह, बहुत ठीक, बहुत ठीक ।' वे सभी लोग 'नमो नमः, जय-जय !' इस प्रकार के नारे लगाकर भगवान् कृष्ण को नमस्कार करने लगे ।

वहाँ शिशुपाल भी बैठा हुआ था, उसे अग्रपूजा के लिए भगवान् कृष्ण को चुने जाने पर बड़ा क्रोध हुआ, वह यह सहन नहीं कर पाया । वह खड़ा हो गया और कहने लगा – 'यह सहदेव तो बालक है परन्तु इसकी बात सुनकर यहाँ उपस्थित बड़े-बड़े ज्ञानियों की बुद्धि भी चकरा गयी । भला यह ग्वाला, कुलकलंकी, अग्रपूजा का अधिकारी कैसे हो सकता है ? क्या कौआ कभी यज्ञ के भाग को खा सकता है ?'

(शिशुपाल की बुद्धि इतनी बिगड़ गयी कि वह अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को कौआ बताने लगा और स्वयं को हंस समझ रहा था । वह श्रीकृष्ण की बहुत अधिक निन्दा करने लगा । जिसका दिमाग खराब हो जाता है, वह कृष्ण की बुराई ही करता है ।) शिशुपाल आगे कहने लगा – 'ये यदुवंशी लोग डाकुओं की तरह समुद्र में किला बनाकर रहते हैं और बाहर आकर प्रजा को लूटते हैं, उसे सताते हैं ।'

शिशुपाल इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को बहुत से दुर्वचन सुनाता रहा परन्तु जैसे सिंह कभी सियार की 'हुआ-हुआ' ध्वनि पर ध्यान नहीं देता, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण चुप रहे । उन्होंने उसकी बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया । परन्तु उस राजसभा में बैठे सत्पुरुष भगवान् की निन्दा नहीं सह सके । उनमें से बहुत लोग तो अपने कान बंद करके वहाँ से चले गये । पाण्डव शिशुपाल को मार डालने के लिए हाथों में

हथियार लेकर उठ खड़े हुए किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने सबको रोक दिया । अन्त में जब शिशुपाल क्रोध करके भगवान् की ओर झपटा तो उन्होंने चक्र से उसका सिर काट दिया । शिशुपाल के मारे जाने पर वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया । शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकली और भगवान् श्रीकृष्ण में समा गयी ।

भावो हि भव कारणम् – (श्रीभागवतजी - १०/७४/४६)

भावना ही हमको बनाती है । इसीलिए वैष्णव उपासना में अन्तश्चिन्तित वपु को महत्त्व दिया जाता है अर्थात् ठाकुरजी की सेवा सहचरी भाव से करनी चाहिए ।

शिशुपाल के अन्तःकरण में लगातार तीन जन्मों से भगवान् के प्रति वैर बना हुआ था तो इस प्रकार वैर भाव से श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते वह तन्मय हो गया और उन्हीं को प्राप्त हो गया ।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ पूर्ण किया और पाण्डवों की प्रार्थना से कुछ महीनों तक वे इन्द्रप्रस्थ में ही रहे ।

अध्याय – ७५

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा – धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ महोत्सव को देखकर सभी मनुष्य, ऋषि, मुनि और देवता आनन्दित हुए परन्तु दुर्योधन को पाण्डवों का वैभव सहन नहीं हुआ । उसे बड़ा दुःख हुआ क्योंकि वह स्वभाव से बड़ा द्वेषी था । पाण्डवों से वह बहुत द्वेष करता था । भगवन् ! आप कृपा करके दुर्योधन के पाण्डवों के प्रति इस अत्यधिक द्वेष का कारण बताइये ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा – युधिष्ठिर बड़े महात्मा थे । उनके प्रेम बन्धन से बँधकर सभी बन्धु-बान्धवों ने राजसूय यज्ञ में विभिन्न सेवा

कार्य स्वीकार किये थे । भीमसेन भोजनालय के स्वामी बने । उन्हें बढ़िया खाने और खिलाने का शौक था । अतः वे अनेकों स्वादिष्ट व्यंजन बनवाकर अतिथियों को प्रेम से खिलाते थे । दुर्योधन को कोषाध्यक्ष बनवाया गया ताकि वह खूब धन खर्च करे ।

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादवनेजने – (श्रीभागवतजी - १०/७५/५)

अर्जुन गुरुजनों की सेवा करते थे और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आने वाले सभी अतिथियों के पाँव पखारने का कार्य करते थे । भगवान् ने सबसे छोटी सेवा ली । यह गुण हम लोगों को सीखना चाहिए । हम लोग जहाँ भी जाते हैं, बड़ा बनने का प्रयास करते हैं । भगवान् अपने आचरण के द्वारा सिखाते हैं कि सेवा करने चले हो तो सेवक बनो । हम लोग कहीं भी सेवा करते हैं तो प्रसिद्धि पाने के लिए, बड़ा बनने के लिए सेवा करते हैं । यह कोई सेवा नहीं है ।

इधर राजसूय यज्ञ होने के बाद युधिष्ठिरजी को स्नान कराया गया । एक दिन महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और भगवान् कृष्ण के साथ मय दानव की बनाई सभा में स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे । उस समय दुर्योधन अपने भाइयों के साथ वहाँ आया । उसकी भी गलती थी । कुछ लोग द्रौपदी की गलती बताते हैं किन्तु यह अनुचित है । महारानी द्रौपदी की गलती नहीं बताना चाहिए । गलती किसकी थी, इसका उत्तर श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में स्वयं ही दिया गया है ।

ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ।

(श्रीभागवतजी - १०/७५/३२)

दुर्योधन द्रौपदीजी में आसक्त था । वह उन्हें पाना चाहता था, हर समय उसकी कुदृष्टि द्रौपदी के प्रति रहती थी । कोई पुरुष किसी सती स्त्री के प्रति कुदृष्टि करेगा तो इसे कब तक सहन किया जायेगा । दुष्टता

तो दुर्योधन की थी, जो वह सती नारी को भ्रष्ट करना चाहता था। द्रौपदी ने जो उसकी हँसी की, यह तो उनकी सहनशीलता ही थी, कोई अन्य सती स्त्री होती तो अपने पर कुदृष्टि करने वाले दुर्योधन को भस्म कर देती। द्रौपदी महासती थीं। आजकल कुछ ऐसे पढ़े-लिखे मूर्ख पैदा हो गये हैं जैसे एक आलोचक ने लिखा कि द्रौपदी ही महाभारत युद्ध का बीज थीं। पी. एच. डी. की डिग्री लेकर यह अयोग्य व्यक्ति अपने लेख में बिना शास्त्र का समुचित अध्ययन किये ही द्रौपदी की आलोचना करने लगा। वस्तुतः ये सब मूर्खों के काम हैं। वास्तव में तो द्रौपदी महासती थीं किन्तु दुर्योधन की बुद्धि उनके प्रति भ्रष्ट हो गयी थी। **विषक्तहृदयः** - कामी पुरुष की तरह हर समय वह द्रौपदीजी को कुदृष्टि से देखा करता था। द्रौपदी तो बहुत दयालु और सहनशील थीं, जो उन्होंने उसकी कामुकता को सहन किया।

दुर्योधन पाण्डवों के महलों में भगवान् श्रीकृष्ण की रानियों और द्रौपदी को देखकर कुढ़ता रहता था। भगवान् उसको अपमानित कराने का अवसर देख रहे थे। वह समय आ गया और जब वह सबके सामने मय दानव की सभा में आया तो मोहित होकर उसने स्थल को जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिए और जल को स्थल समझकर वह उसमें गिर पड़ा। उसको गिरते देखकर भीमसेन, राजरानियाँ तथा दूसरे राजा लोग हँसने लगे। युधिष्ठिर तो भीम को रोकने लगे कि हँसो मत किन्तु वहाँ उपस्थित अन्य स्त्रियाँ हँसतीं रहीं क्योंकि भगवान् कृष्ण ने उनको इशारा कर दिया था। इसलिए सभी स्त्रियाँ दुर्योधन के गिरने पर बहुत जोर से हँसने लगीं। यह श्यामसुन्दर की लीला थी। उन्होंने सोचा कि यह दुष्ट, बेईमान, कामी और द्वेषी इसी प्रकार अपमानित होने योग्य है। व्यर्थ ही यह पाण्डवों के ऐश्वर्य को देखकर कुढ़ रहा है। अपने ऊपर सबको हँसते देखकर दुर्योधन लज्जित हो गया और क्रोधित होकर उस

सभा भवन से निकलकर हस्तिनापुर चला गया । ऐसा क्यों हुआ ? इसका उत्तर श्लोक १०/७५/३९ में दिया गया है – **समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद् दृशा** – भगवान् पृथ्वी का भार उतारना चाहते थे क्योंकि दुर्योधन पृथ्वी का बोझ बन गया था । पृथ्वी को नष्ट करने में लगा था । कृष्ण की इच्छा से ही दुर्योधन को इस सभाभवन में जल में स्थल का तथा स्थल में जल का भ्रम हुआ, जिससे उसका उपहास हुआ । इसमें महारानी द्रौपदीजी का कोई दोष नहीं था । आजकल के मूर्ख लोग व्यर्थ ही उनकी आलोचना करते हैं कि द्रौपदी के कारण महाभारत हुआ । जिनका नाम कृष्णा भी था, जो कृष्ण भक्ता थीं, जो उनकी आलोचना करता है, वह भक्तिहीन है । आजकल के आलोचक के जो मन में आता है, अपनी सनक से कुछ भी लिख देता है और मूर्ख लोग ही उसकी प्रशंसा भी कर देते हैं कि बहुत बढ़िया बात लिखी है ।

अध्याय – ७६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – शाल्व शिशुपाल का सखा था । उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं पृथ्वी से यदुवंशियों को मिटाकर छोड़ूँगा । उसने भगवान् शंकर की आराधना की । वह दिन में केवल एक बार एक मुट्ठी राख फाँक लिया करता था । उसकी उपासना से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उसे एक विमान दिया । विमान प्राप्त करके उसने द्वारका पर चढ़ाई कर दी । उसने अपनी बहुत बड़ी सेना से द्वारका को चारों ओर से घेर लिया और फिर वहाँ के नगर द्वारों, फाटकों, राजमहलों, दीवारों आदि को नष्ट करने लगा । शाल्व के विमान ने द्वारका पुरी को अत्यन्त पीड़ित कर दिया । प्रद्युम्नजी ने देखा कि हमारी प्रजा को बड़ा कष्ट हो रहा है तब उन्होंने रथ पर सवार होकर सबसे कहा कि 'डरो मत' । शाल्व के सैनिकों और यदुवंशियों का युद्ध होने लगा । प्रद्युम्नजी ने युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाया । परन्तु शाल्व का विमान मायामय

था, वह दिखाई नहीं देता था । यदुवंशियों के बाणों से शाल्व मूर्च्छित भी हो गया । अन्त में शाल्व का मंत्री द्युमान् आया, उसने प्रद्युम्नजी पर इतनी जोर से गदा द्वारा प्रहार किया कि वे मूर्च्छित हो गये । उस समय उनका सारथि उन्हें युद्ध भूमि से अलग ले गया । जब उन्हें होश आया तो उन्होंने सारथि को बहुत फटकारा – 'तू मुझे युद्ध भूमि से बाहर क्यों ले आया ? अब मेरी भाभियाँ मेरी हँसी करेंगी कि तुम नपुंसक कैसे हो गये ? तूने मुझे रणभूमि से भगाकर अक्षम्य अपराध किया है ।' सारथि ने कहा – 'स्वामी ! यह मेरा धर्म था कि संकट पड़ने पर सारथि रथी की रक्षा करे ।'

अध्याय – ७७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – प्रद्युम्नजी ने सारथि से कहा कि मुझे द्युमान् के पास फिर से ले चलो । युद्धभूमि में जाकर प्रद्युम्नजी ने द्युमान् का सिर काट दिया । बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और लगातार सत्ताईस दिनों तक चलता रहा । उन दिनों भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे । वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण को बड़े भयंकर अपशकुन दिखाई पड़े । भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका पहुँचे तो देखा कि वहाँ भयंकर युद्ध हो रहा था । श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक को आज्ञा दी कि शीघ्र ही मेरा रथ शाल्व के पास ले चलो । भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर शाल्व ने उनके सारथि पर एक बहुत बड़ी शक्ति चलायी । भगवान् कृष्ण ने अपने बाणों से उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिए । शाल्व ने भगवान् की बायीं भुजा में बाण मारा, जिससे शार्ङ्ग धनुष उनके हाथ से छूटकर गिर पड़ा । यह देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे । भगवान् कृष्ण ने अपनी भयंकर गदा से शाल्व पर प्रहार किया । इससे वह खून उगलता हुआ काँपने लगा और अन्तर्धान हो गया । अब वह आसुरी माया रचने लगा । एक मनुष्य आकाश से भगवान् के पास आया और उनसे बोला कि मुझे

देवकी माता ने आपके पास भेजा है । उन्होंने कहा है कि आपके पिता वसुदेव को शाल्व पकड़कर ले गया है । श्रीकृष्ण कहने लगे – 'बलरामजी के द्वारका में रहते कोई वसुदेवजी को कैसे ले जा सकता है ?' थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि शाल्व वहाँ वसुदेवजी को लाया और तलवार से उनका सिर काट दिया । कुछ ऋषि ऐसा कहते हैं कि यह घटना देखकर भगवान् कृष्ण मोहित हो गये परन्तु ऐसा नहीं है । भगवान् मोहित नहीं हुए । उसके बाद भगवान् ने अपने बाणों से शाल्व को घायल कर दिया, साथ ही गदा की चोट से उसके विमान को भी जर्जर कर दिया । वह विमान चूर-चूर होकर समुद्र में गिर पड़ा । गिरने के पहले ही शाल्व हाथ में गदा लेकर धरती पर कूद पड़ा और बड़े वेग से भगवान् कृष्ण की ओर झपटा । भगवान् ने अपने भाले से गदा के साथ उसका हाथ काट दिया और चक्र से उसका सिर काट दिया । उस समय शाल्व के सैनिक हाहाकार करने लगे ।

अध्याय – ७८

श्रीशुकदेव जी कहते हैं – शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक के मारे जाने पर उनकी मित्रता का ऋण चुकाने के लिए दन्तवक्र युद्धभूमि में आ गया । वह युद्ध करने के लिए अकेला ही आया ।

भागवत में इस प्रसंग में सब बात इशारे में ही लिखी है । यह कथा विस्तार से पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में वर्णित है । उसमें लिखा है –

अथ शिशुपालं निहतं श्रुत्वा दन्तवक्रः कृष्णेन योद्धुं मथुरामाजगाम

जब दन्तवक्र ने सुना कि शिशुपाल मारा गया तो वह मथुरा आया । उसने सोचा कि मथुरा कृष्ण की अत्यन्त प्रिय भूमि है, इसलिए वह द्वारका नहीं गया । उसने सोचा कि द्वारका में तो यदुवंशियों की

बहुत बड़ी सेना है । मैं उनसे कहाँ तक युद्ध करूँगा, इसलिए मुझे ब्रज पर हमला करना चाहिये, तब कृष्ण ब्रज की रक्षा के लिए यहाँ अवश्य आयेंगे । भले ही कृष्ण अभी द्वारका में हैं किन्तु ब्रज उन्हें विशेष प्रिय है । **कृष्णस्तु तच्छ्रुत्वा रथमारुह्य मथुरामाययौ** – जब भगवान् कृष्ण ने सुना कि दन्तवक्र ने मथुरा पर हमला किया है तब वे रथ पर चढ़कर मथुरा आये । यह बात इशारे में भागवत में भी लिखी है ।

मथुरा के द्वार पर अकेले दन्तवक्र और श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ ।

तयोर्दन्तवक्रवासुदेवयोरहोरात्रं मथुराद्वारि सङ्ग्रामः समवर्त्तत

मथुरा में कौन से स्थान पर यह युद्ध हुआ ? आचार्यों ने ऐसा लिखा है कि एक गाँव है दतिहा, यह गणेशरा के निकट है । सतोहा और बाटी के आसपास दतिहा गाँव स्थित है । वहाँ पर श्रीकृष्ण ने दन्तवक्र का वध किया तो उसके नाम के शब्द 'दन्त' से गाँव का नाम दतिहा पड़ गया ।

दतिहा नाम्ना प्रसिद्धः श्रीवज्रेण वासिनो ग्रामो वर्त्तते
कृष्णोपि तं हत्वा यमुनामुत्तीर्य्य नन्दव्रजं गत्वा

(श्रीजीवगोस्वामी, वैष्णवतोषिणी)

दतिहा में दन्तवक्र का संहार कर यमुनाजी को पार करके श्यामसुन्दर ब्रज में आये क्योंकि उन्होंने ब्रजवासियों से कहा था कि मैं ब्रज आऊँगा । श्रीकृष्ण झूठ नहीं बोल सकते । नित्य स्वरूप से श्रीकृष्ण ब्रज में सदा हैं ही किन्तु प्रकट लीला में अपने प्रकट रूप से भी वे ब्रज में आये ।

सोत्कण्ठौ पितरावभिवाद्याश्वस्य ताभ्यां साश्रुकण्ठमालिङ्गितः सकलगोपवृद्धान् प्रणम्याश्वास्य बहुवस्त्राभरणादिभिस्तत्रस्थान् सर्वान् सन्तर्पयामास

ब्रज में आकर उन्होंने अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ नन्द बाबा और यशोदा मैया का अभिवादन किया । सभी वृद्ध गोपों को प्रणाम किया । उनको संतुष्ट किया ।

कालिन्द्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमाचिते ।
गोपनारीभिरनिशं क्रीडयामास केशवः ॥

(पद्म पुराण)

इसके बाद रात्रि के समय उन्होंने कालिन्दी के तट पर ब्रजगोपियों के साथ पुनः रास किया ।

रम्यकेलिसुखेनैव गोपवेषधरः प्रभुः ।
बहुप्रेमरसेनात्र मासद्वयमुवास ह ॥

ब्रज में आकर भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप त्याग दिया और द्विभुज रूप धारण कर लिया । हाथों में वंशी, सिर पर मयूर मुकुट धारण किया । श्रीकृष्ण दो महीने तक ब्रज में रहे ।

प्रश्न उठता है कि भागवत में तो ऐसा वर्णन है नहीं किन्तु भागवत में भी है । आचार्यों ने लिखा है कि भागवत में इसे इशारे से कहा गया है । इशारे से क्यों लिखा है, इसका कारण यह है कि भगवान् ने एकादश स्कन्ध में कहा है – **परोक्षं मम च प्रियम्** – (११/२१/३५) कोई बात स्पष्ट कही जाए, वह भगवान् को प्रिय नहीं है । कुछ न कुछ रहस्य छिपाकर रखा जाए, यही भगवान् को प्रिय है ।

भागवत के प्रथम स्कन्ध में वर्णन है –

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया –

(श्रीभागवतजी - १/११/९)

द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं कि जब आप चले जाते हैं, **कुरून्** – पाण्डवों के पास, वृष्णि वंशियों के पास अथवा जो आपके विशेष सुहृद हैं, उनको देखने के लिए जब आप चले जाते हैं ।

पाण्डवों से अधिक बढ़कर श्रीकृष्ण का सुहृद और कौन हो सकता है ? इस श्लोक में द्वारकावासियों ने पाण्डवों को अलग कह दिया, यदुवंशियों को पृथक कह दिया, अब सुहृद कौन बचे, वे यही ब्रजवासी हैं। **सुहृद्दिदृक्षया** – द्वारकावासी भगवान् से कहते हैं कि जब कभी आप ब्रज देखने के लिए जाते हैं (क्योंकि भगवान् को सबसे अधिक प्रिय हैं पाण्डव और यदुवंशी, उनसे बढ़कर उनके सुहृद हैं ब्रजवासी)

बहुत से लोग पूछते हैं कि राधारानी ब्रज से कब गयीं, यशोदाजी व नन्दबाबा कब गये, ऐसा वर्णन भागवत में नहीं मिलता है तो इसका समाधान पद्म पुराण में दिया गया है –

व्रजेशादेरंशभूता ये द्रोणाद्या अवातरन् ।
कृष्णस्तानेव वैकुण्ठे प्राहिणोदिति साम्प्रतम् ॥
प्रेष्ठेभ्योपि प्रियतमैर्जनैर्गोकुलवासिभिः ।
वृन्दारण्ये सदैवासौ विहारं कुरुते हरिः ॥

ब्रज में आकर श्यामसुन्दर ने अपने सभी परिकरों को, सभी ब्रजवासियों को सम्मान के साथ विदा किया और कहा कि आप लोग अब प्रकट लीला को बन्द कीजिये। मेरी लीला तो अभी पृथ्वी पर बहुत दिनों तक चलेगी।

इस तरह दन्तवक्र के वध के बाद कन्हैयाजी अपने ब्रज में आये।

एक बार बलरामजी ने सुना कि दुर्योधनादि कौरव पाण्डवों के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं। बलरामजी मध्यस्थ थे, उन्हें किसी का पक्ष लेकर लड़ना पसन्द नहीं था। इसलिए वे तीर्थों में स्नान करने के बहाने द्वारका से चले गये। वे पृथ्वी के बहुत से तीर्थों में गये। यमुना तट और गंगा तट के प्रधान तीर्थों में भ्रमण करते हुए जब वे नैमिषारण्य क्षेत्र में गये तो उनके द्वारा श्रीसूतजी का वध हुआ। यह

एक बहुत ही अनहोनी ऐतिहासिक घटना थी, जो पहली बार घटित हुई कि बलरामजी के द्वारा एक भगवत्कथा वक्ता का वध हुआ । इसका कारण यह था कि जब बलरामजी नैमिषारण्य पहुँचे तो वहाँ उन दिनों बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्ग रूप महान सत्र कर रहे थे । उन ऋषियों ने बलरामजी को आया देख अपने-अपने आसनों से उठकर उनका स्वागत-सत्कार किया और प्रणाम करके उनकी पूजा की । बलरामजी ने देखा कि भगवान् व्यास के शिष्य रोमहर्षणजी व्यास गद्दी पर बैठे हुए हैं और उनके आने पर न तो उठकर प्रणाम करते हैं तथा न ही हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं । इस पर बलरामजी को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि भगवान् व्यासदेव का शिष्य होकर इसने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी किया है परन्तु अभी इसका अपने मन पर संयम नहीं है । यह विनयी नहीं बल्कि उद्दण्ड है ।

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥

(श्रीभागवतजी - १०/७८/२६)

इस अजितात्मा ने झूठमूठ ही अपने को बहुत बड़ा पण्डित मान रखा है । जैसे नट की सारी चेष्टायें अभिनय मात्र होती हैं, वैसे ही इसका सारा अध्ययन स्वाँग के लिए है । उससे न इसका लाभ है और न किसी दूसरे का ।

कुछ ऐसी योग्यतायें हैं, जो वक्ता के अन्दर अवश्य ही होनी चाहिए । श्रीबलरामजी महाराज ने उपरोक्त श्लोक में उनका वर्णन किया है । एक तो है – जितेन्द्रियता अर्थात् इन्द्रियों पर पूर्ण संयम होना चाहिए । इन्द्रिय संयम यदि नहीं है तो व्यास गद्दी पर बैठकर भी इन्द्रियों

का चापल्य (चंचलता) निश्चित ही कथा में विघ्न उपस्थित करेगा । इसलिए इन्द्रियों में संयम हो तथा हृदय में विनम्रता का भाव हो । महात्माओं ने कहा है –

नम्र भए सद्गुण टिकत, ऊँचे से गिर जात ।
पर्वत पर जल नहिं रहत, सिंधु माहि समात ॥

जब तक विनम्रता जीवन में नहीं है तो बड़े से बड़े जो भी गुण हैं, वे सब आकर भी चले जायेंगे । जैसे पहाड़ पर पानी नहीं टिकता है लेकिन समुद्र में पानी टिक जाता है क्योंकि जो जितना अगाध है, उसके अन्दर संजोने की सामर्थ्य है । पर्वत में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह वर्षा के जल को संजो सके । जब वर्षा होती है तो पर्वत का सारा जल बहकर नीचे चला जाता है क्योंकि पर्वत की चोटी पर जल ठहरता नहीं है । इसी तरह विनम्रता हृदय को अगाध (गहरा) बनाती है । जब हृदय अगाध अर्थात् गहरा हो जाता है तब उस गहरे हृदय में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के अन्य गुण धर्म सहज में टिक जायेंगे । हृदय सिन्धुवत् अगाध होगा तो समस्त गुण उसमें वर्षा के सब तरह के जल की तरह समा जायेंगे । इसलिए विनम्रता वक्ता का एक भूषण है, विशेष रूप से बलरामजी ने आगे तो यहाँ तक कह दिया कि –

वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः – (श्रीभागवतजी - १०/७८/२७)

जो लोग धर्म का चिह्न धारण करते हैं परन्तु धर्म का पालन नहीं करते, ऐसे धर्मध्वजी अधिक पापी हैं और वे मेरे लिए वध करने योग्य हैं ।

साधारण लोगों में यदि नम्रता नहीं है तो न हो, परन्तु जो वक्ता है, जो उपदेश कर रहा है, उसके लिए विनम्रता अनिवार्य है । रसिकों ने बहुत सुन्दर बात कही है – **और कोई भूलो तो भूलो तुम मत भूलो मालाधारी**

साधारण लोग भूल जाएँ तो कोई बात नहीं किन्तु हे मालाधारी, श्रेष्ठ आचरण को तुम मत भूलो ।

श्रीकबीरदासजी ने प्रायः जितने भी पद कहे हैं, उन सभी में उन्होंने साधु-संतों को ही संकेत किया है – **कहत कबीर सुनो भाई साधो ।** राजा अथवा शासक यदि अच्छा है तो उसके अधीन जो प्रजा है, वह स्वतः ही अच्छी बन जाएगी । वक्ता के अन्दर जब विनम्रता आदि सद्गुण होंगे तो सामान्य लोग भी अपने आचरण में उन गुणों को ला सकेंगे, इसे सीख सकेंगे । व्यासजी महाराज ने भी बहुत सुन्दर पद कहा है –

जो तू माला तिलक धरे
तो या तन मन व्रत की लज्जा और निवाह करै

अगर भक्ति के चिह्न धारण करते हो तो भक्ति की समस्त मर्यादाओं का भी पालन करना चाहिए । जैसे किसी दुकान के बाहर बोर्ड पर लिखा हो कि यहाँ शुद्ध देशी घी मिलता है परन्तु यदि उसी दुकान पर चर्बी मिश्रित घी बिकने लग जाये तो क्या उस दुकान का यश रह जायेगा ? इससे तो उसकी बदनामी हो जाएगी कि जहाँ शुद्ध वस्तु का साइन बोर्ड लगा है, वहाँ ही ऐसी अशुद्ध वस्तु मिल रही है । माला, तिलक आदि क्या हैं, ये सब साधु-संतों, वैष्णवों के साइन बोर्ड हैं कि कम से कम साधारण आदमी में दुर्गुण हों तो हों परन्तु संतों-वैष्णवों के अन्दर नहीं होने चाहिए । इसीलिए रसिकों ने कहा – 'और कोई भूले तो भूले तुम मत भूलो मालाधारी ।' व्यासजी महाराज भी कह रहे हैं – **जो तू माला तिलक धरै** । या तो धर्म की ध्वजा धारण मत करो और यदि ध्वजा धारण करते हो तो उसका ठीक से निर्वाह करो, उसकी लज्जा रखो । वैष्णव वेष साक्षात् भगवान् का स्वरूप है । हम लोग उल्टे-सीधे आचरण करके वैष्णव वेष को लज्जित करते

हैं, इसका उपहास कराते हैं, जबकि महात्माओं ने बहुत कठोर बातें कही हैं, बड़े सख्त निर्देश दिए हैं – 'जो तू माला तिलक धरे तौ या तन मन व्रत की लज्जा और निबाह करै'

वैष्णव वेष धारण किया है तो इस वेष की लज्जा रखना

करि बहु भाँति भरोसो हरि को भवसागर उतरै

वैष्णव वेष धारण करके यदि सांसारिक लोगों से आशा की जाये तो इसमें भगवान् का अनादर है, उनका अपमान है। हम लोग भगवान् के दास बनते हैं और नाम रखते हैं – राम दास, कृष्ण दास आदि किन्तु संसारी लोगों से आशा करते हैं तो इसमें अनादर किसका है, हम लोग भगवान् का ही तो अनादर कर रहे हैं।

मनसा वाचा और कर्मणा तन कर गुनहू धरै
सती न फिरत घाट ऊपर तै सिर सिन्दूर परै
ब्यास दास कौ कुंजबिहारी प्रीति न कबहु बिसरै

वैष्णव मात्र का सबसे बड़ा लक्षण यही है कि भगवान् के चरणों के प्रति उसका अनुराग कभी कम न हो, कभी अनुराग घटे नहीं।

अस्तु, जब यही वैष्णवोचित गुण-धर्म श्रीरोमहर्षण सूतजी के अन्दर श्रीबलरामजी ने नहीं देखे तो उन्होंने कहा –

वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः

ऐसे लोग ज्यादा पापी हैं, जो वैष्णव वेष धारण करके वेष की निन्दा कराते हैं, वेष को लजाते हैं। वे साधारण पापियों से अधिक पापी हैं। ऐसा कहकर बलरामजी ने अपने हाथ में स्थित कुश की नोक के प्रहार से सूतजी का वध कर दिया। यह बहुत बड़ी अनहोनी घटना घट गयी। सूतजी अभी थोड़ी देर पहले ही कृष्ण कथा कह रहे थे और अचानक बलरामजी ने उनका वध कर दिया।

उन्होंने यहाँ तक कह दिया - **एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः** –

मैंने ऐसे धर्मध्वजियों को मारने के लिए ही अवतार धारण किया है। सूतजी के मरते ही वहाँ उपस्थति समस्त ऋषि-मुनि हाय-हाय करने लगे। उन्होंने बलरामजी से कहा – 'भगवन्! यह स्थान तो सूना हो गया। अब हम लोगों को कृष्ण कथा कौन श्रवण करायेगा?' तब बलरामजी ने कृपा करके रोमहर्षण सूतजी के पुत्र को यश, आयु और वैष्णवोचित गुण धर्मों से सम्पन्न कर दिया और उन्होंने ही आगे चलकर ऋषि-मुनियों को भगवत्कथा का श्रवण कराया।

इसके उपरान्त अध्याय – ७९ में ऋषियों की प्रार्थना से बलरामजी ने बल्वल दैत्य का वध किया और फिर वे तीर्थयात्रा के लिए आगे चले गये।

अध्याय – ८०

इस अध्याय में राजा परीक्षित की प्रार्थना से श्रीशुकदेवजी महाराज ने सुदामाजी की कथा का वर्णन किया है।

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः॥

(श्रीभागवतजी - १०/८०/६)

भगवान् श्रीकृष्ण के ब्राह्मण मित्र थे सुदामाजी, जो बड़े ही निष्काम और असंग्रह वृत्ति वाले थे। उन्होंने अपने जीवन में कभी संग्रह किया नहीं। उनकी अयाचक वृत्ति थी, इसलिए जीविकोपार्जन के लिए किसी से कुछ माँगते नहीं थे। स्वतः जो कुछ प्राप्त हो जाता, उसे पाकर सन्तुष्ट रहा करते थे। वे संसार के विषय भोगों से पूर्णतया विरक्त थे, इन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से उनको पूर्ण वैराग्य था। उनका चित्त बिलकुल शान्त था।

चित्त की शान्ति कब तक नहीं मिलती है, जब तक इन्द्रिय तोषण की इच्छा है तब तक चित्त शान्त नहीं होगा और जब इन्द्रियों के अन्दर कोई वासना नहीं रह गयी तो चित्त स्वतः ही शान्त हो जायेगा । हमारी वासनायें ही हमारे चित्त की स्थिति को बदलती हैं । कामना न हो तो चित्त तो एकरस है, चित्त की स्थिति एक समान है । गोस्वामी तुलसीदासजी का बडा सुन्दर पद है –

जो मोहि राम लागते मीठे
तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे

भगवान् में अनुराग होगा तो वे मीठे लगेंगे और फिर संसार के जितने भी मीठे पदार्थ, मन को प्रिय लगने वाले विषय हैं, निश्चित रूप से वे फीके लगने लगेंगे । उनके रस, उनके स्वाद में सुख की लेशमात्र भी प्रतीति नहीं होगी ।

तुलसिदास प्रभु सों एकहिं बल बचन कहत अति ढीठे
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे

गोस्वामीजी कहते हैं – हे नाथ ! मुझ जैसा ढीठ और कौन होगा ? मेरा मन विषयों से जरा भी हटा नहीं है परन्तु आपका साक्षात्कार पाना चाहता हूँ ।

हमारा मन विषयों से तो हटा नहीं है और हम लोग सोचते हैं कि भगवान् हमारे अनुभव में क्यों नहीं आते हैं, हमारा लीला में प्रवेश क्यों नहीं होता, हमें लीला की अनुभूति क्यों नहीं होती है ? विषयों से हमारा मन रंचमात्र भी पृथक नहीं हुआ है, फिर भी हम ठाकुरजी की दिव्य लीलाओं की अनुभूति चाहते हैं । यह ढिठाई (ढीठता) है । वस्तुतः दो प्रकार का त्याग होता है । एक त्याग होता है – विविधशः, जिसे विविधशः सन्यास कहते हैं तथा एक होता है विद्वत् सन्यास । भगवान्

को पाने की इच्छा से कुछ छोड़ा जाये, वह विविधशः त्याग है एवं भगवान् को पाने के बाद स्वतः जो छूट जाये, वह विद्वत् त्याग है । विद्वत् त्याग सिद्ध पुरुषों के अन्दर होता है । ग्रन्थों में लिखा है कि बहुत जन्मों के बाद किसी भाग्यशाली मनुष्य को वैराग्य होता है । वैराग्य एक जन्म का साधन नहीं है । बहुत से सिद्ध संत ऐसे होते हैं, जिन्हें बाल्यकाल से ही खाने-पहनने के पदार्थों तथा अन्य विषयों में कोई रुचि नहीं होती है । वह वैराग्य विद्वत् वैराग्य होता है, यह एक जन्म की साधना से नहीं मिलता है । पिछले कई जन्मों में उनकी वैराग्य की प्रक्रिया चली आ रही है । इसलिए इस जन्म में उन्हें जन्मजात वैराग्य एक विरासत के रूप में, एक पूँजी की तरह मिल गया । किन्तु हम लोगों की स्थिति ऐसी है कि हमें किसी चीज से वैराग्य नहीं है । कोई भी आकर्षक वस्तु दिखायी देती है तो हमारा मन चलायमान हो जाता है । ऐसी स्थिति में साधक के अन्दर 'विविधशः' त्याग होना चाहिए । विविधशः त्याग यानि संसार के विषयों को छोड़ने का प्रयास आरम्भ करना चाहिए । यही विविधशः त्याग अभ्यास के द्वारा विद्वत् सन्यास में बदल जाता है । चरणदासजी महाराज का एक पद है –

जिन्हें हरि भगति प्यारी हो ।
मात पिता सहजहि छूटें,
छूटें सुत अरु नारी हो ।

यह विद्वत् सन्यास है । जैसे साधन भक्ति की परिपक्व अवस्था सिद्धा भक्ति है, ऐसे ही विविधशः सन्यास ही धीरे-धीरे विद्वत् सन्यास बन जाता है । श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भी कहा कि –

'विना सर्वत्यागं न हि भवति भजनं यदुपतेः'

प्रारम्भिक अवस्था में बिना सर्व त्याग के भजन नहीं होता है । हम सोचें कि संसार को भी पकड़े रहें और भक्ति का आनन्द भी लेतें रहें तो ऐसा सम्भव नहीं है । कृष्ण प्रेम तो सर्वत्याग की पृष्ठभूमि पर खड़ा हुआ है ।

अस्तु, सुदामाजी के भीतर विद्वत् सन्यास की प्रवृत्ति थी । इसके साथ ही वे अयाचक वृत्ति से जीवन निर्वाह करते थे अर्थात् किसी से कुछ माँगते नहीं थे । **यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी** – गृहस्थ होने पर भी किसी प्रकार का संग्रह-परिग्रह न रखकर प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाता, उसी में सन्तुष्ट रहते थे । इसीलिए शुकदेवजी ने उनके बारे में कहा – **प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः** – इनका चित्त बड़ा ही शान्त था और इन्द्रियों पर पूर्ण संयम था । एक बार दैवी इच्छा से उनके घर बहुत दिनों तक अन्न की व्यवस्था नहीं जुट सकी । सुदामाजी की किसी से माँगने की वृत्ति थी नहीं किन्तु

गाँठी में बाँधे नहीं माँगत में सकुचाहिं
पीछे पीछे हरि फिरें यह भूखो न रह जाय

जब जीव भगवान् का अनन्य चिन्तक हो जाता है तब उसका योगक्षेम तो स्वयं भगवान् ही वहन करते हैं । सुदामाजी सद्गृहस्थ सन्त थे । घर में खाने के लिए अन्न की प्राप्ति न होने पर बालकों की दयनीय स्थिति देखकर एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे प्रार्थना की – 'स्वामी ! द्वारकानाथ आपके मित्र हैं । आप कृपा करें और एक दिन उनसे मिलने के लिए द्वारका जाइये । उनके दर्शन मात्र से हमारे सब कष्ट दूर हो जायेंगे ।' पत्नी की बात सुनकर प्रारम्भ में तो सुदामाजी मना करते रहे । उन्होंने कहा कि किसी वासना से, किसी इच्छा से, किसी विपत्ति काल में भगवान् के पास जाया जाये, ऐसी स्वार्थपरक भक्ति मैं नहीं कर सकता । तब उनकी पत्नी सुशीलाजी ने कहा – **अयं हि परमो लाभ**

उत्तमश्लोकदर्शनम् – जीवन का परम लाभ तो भगवान् का दर्शन ही है। क्या यह बात आप भूल गये ? मैं तो आपको द्वारका परम लाभ की प्राप्ति हेतु भेज रही हूँ। सांसारिक वस्तु-पदार्थ आदि तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए नहीं।

जहाँ कृष्ण दर्शन का हेतु सामने आया तो सुदामाजी द्वारका जाने के लिए तैयार हो गये किन्तु उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि मित्र के पास पहली बार जा रहा हूँ तो खाली हाथ तो नहीं जाया जा सकता, उन्हें भेंट में देने के लिए कुछ वस्तु भी तो लेकर जाना चा हिए। सुशीलाजी पड़ोस से कुछ चिवड़े माँगकर लायीं और उन्हीं सूखे चिवड़ों को लेकर सुदामाजी द्वारका के लिए चल पड़े।

कृष्णसन्दर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् – (श्रीभागवतजी - १०/८०/१५)

वे मार्ग में सोचते जाते थे कि मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन कैसे प्राप्त होंगे ? वे इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि मुझे कृष्ण दर्शन होगा कि नहीं होगा। चलते-चलते थक जाने पर सुदामाजी ने मार्ग में एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया तो उन्हें गाढ़ निद्रा ने घेर लिया। भगवान् ने यह देखा तो उन्होंने अपने सेवक गरुड़जी को आदेश देकर सुदामाजी को सुप्तावस्था में ही द्वारका में बुला लिया। सुदामाजी एक ही रात्रि सो सके थे, दूसरे दिन सुबह हुई तो उन्होंने अपने-आप को द्वारका में देखा। उन्होंने वहाँ के नागरिकों से पूछा कि यह कौन सी नगरी है ? द्वारका के नागरिकों ने कहा – 'ब्राह्मणदेव ! यह द्वारका पुरी है।' सुदामाजी सोचने लगे कि इतनी शीघ्र मैं द्वारका कैसे पहुँच गया, ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण चिन्तन के कारण मार्ग की दूरी जल्दी व्यतीत हो गयी। सुदामाजी अन्य ब्राह्मणों के साथ सैनिकों की तीन छावनियाँ और तीन ड्योढ़ियाँ पार करके अन्धक और वृष्णिवंशी यादवों के महलों में जा पहुँचे। उनके

बीच भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियों के महल थे। सुदामाजी के मन में भगवान् के दर्शन की अत्यधिक उत्सुकता हो रही थी।

भजन दोनों पक्षों से होता है। इष्ट पक्ष से भी और साधक पक्ष से भी। इसके समर्थन में बहुत से शास्त्रीय वाक्य हैं जैसे जब जयदेवजी गीतगोविन्द का गान करते थे तो जगन्नाथजी पीछे-पीछे चलकर सुनते थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ एक पक्ष में साधक इष्ट की आराधना कर रहा है और दूसरे पक्ष में इष्ट साधक की आराधना कर रहा है। भक्तमाल ग्रन्थ के सबसे बड़े श्रोता स्वयं भगवान् ही हैं। इसीलिए जब भक्तमाल की कथा कही जाती है तो भगवान् का आवाहन किया जाता है – **हरि जू आय विराजिये**। 'हे प्रभो ! आप आकर विराजिये। आपके भक्तों के चरित्र का वर्णन होगा, इसलिए भक्तों की कथा को सुनने के लिए आप बैठिये।' इस तरह इष्ट पक्ष से भी भजन होता है और साधक पक्ष से भी भजन होता है। साधक पक्ष का उदाहरण है सूरदासजी का पद –

अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी

हे नाथ ! हमारे नेत्र आपके दर्शन के लिए उतावले हैं।

क्या भगवान् के नेत्र भी भक्तों के लिए उतावले होते हैं, इसका बहुत बड़ा उदाहरण है कि जिस समय भक्तमाल में शबरीजी के चरित्र का वर्णन किया गया है तो प्रियादासजी ने वहाँ बहुत सुन्दर कवित्त लिखा है।

रामजी वन में जगह-जगह शबरीजी की कुटिया का पता पूछते हुए घूम रहे हैं।

पथिकन ते पूछत सप्रेम प्रभु पेखि पेखि शबरी हमारी प्यारी बसै केहि ठौर है।

मार्ग में जो भी मिलता है, उससे रामजी शबरी के बारे में पूछते हुए जा रहे हैं कि हमारी परम वैष्णवी श्रीशबरी मैया कहाँ रहती हैं ? **पेखि-पेखि-** एक-एक जगह देखते हुए जा रहे हैं कि यह वह आश्रम तो नहीं है, कहीं यह वह आश्रम तो नहीं है ? ध्यानपूर्वक देखते हुए जा रहे हैं । दण्डकारण्य में श्रीरघुनाथजी केवल शबरी मैया के कारण गये थे । वहाँ जाकर सबसे पूछने लगे कि मेरी शबरी मैया कहाँ रहती हैं, मेरा एकमात्र उन्हीं से प्रयोजन है, मैं उन्हीं के लिए ही यहाँ आया हूँ । वह कौन सी घड़ी होगी, वह कौन सा समय होगा, जब मैं शबरी मैया का दर्शन कर पाऊँगा । उनके दर्शन के बिना मेरे लिए एक-एक क्षण युग के समान व्यतीत हो रहा है । जिस प्रकार शबरी मैया रामजी के दर्शन के लिए व्याकुल हैं, उसी प्रकार रामजी भी शबरी मैया के दर्शन के लिए व्याकुल हो रहे हैं । भक्त पक्ष से ऐसे बहुत से भाव मिल जाते हैं जैसे गोपियों का उदाहरण देखो, अनेक भक्तों के उदाहरण हैं जहाँ भगवान् के दर्शन के बिना भक्तों का एक-एक पल युगों के समान हो जाता है किन्तु यहाँ तो रामजी का एक-एक पल शबरी मैया के दर्शन के बिना युगों के समान हो रहा है । शबरी मैया के चरित्र में, सुदामाजी के चरित्र में और ध्रुवजी के चरित्र में, दोनों पक्षों (भक्त और भगवान्) से एक जैसी भक्ति की साधना हो रही है । एक ओर भक्त भगवान् के लिए व्याकुल है तो दूसरी ओर भगवान् भी भक्त के लिए व्याकुल हैं । गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि दो प्रकार के भक्त होते हैं ।

सबहि कहावत राम के सबहि राम की आस ।
राम कहें जेहि आपनो तेहि भज तुलसीदास ॥

'हम भगवान् के हैं' – ऐसा तो सभी लोग कहते हैं किन्तु भगवान् जिसके लिए कहते हैं कि यह हमारा है, तुलसीदासजी के अनुसार उसी का भजन करना चाहिए । दो तरह के भक्तों की श्रेणियाँ हैं । एक श्रेणी वह, जिसमें भक्त भगवान् का भजन कर रहा है और दूसरी श्रेणी वह है,

जहाँ भगवान् भक्त का भजन कर रहे हैं । श्रीसुदामाजी की स्थिति भी उन्हीं भक्तों में से है, जहाँ उनके मन में जितनी व्याकुलता भगवान् के दर्शन के लिये है, उससे कहीं अधिक उत्सुकता, व्याकुलता श्रीद्वारकानाथजी के मन में सुदामाजी के लिए है । जब श्रीसुदामाजी द्वारकापुरी के भीतर पहुँच गये तो श्रीमद्भागवत के अनुसार वैष्णवों के लिए, विप्रों के लिए श्रीद्वारकानाथजी के महल में किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी । भागवत में तो ऐसा भी नहीं लिखा है कि सुदामाजी को पहले द्वारपाल मिले, फिर उनके द्वारा उन्होंने अपना सन्देश महल के भीतर श्रीकृष्ण के पास भिजवाया । भागवत के अनुसार तो सुदामाजी केवल भगवान् श्रीकृष्ण के महल का मार्ग पूछते हुए सीधे उनके अन्तरंग महल में वहाँ तक चले गये, जहाँ वे रुक्मिणीजी के साथ पलंग पर विराजे हुए थे ।

सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा – (श्रीभागवतजी - १०/८०/१८)

जैसे ही द्वारकानाथ भगवान् ने देखा कि सुदामाजी तो यहीं आ गये हैं तो **सहसोत्थाय** – एकाएक वे पलंग से उठ खड़े हुए और अपनी दोनों भुजाओं में सुदामाजी को भर लिया, अपने हृदय से लगा लिया । **पर्यग्रहीन्मुदा** – अपने हाथों से बहुत सम्मानपूर्वक सुदामाजी को अपने पलंग पर विराजित किया । ब्रह्मा, शंकर यदि द्वारका में आ जाएँ तो भगवान् के दर्शन के लिए पता नहीं कितनी देर तक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़े परन्तु सुदामाजी तो सीधे ही द्वारकानाथ के अन्तरंग महल में पधार गये । यहाँ शुकदेवजी ने ठाकुरजी की भक्तवत्सलता का वर्णन किया है

प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः – (श्रीभागवतजी - १०/८०/१९)

प्रीति के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । भगवान् ने श्रीसुदामाजी के चरण धोये । केवल धोये ही नहीं ।

अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः – (श्रीभागवतजी - १०/८०/२१)

उस चरणामृत को द्वारकाधीश ने अपने मस्तक पर धारण किया। कौन धारण कर रहा है – **राजन् भगवाँल्लोकपावनः** – शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षितजी ! जिनके स्मरण मात्र से संसार पवित्र हो जाता है, वे स्वयं को पवित्र करने के लिए सुदामाजी का चरणोदक अपने मस्तक पर धारण करने लगे।

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् – (श्रीभागवतजी - १०/८०/२३)

द्वारकाधीश ने ऊपर से नीचे तक सुदामाजी को निहारा। उनके वस्त्र मैले-कुचैले थे। शरीर इतना दुर्बल था कि सारी नसें दिखायी पड़ती थीं। सुदामाजी को भगवान् ने स्वयं अपने हाथों से उबटन लगाकर स्नान कराया, स्वादिष्ट भोजन कराया। सब प्रकार से भगवान् ने अपने करकमलों द्वारा सुदामाजी की ऐसी सेवा की कि जिस रात्रि सुदामाजी ने द्वारका में निवास किया, सारी रात द्वारकानाथ श्रीकृष्ण सोये नहीं, सारी रात वे सुदामाजी के चरण दबाते रहे और रुक्मिणीजी पंखा झलती रहीं। क्या कोई ऐसी सेवा कर सकता है ? जो सेवा का धर्म भगवान् ने स्थापित किया, कौन ऐसी सेवा कर सकता है ? इसके बाद भगवान् कृष्ण और सुदामाजी प्राचीन काल की घटनाओं का स्मरण और वर्णन करने लगे, जो गुरुकुल में रहते समय घटित हुई थीं।

अध्याय – ८१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण सुदामाजी के साथ बहुत देर तक बातचीत करते रहे। अब वे अपने प्यारे सखा सुदामा से तनिक विनोद करते हुए बोले –

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् – (श्रीभागवतजी - १०/८१/३)

'सुदामाजी ! आप मेरे लिए कुछ उपहार लाये हैं या खाली हाथ ही चले आये ।' सुदामाजी बोले – 'भैया ! मेरे पास तुम्हें देने योग्य था ही क्या, जो मैं लाता ?' भगवान् ने कहा – 'आप कैसी बात करते हैं ?

अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् – (श्रीभागवतजी - १०/८१/३)

कोई बहुत छोटी से छोटी वस्तु भी यदि प्रेम से मुझे अर्पण करता है तो वह वस्तु मुझे सन्तुष्ट कर देती है । मेरे योग्य से क्या मतलब है आपका, अरे, कुछ भी होता उसे ले आते ।' भगवान् ने बार-बार आग्रह किया किन्तु सुदामाजी को चार मुट्ठी चिउड़े देने का साहस नहीं हुआ । भक्तमाल में तो लिखा है कि ठाकुरजी के द्वारा इस प्रकार माँगे जाने पर – **चिउड़ा छिपाये कांख पूछे कहा ल्याये मोंको अति सकुचाये भूमि तकैं दृग भीजे हैं ।**

सुदामाजी इतने संकोच में पड़ गये कि उनकी दृष्टि नीचे की ओर हो गयी, लज्जावश वे अपना मुख कृष्ण के सम्मुख कर ही नहीं सके, ऐसा लगा जैसे उनकी दृष्टि धरती से गड़ गयी हो । सुदामाजी सोचने लगे कि कृष्ण से मैं क्या कहूँ कि मैं क्या लाया हूँ ? यदि कहूँ कि कुछ नहीं लाया तो ये भी ठीक नहीं है और जो मैं लाया हूँ, उसे भी देना ठीक नहीं है । उस समय भगवान् सुदामाजी के चरणों को दबा रहे थे, वे उनके मनोगत भावों को जान गये । भगवान् ने कहा – 'सुदामाजी ! आप जरा सा करवट ले लीजिये ताकि आपके शरीर के दूसरे भाग की भी मैं सेवा कर लूँ ।' सुदामाजी अपने बगल में चिउड़े की पोटली दबाये हुए थे इसलिए वे करवट नहीं ले रहे थे । भगवान् ने कहा – 'सुदामाजी ! आप बार-बार अपनी भुजा को मोड़ते हैं, सिकोड़ते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि आपके इस अंग में पीड़ा अधिक है । आप तनिक अपना हाथ सीधा कीजिये, जिससे कि मैं भलीभाँति आपकी सेवा कर सकूँ ।' **स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान्** – ऐसा कहकर,

भगवान् ने स्वयं ही उनकी पोटली को खींच लिया और पूछा कि यह क्या है ? आप तो कह रहे थे कि मेरे पास कुछ नहीं है, फिर यह क्या है ? सुदामाजी बोले – 'अरे कृष्ण ! इसमें कुछ नहीं है ? ठाकुरजी की मार्ग में सेवा-पूजा के लिए इसमें मैं कुछ सामग्री ले आया हूँ ।' परन्तु ठाकुरजी जब रहस्यात्मक मुस्कान के साथ देखने लगे तो सुदामाजी समझ गये कि इनको बताना ही पड़ेगा, अतः उन्होंने कहा – 'भैया ! तुम्हारे योग्य देने के लिए मेरे पास यही था ।' भगवान् सुदामाजी के हाथ से पोटली लेकर उसमें से एक मुट्ठी चिउड़ा मुख में डालकर खाने लगे और जैसे ही दूसरी मुट्ठी आरोगने चले, रुक्मिणी के रूप में स्वयं भगवती लक्ष्मी ने उनका हाथ पकड़ लिया ।

खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखिरि गये तेहि ठौर ॥

भगवान् सकुचाकर उस पोटली को खोलने लगे । सुदामाजी ने कहा – 'भैया ! इस पोटली को मुझे दे दो । मैं ही इसे खोलूँगा ।' सुदामाजी ठाकुरजी की ओर देखते हुए सोच रहे हैं कि कहाँ तो ये द्वारकाधीश और कहाँ यह तुच्छ तंदुल । भगवान् ने सुदामाजी को दो लोकों का वैभव दे दिया परन्तु उसे देते हुए भी वे सकुचा रहे थे । भगवान् ने यह वैभव परोक्ष रूप से दिया ? ऐसा क्यों ? भगवान् मन में विचार करने लगे कि मैंने इनको ऐसा दिया ही क्या, मैं इनको दे ही क्या सकता हूँ, जो सामने से दूँ । भगवान् अत्यन्त संकोच में थे, इसलिए परोक्ष रूप से सुदामाजी को दो लोकों का वैभव दिया । जैसे विभीषणजी जब रामजी की शरण में आये तो तुलसीदासजी ने लिखा –

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

रावण ने शिवजी के लिए दस बार अपने सिर काटे और तब उन्हें प्रसन्न किया । शिवजी ने रावण को जो ऐश्वर्य प्रदान किया, वही ऐश्वर्य शरण में आने पर रामजी ने अत्यन्त संकोच में भरकर विभीषण को प्रदान किया । विभीषण को तो अपना एक भी मस्तक काटना नहीं पड़ा । विभीषण को लंका अधिपति बनाते समय भी रामजी अत्यन्त संकोच में पड़कर सोचने लगे कि विभीषण मेरा शरणागत भक्त है । अपने आश्रित भक्त को देने के लिए मेरे पास ऐसा है ही क्या, जो मैं उसको दूँ । इसी प्रकार अत्यन्त सकुचाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदामाजी को दो लोकों का वैभव दिया कि जैसी इनकी प्रीति मेरे प्रति है, ऐसा मेरे पास कुछ है ही नहीं जो उसके बदले में मैं इनको दूँ । इसलिए परोक्ष रूप से (छिपकर) भगवान् ने दो लोकों का वैभव सुदामाजी को दिया । जबकि उनके सामने भगवान् ने धन-वैभव की कोई चर्चा नहीं की, किसी प्रकार के लेन-देन की बात नहीं की । श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजी तो सारी रात सुदामाजी की सेवा करते रहे । अगले दिन सुदामाजी ने श्रीकृष्ण से घर वापस जाने की अनुमति ली और जिस समय वे द्वारका से चले तो उनके मन में एक ही विचार आया –

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८१/२०)

भगवान् ने कितनी बड़ी कृपा की, जो मुझे अपनी अखण्ड स्मृति प्रदान कर दी और उस अखण्ड कृष्ण स्मृति में जो भी चीजें बाधक हैं, उन चीजों को मुझे दिया ही नहीं । यह भगवान् ने कितनी बड़ी कृपा की । धन आदि को तो शास्त्रों में भक्ति मार्ग का कंटक माना गया है । ये भक्ति मार्ग में काँटे हैं । भगवान् जिस जीव पर कृपा करते हैं, उसका मार्ग निष्कण्टक बना देते हैं, काँटा रहित बहुत सुगम मार्ग बना देते हैं और सुगम मार्ग बनाने के लिए जो भी वस्तुयें भक्ति में बाधा उपस्थित

करने वाली हैं, उन वस्तुओं को भगवान् न लेते-देते हैं, न उनकी चर्चा करते हैं, न उनका कोई व्यवहार रखते हैं । सुदामाजी भगवान् की इस अपार कृपा का विचार करते हुए जैसे ही अपने नगर की ओर चले तो भक्तमाल के अनुसार –

दूरि ही ते चीन्हि कह्यो आयो पिय द्वारका सों साजिके सुदामा वाम उठी अतुराइ कै ।

सुदामाजी की पत्नी को भगवान् की कृपा से पहले ही अपार वैभव की प्राप्ति हो चुकी थी । जैसे ही उन्होंने जाना कि मेरे पति द्वारका से भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करके आ रहे हैं तो वे आतुर होकर उनकी अगवानी करने के लिए चलीं ।

उर्वशी तिलोत्तमासी पूर्व चित्ति मेनकासी सेविका हजार लीनी चली सङ्ग चाइ कै ॥

स्वर्ग की श्रेष्ठ अप्सराओं के समान सुंदर हजारों दासियों के साथ सुशीलाजी चल पड़ीं ।

पान दान वारी केती पीक दान वारी और पंखा वारी पटवारी चलीं अति धाइ कै ।

कोई दासी पंखा झल रही थी, कोई चँवर डुला रही थी, कोई छत्र लेकर चल रही थी, कोई ताम्बूल का बीड़ा लेकर चल रही थी, कोई पीकदान लेकर चल रही थी ।

आरती उतारैं गाय मङ्गल मनावैं विप्र अति सकुचाय वह फूलै सुख पाइकै ॥

सुशीलाजी आनन्द से अत्यन्त प्रफुल्लित हो गयीं और जिस समय सुदामाजी आये तो भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी के अनुसार –

जावो एक बार वह वदन निहार आवो जोपै कछु पावो ल्यावो मोको सुखदाई है ।

सुशीलाजी ने सुदामाजी को स्मरण कराया – 'स्वामी ! जिस समय आप द्वारका जाना नहीं चाह रहे थे तो मैंने आपसे कहा था कि एक बार उन श्रीकृष्ण का दर्शन कर आइये । वहाँ आपको कुछ माँगने की आवश्यकता ही कहाँ पड़ेगी ? केवल एक बार ठाकुरजी का दर्शन कर आइये । सारे कष्ट, सारी व्याधियाँ स्वतः ही दूर हो जाएँगी ।'

सुदामाजी को जब यह बोध हुआ कि यह अपार वैभव श्रीभगवान् के द्वारा ही दिया गया है तो एक बार तो उनके मन में बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ । वे सोचने लगे कि अरे, मैं बेकार ही द्वारका गया । मैं धन लेने की भावना से तो वहाँ गया नहीं था फिर भी भगवान् ने इतना कुछ दे दिया । महात्माओं के भाव हैं –

मान बड़ाई जब से आई, अपनी किस्मत फूटी
स्वामी स्वामी होन लगी, अब लगन राम सों छूटी

भक्तों को जहाँ मान-वैभव मिला तो इससे बड़ा उनके लिए कोई पाप का विपाक नहीं हो सकता । यह भक्तों की बात है, हम जैसे मान-सम्मान के भूखे लोगों की बात नहीं है । हम लोगों को तो मान-वैभव बहुत अधिक प्रिय लगता है किन्तु सच्चे भक्तों को मान-प्रतिष्ठा मिलने पर ऐसा लगता है कि कोई पूर्व जन्म का पाप फल बनकर मान-सम्मान के रूप में हमारे सामने आ गया है । इसीलिए कबीरदासजी जैसे महापुरुष ने तो अपनी प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए न जाने कैसे-कैसे उपाय किये, जानबूझकर ऐसे अशिष्ट आचरण किये कि वेश्या के गले में हाथ डाले हुए मुख में मदिरा की बोतल डालकर काशी के राजा के दरबार में चले गये, जिससे कि लोग समझें कि कबीर भक्त नहीं है, यह तो वेश्यागामी है । श्रीगदाधरभट्टजी का चरित्र देखें तो एक युवती उनको

कलंकित करने के लिए भरी सभा में आई तो वे मन में बड़े ही प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि मेरा सम्मान रूपी रोग बहुत बढ़ रहा था तो भगवान् ने यह अपयश रूपी कड़वी दवा मुझे पिला दी । जब हमारे जीवन में अपमान, अप्रतिष्ठा, बदनामी आदि की परिस्थितियाँ आयें तो यद्यपि ये परिस्थितियाँ अच्छी तो नहीं लगती हैं । मीराबाई जी की स्थिति अलग थी, जिन्होंने कहा था –

माई री मोहे ये बदनामी लागे मीठी ।

मीराजी को तो अपनी बदनामी बहुत मीठी लगी परन्तु हम लोगों को अपनी बदनामी मीठी न लगे और ऐसी परिस्थितियाँ यदि हमारे सामने आयें तो मन में ऐसा विचार अवश्य ही करना चाहिए कि हमारा जो प्रतिष्ठा रूपी रोग बढ़ रहा था, उसको दूर करने के लिए भगवान् कड़वी दवाई पिला रहे हैं क्योंकि रोग जब घातक, असाध्य हो जाता है तो फिर कोई भी दवाई, कोई भी उपचार उसमें काम नहीं देता है । वह रोग घातक न बने, उसके पहले ही ठाकुरजी कोई न कोई उपचार कर देते हैं । जहाँ भी प्रतिष्ठा बढ़ती है, मान-सम्मान बढ़ता है, फिर भगवान् ऐसी कोई परिस्थिति ला देंगे कि उस प्रतिष्ठा को बहुत आगे बढ़ने नहीं देंगे क्योंकि उस प्रतिष्ठा से जीव की हानि हो सकती है । इसलिए भगवान् अपयश, बदनामी, तिरस्कार और अनादर रूपी कड़वी दवाई जीव को पिला देते हैं । अब उसको अपना हित मानकर कोई प्रसन्नतापूर्वक सह ले तब तो वह विवेकी (बुद्धिमान) है । हम जैसे मूढ़ लोग उसे भगवान् का कोप समझ लेते हैं जबकि वह कोप नहीं है, वह तो भगवान् की कृपा है । तिरस्कार, अपयश, अपमान और अनादर हर भक्त के जीवन में आएगा । ऐसा कोई भक्त नहीं है, जिसके जीवन में ऐसी प्रतिकूलता न आई हो और यह प्रतिकूलता ही वह कड़वी औषधि है, जिसको भगवान् पिलाते हैं तथा प्रतिष्ठा रूपी रोग को चित्त में घातक नहीं बनने देते हैं,

उस रोग को असाध्य नहीं बनने देते हैं । ठीक समय पर भगवान् उसका उपचार कर देते हैं । अस्तु, श्रीसुदामाजी के मन में उस अपार वैभव को देखकर एक क्षण को तो बहुत कष्ट हुआ । वे सोचने लगे कि यह मेरा कौन सा पाप विपाक बनकर आ गया, जो इतने अधिक वैभव, इतने अधिक ऐश्वर्य की मुझे प्राप्ति हो गयी किन्तु फिर दूसरे ही क्षण उनके मन में विचार आया कि मैंने तो प्रभु से धन माँगा नहीं और न ही मैंने मन में इसकी इच्छा की । दैव जब स्वतः अपनी ओर से कुछ देता है जैसे विषय, प्रभुता, मान-प्रतिष्ठा या ऐश्वर्य तथा हमारी इच्छा न होते हुए भी कुछ मिले तो उससे हमें हानि नहीं होती है । यदि स्वयं हमारी इच्छा उन विषय पदार्थों के प्रति जग गयी तो उससे हानि होगी । सच्चे भक्तों के अन्दर धन-वैभव, मान-प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं होती है, बाकी हम जैसे लोग तो धन-सम्पत्ति और मान-प्रतिष्ठा के सदा लोलुप बने रहते हैं । सच्चे भक्तों के अन्दर इसकी इच्छा नहीं होती है परन्तु जब भगवान् उनको धन-वैभव, गौरव और मान-प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं तो ये उनके जीवन में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं करते हैं । सुदामाजी अतुलनीय वैभव पाने के बाद भी अपनी पूर्वकालिक रहनी के अनुसार ही रहा करते थे, भगवान् की अखण्ड स्मृतिपूर्वक उनका भजन किया करते थे । अन्त में शुकदेवजी ने सुदामाजी के चरित्र की फलश्रुति कही है –

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते ॥

(श्रीभागवतजी - १०/८१/४१)

सुदामाजी के चरित्र को जो सुनता है, उसको भगवान् के प्रति पराभक्ति की प्राप्ति होती है और जीव कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है ।

इसके बाद शुकदेवजी ने अध्याय – ८२ में सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में यदुवंशियों, कौरव-पाण्डवों और भगवान् श्रीकृष्ण तथा ब्रजवासी गोप-गोपिकाओं के परस्पर मिलन का वर्णन किया है । अध्याय – ८३ में भगवान् श्रीकृष्ण की पटरानियों के साथ द्रौपदी की बातचीत का वर्णन किया गया है । अध्याय – ८४ में वसुदेवजी के यज्ञोत्सव का वर्णन हुआ है । अध्याय – ८५ में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञान के उपदेश और भगवान् द्वारा देवकी के छः पुत्रों को लौटा लाने की कथा का वर्णन शुकदेवजी ने किया है । अध्याय – ८६ में अर्जुन द्वारा सुभद्रा हरण और भगवान् द्वारा मिथिलापुरी में राजा जनक तथा श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एक ही साथ जाने की कथा का वर्णन किया गया है । अध्याय – ८७ में शुकदेवजी ने वेदस्तुति का वर्णन किया है ।

अध्याय – ८८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – त्रिदेवों में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवजी शाप तथा वरदान देने में समर्थ हैं किन्तु इनमें शिवजी व ब्रह्माजी शीघ्र ही प्रसन्न या नाराज होकर वरदान अथवा शाप दे देते हैं । परन्तु विष्णु भगवान् वैसे नहीं हैं । इस विषय में महात्माओं के द्वारा एक प्राचीन इतिहास कहा गया है कि एक बार भगवान् शंकर एक बार वृकासुर को वर देकर संकट में पड़ गये थे ।

वृकासुर शकुनि का पुत्र था और उसकी बुद्धि बहुत बिगड़ी हुई थी । एक बार उसे नारदजी का दर्शन मिला, उसने उनसे पूछा कि तीनों देवताओं में से शीघ्र प्रसन्न होने वाला कौन है ? नारदजी ने उससे कहा – 'तुम भगवान् शिव की आराधना करो । इससे तुम्हारी मनोकामना बहुत शीघ्र ही पूर्ण हो जायेगी ।' नारदजी की बात सुनकर वृकासुर केदार क्षेत्र में गया और अग्नि को भगवान् महादेव का मुख

मानकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर का माँस काट-काटकर अग्निकुण्ड में हवन करने लगा। इस तरह छः दिन तक उपासना करने पर भी जब उसे भोलेनाथजी के दर्शन नहीं हुए तो सातवें दिन केदार तीर्थ में स्नान करके उसने अपने मस्तक को कुल्हाड़े से काटकर हवन करना चाहा परन्तु भगवान् शंकर ने अग्निकुण्ड से प्रकट होकर अपने हाथों से उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और गला काटने से उसे रोक दिया। महादेवजी का स्पर्श होते ही वृकासुर के अंग पहले की ही तरह पूर्ण हो गये। शिवजी ने वृकासुर से कहा – 'तुम मुझसे कोई भी वरदान माँग लो।' अत्यन्त दुष्ट वृकासुर ने यह वर माँगा कि 'जिसके भी सिर पर मैं अपना हाथ रख दूँ, तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो जाए।' भोले बाबा ने कहा – 'अच्छा, ऐसा ही हो।'

भगवान् शंकर के वरदान देने पर महापापी वृकासुर अथवा भस्मासुर के मन में पार्वतीजी का हरण करने की कुत्सित इच्छा उत्पन्न हो गयी। वह असुर शंकरजी के वर की परीक्षा के लिए उन्हीं के सिर पर हाथ रखने का प्रयास करने लगा। अब तो महादेवजी अपने दिए हुए वरदान से ही भयभीत हो गये। वृकासुर उनका पीछा करने लगा और वे उससे भयभीत होकर काँपते हुए भागने लगे। वे पृथ्वी, स्वर्ग एवं दिशाओं के अन्त तक भागते रहे। बड़े-बड़े देवता इस संकट को टालने का कोई उपाय न देखकर चुप रह गये। देवता क्यों चुप थे? अगर कोई बीच में शिवजी को बचाने भी जाये तो वृकासुर उसके सिर पर हाथ रख देता। यदि कोई उसको समझाने भी जाता कि ऐसा मत कर तो वह उसके सिर पर हाथ रख देता और समझाने वाला मर जाता। उससे कोई हथियार लेकर लड़ भी नहीं सकता था, वह तो केवल सिर पर हाथ रखकर जिसे चाहता ख़त्म कर देता। इसलिए सब देवता चुप थे, वे कर भी क्या सकते थे? अन्त में महादेवजी भगवान् के

धाम वैकुण्ठ लोक में गये । भगवान् ने यह नाटक देखा कि आगे-आगे बाघम्बरधारी महादेवजी भाग रहे हैं और पीछे-पीछे भस्मासुर दौड़ा चला आ रहा है । भगवान् उसी समय एक ब्रह्मचारी बन गये । भगवान् ने ब्रह्मचारी की वेषभूषा, मूँज की मेखला, काला मृगचर्म, दण्ड और रुद्राक्ष की माला धारण कर ली । भस्मासुर को देखकर उन्होंने बड़ी नम्रता से झुककर उसे प्रणाम किया और कहने लगे – 'अरे ! आप तो बहुत थक गये हैं । थोड़ी देर रुक जाइए, आप अपने शरीर को इस प्रकार कष्ट क्यों दे रहे हैं, मेरे सुनने योग्य कोई बात हो तो बताइए, मैं आपकी क्या सहायता करूँ ? सहायता से ही काम बनता है । किसी को पकड़ना हो तो बताओ, मैं भी सहयोग करूँ । मेरे जैसे मित्र की सहायता तो आपको अवश्य ही लेनी चाहिए ।' भस्मासुर (वृकासुर) को यह बात समझ में आ गयी कि यह ब्रह्मचारी ठीक कह रहा है, इसकी सहायता मुझे अवश्य लेनी चाहिए । यह आगे से महादेव को घेरेगा और मैं पीछे से । बस, इतने में ही महादेव भस्म हो जायेंगे ।

भगवान् की अमृत भरी वाणी सुनकर भस्मासुर की थकान मिट गयी और उसने सब बात बता दी कि शिव ने मुझे यह वरदान दे दिया है कि मैं जिसके सिर पर हाथ रखूँगा, वही भस्म हो जाएगा । ब्रह्मचारी ने कहा – 'अरे ! तुमने बुद्धिमान होकर भी किस पर विश्वास कर लिया, यह शिव तो भांग पीकर मस्त रहता है । इसकी कोई बात सत्य नहीं होती है । दक्ष के शाप से यह पिशाच बन गया है तथा प्रेतों व पिशाचों का यह राजा है । प्रेत-पिशाच कभी सच बोलना जानते ही नहीं । मुझे पता है, शिव तो बड़ा झूठा है । भूत-प्रेत, पिशाच आदि कभी सच बोलते हैं क्या ? शिव तो पिशाचों का राजा है, अतः यह तो कभी सच बोल ही नहीं सकता । दानवराज ! मैं तो अभी शंकर को पकड़वा दूँगा । थोड़ी ही दूर भागकर वह गया है । पहले उसके वरदान की तुम स्वयं परीक्षा

करो । अपने हाथ को अपने सिर तक ले जाओ । जब थोड़ा गरम लगने लगे तो हटा लेना । यदि इस शंकर की बात असत्य निकले तो उस असत्यवादी को तुम मार डालो, जिससे वह फिर कभी झूठ न बोल सके । इसकी सिद्धाई तो दुनिया में झूठे ही पुज रही है ।' ब्रह्मचारी की बातें सुनकर भस्मासुर को विश्वास होने लगा कि यह ठीक कह रहा है । वास्तव में शिव तो झूठा ही है । यह ब्रह्मचारी तो भला आदमी है । मैं यहाँ भागा जा रहा था तो इसने कहा कि थोड़ी देर विश्राम कर लो और शिव को पकड़ने में मेरी मदद करने की बात भी इसने कही । ब्रह्मचारी रूपी भगवान् की बातें सुनकर भस्मासुर की बुद्धि मारी गयी और वह भूल गया कि अपना हाथ अपने सिर पर रखने से मैं ही जल जाऊँगा । वह सोचने लगा कि सिर पर हाथ ले जाता हूँ, पास ले जाने पर यदि हाथ गरम लगेगा तो तुरंत हटा लूँगा । ऐसा विचारकर वह अपने हाथ को मस्तक के पास ले जाने लगा । ब्रह्मचारी ने कहा – 'अरे, रख लो हाथ, मैंने पहले ही कहा था कि शिव झूठा है । उसका वरदान झूठा है । देखो तो सही, हाथ गरम लग रहा है कि नहीं ।' इस तरह ब्रह्मचारी की बात पर विश्वास करते-करते भस्मासुर अपना हाथ मस्तक पर ले जाने लगा । ब्रह्मचारी बोले – 'हाँ, अब रख लो, रख लो, वाह-वाह । शंकर को मार डालो, बड़ा झूठा है ।' भस्मासुर ने हाथ अपने सिर पर रख लिया और उसका सिर फट गया तथा वह धरती पर गिर पड़ा । उस समय चारों ओर 'जय-जय, साधु-साधु' के नारे लगाये जाने लगे । इसके बाद भगवान् ने शिवजी से कहा कि आप इस तरह के वरदान किसी को मत दिया करिए । आपका अपराध करके कोई सकुशल कैसे रह सकता है ? इस कथा का भाव यह है कि जल्दी प्रसन्न होने वाले देवता जीव को मनचाहा वर दे देते हैं परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं, वे तो एक बार में ही वर देते हैं और उसी में जीव का कल्याण हो जाता है ।

अध्याय – ८९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार ऋषि-मुनियों में इस बात पर विवाद चला कि ब्रह्मा, शिव और विष्णु में सबसे बड़ा कौन है ? उन लोगों ने यह बात जानने के लिए ब्रह्मा, शिव और विष्णु की परीक्षा लेने के लिए भृगुजी को उनके पास भेजा ।

अब इस बात को समझो कि बड़ा कौन है ? जो सहनशील है, वही बड़ा है । इन बातों से अपने-आप को नापना चाहिए । नापने पर अपने आप ही हृदय से काम, क्रोध आदि विकार चले जायेंगे । हम लोग हर समय एक दूसरे से नाराज होते रहते हैं, लड़ते-झगड़ते रहते हैं और अपने मन में समझते हैं कि हम बड़े हैं, हम विरक्त हैं, साधु हैं, भजनानन्दी हैं, पंडित हैं, ब्राह्मण हैं । यह कथा बहुत उत्तम है, इसके अनुसार अपने को नापना चाहिए किन्तु इस कथा को लोग थोड़ी देर में भूल जायेंगे । इसके अनुसार अपने को नापना चाहिए किन्तु इस कथा को लोग थोड़ी देर में भूल जायेंगे । इस कथा के पैमाने के अनुसार अपने को नापेगा कोई नहीं ।

अस्तु, भृगुजी सबसे पहले परीक्षा लेने के लिए अपने पिता ब्रह्माजी के पास गये । पहले जब भी भृगुजी अपने पिताजी के पास जाते थे तो उन्हें प्रणाम करते थे परन्तु इस बार भृगुजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम नहीं किया । इससे ब्रह्माजी क्रोधित हो गये । भृगुजी सोचने लगे कि इन्हें तो प्रणाम न करने पर क्रोध आ रहा है । जो थोड़ी सी बात पर क्रोधित हो जाए, वह बड़ा कैसे हो सकता है, वह तो छोटी आत्मा है । **क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे** - जिसकी आत्मा या मन छोटा है, उसका लक्षण यही है कि वह जल्दी गुस्सा करेगा और महात्मा वही है, जिसका अन्तःकरण विशाल है । जैसे नदी जल्दी बढ़ने लग जाती है, उस प्रकार समुद्र नहीं बढ़ता है । इसी प्रकार महात्मा के अन्तःकरण में भी लहर नहीं आती है ।

ब्रह्माजी ने तो अपने मन में उठे क्रोध के वेग को शांत कर लिया। इसके बाद भृगु मुनि कैलाश में गये। उनको देखते ही भगवान् शंकर भुजायें फैलाकर आलिंगन करने के लिए उठे तो भृगुजी कहने लगे – 'अरे, दूर रहो, दूर रहो। तुम लोक-वेद की मर्यादा का उल्लंघन करते हो।' उनकी बात सुनकर शिवजी क्रोधित हो गये और भृगुजी को त्रिशूल के द्वारा मारने के लिए तैयार हो गये। परन्तु सतीजी ने उनके चरणों पर गिरकर उनको ऐसा करने से रोका। भृगुजी मन में विचार करने लगे कि शिवजी में भी क्रोध है, इनमें सहनशीलता नहीं है। इसके बाद भृगुजी वैकुण्ठ में गये। वहाँ प्रभु लक्ष्मीजी की गोद में सिर रखकर लेटे हुए थे। भृगुजी ने जाकर भगवान् के वक्षः स्थल पर एक लात से कसकर प्रहार किया। भगवान् तुरंत उठ बैठे और अपनी शैय्या से नीचे उतरकर मुनि को सिर झुकाकर प्रणाम किया। भगवान् ने कहा – 'प्रभो! आपका स्वागत है। मुझे आपके आने का पता नहीं चला, इसी से आपकी अगवानी नहीं कर सका। मेरा अपराध क्षमा कीजिये।'

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि कोई तुम्हारे गाल पर चाँटा लगाये तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने करके कहो कि इस पर भी चाँटा लगा दो। इसको कुछ लोग बहुत बड़ा आदर्श मानते हैं परन्तु यह गलत बात है, ऐसा करने पर मारने वाले को भी तो पीड़ा होती है। इससे ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया भगवान् ने, उन्होंने कहा –

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने

'हे महामुने! आपके चरण अत्यंत कोमल हैं।

इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना – (श्रीभागवतजी - १०/८९/१०)

आपके चरणों में बड़ा कष्ट हुआ होगा क्योंकि मेरा वक्षः स्थल बहुत कठोर है।' ऐसा कहकर भगवान् भृगुजी के चरणों को अपने हाथों

से सहलाने लगे । भृगुजी परम सुखी और तृप्त हो गए, उनका गला भर आया, आँखों में आँसू छलक आये और वे चुप हो गये । इसके बाद भृगुजी वहाँ से लौटकर मुनियों के सत्संग में आये और उन्हें ब्रह्मा, शिव और विष्णु भगवान् के यहाँ जो कुछ अनुभव हुआ, वह सब कह सुनाया । इससे सबको पता पड़ा कि भगवान् विष्णु ही सबसे बड़े हैं ।

यतः शान्तिर्यतोऽभयम् – (श्रीभागवतजी - १०/८९/१५)

जहाँ शांति है, वहीं अभय है । जहाँ क्रोध है, हिंसा है, वहाँ भय है । श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार की बात है । द्वारका पुरी में किसी ब्राह्मणी के पुत्र पैदा होते ही मर जाते थे । जब भी ब्राह्मण का पुत्र मरता तो वह राजमहल के द्वार पर आकर यही कहता कि यह ब्राह्मण द्रोही, धूर्त और विषयी क्षत्रियों का दोष है जो मेरे बालक की मृत्यु हुई । नवें बालक के मरने पर जब वह राजमहल के दरवाजे पर आया और वही बात कहने लगा तो उस समय अर्जुन द्वारका में भगवान् कृष्ण के पास बैठे हुए थे । उनके सामने वह ब्राह्मण गाली देने लगा – 'आजकल के राजा बड़े पापी हैं, इनके पाप से मेरे पुत्रों की बार-बार मृत्यु हो रही है ।' अर्जुन ने उस ब्राह्मण से कहा – 'महाराज ! क्या द्वारका में आपके पुत्रों की रक्षा करने वाला कोई नहीं है ? मैं आपकी संतान की रक्षा करूँगा ।' ब्राह्मण ने कहा – 'यहाँ बलरामजी, श्रीकृष्ण आदि के रहते जब मेरे बालकों की रक्षा नहीं हो पायी तो तुम क्या रक्षा करोगे ?' अर्जुन बोले – 'नहीं, मैं अर्जुन हूँ, मैं कृष्ण नहीं हूँ, मैं बलराम नहीं हूँ । मैं मृत्यु को भी जीतकर आपका बालक वापस लाऊँगा ।'

अर्जुन की बात सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक घर लौट गया और प्रसव का समय निकट आने पर अर्जुन को बताया । अर्जुन ने बाणों को अनेक प्रकार के अस्त्र-मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रसव गृह को चारों ओर से घेर लिया, इस प्रकार उन्होंने सूतिका गृह के चारों ओर बाणों का एक पिंजड़ा सा बना दिया । अबकी बार गर्भ से शिशु पैदा हुआ तो

वह शरीर सहित ही आकाश में अन्तर्धान हो गया । अब तो वह ब्राह्मण अर्जुन को गाली देने लगा । 'धिक्कार है अर्जुन को, अपने मुँह अपनी प्रशंसा करने वाले अर्जुन के धनुष को धिक्कार है ।' जब वह ब्राह्मण अर्जुन की बहुत निन्दा करने लगा तब अर्जुन योगबल से यमपुरी में गये, वहाँ उन्हें ब्राह्मण का बालक नहीं मिला । इसके बाद वे इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि की पुरियों में गये । अतलादि नीचे के लोकों में गये परन्तु कहीं भी वह बालक नहीं मिला । अपनी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर अर्जुन अग्नि में प्रवेश करने चले तो भगवान् ने उन्हें रोक लिया और उन्हें समझा-बुझाकर अपने दिव्य रथ पर सवार होकर अर्जुन के साथ पश्चिम दिशा की ओर गये । सात द्वीप, सात समुद्र और लोकालोक पर्वत को लाँघकर उन्होंने घोर अंधकार में प्रवेश किया । उस समय भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र को आगे कर दिया । अंधकार को पार करने के बाद उन्हें समुद्र मिला । उस समुद्र में एक भवन था । उस भवन में शेषनागजी की शैय्या पर विराजमान आठ भुजाओं वाले नारायण भगवान् का उन्हें दर्शन हुआ ।

अब यह प्रसंग थोड़ा जटिल है और समझने योग्य है । आचार्यों ने बताया है कि भगवान् अर्जुन को लेकर कहाँ गये थे ? ब्रह्मलोक तक तो माया है । कई आचार्यों ने मृत्युञ्जय तन्त्र का प्रमाण दिया है –

ब्रह्माण्डस्योर्द्धवतो देवि ब्रह्मणः सदनं महत् ।
तदूर्द्धवं देवि विष्णूनां तदूर्द्धवं रुद्ररूपिणाम् ॥

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी)

ब्रह्मलोक या सत्यलोक के ऊपर वैकुण्ठ लोक है । उसके ऊपर अहङ्कारावर्णस्थ रुद्र लोक है, उसके ऊपर महाविष्णु का लोक है, जो महत्तत्त्वावर्णस्थ है, उसके आगे प्रकृत्यावरणस्थ महादेवी का लोक है, उसके ऊपर ब्रह्मपीयूषाख्य कारणार्णव है, उसके ऊपर महाकाल परव्योमस्थ महावैकुण्ठनाथ हैं । यही है महाकाल का भवन । यहीं पर

भगवान् कृष्ण अर्जुन को ले गये । वहाँ जाकर उन दोनों ने महावैकुण्ठनाथ भगवान् को प्रणाम किया । अर्जुन तो उनके दर्शन से घबरा गये । उन दोनों से महाविष्णु ने कहा – 'तुम दोनों को देखने के लिए ही मैंने ब्राह्मण के बालक अपने पास मँगवा लिए थे ।'

अब यहाँ समझने की बात है कि महाविराट महाविष्णु को भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की क्या आवश्यकता पड़ी ? उन्होंने कहा – **युवयोर्दिदृक्षुणा** – (श्रीभागवतजी - १०/८९/५९) – 'मुझे तुमको देखने की इच्छा हुई, इसलिए मैं ब्राह्मण के बालकों को यहाँ ले आया ।'

कृष्ण का रूप ही ऐसा है कि उसको सब देखना चाहते हैं । स्वयं श्रीकृष्ण तक अपने रूप को देखकर विस्मित हो जाते थे ।

विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् –

(श्रीभागवतजी - ३/२/१२)

महाविष्णु को तो श्रीकृष्ण ने प्रणाम अर्जुन को शिक्षा देने के लिए किया कि कोई ऋषि आये, देवता आये तो उसको प्रणाम करना चाहिए ।

इसके बाद महाविष्णु श्रीकृष्ण से बोले कि संसार में आपका कार्य अब पूरा हो गया है । **भूयस्त्वरयेतमन्ति मे** – (श्रीभागवत - १०/८९/५९) **इतमन्ति मे** – इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे पास आओ । **'त्वरयेतम्'** का अर्थ है जल्दी करो अर्थात् अब पृथ्वी पर आपकी लीला का अंतिम समय आ गया है ।

धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् – (श्रीभागवतजी - १०/८९/६०)

लोकसंग्रह के लिये जितने लोगों ने धर्म का आचरण किया, आप उन सबसे श्रेष्ठ हैं ।

महाविराट महाविष्णु ने जब इस प्रकार भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की तो उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । इसके बाद भगवान्

श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ द्वारका में ब्राह्मण के बालकों को लेकर लौट आये तथा उन बालकों को उनके पिता को सौंप दिया । अर्जुन ने ऐसा अनुभव किया कि जीवों में जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्ण की ही कृपा है ।

भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने नर-नारायण को अपनी विभूति माना है ।

अध्याय – ९०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार से अधिक पत्नियों के अलग-अलग महल थे । जितनी पत्नियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीकृष्ण उनके साथ विहार करते थे । वे रानियाँ श्यामसुन्दर के चिन्तन में ही इतनी मग्न हो जातीं कि बहुत देर तक चुप ही रहतीं और फिर उन्मत्त के समान असम्बद्ध बातें कहने लगतीं । कभी-कभी तो भगवान् कृष्ण की उपस्थिति में ही प्रेमोन्माद के कारण उनके विरह का अनुभव करने लगतीं और न जाने क्या-क्या कहने लगतीं । प्रेम की इस स्थिति को प्रेमवैचित्री कहा जाता है । यह प्रेम की छठी भूमिका है । अपना प्यारा पास में है, फिर भी उसके विरह का जो अनुभव होता है, उसे प्रेमवैचित्री कहते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण की रानियाँ प्रेमवैचित्री की अवस्था में जो कुछ भी कहतीं या गातीं, उसे महिषी गीत कहा गया है । ऐसा आचार्यों ने लिखा है । इस स्थिति में वे कुररी, चकवा-चकवी, समुद्र, चन्द्रमा, मेघ, मलयानिल, कोयल, पहाड़, नदियों तथा हंस आदि से बात करने लग जाती थीं । इस प्रकार श्रीकृष्ण पत्नियों की भगवान् के प्रति ऐसी अनन्य प्रीति थी । भगवान् की रानियों की संख्या थी सोलह हजार एक सौ आठ । प्रत्येक रानी के दस-दस पुत्र थे । उनमें से अठारह तो महारथी थे । इनमें प्रद्युम्नजी सबसे बड़े थे । प्रद्युम्न के पुत्र थे अनिरुद्ध, अनिरुद्ध के पुत्र थे वज्रनाभ । यदुवंश का नाश

हो जाने पर एकमात्र वे ही बचे रहे । वज्र के पुत्र हुए प्रतिबाहु, प्रतिबाहु के सुबाहु, सुबाहु के शान्तिसेन और शान्तिसेन के शतसेन हुए । यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अट्ठासी लाख अध्यापक थे । महाराज उग्रसेन के साथ एक नील के लगभग सैनिक रहते थे । यदुवंशियों के एक सौ एक कुल थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर गंगाजी की महिमा भी कम कर दी थी । जो कृष्ण लीला का गान करता है, उसे गंगा आदि तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं है । भगवान् का नाम एक बार सुनने अथवा उच्चारण करने से ही सारे अमंगलों को नष्ट कर देता है । सबको अपने घर में श्रीकृष्ण कीर्तन करना चाहिए । गंगा, सिन्धु, सरस्वती आदि तीर्थ कृष्ण कीर्तन करने पर वहीं आ जाते हैं ।

जय श्री राधे जय नन्दनन्दन

दशम स्कन्ध के अन्त में शुकदेवजी ने यह बात कही कि भगवान् ने अवतार लेकर सभी तीर्थों की, यहाँ तक कि गंगाजी की महिमा भी घटा दी ।

यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं – (श्रीभागवतजी - १०/९०/४७)

भगवान् का नाम समस्त अमंगलों को नष्ट करने वाला है । यदि भगवान् का नाम कीर्तन नहीं कर सकते हो तो जहाँ भी भगवान् का कीर्तन हो रहा हो, वहाँ अपने कानों से उसे सुनो, इससे तुम्हारे समस्त पाप जल जायेंगे ।

इस प्रकार अब दशम स्कन्ध की समाप्ति होती है ।

एकादश स्कन्ध

अध्याय – १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीकृष्ण ने बलरामजी तथा अन्य यदुवंशियों के साथ मिलकर पृथ्वी के भार स्वरूप बहुत से दैत्यों का संहार किया तथा कौरवों और पाण्डवों में भी शीघ्र मार-काट मचाने वाला अत्यन्त भीषण महाभारत युद्ध कराके पृथ्वी का भार उतार दिया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने विचार किया कि लोकदृष्टि से पृथ्वी का भार दूर हो जाने पर भी मेरी दृष्टि से अभी तक दूर नहीं हुआ क्योंकि यह यदुवंश अभी पृथ्वी पर विद्यमान है, जिस पर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता । यह यदुवंश हाथी, घोड़े, जनबल, धनबल आदि विशाल वैभव के कारण उच्छृंखल हो रहा है । इसलिए ऋषियों के शाप के द्वारा इस यदुवंश का विनाश कर देना चाहिए ।

एक बार ऋषिगण भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने द्वारका में आये और भगवान् से मिलकर द्वारका के पास ही पिण्डारक क्षेत्र में निवास करने लगे । एक दिन यदुवंश के कुछ बालक खेलते-खेलते उन्हीं ऋषियों के पास पहुँच गये । वे लोग साम्ब को स्त्री वेष में सजाकर ऋषियों के पास ले गये और उन्हें प्रणाम करके बोले – 'ब्राह्मणो ! यह स्त्री गर्भवती है । इसका प्रसव का समय निकट आ गया है, यह स्वयं पूछने में सकुचाती है, यह जानना चाहती है कि इसके पुत्र होगा या कन्या ?' ऋषियों ने देखा कि कि ये उद्दण्ड बालक हमसे झूठ बोल रहे हैं, तब भगवत्प्रेरणा से वे क्रोधित हो गये और उन्होंने कहा – 'मूर्खो ! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी, जो तुम्हारे कुल का नाश कर देगा ।'

मुनियों की बात सुनकर बालक बहुत ही घबरा गये । उन्होंने साम्ब के पेट पर लगे बाहरी वस्त्रों को हटाया तो भीतर उन्हें लोहे का एक मूसल मिला । बालक उसे देखकर भयभीत हो गये और उन्होंने

राजा उग्रसेन को जाकर बताया कि हमारे द्वारा ऋषियों का अपराध हुआ है तथा उन्होंने हमारे कुल के नाश का शाप दे दिया है । वह मूसल भी उन्होंने उग्रसेनजी को दिखाया । उग्रसेनजी ने उस मूसल को चूर्ण करके उस चूर्ण तथा लोहे के बचे हुए छोटे टुकड़े को समुद्र में फेंकवा दिया । चूर्ण तरंगों के साथ बह-बहकर समुद्र के किनारे आ लगा । वह थोड़े ही दिनों में एरक घास के रूप में उग आया । बचे हुए लोहे के टुकड़े को एक मछली निगल गयी । मछुआरों ने उस मछली को पकड़ लिया । उसके पेट में जो लोहे का टुकड़ा था, उसको जरा नाम के व्याध ने अपने बाण की नोंक में लगा लिया ।

अध्याय – २

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक दिन की बात है, देवर्षि नारद वसुदेवजी के यहाँ पधारे । वसुदेवजी ने उनका अभिवादन किया, पूजा की और फिर उनसे कहा ।

वसुदेवजी बोले – 'देवताओं की पूजा से तो सुख भी मिलता है और दुःख भी मिलता है परन्तु साधुओं का चरित्र सदा सुख ही देता है । साधु लोग दीनों पर दया करते हैं । आप मुझे वैष्णव धर्म (भागवत धर्म) के बारे में बताइए ।'

नारदजी ने कहा – सबसे ऊँचा वैष्णव धर्म है । इसके सम्बन्ध में भगवान् ऋषभजी के पुत्र नौ योगीश्वरों और राजा निमि का संवाद प्रसिद्ध है । स्वायम्भुव मनु के पुत्र थे प्रियव्रत, उनके पुत्र हुए आग्नीध्र, आग्नीध्र के नाभि और नाभि के पुत्र हुए ऋषभ । वे भगवान् ही थे । उनके सौ पुत्र थे । उनमें सबसे बड़े भरतजी थे । भरतजी ने तीन जन्मों में भगवान् को प्राप्त किया । ऋषभजी के इक्यासी पुत्र ब्राह्मण बन गये । नौ पुत्र सच्चे भक्त, योगेश्वर बन गये । बाकी नौ पुत्र नौ द्वीपों के अधिपति हुए । एक

बार ये नौ योगीश्वर राजा निमि के यज्ञ में गये । राजा निमि ने उनकी पूजा की तथा विनय से झुककर उनसे प्रश्न किया ।

राजा निमि ने कहा – भगवन् ! आत्यन्तिक क्षेम अर्थात् परम कल्याण कैसे होता है ? आप कृपा करके हमें भागवत धर्मों का उपदेश दीजिये ।

नारदजी ने बताया कि राजा निमि के प्रश्न को सुनकर उन नौ योगीश्वरों में से कवि जी ने कहा –

भगवान् के चरणकमलों की नित्य-निरन्तर उपासना या भजन ही आत्यन्तिक क्षेम (परम कल्याण) है । इसके अतिरिक्त कल्याण का अन्य कोई उपाय नहीं है । भगवान् के चरण कमलों की उपासना या भजन कैसे किया जाए तो इसका सबसे सरल उपाय यही है कि भगवान् के नाम, रूप, गुण आदि का गान करो ।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या – (श्रीभागवतजी - ११/२/४०)

भगवान् के नाम का कीर्तन करो, सबसे बड़ा कल्याण यही है । हर समय भगवान् का कीर्तन करो । भगवान् के कीर्तन में रोओ, गावो और नाचो ।

उन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः

लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे, पागल कहेंगे, इससे तुम्हारे पाप जलेंगे । यदि अपना कल्याण करना है तो इसी तरह कीर्तन करो । सबसे छोटे बनो ।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च – (श्रीभागवतजी - ११/२/४१)

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नदी, समुद्र आदि सब भगवान् के शरीर हैं, ऐसा मानकर सबको प्रणाम करो । सबसे छोटे बनो । इसमें तुम्हारा कल्याण है ।

राजा निमि ने पूछा – भगवन् ! भगवान् के भक्त का लक्षण क्या है ?

दूसरे योगीश्वर हरिजी बोले – तीन प्रकार के भक्त होते हैं । जो सब जगह, समस्त प्राणियों में भगवान् को ही देखता है, वह सर्वोत्तम कोटि का भक्त है । मध्यम भक्त वह है, जो भगवान् से प्रेम करता है, उनके भक्तों से मित्रता करता है, अन्य लोगों पर कृपा करता है तथा जो अपमान करता है, उसकी उपेक्षा करता है । तृतीय कोटि का प्राकृत भक्त वह है, जो केवल भगवान् के अर्चा विग्रह में ही भगवान् को देखकर श्रद्धा से उनकी सेवा-पूजा करता है किन्तु भगवान् के भक्तों व दूसरे लोगों की सेवा नहीं करता ।

हम भले ही मन्दिर में भगवान् के श्रीविग्रह के सामने घंटी हिलायें, पूजा करें किन्तु यदि भक्तों का सम्मान नहीं करते हैं तो प्राकृत भक्त ही बोले जायेंगे ।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२/५३)

तीनों लोकों की राज्य लक्ष्मी को भी जो भगवान् के लिए छोड़ देता है, वह भगवान् का भक्त है, सबसे श्रेष्ठ है ।

भगवान् के चरणनखमणिचन्द्र से जिसका हृदय शीतल हो गया है, जो भगवान् को एक क्षण के लिए भी नहीं भूलता है, वह भक्त है ।

अध्याय – ३

राजा निमि ने पूछा – मैं भगवान् की माया के बारे में जानना चाहता हूँ । अब तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्षजी ने कहा – माया वह शक्ति है जो जगत की सृष्टि करती है तथा प्रलय करती है । प्रलय के समय

पृथ्वी पर लगातार सौ वर्षों तक भयंकर सूखा पड़ता है, वर्षा बिलकुल नहीं होती, प्रलय काल की शक्ति से सूर्य की गर्मी और अधिक बढ़ जाती है, वे तीनों लोकों को तपाने लगते हैं – यह माया है । उस समय शेष नाग के मुँह से आग की प्रचण्ड लपटें निकलतीं हैं और सारे संसार को जला देती हैं । सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली त्रिगुणमयी माया है ।

राजा निमि ने पूछा – इस माया को पार कैसे किया जा सकता है ?

चौथे योगीश्वर प्रबुद्ध जी बोले – साधु संग के द्वारा ही माया को पार किया जा सकता है ।

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत – (श्रीभागवतजी - ११/३/२१)

गुरु के पास जाए, उनसे वैष्णव धर्म की शिक्षा ले । इससे सब जगह से आसक्ति हट जाएगी । धन, वस्त्र, मकान और अन्य अनात्म पदार्थों से आसक्ति हटेगी ।

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि – (श्रीभागवतजी - ११/३/२६)

भगवान् की प्राप्ति का मार्ग बताने वाले शास्त्रों में श्रद्धा और अन्यत्र किसी की निन्दा गुरु के पास नहीं मिलेगी । संकीर्णता गुरुदेव के पास नहीं मिलेगी । गुरु के पास जाकर क्या-क्या सीखने को मिलेगा, यह प्रबुद्धजी ने ११/३/२२ से अन्त तक बताया है ।

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः – (श्रीभागवतजी - ११/३/२७)

भगवान् की लीलायें अद्भुत हैं । उनके जन्म, कर्म और गुण दिव्य हैं । गुरुदेव के पास रहकर उन्हीं का श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना सीखे ।

भक्त्या सञ्जातया भक्त्या – (श्रीभागवतजी - ११/३/३१)

इस प्रकार पहले साधन भक्ति करने पर अन्त में सिद्धा भक्ति की प्राप्ति होगी और तब भक्त कीर्तन करते-करते मस्त हो जाता है तथा प्रेम में तन्मय होकर नृत्य करता है ।

राजा निमि ने पूछा – भगवान् नारायण का स्वरूप क्या है ?

पाँचवें योगीश्वर पिप्पलायनजी ने कहा –

सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं – (श्रीभागवतजी - ११/३/३८)

जीव जो सदा 'मैं' की अनुभूति करता है, यही आत्मतत्त्व ही नारायण है ।

राजा निमि ने पूछा – अब आप लोग मुझे कर्मयोग का उपदेश दीजिये । एक बार यह प्रश्न मैंने अपने पिता इक्ष्वाकु के सामने सनकादि ऋषियों से पूछा था परन्तु उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ।

छठे योगीश्वर आविर्होत्रजी ने कहा – उस समय तुम नासमझ थे, इसीलिए उन ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया । कर्म, अकर्म और विकर्म – ये तीनों एकमात्र वेद के द्वारा जाने जाते हैं । यह वेद परोक्ष वादात्मक है । यह कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्म का विधान करता है । जैसे बालक को मिठाई आदि का लालच देकर दवाई खिलाई जाती है, वैसे ही वेद अज्ञानियों को स्वर्ग आदि का लालच देकर श्रेष्ठ कर्म में लगाता है । जिसका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मों का त्याग कर देता है तो वह विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्म रूप अधर्म ही करता है । इसलिए वह मृत्यु के बाद फिर मृत्यु को प्राप्त होता है । अतः फल की कामना छोड़कर जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होने वाली ज्ञान रूप सिद्धि मिल जाती है ।

श्री राधा

अध्याय – ४

राजा निमि ने पूछा – भगवान् के अवतारों के बारे में मैं जानना चाहता हूँ ।

सातवें योगीश्वर द्रुमिलजी ने कहा – दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से भगवान् ने नर और नारायण के रूप में अवतार लिया । वे बदरिकाश्रम में आज भी विराजमान हैं । एक बार इन्द्र ने उनकी तपस्या में बाधा डालने के लिए कामदेव को अप्सराओं के साथ भेजा, तब उन्होंने स्वयं उर्वशी आदि बहुत सी श्रेष्ठ अप्सरायें प्रकट करके स्वर्ग के लिए भेज दीं ।

इनके अतिरिक्त भगवान् शूकर, नृसिंह, वामन, कूर्म, मत्स्य, परशुराम तथा सीतापति राम के रूप में अवतरित हुए । यदुवंश में कृष्ण रूप से अवतार ग्रहण किया तथा कलियुग में बुद्ध और कल्कि रूप से वे अवतार लेंगे ।

अध्याय – ५

राजा निमि ने पूछा – जो लोग भगवान् की भक्ति नहीं करते हैं, उनकी क्या गति होती है ?

आठवें योगीश्वर चमस जी ने कहा –

दूरेहरिकथाः केचिद् दूरेचाच्युतकीर्तनाः – (श्रीभागवतजी - ११/५/४)

बहुत से लोग ऐसे हैं जो भगवान् की कथा और कीर्तन की महिमा नहीं जानते, इसलिए उससे दूर रहते हैं । संतों को चाहिए कि उन पर भी दया करें, स्त्रियों और शूद्रों पर विशेष दया करके उन्हें कथा-कीर्तन से लाभान्वित करना चाहिए । जो लोग ऐसा समझते हैं कि स्त्रियों का कथा और कीर्तन में अधिकार नहीं है, वे गलत हैं । वास्तव में स्त्री-शूद्रों के लिए ही कथा-कीर्तन चलाया गया है । इसमें सबका अधिकार है ।

स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम्

भगवान् की कथा में स्त्रियों-शूद्रों का भी अधिकार है । इसलिए उन्हें कथा और कीर्तन से रोकना नहीं चाहिये । सूरदासजी ने कहा है –

बड़ी है कृष्ण नाम की ओट
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट

कथा में कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है, ऐसा भेदभाव नहीं किया जाता है ।

शरण गये प्रभु काहू न काढ़ै, करत कृपा की कोट
सूरदास पारस के परसे, मिटै लोह की खोट

इसलिए भगवान् की कथा-कीर्तन में सबका अधिकार है, चाहे कोई शूद्र है, चमार है, हरिजन है, चाण्डाल है, भगवान् सब पर कृपा करते हैं । सबके हृदय में वही प्रभु विराजमान हैं । जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हैं, वे अत्यन्त परिश्रम करके घर, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति आदि इकठ्ठा कर लेते हैं परन्तु अन्तकाल में सब कुछ छोड़कर न चाहने पर भी उन्हें घोर नरक में जाना पड़ता है ।

राजा निमि ने पूछा – कौन से काल में भगवान् किस रंग का, कौन सा आकार स्वीकार करते हैं, यह आप मुझे बताइए ।

अब नवें योगीश्वर करभाजन जी ने कहा – सतयुग में भगवान् श्वेत रंग धारण करते हैं, उनके चार भुजायें तथा सिर पर जटा होती है । उस समय के लोग तपस्या के द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं । त्रेता में भगवान् का रंग लाल होता है । उस समय के लोग यज्ञ विद्या के द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं । द्वापर युग में भगवान का रंग श्याम होता है, उस समय के लोग वैदिक और तांत्रिक विधि से भगवान् की आराधना करते हैं ।

कलियुग में भगवान् के कृष्ण वर्ण के विग्रह में उज्ज्वल कान्ति होती है ।

यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः – (श्रीभागवतजी - ११/५/३२)

कलियुग में श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न मनुष्य संकीर्तन यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं ।

इस श्लोक में खोलकर बता दिया गया है कि कलियुग में केवल एक ही यज्ञ है और वह है कीर्तन, इसके अतिरिक्त और कोई यज्ञ नहीं है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामचरितमानस में लिख दिया है –

एहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य मख तप ब्रत पूजा ॥

गोस्वामीजी कह रहे हैं कि कलियुग में योग, यज्ञ, तप आदि साधन नहीं है । यज्ञ के लिए सामग्री शुद्ध कहीं नहीं है । आटा, घी आदि सब मिलावटी मिलते हैं । मन्त्र भी शुद्ध बोलने वाले नहीं रह गये हैं । शुद्ध मन्त्र के उच्चारण के बिना यज्ञ का उचित फल भी नहीं मिलता है । इसलिए कलियुग में केवल कीर्तन ही यज्ञ है और कोई यज्ञ नहीं है ।

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनहि राम गुन ग्रामहि ॥

सभी शास्त्रों का यही उद्घोष है कि कलियुग में केवल हरिकीर्तन ही सार है ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् –

(श्रीभागवतजी - ११/५/३३)

भगवान् के चरणकमल सदा ध्यान करने योग्य हैं, माया-मोह के कारण होने वाले सांसारिक पराजयों का अन्त कर देने वाले तथा भक्तों

की समस्त अभीष्ट वस्तुओं का दान करने वाले हैं । वे तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले हैं, शिव-ब्रह्मा आदि देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और जो कोई भी उनकी शरण में आ जाए, उसे स्वीकार कर लेते हैं ।

कलियुग की कोई बुराई मत करो ।

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।

श्रेष्ठ पुरुष कलियुग की प्रशंसा करते हैं क्योंकि

यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते – (श्रीभागवतजी - ११/५/३६)

कलियुग में केवल संकीर्तन से ही सारे स्वार्थ बन जाते हैं । केवल नाम कीर्तन करने से ही सब कुछ मिल जायेगा । दुनिया की ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो नाम कीर्तन के द्वारा न मिले । नाम कीर्तन निष्ठा के साथ करना चाहिए । देखा जाता है कि दो-चार दिन तक लोग कीर्तन करते हैं फिर उनकी कीर्तन से रुचि समाप्त हो जाती है । हम लोग कोई काम निष्ठा से कर ही नहीं पाते हैं । हमारी वृत्ति ऐसी हो गयी है ।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/५/४१)

जो मनुष्य सर्वात्मभाव से भगवान् की शरण में चला जाता है, वह देवताओं, ऋषियों, प्राणियों, पितरों के ऋणों से तथा समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है । वह किसी के अधीन, किसी का सेवक नहीं रहता ।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चितद् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/५/४२)

जो मनुष्य अन्य भावों को छोड़कर भगवान् की शरण में जाता है, उससे यदि कभी कोई पाप कर्म हो जाए तो उसके हृदय में बैठे हुए भगवान् समस्त पापों को धो डालते हैं क्योंकि वह भगवान् का नाम सदा उच्चारण करता रहता है ।

नारदजी कहते हैं – इस प्रकार राजा निमि नौ योगीश्वरों से भागवत धर्मों का वर्णन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा आचार्यों सहित उन्होंने उनकी पूजा की । इसके बाद वे सिद्ध सब लोगों के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । भागवत धर्मों का यह उपदेश समस्त वेद-पुराणों का सार है, मक्खन है । इस मक्खन को खिलाकर वे योगीश्वर अन्तर्धान हो गये । वसुदेवजी ! ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, इनसे जो अनुराग करते हैं, उनके सौभाग्य के बारे में क्या कहा जाए ?

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – नारदजी के मुख से राजा निमि और नव योगीश्वरों का संवाद सुनकर देवकी और वसुदेव को बड़ा ही आनन्द हुआ ।

अध्याय – ६ से ९ तक

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब नारदजी वसुदेवजी को उपदेश करके चले गये तब ब्रह्माजी, भगवान् शंकर एवं अन्य देवताओं के साथ द्वारका में आये और भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि अब आप अपने नित्य धाम को पधारिये । आपके जाने के बाद ही आपके बनाये नियम के अनुसार कलियुग का आगमन होगा । अब पृथ्वी का भार दूर हो चुका है, पृथ्वी का उद्धार हो गया है । देवताओं ने भगवान् की बड़ी स्तुति की । एक श्लोक उन्होंने बहुत बढ़िया कहा –

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां
विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।

सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-
सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/६/९)

कोई विद्या पढ़ ले, वेदों का अध्ययन कर ले, कितना भी दान कर ले, तपस्या कर ले, सारी क्रियायें कर ले किन्तु उसके चित्त की वैसी शुद्धि नहीं हो सकती, जैसी शुद्धि श्रद्धा से होती है और वह श्रद्धा सत्संग से बढ़ती है । सच्छ्रद्धा का अर्थ है कि सत्पुरुषों के पास जाओ तब श्रद्धा की प्राप्ति होगी और यदि कुसंग में बैठोगे तो तुम यदि कीर्तन करते हो तो लोग कहेंगे – अरे, क्या कीर्तन करते हो, इस तरह चिल्लाने से, ढोंग करने से क्या मिलेगा ?

इस प्रकार नीच कुसंगी लोग श्रद्धा को नष्ट कर देते हैं । किसी की श्रद्धा को नष्ट करना बहुत बड़ा पाप है । हत्या करने से भी अधिक बड़ा पाप है । इसलिए इस श्लोक में कहा गया श्रद्धा, कौन सी श्रद्धा, जो संतों के पास जाने से मिलती है । उस श्रद्धा से जितनी जल्दी पाप जलेंगे, वैसे अन्य किसी साधन से नहीं जलेंगे, चाहे तपस्या कर लो, व्रत कर लो, दान कर लो, वेदों का अध्ययन कर लो । इसलिए श्रद्धा सीखो । महाभारत में भी लिखा है –

श्रद्धा पाप विमोचिनी

श्रद्धा पाप को जितनी जल्दी जलाती है, अन्य कोई साधन इस प्रकार नहीं जला सकता । इसलिए श्रद्धा सीखो ।

इस प्रकार समस्त देवताओं और शंकरजी के साथ ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की । इसके बाद ब्रह्माजी ने कहा – 'प्रभो ! आपको यदुवंश में अवतार ग्रहण किये एक सौ पच्चीस वर्ष बीत चुके हैं । अतः अब आप अपने परम धाम में पधारिये । हम लोगों ने आपको पृथ्वी पर बुलाकर बहुत कष्ट दिया ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'अभी मेरा यह यदुवंश बचा हुआ है । ये यादव बल-विक्रम, वीरता और धन-सम्पत्ति से उन्मत्त हो रहे हैं । ये सारी पृथ्वी को ग्रस लेने पर तुले हुए हैं । इनको पृथ्वी पर कोई जीत नहीं सकता है । यदि मैं इन घमण्डी यदुवंशियों के इस विशाल वंश को नष्ट किये बिना ही चला जाऊँगा तो ये सब मर्यादा का उल्लंघन करके सारे लोकों का संहार कर डालेंगे । ये इस समय पृथ्वी पर बोझ हैं । इसलिए इस बोझ को समाप्त करके ही मैं जाऊँगा ।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा तब ब्रह्मा जी और सब देवता भगवान् को प्रणाम करके अपने धाम में चले गये । उनके जाने के बाद द्वारकापुरी में बड़े-बड़े अपशकुन, बड़े-बड़े उत्पात होने लगे । उन्हें देखकर यदुवंश के बड़े-बूढ़े भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये, तब प्रभु ने उनसे कहा –

आजकल द्वारका में बड़े-बड़े अपशकुन और उत्पात हो रहे हैं । ब्राह्मणों ने हमारे वंश के नष्ट होने का शाप पहले ही दे दिया है । यदि हम लोग अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें परम पवित्र प्रभास क्षेत्र में चलना चाहिए । प्रभास क्षेत्र की बहुत अधिक महिमा है । जिस समय दक्ष प्रजापति के शाप से चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग हो गया तो प्रभास क्षेत्र में स्नान करने पर ही वे उस रोग से छूट पाए । हम लोग भी वहाँ चलकर स्नान करेंगे, देवता व पितरों का तर्पण करेंगे तथा ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे और उन्हें दान देंगे । इस प्रकार हम लोग बड़े-बड़े संकटों से मुक्त हो जायेंगे ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार आज्ञा दी तब सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी करने लगे । उद्धव जी ने जब भगवान् की आज्ञा सुनी तो वे एकान्त में भगवान् श्रीकृष्ण के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले – 'प्रभो ! अब आप इस मृत्युलोक को छोड़कर अपने नित्य धाम में जाना चाहते हैं किन्तु आपके वियोग में मैं कैसे जियूँगा ?'

भगवान् ने कहा – पृथ्वी पर देवताओं का जितना काम करना था, उसे मैं पूरा कर चुका । इसी काम के लिए ब्रह्माजी की प्रार्थना से मैं बलराम जी के साथ अवतीर्ण हुआ था । अब यह यदुवंश पारस्परिक फूट और युद्ध से नष्ट हो जायेगा । आज के सातवें दिन समुद्र द्वारका को डुबो देगा । जिस क्षण मैं अपने नित्य धाम को चला जाऊँगा, पृथ्वी पर कलियुग का बोलबाला हो जायेगा, तब तुम यहाँ मत रहना । गुण और दोष दृष्टि से, प्रवृत्ति-निवृत्ति न करके बालक की तरह कार्य करो । गुण और दोष बुद्धि से ज्यादा होशियारी मत करो । बालक बनकर, भोले बनकर कर्म करो । लोग बहुत होशियार बनते हैं, बहुत माथापच्ची करते हैं परन्तु तुम तो भोले बनो ।

उद्धवजी ने कहा – आपने मेरे कल्याण के लिए जिस त्याग का उपदेश किया, यह बहुत कठिन है और आपके जैसा वक्ता त्रिलोकी में कोई नहीं है, अतः आप ही मुझे ज्ञान दीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – उद्धव ! ज्ञान तो गुरु के पास मिलता है, इसलिए गुरु के पास जाकर ज्ञान लेना चाहिए । इस विषय में एक इतिहास है । एक बार हमारे पूर्वज यदु कहीं जा रहे थे, उन्हें रास्ते में अवधूत दत्तात्रेयजी मिले ।

राजा यदु ने उनसे पूछा – महाराज ! आपको ऐसी सुन्दर बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई ? आप हैं तो विद्वान किन्तु बालक की तरह रहते हैं ।

(एक वेदमन्त्र में कहा गया है कि चारों वेद पढ़कर बालक की तरह रहे, भोला बनकर रहे । पहले तो पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर ले, उसके बाद पाण्डित्य को छोड़ दे । बालक बन जाना विद्वत्ता से ऊँची बात है ।)

राजा यदु ने दत्तात्रेयजी से पूछा कि आपको अपने आत्मा में ही आनन्द का अनुभव कैसे होता है ? आप कृपा करके अवश्य बताइए ।

दत्तात्रेयजी ने कहा – मेरे बहुत से गुरु हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत में मुक्त भाव से स्वच्छन्द विचरता हूँ । मेरे चौबीस गुरु हैं । उनके नाम हैं – पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा,

सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकलने वाला, हिरन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुँवारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट । इन चौबीस गुरुओं से मैंने शिक्षा ग्रहण की है । पृथ्वी से मैंने क्षमा की शिक्षा ली है । पृथ्वी पर लोग मल-मूत्र त्याग करते हैं, खोदते हैं, तरह-तरह के आघात करते हैं किन्तु पृथ्वी किसी से कुछ नहीं कहती है । ऐसा ही हमें भी बनना चाहिए । यद्यपि ऐसा बनना बड़ा कठिन है । शरीर के भीतर रहने वाले वायु से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे उसे केवल आहार की ही आवश्यकता होती है, उसकी प्राप्ति से ही वह संतुष्ट रहता है, उसी प्रकार साधक को चाहिए कि जितने से जीवन निर्वाह हो जाए, उतना ही भोजन कर ले । इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए बहुत से विषय न चाहे । शरीर के बाहर रहने वाले वायु से मैंने यह शिक्षा ली है कि जैसे वायु को अनेक स्थानों में जाना पड़ता है किन्तु वह कहीं आसक्त नहीं होता, इसी प्रकार साधक भी किसी से आसक्ति या द्वेष न करे । आकाश से मैंने असंगता की शिक्षा ग्रहण की है । आकाश की तरह असंग हो जाओ, जैसे आग लगती है, पानी बरसता है, अन्न आदि पैदा होते और नष्ट हो जाते हैं, वायु की प्रेरणा से बादल आदि आते और चले जाते हैं । यह सब होने पर भी आकाश अछूता रहता है । इसी प्रकार संसार में रहकर भी सबसे असंग बने रहो ।

जल से मैंने स्वच्छता की शिक्षा ली है, जिस प्रकार जल स्वभाव से ही स्वच्छ और पवित्र करने वाला होता है, वैसे ही साधक को भी शुद्ध और लोकपावन होना चाहिए । अग्नि से मैंने शिक्षा ली है कि तेजस्वी बनो । चन्द्रमा की कलाएं घटती-बढ़ती हैं, फिर भी चन्द्रमा न घटता है, न बढ़ता है । इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि जन्म आदि विकारों में भी निर्विकार बना रहे । सूर्य से यह शिक्षा ग्रहण की है कि समस्त बाहरी उपाधियों से राग नहीं करनाचाहिए । समुद्र से मैंने यह सीखा है कि

साधक को सदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए। अजगर एक जगह पड़ा रहता है और दैव इच्छा से उसके मुँह में स्वाभाविक रूप से जो आहार चला जाता है, वह उसी से सन्तुष्ट रहता है। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि उसको दैव इच्छा से जो कुछ भी प्राप्त हो, उसमें ही सन्तोष कर लेना चाहिए। बालक से मैंने शिक्षा ली है कि मनुष्य को हर स्थिति में सदा प्रसन्न रहना चाहिए।

एक बार एक बाण बनाने वाला कारीगर बाण बनाने में इतना तन्मय हो गया कि उसके पास से ही राजा की सवारी निकल गयी और उसे पता तक न चला। राजा की सवारी के साथ सैकड़ों हाथी-घोड़े चले गये किन्तु उसे कुछ भी पता नहीं लगा, इतना अधिक बाण बनाने में उसका मन डूबा हुआ था। दत्तात्रेयजी ने कहा कि उस बाण बनाने वाले से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि इसी प्रकार हमें भी अपने मन को एकाग्र करना चाहिए। मकड़ी से मैंने स्वतन्त्रता की शिक्षा ली है। भृङ्गी एक कीड़े को ले जाकर दीवार पर अपने रहने की जगह बन्द कर देता है और वह कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते-करते उसी शरीर से तद् रूप हो जाता है, इसी प्रकार साधक को भी भगवान् का ध्यान करना चाहिए, भगवान् का पूर्ण एकाग्रता के साथ चिन्तन करने से उसे भगवद् सारुप्य की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार कबूतर से घर-परिवार की आसक्ति छोड़ना सीखना चाहिए। मछली काँटे में लगी आटे की गोली के लोभ से मारी जाती है, इसी प्रकार स्वाद का लोभी मनुष्य भी जीभ के वश में होकर मरता है। हिरन बहेलिया के गीत से मोहित होकर मारा जाता है, अतः उससे यह शिक्षा मिलती है कि साधक को गन्दे-गन्दे ग्राम्य गीतों को नहीं सुनना चाहिए।

किसी घर में एक कुँवारी कन्या थी। एक बार विवाह के लिए उसे देखने वाले उसके घर आये। उनको भोजन कराने के लिए वह धान

कूटने लगी । उस समय उसकी कलाई में पड़ी शंख की चूड़ियाँ जोर-जोर से बजने लगीं । इससे वर पक्ष वालों को उसकी दरिद्रता का पता चलता तो उसने एक-एक करके सब चूड़ियाँ तोड़ दीं । जब तक दो चूड़ियाँ रहीं, तब तक भी खन-खन ध्वनि होती रही । जब एक चूड़ी रह गयी तब बजने की कोई ध्वनि नहीं हुई । उससे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि जब बहुत लोग एक साथ रहते हैं तब कलह होता है और दो व्यक्ति साथ रहते हैं तब भी उनमें बातचीत होती ही है इसलिए कुमारी कन्या की चूड़ी की तरह साधक को अकेले ही विचरण करना चाहिए ।

हाथी पकड़ने वाले कागज़ की नकली हथिनी बनाकर एक गहरे गड्ढे को घास-फूस से ढक कर उसके ऊपर खड़ी कर देते हैं । हाथी उसे देखकर कामासक्त हो जाता है, जैसे ही हथिनी को पकड़ने चलता है, गहरे गड्ढे में गिर जाता है और फिर मनुष्यों के द्वारा पकड़ लिया जाता है । इसलिए साधक को स्त्री के प्रति मैथुनी भाव से बचना चाहिए, अन्यथा उसका घोर पतन होता है । हाथी से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है ।

पतंगा रूप पर मोहित होकर आग में कूदकर जल जाता है, वैसे ही मनुष्य भी सुन्दर स्त्री या सुन्दर पुरुष के रूप को देखकर कामाग्नि में इस प्रकार जल जाता है कि अपने धर्म, अपने कर्तव्य को छोड़ देता है और यह नहीं देखता कि आगे वृद्धावस्था आ जाएगी, फिर मृत्यु हो जाएगी, यह शरीर तो विनाशी है ।

भौंरा सुगन्ध की आसक्ति से कमल में बन्द होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार स्वाद की वासना से एक ही गृहस्थ का अन्न खाने से उसके प्रति मोहासक्ति में फँसकर साधु भी नष्ट हो जाएगा । इसलिए साधु को रोटी के टुकड़े कई घरों से माँगना चाहिए, जिस प्रकार भौंरा कई पुष्पों से रस ग्रहण करता है ।

एक कुरर पक्षी के चोंच में जब तक माँस का टुकड़ा था तब तक दूसरे पक्षी उस टुकड़े को छीनने के लिए उससे लड़ते रहे । जब कुरर पक्षी ने अपनी चोंच से माँस का टुकड़ा फेंक दिया, तभी उसे सुख मिला । इससे मनुष्य को त्याग की शिक्षा लेनी चाहिए । मनुष्यों को जो वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय लगती हैं, उनका संग्रह करना ही दुःख का कारण है । इसके विपरीत जो अकिञ्चन भाव से रहता है, उसे अनन्त सुख रूप भगवान् की प्राप्ति होती है ।

इस प्रकार दत्तात्रेयजी ने यदुजी को अपने चौबीस गुरुओं और उनसे प्राप्त शिक्षा के बारे में बताया । दत्तात्रेयजी से शिक्षा प्राप्त करके यदु ने उनकी पूजा की और इसके बाद दत्तात्रेयजी वहाँ से चले गये ।

अध्याय – १०

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – निवृत्त कर्मों को, जो मुझसे मिलाने वाले हैं, उन्हीं को अधिकतर करना चाहिए । संसारी कर्मों को अधिक नहीं करना चाहिए ।

मद्भिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् – (श्रीभागवतजी - ११/१०/५)

जो गुरुदेव शान्त हों, उनके पास जाओ, उनके पास अमानी होकर रहना चाहिए । उदासीन रहो ।

आगे भगवान् ने बताया कि यदि कर्तृत्त्व (कर्तापन का अहंकार) नित्य है तो जीव की मुक्ति नहीं होगी, इसलिए जीवात्मा को अकर्ता माना गया है ।

स्वर्ग की प्राप्ति भी बेकार है क्योंकि जब तक जीव के पुण्य शेष रहते हैं तब तक वह स्वर्ग में रहता है परन्तु पुण्य क्षीण होने पर उसे इच्छा न होने पर भी नीचे गिरना पड़ता है । इसी प्रकार अन्य उच्च लोकों की प्राप्ति भी व्यर्थ है क्योंकि वहाँ रहने वाले लोगों की आयु काल से सीमित है ।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! देही जीव गुण आदि के द्वारा कैसे बाँध लिया जाता है ? यह जीव नित्यबद्ध है कि नित्य मुक्त है ?

अध्याय – ११

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – बन्धन या मोक्ष आत्मा का नहीं, गुणों का होता है । विद्या और अविद्या – दोनों ही मेरे शरीर हैं । निरहं होना ही मुक्ति है और अहं ही बंधन का कारण है । मेरे लीला अवतारों का ध्यान करना चाहिए । इसके बाद भगवान् ने यहाँ तक कहा कि –

सत्सङ्गलब्ध्या भक्त्या मयि मां स उपासिता – (श्रीभागवत-११/११/२५)

सत्संग बड़ी चीज है क्योंकि भक्ति की प्राप्ति सत्संग से होती है । इसलिए ऐसे स्थान पर जाओ, जहाँ भक्त लोग रहते हैं, जहाँ कथा-कीर्तन हो रहा है । वहाँ जाने पर तुम्हें उस वस्तु की प्राप्ति होगी, जो कभी नष्ट नहीं होती है ।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! साधु के लक्षण क्या हैं ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – साधु कृपाशील होता है, किसी से द्रोह नहीं करता है । बड़े-बड़े दुखों को प्रसन्नता से सह लेता है । वह समदर्शी और सबका भला करने वाला होता है । निष्काम, संयमी, पवित्र और मधुर स्वभाव वाला होता है । जो मेरी सेवा में सदा लगा रहता है ।

परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् – (श्रीभागवतजी - ११/११/३४)

मनुष्य को चाहिए कि मेरी सेवा करे, मेरी स्तुति करे, मुझे प्रणाम करे और नित्य मेरे गुणों का कीर्तन करे ।

गुण कीर्तन यह है कि प्रभु दयालु हैं, राधारानी करुणामयी हैं, किशोरीजी कृपामयी हैं । इस तरह नित्य श्रीराधा-माधव का गुण कीर्तन करो –

भजो दयामयी वृषभानु लली भजो दयामयी वृषभानु लली

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – हे उद्धव ! मेरा भक्त नित्य प्रेम से मेरा कीर्तन करता है, मेरा गुणगान करता है, हर समय मेरे दिव्य गुणों का स्मरण करता रहता है । वह कहता है – हे प्रभो ! तू बड़ा दयालु है, तू बड़ा कृपालु है । तू करुणा सागर है, तू क्षमा करने वाला है ।

मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ।
गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/११/३६)

मेरा भक्त मेरे नाम-गुणों का कीर्तन करता हुआ कभी रोता है, कभी नाचता है । जन्माष्टमी, रामनवमी आदि मेरे पर्वों को मनाता है तथा संगीत, नृत्य और बाजे द्वारा मेरे मन्दिर में उत्सव करता है ।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ्नायणं हि सतामहम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/११/४८)

बिना संत या भक्त का संग किये भक्ति नहीं मिलेगी, चाहे कोई कितना भी बड़ा हो, बिना सत्संग के वह भवसागर को पार नहीं कर सकता । इसलिए संतों-भक्तों के पास जाओ, उनके द्वार पर नाक रगड़ो । जहाँ भक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसे संतों-भक्तों के पास जाकर नाक रगड़ो । इससे तुम अनायास ही भवसागर के पार चले जाओगे । सत्संग के अतिरिक्त संसार से पार होने का और कोई उपाय नहीं है । जप, तप, व्रत, नेम, धर्म, कर्म – इनसे कुछ नहीं होगा । बिना सत्संग के ये सब व्यर्थ हैं, इनसे केवल मनुष्य भटकता ही रहता है । आचार्यों ने इस प्रसंग में लिखा है कि भगवान् का भक्त तो यदि किसी को देख भी लेता है तो इतने से ही वह जीव पाप रहित हो जाता है । हम हजारों जन्मों तक साधन करें, तपस्या करें तब भी शुद्ध नहीं हो सकते परन्तु भक्त के संग से क्षण भर में ही हमारा उद्धार हो जायेगा । भक्त वह शक्ति है ।

अध्याय – १२

भगवान् कहते हैं –

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१२/१)

यदि कोई कहता है कि मैं योगी हूँ, योग के द्वारा भवसागर पार कर जाऊँगा तो भगवान् कहते हैं कि वह झूठा है । योग से कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, न ज्ञान से मुझे पा सकता है । यदि कोई कहता है कि मैं बहुत धर्म करता हूँ तो धर्म पालन से भी मेरी प्राप्ति नहीं हो सकती । शास्त्रों के अध्ययन से भी मेरी प्राप्ति नहीं होती । तपस्या से भी मैं नहीं मिलूँगा, त्याग से नहीं मिलता, यज्ञ आदि से भी मेरी प्राप्ति नहीं होगी । इष्टापूर्त – कुँआ, धर्मशाला बनवाने से भी मैं नहीं मिलता ।

व्रत कर लो, तीर्थ यात्रा कर लो, यम-नियम कर लो, ब्रह्मचर्य कर लो, सत्यवादी बन जाओ, संयम कर लो – इन सबसे भी मेरी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१२/२)

केवल सत्संग से ही मेरी प्राप्ति हो सकती है । इसलिए सत्संग करो । सत्संग से क्या होता है ? सत्संग से मनुष्य की समस्त आसक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । इसलिए भक्तों के पास जाओ । सत्संग से ही गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई है । असुर जाति में उत्पन्न वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलि, बाणासुर आदि ने सत्संग के प्रभाव से ही मुझे प्राप्त किया । हनुमानजी के संग से कितने ही बन्दर

भक्त बन गये, जाम्बवानजी के संग से बहुत से भालू भक्त हो गये । गजराज का उद्धार हुआ सत्संग से, गिद्ध का भी उद्धार सत्संग से हुआ । सृष्टि के जितने भी जीवों का आज तक उद्धार हुआ है, वह केवल सत्संग से ही हुआ है । ब्रज की गोपियों ने मेरे बिना केवल विरह के कारण मुझे प्राप्त कर लिया ।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् – (श्रीभागवतजी - ११/१२/१४)

इसलिए हे उद्धव ! शास्त्र की जितनी भी आज्ञायें हैं, उन्हें छोड़ दो ।

कृष्ण का स्मरण करो – यही सबसे बड़ी विधि, सबसे बड़ा पुण्य और सबसे बड़ा धर्म है तथा कृष्ण को भूल जाना ही सबसे बड़ा निषेध है, सबसे बड़ा पाप है । अन्य जितने भी पुण्य-पाप हैं, सब इसके अधीन हैं ।

भगवान् उद्धवजी से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण बात कह रहे हैं कि समस्त शास्त्रों की आज्ञा को छोड़ दो । यह वही बात है जैसा कि भगवान् ने गीता में कहा है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

भागवत में उद्धवजी से भगवान् कहते हैं –

मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१२/१५)

एकमात्र मेरी ही शरण में आ जाओ, एकमात्र मेरी ही भक्ति करो । अन्य समस्त शास्त्रों की आज्ञाओं को छोड़ दो । मेरी शरण में आ जाने पर किसी प्रकार का भय नहीं होगा ।

एकमात्र मेरी भक्ति करो और मेरे गुण-कर्मों का गान करो ।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! यह संसार बना कैसे है ? मेरा मन इस संसार से पृथक नहीं हो रहा है ।

भगवान् ने कहा – छः चक्र हैं । एक तो मूलाधार चक्र है, वह गुदा द्वार में है, इसके बाद अधिष्ठान चक्र है, नाभि में मणिपूरक चक्र है, हृदय में अनाहद चक्र है, कण्ठ में विशुद्धि चक्र है, भौंहों में आज्ञा चक्र है । वाणी ही इन छः चक्रों में होते हुए विस्तार को प्राप्त होती है ।

इस संसार से पार कैसे जाएँ तो भगवान् कहते हैं –

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या
विद्याकुठारेण शितेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः
सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१२/२४)

गुरु की उपासना से भक्ति मिलती है और भक्ति के द्वारा जीवभाव को काटकर मनुष्य प्रपञ्च के पार हो जाता है ।

अध्याय – १३

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण बुद्धि के गुण हैं, आत्मा के नहीं ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१३/१)

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि कोई व्यक्ति यदि भक्ति मार्ग पर चलता है, भक्ति करता है तो उसे राजस-तामस

चीजों को छोड़ना चाहिए जैसे राजस-तामस संग, राजस-तामस भोजन, देश आदि को छोडना चाहिए। राजस तामस आहार में माँस-मछली, अंडा, शराब आदि के सेवन से दूर रहना चाहिए। जो लोग राजस-तामस आहार करते हैं, उनका संग नहीं करना चाहिए। ऐसे देश, ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए, जहाँ राजस-तामस आहार किया जाता है और ऐसी ही प्रकृति के लोग रहते हैं।

भगवान् ने ऐसा क्यों कहा तो इसे उदाहरण के द्वारा समझो कि जैसे लोग स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई करते हैं तो कोई विद्यार्थी बी.ए.की कक्षा तक कैसे पहुँचता है ? पहले वह कक्षा दस की शिक्षा में उत्तीर्ण होता है, फिर कक्षा बारह में उत्तीर्ण होता है,तब बी.ए. और उसके बाद एम.ए. की कक्षा में पहुँचता है।

इसी प्रकार तमोगुण से ऊपर है रजोगुण तथा रजोगुण से ऊपर है सतोगुण और सतोगुण से ऊपर हैं भगवान्। भगवान् के निकट है सतोगुण और रजोगुण भगवान् से दूर है। जैसे बी.ए. के नीचे की कक्षा है इन्टर, कक्षा आठ तो नहीं हो जाएगी। उसी प्रकार भगवान् के जो निकट है सतोगुण, इसलिए पहले साधक को सतोगुण प्रधान वस्तुओं का सेवन करना चाहिए। सतोगुणी वस्तुओं का सेवन करने से धीरे-धीरे साधक की वृत्ति अपने आप ही गुणातीत या निर्गुणा हो जाएगी।

भगवान् कृष्ण ने कहा –

सत्त्वाद् धर्मो भवेद् वृद्धात् पुंसो मद्भक्तिलक्षणः – (श्रीभागवतजी - ११/१३/२)

जब सतोगुण बढ़ जायेगा तब मेरी निर्गुणा भक्ति की प्राप्ति होगी।

इसलिए पहले सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करना चाहिए, सात्त्विक आहार करना चाहिए और संग भी सात्त्विक करना चाहिए। भगवान् तो हैं निर्गुण, उन भगवान् को पाना है तो पहले सतोगुण पर

चढ़ो, रजोगुण-तमोगुण को छोड़ दो । अब प्रश्न यह है कि सतोगुण हमारे भीतर कैसे पैदा होगा, इसका उपाय क्या है, जैसे किसी को खीर बनानी है तो इसके लिए दूध, चावल और चीनी की आवश्यकता होती है, इनको मिलाने पर खीर बनेगी । इसलिए प्रश्न यह है कि हम लोग सतोगुणी कैसे बनें ? यदि हम सतोगुणी हो जायेंगे तो भगवान् के पास पहुँच जायेंगे । इसका उपाय भगवान् बता रहे हैं कि दस चीजें ऐसी हैं जिनका सेवन करने से तुम सतोगुणी बन जाओगे । वे दस चीजें कौन सी हैं तो भगवान् कहते हैं –

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१३/४)

पहली बात तो यह है कि सात्त्विक शास्त्र का अध्ययन करो । गन्दी पुस्तकें मत पढ़ो । अप का अर्थ है जल या अन्न अर्थात् सात्त्विक भोजन करो । राजस-तामस आहार मत ग्रहण करो । प्रजा अर्थात् सात्त्विक लोगों का संग करो, राजस-तामस लोगों का संग मत करो । सात्त्विक देश अर्थात् सात्त्विक स्थान पर बैठो, ऐसा नहीं कि जहाँ जुआ खेला जा रहा हो, लोग व्यर्थ की गप्पें हाँक रहे हों, वहाँ जाकर बैठ गये । सात्त्विक स्थान जैसे जंगल या एकान्त पवित्र स्थान में बैठो । काल अर्थात् सात्त्विक काल जैसे प्रातःकाल भजन करने बैठ जाओ । इसी प्रकार सात्त्विक कर्म करो । इसी तरह सात्त्विक जन्म, सात्त्विक ध्यान, सात्त्विक मन्त्र, सात्त्विक संस्कार आदि इन दस चीजों पर हर समय ध्यान दोगे तो तुम थोड़े ही दिनों में सात्त्विक बन जाओगे । परन्तु ये दस चीजें सात्त्विक होनी चाहिए । ऐसा नहीं कि दस में से पाँच चीजें सात्त्विक हैं, तीन चीजें राजस और दो चीजें तामस हैं । इसी बात को भगवान् ने आगे फिर कहा –

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान् सत्त्वविवृद्धये ।
ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत् स्मृतिरपोहनम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१३/६)

सात्त्विक वस्तुओं के सेवन से धर्म की वृद्धि होती है, धर्म से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से समस्त शारीरिक विकार नष्ट हो जाते हैं ।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! विषय विपत्तियों के घर हैं, इस बात को जानते हुए भी मनुष्य इन्हीं भोगों को भोगते हुए दुःख क्यों पाते रहते हैं ?

श्रीभगवान् ने कहा – अहं से रजोगुण उत्पन्न होता है, रजोगुण से काम उत्पन्न होता है और फिर कामनाओं से ग्रसित मनुष्य विषय भोग में लगता है तथा इस कारण बार-बार उसे दुःख उठाना पड़ता है ।

उद्धवजी ने पूछा – आपने सनकादिक ऋषियों को ज्ञान दिया था किन्तु आप तो कृष्ण रूप में हैं, सनकादिक तो यहाँ आपके पास आये नहीं, फिर आपने उनको ज्ञानोपदेश कब दिया ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – उद्धव ! मैंने उन्हें हंस रूप से ज्ञान दिया था । एक बार सनकादिक ऋषियों ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया – पिताजी ! मन ने विषयों को पकड़ा है अथवा विषयों ने मन को पकड़ा है और मन विषयों से किस प्रकार छूट सकता है ? जैसे मनुष्य के मन में स्त्री, धन, लड्डू-पेड़ा आदि के प्रति आसक्ति है और ये विषय उसके मन में घुसे हुए हैं तो आप यह बताइए कि मन स्त्री, धन आदि विषयों में घुसा हुआ है अथवा स्त्री, धन आदि विषय मन में घुसे हुए हैं तथा ये विषय छूटेंगे कैसे ?

इस प्रश्न का उत्तर पहले एक उदाहरण के द्वारा समझो कि मान लो कोई व्यक्ति किसी सरोवर में डूब रहा है, पानी उसके शरीर में भी

भर रहा है, बहुत सा पानी उसके मुख के भीतर भर गया है तो इस तरह पानी में शरीर है तथा शरीर में भी पानी है । अब उस डूबते व्यक्ति को किस प्रकार बचाया जा सकता है क्योंकि उसका शरीर भी पानी में है और बहुत सा पानी उसके शरीर के भीतर भी घुस गया है । अब वह व्यक्ति बच इस प्रकार सकता है कि किसी तीसरी चीज का सहारा पकड़कर पानी के बाहर आ जाये जैसे किसी कपड़ा, रस्सी या लठिया को पकड़कर वह पानी के बाहर आ सकता है ।

भगवान् इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कह रहे हैं कि इसी प्रकार विषय और मन एक दूसरे में घुस रहे हैं । इसलिए कोई मनुष्य विषय को छोड़ नहीं सकता, चाहे वह साधु बन जाए, चाहे गृहस्थ है, चाहे बूढ़ा है, चाहे जवान है । इनमें तीसरी चीज है भगवान् । जब भगवान् को मनुष्य पकड़ेगा तब वह विषय से छूट जायेगा । भगवान् कहते हैं –

मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् – (श्रीभागवतजी - ११/१३/२८)

मुझ तुरीय तत्त्व भगवान का सहारा पकड़कर मनुष्य विषय को छोड़ सकता है ।

जो भगवान् का सहारा नहीं लेता, वह चाहे ब्रह्मचारी बन जाए, चाहे सन्यासी बन जाए, चाहे तपस्या कर ले, वह विषय को नहीं छोड़ सकता है । जब विषय छूट जाते हैं तब साधक को अपने शरीर का भी होश नहीं रहता है ।

अध्याय – १४

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! आप एक हैं किन्तु आपकी प्राप्ति के मार्ग अनेक हैं, ऐसा क्यों है ?

कोई कृष्ण को भगवान् मानता है, कोई राम को मानता है, कोई शिव को, कोई देवी को, कोई गणेशजी को भगवान् मानते हैं । कोई

भगवान् को यज्ञस्वरूप मानता है, कोई कहता है कि परमात्मा तो केवल निराकार हैं । प्रश्न यह है कि जब भगवान् एक हैं तो उनके पाने के, उनको मानने के मार्ग इस तरह अनेक क्यों हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे कोई दीवाल घड़ी है तो उसमें क्या समय है, जिसकी दृष्टि ठीक है, वह दूर से ही घड़ी देखकर समय जान जाएगा । जिसकी आयु अधिक है, वृद्ध है, उसको घड़ी में समय दूर से साफ़ नहीं दिखाई देगा, कोई और अधिक बूढ़ा है तो उसको बिलकुल घड़ी के पास आने पर समय दिखाई देगा । ऐसा क्यों है, यह दृष्टि भेद है । घड़ी एक है किन्तु देखने वालों की दृष्टि अलग-अलग है ।

इसीलिए भगवान् ने उद्धवजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा –

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम् – (श्रीभागवतजी - ११/१४/८)

मैं एक हूँ परन्तु सबकी प्रकृति, सबकी रुचि अलग-अलग है, अतएव मेरी प्राप्ति के रास्ते भी अनेक हैं ।

कोई सतोगुणी है तो वह सात्विक देवता की उपासना करता है, जो रजोगुणी है वह भगवान् के राजस रूप की उपासना करता है, जो तमोगुणी है वह भूत-प्रेत की उपासना करता है, उन्हीं को भगवान् मानता है और जिसका चित्त प्रेमरूप है, वह भगवान् के प्रेमरूप, कृष्णरूप को मानता है । प्रत्येक व्यक्ति की वृत्ति अलग-अलग है, अतः अलग वृत्ति के कारण वह उसी के अनुसार अपने इष्ट का चयन करता है ।

(प्राचीन काल में बरसाने के निकट स्थित पिसाया ग्राम की कदम्बखण्डी में बहुत अच्छे एक भजनानन्दी महात्मा रहते थे, हर समय वे राधा-कृष्ण नाम का जप करते रहते थे । ब्रज के परम रसिक संत श्रीप्रियाशरणबाबाजी महाराज जब उनके पास जाते तो वे उनसे कहते कि कोई अच्छी सी कथा सुनाओ तो श्रीप्रियाशरणजी महाराज उनको

राधा-कृष्ण की कथा सुनाते, तब वे महात्मा कहते कि तुमने घघरिया पलटन की कथा सुनाई, अब कुछ महाभारत की भी युद्ध की कथा सुनाओ । वे कहते कि मैं यह जानता हूँ कि प्रेम सबसे ऊँची वस्तु है और गोपियों का प्रेम सर्वोच्च है परन्तु क्या करूँ, मेरी रुचि वीर रस में है । जब मैं महाभारत सुनता हूँ कि युद्ध में उस योद्धा ने ऐसे बाण चलाये, अमुक योद्धा ने ऐसे गदा चलाई तो युद्ध की कथा सुनने पर मुझे बड़ा आनन्द आता है । राधा-कृष्ण का नाम मैं कई वर्षों से जप रहा हूँ किन्तु मेरी वीर-रस की प्रकृति अभी भी जोर मार रही है ।)

अतः अपनी-अपनी रुचि के अनुसार एक भगवान् की अनन्त उपासनायें हैं और एक ही भगवान् के अनन्त रूप हैं ।

आगे भगवान् ने कहा –

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१४/१६)

जो भक्त निरपेक्ष है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसके पीछे-पीछे मैं इस आशा से चलता हूँ कि इसकी चरण रज मेरे ऊपर पड़ जाए और मैं पवित्र हो जाऊँ ।

इस सुख को अभक्त लोग नहीं जान सकते हैं ।

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१४/१८)

कोई आदमी चाहे गृहस्थ हो अथवा विरक्त हो, जब वह भक्ति करना प्रारम्भ करता है तो एक दिन में तो कोई सिद्ध नहीं बन सकता । वह अजितेन्द्रिय है तो भक्ति करते हुए भी उसकी इन्द्रियाँ विषयों में जायेंगी । अतः साधक अथवा नया भक्त तो विषयों में अवश्य

ही गिरेगा । परन्तु जब आगे चलकर उसकी भक्ति प्रगल्भ हो जाएगी तब वह विषयों को जीत लेगा ।

इसलिए कोई व्यक्ति यदि भक्ति कर रहा है और बीच में वह विषयासक्ति के कारण गिर पड़ा, पतित हो गया तो उस पर हँसना नहीं चाहिए । यह सोचना चाहिए कि यह सांसारिक लोगों से तो अच्छा ही है, इसने भक्ति मार्ग पर चलना तो आरम्भ कर दिया है । एक दिन वह माया को जीत लेगा ।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१४/२०)

योग, ज्ञान, धर्म, शास्त्र का अध्ययन, तपस्या और त्याग मुझे प्राप्त कराने में वैसे समर्थ नहीं हैं, जैसी दिनों-दिन बढ़ने वाली मेरी भक्ति ।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१४/२२)

धर्म करने से कल्याण नहीं होगा, सत्य और दया से भी कल्याण नहीं होगा । केवल मेरी भक्ति ही कल्याण करती है ।

अध्याय – १५

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – जब साधक इन्द्रिय, प्राण अपने वश में करके अपना चित्त मुझमें लगाने लगता है, मेरी धारणा करने लगता है तब उसके सामने बहुत सी सिद्धियाँ आती हैं ।

उद्धवजी ने पूछा – कौन सी धारणा करने से कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है ?

उद्धवजी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले आठ, फिर दस और उसके बाद पाँच प्रकार की सिद्धियाँ बतायीं । आठ सिद्धियाँ सत्त्वगुण के विकास से मिल जाती हैं । पाँच सिद्धियाँ योग से प्राप्त होती हैं । भगवान् ने इस अध्याय के अन्त तक सिद्धियों के बारे में बताया है ।

साधक को सिद्धियों के लोभ में नहीं पड़ना चाहिए ।

अध्याय – १६

इस अध्याय में भगवान् ने उद्धवजी को अपनी विभूतियों के बारे में बताया है, जैसे भगवान् ने गीता में विभूति योग का वर्णन किया है ।

भगवान् ने उद्धवजी से समस्त विभूतियों का वर्णन करने के बाद अन्त में कहा –

मनोविकारा एवैते – (श्रीभागवतजी - ११/१६/४१)

जितनी भी विभूतियाँ हैं, ये सब मन के विकार मात्र हैं ।

अध्याय – १७

इस अध्याय में भगवान् ने वर्णाश्रम धर्म का वर्णन किया है । ब्रह्मचारी और गृहस्थ के धर्म बताये हैं । उद्धवजी ने भगवान् से कहा कि मुझे वर्णाश्रम धर्म के बारे में बताइए तो भगवान् ने कहा कि तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है ।

पहले भगवान् ने सतयुग, त्रेतायुग के लक्षण बताकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लक्षण बताये । ब्राह्मण वह है, जो शान्त रहता है । क्षत्रिय तेजस्वी होता है, वैश्य में आस्तिक्य होना चाहिए, उसे भक्त होना चाहिए । शूद्र को सेवा करना चाहिए । इसके बाद भगवान् ने ब्रह्मचारी के लक्षण बताये ।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१७/२७)

भगवान् ने कहा कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझे, नहीं तो उसका ब्रह्मचर्य आश्रम बेकार हो जायेगा । अपने आचार्य को मनुष्य नहीं समझे, भले ही उनका शरीर हाड़-माँस का है । ऐसा करने पर ही ब्रह्मचारी की विद्या फलीभूत होगी ।

आजकल के युग में विद्यार्थी विद्या पढ़-पढ़कर असुर क्यों बन रहे हैं क्योंकि वे अपने गुरुओं का सम्मान नहीं करते ।

आगे भगवान् ने बताया कि आचार्य (गुरु) की सेवा अपने आपको नीच मानकर करे ।

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् – (श्रीभागवत-११/१७/२९)

जैसे कोई नीच व्यक्ति सोचता है कि मेरा स्पर्श किसी को न हो जाए, इस प्रकार का भाव आचार्य के प्रति होना चाहिए । उनकी किसी वस्तु का उपयोग नहीं करे, उनकी शय्या (बिस्तर), आसन आदि से दूर रहे । उनसे कुछ लेना नहीं चाहिए ।

इसके बाद भगवान् ने गृहस्थ के धर्म बताये । गृहस्थ को चाहिए कि खराब वृत्ति से अपनी जीविका न चलाये । भक्तिमान पुरुष गृहस्थोचित शास्त्रोक्त कर्मों के द्वारा मेरी आराधना करता हुआ घर में ही रहे अथवा यदि पुत्र है तो वानप्रस्थ आश्रम में चला जाए अथवा जब चाहे सन्यास ग्रहण कर ले ।

अध्याय – १८

इस अध्याय में भगवान् ने वानप्रस्थ और सन्यासी के धर्म बताये हैं । भगवान् ने बताया कि वानप्रस्थ को तपस्या करना चाहिए । इसके बाद भगवान् ने सन्यासी के धर्म बताये हैं ।

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ।
विघ्नान् कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात् परम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/१८/१४)

जब मनुष्य सन्यास लेने के लिए चलता है, तब स्त्री, पुत्र और सेठ का रूप धारण करके देवता बाधा डालने के लिए, उसके भजन को नष्ट करने के लिए आते हैं ।

सन्यासी के सब लक्षण बताकर अन्त में भगवान् ने कहा कि वह बालक की तरह रहे । शुष्क वाद-विवाद में न फँसे, किसी से व्यर्थ की बहस न करे ।

अन्त में भगवान् ने सभी के लिए सबसे प्रमुख बात बताई है कि चाहे ब्रह्मचारी हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे वानप्रस्थ हो और चाहे सन्यासी हो । सन्यासी होने का यह मतलब नहीं कि अहंकार करे कि हम सबसे बड़े हैं, सर्वश्रेष्ठ महात्माजी हैं । ऐसा गर्व न करे । भगवान् ने चारों आश्रम वालों का सबसे बड़ा धर्म यही बताया है –

सर्वेषां मदुपासनम् – (श्रीभागवतजी - ११/१८/४३)

सभी को मेरी उपासना करनी चाहिए । सबको कीर्तन करना चाहिए । सभी मेरी भक्ति करें ।

सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दते दृढाम् – (श्रीभागवतजी - ११/१८/४४)

सब कर्मों को मुझे अर्पित कर दो और मेरा ही भजन करो ।

अध्याय – १९

उद्धवजी ने कहा – भगवन् ! आपका भक्तियोग तो बहुत कठिन है, सरल नहीं है, आप इसे मुझे समझाइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – यही प्रश्न धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से किया था । भक्तियोग के बारे में मैं तुम्हें पहले ही बता

चुका हूँ, परन्तु उसके प्रति तुम्हारी अत्यधिक अनुरक्ति के कारण मैं तुम्हें फिर से भक्ति की प्राप्ति का साधन बताता हूँ ।

श्रृद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् – (श्रीभागवतजी - ११/१९/२०)

मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखो और प्रतिदिन मेरे नाम, गुण और लीला का कीर्तन करो । शश्वत् का तात्पर्य है कि हर समय कीर्तन करते रहो । मेरी सेवा में आदर अवश्य रखो किन्तु **मद्भक्तपूजाभ्यधिका** – मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढ़कर करो ।

इसके बाद उद्धवजी ने भगवान् से एक साथ कई प्रश्न किये । उन सभी के उत्तर प्रभु ने एक-एक पंक्ति में दिए हैं । उनमें से कुछ ये हैं –

उद्धवजी – सबसे बड़ा धन क्या है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **धर्म इष्टं धनं नृणां** – (श्रीभागवतजी - ११/१९/३९)

धर्म ही सबसे बड़ा धन है ।

उद्धवजी – सबसे बड़ा लाभ क्या है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **लाभो मद्भक्तिरुत्तमः** – (श्रीभागवतजी - ११/१९/४०)

सबसे बड़ा लाभ है मेरी भक्ति ।

उद्धवजी – सबसे बड़ा बन्धु और गुरु कौन है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **बन्धुर्गुरुहं सखे** – (श्रीभागवतजी - ११/१९/४३)

सबसे बड़ा बन्धु और गुरु मैं ही हूँ ।

उद्धवजी – सुख क्या है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **सुखं दुःखसुखात्ययः** – (श्रीभागवतजी - ११/१९/४१)

दुःख और सुख दोनों की भावना का सदा नष्ट हो जाना ही सुख है ।

उद्धवजी – दुःख क्या है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **दुःखं कामसुखापेक्षा** – (श्रीभागवतजी - ११/१९/४१)

विषय भोगों की कामना ही दुःख है ।

उद्धवजी – मूर्ख कौन है ?

भगवान् श्रीकृष्ण – **मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः** – (श्रीभागवत-११/१९/४२)

शरीर आदि में जिसकी अहं बुद्धि (मैंपन) है, वही मूर्ख है ।

अन्त में भगवान् ने बताया –

गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः – (श्रीभागवतजी - ११/१९/४५)

सबका सारांश इतने में ही समझ लो कि गुण और दोषों पर दृष्टि जाना ही सबसे बड़ा दोष है ।

दूसरों के गुण-दोषों पर दृष्टि डालना छोड़ दो । दूसरे के गुणों और दोषों को देखने से तुम्हें क्या लाभ मिलेगा ? कोई चोर है, बदमाश है, उसके दोष देखने से तुम्हें क्या लाभ होगा ?

अध्याय – २०

उद्धवजी ने पूछा – आपकी आज्ञा ही वेद है । उसमें कुछ कर्मों को करने की विधि है और कुछ के करने का निषेध है । यह विधि-निषेध कर्मों के गुण और दोष की परीक्षा करके ही तो होता है । जबकि आप कहते हैं कि गुणों और दोषों पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए, फिर वेदों में गुण-दोष दृष्टि के आधार पर विधि-निषेध का निरूपण क्यों किया गया है ?

श्रीभगवान् ने कहा – तीन प्रकार के अधिकारी हैं । जो बहुत विरक्त हैं, वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं । जो अत्यधिक आसक्त हैं, वे कर्मयोग के अधिकारी हैं तथा जो न अत्यधिक आसक्त हैं, न अत्यन्त विरक्त हैं, वे भक्तियोग के अधिकारी हैं । इसीलिए इस प्रकार के अधिकारी भेद के कारण ही विधि-निषेध का वर्णन किया गया है ।

भगवान् ने इसके बाद फिर वही बात कही कि पहले अपने पापों को जलाओ । पाप कैसे जलेंगे ? **योगेनैव दहेदंहो** - (श्रीभागवतजी - ११/२०/२५)

भक्तियोग के द्वारा पापों को जलाओ । प्रतिदिन हरिनाम कीर्तन करो ।

प्राचीन काल में ऋषिगण संध्या-गायत्री प्रतिदिन करते थे । वह भी भगवन्नाम है । कलियुग में लोगों के आचरण शुद्ध नहीं रह गये । कुछ लोग स्नान नहीं करते, उनके कपड़े गन्दे रहते हैं, अतः वे वैदिक आचरणों का पालन नहीं कर सकते, इसीलिए उनके लिए दिन-रात भगवन्नाम कीर्तन करने का ही विधान बनाया गया है । वेद प्रतिपादित संध्या-वन्दन आदि साधनों में स्त्री-शूद्र आदि का अधिकार भी नहीं है । इसलिए भगवान् कह रहे हैं कि अपने पापों को भक्तियोग के द्वारा जलाओ ।

अध्याय – २१

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् – (श्रीभागवतजी - ११/२१/७)

गुण-दोषों का विधान मेरे द्वारा इसीलिए किया गया है, जिससे कि लोगों की उच्छृङ्खल प्रवृत्ति न हो । उनकी उच्छृङ्खल वृत्ति को रोकने के लिये ही गुण-दोषों का विधान किया गया है । इसके बाद इस अध्याय में गुण-दोषों के बहुत से लक्षण बताये गये हैं । अन्त में भगवान् ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही –

परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् – (श्रीभागवतजी - ११/२१/३५)

वेदों में ब्रह्म और आत्मा की एकता को ऋषियों द्वारा परोक्ष रुप से (गुप्त भाव से) ही बताया गया है, खोलकर नहीं तथा मुझे भी यही अभीष्ट है कि गुप्त रहस्य को परोक्ष रूप से बताया जाय, स्पष्ट रूप से खोलकर बताना मुझे भी प्रिय नहीं है ।

इस श्लोक को आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका में भी उद्धृत किया है कि शुकदेवजी ने भागवत में राधा नाम क्यों नहीं लिया ?

अध्याय – २२

इस अध्याय में उद्धवजी ने भगवान् से पूछा कि तत्त्व कितने हैं ? कोई कहता है कि नौ तत्त्व हैं, कोई उनकी संख्या सात और कोई सत्रह बताता है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि वेदज्ञ ब्राह्मण इस विषय में जो कुछ कहते हैं, वह सभी ठीक है क्योंकि तत्त्वों की संख्या जो सत्रह बताते हैं, उन्होंने बढ़ाकर कहा है, जिन्होंने तत्त्वों की संख्या नौ कही, एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में अन्तर्भूत करके (मिलाकर) वे ऐसा कहते हैं क्योंकि तत्त्वों का एक-दूसरे में अनुप्रवेश है ।

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२२/७)

एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में घुसा हुआ है, इसलिए घबराना नहीं चाहिए कि तत्त्वों की संख्या सबने अलग-अलग क्यों बताई है ?

श्लोक ११/२२/११ तक भगवान् ने २५ और २६ तत्त्व बताये हैं । इसके बाद ११/२२/१५,१६ तक भगवान् ने बताया कि तत्त्व अट्ठाईस होते हैं । तीन गुण तथा पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी – ये नौ तत्त्व, इसके बाद पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन, इस प्रकार कुल ग्यारह इन्द्रियाँ एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध – ये ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय, इस प्रकार तीन, नौ, ग्यारह और पाँच – सब मिलाकर अट्ठाईस तत्त्व होते हैं ।

उद्धवजी ने कहा – आत्मा और शरीर अथवा प्रकृति और पुरुष अलग-अलग हैं, फिर भी वे आपस में इतने घुल-मिल गये हैं कि उनका भेद नहीं पता पड़ता, अतः प्रकृति और पुरुष की भिन्नता स्पष्ट कैसे पता चलेगी ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – प्रकृति और पुरुष, शरीर और आत्मा – इन दोनों में अत्यन्त भेद है। इस प्राकृत जगत में जन्म-मरण तथा वृद्धि – नाश आदि विकार बने ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि प्राकृत जगत् गुणों के क्षोभ से ही बना है। मेरी माया त्रिगुणात्मिका है। वही अपने सत्त्व, रज आदि गुणों से अनेकों प्रकार की भेद वृत्तियाँ पैदा कर देती है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका मायिक पदार्थों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन्! मरता-जीता कौन है, एक शरीर से दूसरे शरीर में कौन जाता है जैसे किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गयी तो मरे हुए शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में कौन गया?

भगवान् ने कहा – स्थूल शरीर के भीतर लिङ्ग शरीर होता है, वही एक शरीर से दूसरे शरीर में, एक लोक से दूसरे लोक में आता-जाता रहता है। आत्मा इस लिङ्ग शरीर से बिलकुल अलग है। उसका आना-जाना नहीं होता परन्तु जब वह अपने को ही लिङ्ग शरीर समझ लेता है, उसी में अहंकार कर लेता है तब उसे भी एक शरीर से दूसरे शरीर में अपना आना-जाना प्रतीत होने लगता है। अब यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य लिङ्ग शरीर से कैसे छूटे तो भगवान् ने बताया कि इन दुष्ट इन्द्रियों से विषयों को मत भोगो। कोई अपमान कर दे तो उसे क्षमा कर दो। दुष्ट लोग यदि उपहास करें, निन्दा करें, मारें-पीटें, बाँधें, शरीर पर थूक दें, पेशाब कर दें अथवा तरह-तरह से विचलित करें, तब भी उनके किसी भी उपद्रव से दुखी नहीं होना चाहिए।

उद्धवजी ने कहा – भगवन्! मैं दुर्जनों द्वारा किये गये अपमान को असह्य समझता हूँ, इसको सहन कर पाना अत्यधिक कठिन मानता हूँ। बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी दुष्टों के द्वारा किया हुआ तिरस्कार सह लेना बहुत कठिन है क्योंकि प्रकृति अत्यन्त बलवान है।

प्रकृतिर्हि बलीयसी – (श्रीभागवतजी - ११/२२/६०)

प्रकृति बलवती होने के कारण स्वभाव नहीं छूटेगा, कोई हमारे शरीर पर लघुशंका कर दे और हम चुप रहें, यह तो बहुत कठिन है ।

अध्याय – २३

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – इस विषय में महात्मा लोग एक बड़ा पवित्र प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।

प्राचीन समय की बात है, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था । उसके पास बहुत धन था परन्तु वह बड़ा ही कंजूस था ।

कंजूस का तो मुँह देखना भी पाप है, उसका नाम लेना पाप है । जब आदमी कंजूस हो जाता है तो उसका सब पैसा धीरे-धीरे नष्ट होने लग जाता है । उसको दुःख ही मिलता है, सब देवता उससे रुष्ट हो जाते हैं । वे कहते हैं कि देखो, इसने धन को सत्कार्य में नहीं लगाया । केवल जोड़-जोड़ कर जमा करता रहा । मृत्यु के बाद वह नरक में जाता है और अगले जन्म में दरिद्र बनना पड़ता है तथा इस जन्म में भी देवता उससे रुष्ट हो जाते हैं, उसको दुःख ही देते हैं । पैसा जब मुट्ठी में आ जाता है तब उसे सत्कार्य में खर्च करना बड़ा मुश्किल हो जाता है । अपने विषय भोगों के लिए तो मनुष्य खूब पैसा खर्च करता है, लड्डू-पेड़ा आदि स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ खाने में, इन्द्रिय तृप्ति में पैसा खर्च कर देता है परन्तु सत्कार्य में, धर्म के कार्य में पैसा नहीं खर्च करना चाहता ।

इसी प्रकार यह ब्राह्मण भी यक्षों के समान केवल धन की रखवाली करता रहता था । उस धन से वह न तो धर्म के कार्य करता था और न ही भोग भोगता था । बहुत दिनों तक इस प्रकार जीवन बिताने से उस पर पञ्च महायज्ञ के भागी देवता नाराज हो गये और उसका सारा धन नष्ट हो गया । धन के नाश होने से उसके मन में बहुत दुःख हुआ और तब उसके मन में संसार के प्रति वैराग्य हो गया । वह साधु बन गया और मन ही मन कहने लगा –

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२३/१५)

प्रायः कृपण (कंजूस) लोगों को धन से कभी सुख नहीं मिलता । इस लोक में तो वे धन कमाने और रक्षा करने की चिन्ता से जलते रहते हैं और मरने पर धर्म न करने के कारण नरक में जाते हैं ।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२३/१८)

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२३/१९)

धन में पन्द्रह दोष होते हैं – चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब । इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को अर्थ नाम वाले अनर्थ के कारण इस धन को दूर से ही छोड़ देना चाहिए ।

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः ध्रुवः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२३/२८)

भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हो गये हैं, तभी तो उन्होंने मुझे गरीब बना दिया है ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – वह ब्राह्मण सन्यासी हो गया और पृथ्वी पर स्वच्छन्द रूप से विचरण करने लगा । उसे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हो गयी । जब वह भिक्षा माँगने के लिये जाता तो उसे देखकर दुष्ट

लोग कहते कि देखो, पहले तो इसके पास बहुत पैसा था, उसमें से कुछ चोरी हो गया, घर में इसके आग लग गयी । जब धन नष्ट हो गया, स्त्री-पुत्रों ने उसे घर से निकाल दिया तब इसने भीख माँगने का धन्धा अपना लिया है । इस प्रकार कहकर सब उसको चिढ़ाते, उसकी हँसी करते । उसको तरह-तरह से परेशान करते, कभी उसके भिक्षा के पात्र को छीन ले जाते तो कभी उसकी लंगोटी और वस्त्र को ही इधर-उधर डाल देते थे । जब वह भिक्षा माँगकर लाता और भोजन करने बैठता तो कोई उसके सिर पर लघुशंका कर देता, कोई थूक देता । परेशान करने पर भी जब वह बोलता नहीं तो दुष्ट लोग उसे मारते-पीटते थे । कभी उसे रस्सी से बाँध देते थे, कोई उस पर अपानवायु छोड़ता परन्तु ज्ञान होने के कारण वह भिक्षुक सब कुछ सह लेता और किसी से कुछ नहीं कहता था । तब लोग कहते – 'ओहो ! यह भिखारी चुप रहकर अपना काम बनाना चाहता है । यह तो बगुले से भी बड़ा ढोंगी है ।'

उस ब्राह्मण ने एक गीत गाया, जिसे भिक्षु गीत कहते हैं । वह कहता कि ये मनुष्य मुझे दुःख नहीं दे रहे हैं । यह तो मेरा मन ही मुझे दुःख दे रहा है ।

किसी ने हमें चाँटा मारा तो चाँटा मारने वाले और उसके चाँटे ने दुःख नहीं दिया, दुःख तो मन ने दिया । यदि कोई व्यक्ति सो रहा होता और तब कोई उसे चाँटा मारता तब वह व्यक्ति बुरा मानता या नहीं । उस समय बुरा नहीं मानता क्योंकि गाढ़ निद्रा के कारण उसके मन को पता ही नहीं पड़ा कि किसी ने मुझे मारा । यदि मन को पता पड़ जाए कि अमुक व्यक्ति ने मुझे मारा है तो मन उस व्यक्ति से द्वेष करने लग जायेगा, जैसे घरों में स्त्रियाँ पुरुषों को आपस में लड़वा देती हैं । स्त्री अपने पति से जाकर कहती है – 'देखो, हमारे बेटे को अमुक लड़के ने गाली दी और तुम चुपचाप बैठे हो, तुम्हें शर्म नहीं आती है ।'

इस तरह स्त्री के उकसाने पर फिर पुरुष क्रोधित होता है और दूसरों से लड़ने पहुँच जाता है । इसी प्रकार जीव को यह मन नचा रहा

है । इसीलिए ब्राह्मण ने कहा कि वस्तुतः सबसे बड़ा शत्रु तो मन ही है । यदि मन हमें परेशान न करे तो कोई हमें पत्थर मार दे, फिर भी कुछ नहीं होगा । पत्थर मारने वाले का शरीर भी मिट्टी है, हमारा शरीर भी मिट्टी है । उसके शरीर में भी भगवान् हैं, हमारे शरीर में भी भगवान् हैं ।

'भीष्मो हि देवः' – (श्रीभागवतजी - ११/२३/४८)

सबसे भयानक है मन । आदिपुराण में लिखा है – **'सद् यो भगवान् विष्णुर्मनो यस्य वशेस्थितम्'** – जिसका मन वश में है, उसने भगवान् को पा लिया और जिसका मन वश में नहीं है, वह चाहे साधु बन जाए, विरक्त बन जाए, कुछ नहीं होगा ।

इसलिए दूसरों को क्षमा करना सीखो । सबमें भगवान् देखो, किसी से बदला मत लो । कोई गाली दे, थूक दे तब भी उस पर ध्यान मत दो, उसकी उपेक्षा कर दो । इससे बहुत बड़ी चीज पाओगे और बदला लेने पर नष्ट हो जाओगे ।

इसके बाद अध्याय – २४ में भगवान् ने प्रकृति और पुरुष का विवेचन किया है तथा अध्याय – २५ में बताया है कि गुणों पर कैसे विजय प्राप्त की जाए ? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के लक्षण बताये हैं ।

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२५/२५)

चार तरह की चीजें होती हैं, जैसे जंगल में जाकर रहना सात्त्विक है, गाँव में रहना राजस है तथा जुआघर और मदिरालय (शराब खाना) में रहना तामसिक है तथा इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द **मन्निकेतं** का अर्थ है,

जहाँ भगवान् की शुद्ध उपासना होती है, जहाँ भगवद् भक्त भगवान् का यश गाते हैं ।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।

अथवा मन्दिर – इन स्थानों पर रहना निर्गुण निवास है ।

अध्याय – २६

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – परम यशस्वी सम्राट पुरुरवा उर्वशी के विरह से अत्यधिक दुखी हो गया था । पीछे दुःख हट जाने पर उसे बड़ा वैराग्य हुआ और तब उसने कहा –

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२६/१२)

स्त्री ने जिसका मन चुरा लिया, उसकी विद्या व्यर्थ है । उसकी तपस्या, त्याग और शास्त्र अध्ययन करना भी बेकार हो गया । उसका एकान्त सेवन और मौन भी व्यर्थ है ।

विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् – (श्रीभागवतजी - ११/२६/२१)

स्त्री-पुरुष के भोग का सुख ऐसा निकृष्ट है, जैसे मल-मूत्र के कीड़े को उसमें बहुत सुख मिलता है । इसलिए जो मनुष्य मैथुनी भोग में रमण करते हैं, उनमें और मल-मूत्र के कीड़े में कोई अन्तर नहीं है । भगवान् ने कहा –

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् । (श्रीभागवतजी - ११/२६/२६)

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि स्त्री की आसक्ति और कुसंग को छोड़कर सन्तों में आसक्ति करे । जो ऐसा करता है, वही बुद्धिमान है ।

अध्याय – २७

उद्धवजी ने कहा – भगवन्! क्रियायोग के द्वारा आपकी आराधना ही मनुष्यों के परम कल्याण का साधन है। उस क्रियायोग के बारे में बताने की कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धवजी के पूछने पर क्रियायोग का वर्णन करके उसका सार यह बताया।

'अन्नाद्यगीतनृत्यादि' – (श्रीभागवतजी - ११/२७/३५)

नृत्य करके भगवान् का कीर्तन करो। कलियुग में कीर्तन ही कल्याण का एकमात्र साधन है।

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि – (श्रीभागवतजी - ११/२७/४५)

मेरी स्तुति करे, ऐसा नहीं कि स्तुति में केवल पुराण का ही वाक्य हो अथवा सूरदासजी, तुलसीदासजी एवं रसिकों की वाणी हो। भगवान् कह रहे हैं कि प्राकृत कवि का भी गीत है तो उसे गाओ, कोई नया कवि है, उसकी कविता में कृष्ण गुण, कृष्ण यश का वर्णन है तो उससे भी घृणा मत करो, इस ऐंठ में मत रहो कि हम बहुत बड़े महात्मा या रसिक हैं और अहंकार के कारण प्राकृत कवि द्वारा रचित कृष्ण गुणगान की अवहेलना मत करो। उसकी कविता में कृष्ण यश का, श्रीकृष्ण का सम्मान करो।

अध्याय – २८

भगवान् कहते हैं –

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२८/२)

जो दूसरों के स्वभाव और उनके कर्मों की प्रशंसा व निन्दा करता है, बहुत शीघ्र उसका पतन हो जाता है । इसलिए दूसरों के दोषों को मत देखो ।

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसङ्कीर्तनादिभिः

इस कलियुग में लोग कोई अन्य साधन नहीं कर सकते, उनके कल्याण का सर्वोत्तम साधन है नाम संकीर्तन । इसलिए प्रतिदिन नाम संकीर्तन करना चाहिए ।

योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः – (श्रीभागवतजी - ११/२८/४०)

इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि महापुरुषों की शरण में जाना चाहिए । उनके आश्रय में रहने से समस्त अशुभों, अनर्थों का नाश हो जाता है ।

अध्याय – २९

श्रीभगवान् ने कहा –

नाम कीर्तन करने से, मेरे द्वारा बताये गये भागवत धर्मों का पालन करने से मनुष्य दुर्जय मृत्यु को अनायास ही जीत लेता है । **गीतनृत्याद्यै** – मेरे यश का गान करो, नृत्य करो, इसका फल क्या होगा ?

मृत्युं जयति दुर्जयम् – (श्रीभागवतजी - ११/२९/८)

भगवान् का नाम लोगे तो मृत्यु को जीत जाओगे ।

प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् – (श्रीभागवतजी - ११/२९/१६)

देह दृष्टि और लोक लज्जा को छोड़कर कुत्ते, गधे और चाण्डाल तक को पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे । इन सबको भगवद् भाव से प्रणाम करो । ये मत सोचो कि हम ब्राह्मण देवता हैं या

महात्माजी हैं, नहीं, यदि चाण्डाल भी है तो उसको भगवान् समझकर प्रणाम करो ।

यह बात सबके समझ में नहीं आ सकती है किन्तु इसे भगवान् ने कहा है, अतः कोई समझे अथवा न समझे ।

मद्भावः सर्वभूतेषु – (श्रीभागवतजी - ११/२९/१९)

भगवान् कहते हैं – मेरी प्राप्ति के जितने भी साधन हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ साधन यही है, सबसे बड़ी भक्ति यही है कि समस्त प्राणियों में मेरी ही भावना करो ।

यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम ॥

(श्रीभागवतजी - ११/२९/२१)

निरर्थक क्रिया भी यदि मुझे सौंप दोगे तो वह भक्ति बन जायेगी ।

जैसे छींक आने पर 'राम-राम' 'कृष्ण-कृष्ण' कहने लग जाओ तो वह भक्ति बन जाएगी ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार उद्धवजी को तत्त्वज्ञान और भागवत धर्म का उपदेश देने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – 'उद्धवजी ! अब तुम बदरिकाश्रम चले जाओ । मैंने तुम्हें विस्तार से अपनी भक्ति के बारे में बता दिया, अब उसका आचरण करो ।'

भगवान् की आज्ञा सुनकर उद्धवजी ने उनकी परिक्रमा की, उनके चरणों में प्रणाम किया । उद्धवजी का चित्त प्रेमावेश से भर गया । इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की पादुकायें अपने सिर पर रख लीं और बदरिकाश्रम की ओर चल दिये ।

बोलो भक्तराज उद्धवजी की जय

अध्याय – ३०

राजा परीक्षित् ने पूछा – महाराज ! जब उद्धवजी बदरिकाश्रम को चले गये तो भगवान् श्रीकृष्ण ने क्या किया ?

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं तब उन्होंने सभी यदुवंशियों से कहा –

द्वारका में बड़े-बड़े भयंकर उत्पात होने लगे हैं । अब हमें यहाँ थोड़ी देर को भी नहीं रुकना चाहिए । स्त्रियाँ, बूढ़े और बच्चे यहाँ से शंखोद्धार क्षेत्र में चले जाएँ और हम लोग प्रभास क्षेत्र में चलें । वहाँ हम लोग स्नान करके देवताओं की पूजा करेंगे और ब्राह्मणों को दान देंगे ।

भगवान् कृष्ण की बात सुनकर सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र की ओर चल दिए । वहाँ उन्होंने भगवान् के आदेशानुसार सब प्रकार के मंगल कृत्य किये । इसके बाद उन्होंने मैरेयक नामक मदिरा पी । इससे उनका ज्ञान नष्ट हो गया और वे एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे ।

भागवत के तीसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय के दूसरे श्लोक के अनुसार सूर्यास्त के समय यदुवंशियों में लड़ाई शुरू हुई ।

निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् – (श्रीभागवतजी - ३/४/२)

सभी यदुवंशी वीर क्रोध में भरकर एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे । अन्त में जब उनके अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये तब वे समुद्र तट पर लगी एरका नाम की घास उखाड़ने लगे । यह वही घास थी, जो ऋषियों के शाप के कारण उत्पन्न हुए लोहे के मूसल के चूरे से पैदा हुई थी । यदुवंशियों के हाथों में आते ही वह घास वज्र के समान कठोर मुद्गरों के रूप में बदल गयी । वे क्रोध में भरकर उसी घास के द्वारा एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें मना किया तो

उन्होंने उनको और बलरामजी को भी अपना शत्रु समझ लिया और वे उन्हें मारने के लिए उनकी ओर दौड़ पड़े । अब तो भगवान् कृष्ण और बलरामजी भी क्रोध में भरकर एरका घास उखाड़-उखाड़कर उन्हें मारने लगे । इस प्रकार थोड़ी ही देर में समस्त यदुवंशियों का संहार हो गया ।

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥

(श्रीभागवतजी - ११/३०/२६)

पहले तो बलरामजी ने मनुष्य लोक को छोड़ा । यहाँ श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'लोकं' का अर्थ शरीर नहीं है क्योंकि बलरामजी भगवान् हैं और भगवान् का दिव्य विग्रह होता है ।

बलरामजी ने भूलोक को छोड़ दिया ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरे बड़े भाई बलरामजी नित्य धाम को गमन कर गये तो वे एक पीपल के पेड़ के नीचे जाकर चुपचाप बैठ गये । उस समय वहाँ जरा नामक एक बहेलिया आया । उसे दूर से भगवान् का लाल-लाल तलवा हरिन के मुख के समान प्रतीत हुआ, उसने उसे हिरन ही समझकर अपने बाण से बींध दिया । जब वह पास आया और देखा कि ये तो भगवान् हैं तब तो वह भयभीत हो गया और प्रभु से क्षमा माँगने लगा । भगवान् ने उसे अभयदान देते हुए स्वर्गलोक को भेज दिया । भगवान् का सारथि दारुक उनका पता लगाता हुआ उनके पास पहुँच गया । भगवान् ने उससे कहा – 'दारुक ! तुम द्वारका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियों के संहार, भैया बलरामजी की परम गति तथा मेरे स्वधाम गमन की बात कहो । अर्जुन से मिलकर उनसे कहना कि मेरे माता-पिता और पत्नियों को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ ले जायें ।'

भगवान् का आदेश पाकर दारुक उन्हें प्रणाम करके उदास मन से द्वारका चला गया ।

इस प्रसंग में आचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है कि प्रभास क्षेत्र में सूर्यास्त के समय अरबों-खरबों की संख्या में यदुवंशियों की लड़ाई शुरू हुई तो वहाँ बहेलिया कहाँ से आ गया ? इस बात को समझो । सूर्यास्त होने पर अन्धकार हो चुका था, जहाँ अरबों-खरबों वीर लड़ाई में कट रहे थे, वहाँ बहेलिया कैसे आ गया और हिरन का शिकार कैसे करने लगा ? इसका उत्तर देते हुए आचार्यों ने बताया है कि यह सब भगवान् की माया है । इसी प्रकार अर्जुन जब श्रीकृष्ण पत्नियों को इन्द्रप्रस्थ ले जा रहे थे तो भीलों ने आकर उन्हें हरा दिया और श्रीकृष्ण पत्नियों का हरण करके ले गये । यदुवंशियों के विनाश से लेकर अर्जुन को भीलों द्वारा लूटे जाने की घटना भगवान् द्वारा रचा गया इन्द्रजाल था । यह भगवान् के विशुद्ध इन्द्रजाल की माया थी । उन्हें एक क्षण में सबको गायब करना था, नहीं तो सूर्यास्त के समय इतने अधिक यदुवंशियों का संहार कैसे हो सकता था ? महाभारत युद्ध हुआ, उसमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेना थी और वह युद्ध अट्ठारह दिनों तक चला । जबकि यदुवंशी बालकों के आचार्यों की संख्या ही खरबों से अधिक नील में थी । इतने अधिक यदुवंशियों का नाश सूर्यास्त के समय थोड़ी ही देर में कैसे हो गया ? आचार्यों ने लिखा है कि भगवान् ने अपनी माया से लीला रचकर सबको उनके लोकों में भेज दिया और अपने लिए भी माया रच दी, एक बहाना बना लिया कि बहलिया आया और उनके चरणों को हिरन का मुख समझकर बाण चला दिया । वस्तुतः भगवान् की इस अनिर्वचनीय माया को कौन जान सकता है ? महाभारत के स्वर्ग पर्व में वर्णन आता है कि महाभारत के जितने भी कर्ण आदि योद्धा थे, वे मरकर पुनः अपने परिवार वालों के पास आये और एक रात उनके साथ रुके । ये सब भगवान् की माया है । वस्तुतः भगवान् के पार्षदों

की मृत्यु नहीं होती है । यह तो एक जादू सा हुआ कि वे पृथ्वी पर आये और अपना कार्य समाप्त कर भगवद्धाम को चले गये ।

अध्याय – ३१

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की आज्ञा से दारुक के चले जाने पर ब्रह्माजी, शिव-पार्वती, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और इन्द्रादि देवगण भगवान् श्रीकृष्ण की परम धाम गमन लीला को देखने के लिए आये कि भगवान् किस प्रकार इस संसार से जाते हैं ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी और अन्य देवताओं को देखा ।

योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् – (श्रीभागवतजी - ११/३१/६)

उन्होंने योगधारणा के द्वारा अपने शरीर को जलाया नहीं ।

किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् का शरीर जल गया । वे उसी शरीर से अपने धाम में चले गये ।

भगवान् के इस प्रकार जाने को न ब्रह्माजी देख पाए, न महादेवजी देख पाए । कोई देवता, कोई ऋषि-मुनि नहीं देख पाए ।

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/३१/८)

जब भगवान् अपने धाम में प्रवेश करने लगे तो ब्रह्मादि देवताओं को भी उनकी गति दिखाई नहीं पड़ी । ब्रह्मा-शिव आदि देव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण को अपने धाम जाते हुए हम लोग देख ही नहीं सके ।

भगवान् यदि चाहते तो अपने शरीर को सदा के लिए इस पृथ्वी पर रख सकते थे फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

इधर दारुक द्वारका आया और उसने वसुदेवजी तथा उग्रसेनजी को यदुवंशियों के विनाश और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के

स्वधाम गमन के बारे में बताया । उसे सुनकर द्वारका में उपस्थित सभी लोग बहुत दुखी हुए और अत्यधिक दुःख के कारण मूर्च्छित हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर सभी लोग वहाँ पहुँचे, जहाँ यदुवंशी निष्प्राण होकर पड़े हुए थे । देवकी, वसुदेव तथा रोहिणीजी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण व बलराम को न देखकर बेहोश हो गये और उन्होंने विरह से व्यथित होकर वहीं अपने प्राण छोड़ दिए । स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के शव को लेकर चिता पर बैठकर भस्म हो गयीं । भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उनके ध्यान में मग्न होकर अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं । भगवान् की लीला में सहायिका उनकी योगमाया शक्ति ने लोकशिक्षार्थ इन पटरानियों का अग्नि प्रवेश आदि दिखाकर अन्त में उन सबका श्रीजी में सन्निवेश करा दिया ।

अर्जुन अपने सखा भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से अत्यधिक व्याकुल हो गये, फिर उन्होंने प्रभु के गीता के उपदेशों का स्मरण करके अपने मन को सँभाला । यदुवंश के मृत व्यक्तियों में, जिनको कोई पिण्ड देने वाला न था, अर्जुन ने उन सबका विधिपूर्वक श्राद्ध करवाया । भगवान् के न रहने पर समुद्र ने भगवान् श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर सारी द्वारका डुबो दी ।

इस प्रकार एकादश स्कन्ध की कथा यहाँ समाप्त हुई ।

द्वादश स्कन्ध

अध्याय – १

राजा परीक्षित ने पूछा – भगवन् ! यदुवंशविभूषण भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम पधारने के बाद पृथ्वी पर किस वंश का राज्य हुआ तथा आगे किसका राज्य होगा ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा – नवें स्कन्ध में मैं बता चुका हूँ कि जरासन्ध का पुत्र था सहदेव । जरासन्ध के पिता बृहद्रथ के वंश में अन्तिम राजा

होगा पुरञ्जय अथवा रिपुञ्जय । उसका मन्त्री शुनक अपने स्वामी को मार डालेगा और अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाएगा । प्रद्योत वंश में पाँच राजा होंगे, जो एक सौ अड़तालीस वर्ष तक पृथ्वी पर शासन करेंगे । इसके पश्चात् शिशुनाग नाम का राजा होगा । शिशुनाग वंश में दस राजा होंगे । ये सब मिलकर कलियुग में तीन सौ आठ वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । महानन्दि की शूद्रा पत्नी के गर्भ से नन्द नामक पुत्र होगा, वह क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा । तभी से राजा लोग प्रायः शूद्र और अधार्मिक हो जायेंगे । नन्द के सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे, वे सौ वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । चाणक्य भी इसी समय होगा, वह नन्द और उनके सुमाल्य आदि आठ पुत्रों का नाश कर देगा । उनका नाश होने पर कलियुग में मौर्य वंशी राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे । मौर्य वंश के दस राजा एक सौ सैंतीस वर्ष तक पृथ्वी में शासन करेंगे । इसके बाद शुङ्ग वंश का शासन होगा, शुङ्ग वंश के दस राजा एक सौ बारह वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । इसके बाद कण्व वंशी राजा राज्य करेंगे । कण्व वंश के चार राजा तीन सौ पैंतालीस वर्ष तक राज्य करेंगे । इनके बाद तीस राजा चार सौ छप्पन वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । इनके बाद सात आभीर, दस गर्दभी और सोलह कङ्क पृथ्वी का राज्य करेंगे । इनके बाद आठ यवन और चौदह तुर्क राज्य करेंगे । इसके बाद दस गुरुण्ड और ग्यारह मौन नरपति होंगे । मौनों के अतिरिक्त ये सब एक हजार निन्यानबे वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । ग्यारह मौन राजा तीन सौ वर्षों तक पृथ्वी का शासन करेंगे । उनका राज्य समाप्त होने के बाद भूतनन्द नामक राजा होगा । भूतनन्द और उसके वंश के राजा एक सौ छः वर्ष तक राज्य करेंगे । इनके तेरह पुत्र होंगे और वे सब के सब बाह्लिक कहलायेंगे । बाह्लिक वंशी राजा एक साथ ही विभिन्न प्रदेशों में राज्य करेंगे । उनमें सात अन्ध्र देश के तथा

सात कोशल देश के अधिपति होंगे, कुछ विदुर भूमि के शासक और कुछ निषध देश के स्वामी होंगे ।

ये सब के सब राजा आचार-विचार में म्लेच्छों के समान होंगे । ये सभी झूठे, अधार्मिक होंगे । ये दुष्ट लोग स्त्री, बच्चों, गायों और ब्राह्मणों को मारने में भी नहीं हिचकेंगे । राजा के वेष में वे म्लेच्छ ही होंगे । ये लूट-खसोटकर अपनी प्रजा का खून चूसेंगे । जैसे राजा होंगे, प्रजा भी वैसी हो जाएगी । राजा लोग तो प्रजा का शोषण करेंगे ही, प्रजा के लोग भी एक दूसरे को पीड़ित करेंगे और अन्त में सब के सब नष्ट हो जायेंगे ।

अध्याय – २

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – कलियुग में धर्म का सेवन कोई करेगा तो अपने यश के लिए करेगा । जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे । युवक-युवती की पारस्परिक रुचि से ही विवाह सम्बन्ध हो जायेगा । जो जितना छल-कपट कर सकेगा, वह उतना ही व्यवहार कुशल माना जायेगा । जो बोलचाल में जितना चालाक होगा, उसे उतना ही बड़ा पण्डित माना जायेगा ।

कलियुग में राजा होने का कोई नियम नहीं रहेगा । जो बली होगा, वही राजा बन जायेगा । राजा लोग डाकू हो जायेंगे, प्रजा को लूटेंगे, घूस लेंगे । कलियुग में मनुष्यों की आयु बीस या तीस वर्ष की होगी ।

जब बहुत अधिक अधर्म बढ़ जायेगा तो कलियुग के अन्त में भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे । उन दिनों शम्भल ग्राम में विष्णुयश नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे । उन्हीं के घर कल्कि भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे । वे देवदत्त नामक घोड़े पर सवार होकर तलवार के द्वारा दुष्टों का विनाश करेंगे । वे अपने शीघ्रगामी घोड़े से पृथ्वी पर सर्वत्र

विचरण करेंगे और राजा के वेष में छिपकर रहने वाले कोटि-कोटि डाकुओं का संहार करेंगे । जब सब डाकुओं का विनाश हो जायेगा तो नगर और देश की सारी प्रजा का हृदय पवित्रता से भर जायेगा क्योंकि भगवान् कल्कि के शरीर में लगे हुए अङ्गराग का स्पर्श पाकर अत्यन्त पवित्र हुई वायु उनका स्पर्श करेगी । कल्कि भगवान् के अवतार के समय ही सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायेगा ।

जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति एक ही समय, एक ही साथ पुष्य नक्षत्र के प्रथम पल में प्रवेश करते हैं, एक राशि पर आते हैं, उसी समय सतयुग का प्रारम्भ होता है ।

शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! तुम्हारे जन्म से लेकर राजा नन्द के अभिषेक तक एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष का समय लगेगा । जब से भगवान् श्रीकृष्ण अपने परम धाम को पधार गये तभी से पृथ्वी पर कलियुग का आगमन हो गया । भीष्म पितामह के पिता राजा शन्तनु के भाई देवापि और इक्ष्वाकु वंशी मरु इस समय कलाप ग्राम में स्थित हैं । कलियुग के अन्त में वे कल्कि भगवान् की आज्ञा से फिर यहाँ आयेंगे और पहले की भाँति ही वर्णाश्रम धर्म का विस्तार करेंगे ।

अध्याय – ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब राजा लोग पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने के लिए लड़ते हैं तो उन्हें देखकर पृथ्वी हँसने लगती है और कहती है –

ये राजा लोग जो स्वयं मौत के खिलौने हैं, मुझे जीतना चाहते हैं और कहते हैं कि यह पृथ्वी मेरी है । बार-बार मरते जा रहे हैं, फिर भी इनके वंशज आपस में लड़ते हैं और मुझे जीतने की कामना करते हैं । प्राचीन युगों में बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा हुए, जिन्होंने मुझसे ममता

की और समझा कि यह पृथ्वी मेरी है परन्तु विकराल काल ने उनकी इच्छा पूरी नहीं होने दी । अब उन राजाओं के बल-पौरुष और शरीर आदि का कुछ भी पता नहीं है । केवल उनकी कहानी मात्र ही शेष रह गयी है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित् ! संसार में बड़े-बड़े प्रतापी और महान पुरुष हुए हैं । समस्त लोकों में वे अपने यश का विस्तार करके यहाँ से चल बसे । मैंने तुम्हें ज्ञान और वैराग्य का उपदेश करने के लिए ही उनकी कथा सुनाई है ।

राजा परीक्षित् ने पूछा – भगवन् ! आपने कलियुग के बहुत से दोष बताये, ये सब दोष एक साथ कैसे नष्ट होंगे ?

शुकदेवजी ने परीक्षित् के प्रश्न के उत्तर में पहले सतयुग, त्रेता और द्वापर युग के लक्षण बताये और इनके बाद फिर से कलियुग के लक्षण बताये कि इस युग में लोग लोभी, दुराचारी और कठोर हृदय वाले होते हैं । स्त्रियों में दुष्टता और कुलटापन की वृद्धि हो जाती है । ब्राह्मण लोग पेट भरने और जननेन्द्रिय को तृप्त करने में लगे रहते हैं । सन्यासी धन के अत्यन्त लोभी हो जाते हैं ।

अन्त में उन्होंने कहा –

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥

(श्रीभागवतजी - १२/३/४४)

कलियुग में मनुष्य मरने के समय आतुरता की स्थिति में अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी भगवान् के नाम को ग्रहण कर ले तो उसके सारे कर्मबन्धन अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं और उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ।

कलियुग में अनेकों दोष हैं । इसमें कोई तपस्या कर नहीं सकता, वेद-शास्त्र की बातों को कोई जानता नहीं, उनके लिए सबसे सरल है भगवन्नाम कीर्तन । प्रभु की बहुत बड़ी कृपा है कि उन्होंने हम कलियुगी जीवों को अपना परम मंगलमय नाम प्रदान किया है ।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥

(श्रीभागवतजी - १२/३/५१)

वैसे तो कलियुग दोषों का खजाना है परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण यही है कि भगवान् श्रीकृष्ण का कीर्तन करने से ही सारी आसक्तियाँ मिट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है ।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीभागवतजी - १२/३/५२)

सतयुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेता में बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना करने से और द्वापर में उनकी सेवा-पूजा से जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है ।

अध्याय – ४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – चार प्रकार के प्रलय होते हैं । एक प्रलय तो वह है जब ब्रह्माजी की रात होती है, उस समय ब्रह्माजी सो जाते हैं । ब्रह्माजी का एक दिन चार अरब उनतीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार वर्ष के बराबर होता है । इतनी ही बड़ी उनकी रात भी होती है । इस प्रलय का नाम नैमित्तिक प्रलय है । दूसरी प्रलय वह है, जिसमें सातों प्रकृतियाँ अपने मूल कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाती हैं । यह बहुत बड़ी प्रलय है । इसका नाम प्राकृतिक प्रलय है । तीसरी

प्रलय है आत्यन्तिक प्रलय । जब जीव विवेक की तलवार से मायामय अहंकार का बन्धन काट देता है, तब यह अपने एकरस आत्मस्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है । आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति, उसका मोक्ष ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है । चौथी प्रलय है नित्य प्रलय, इसके अन्तर्गत प्रतिदिन कोई न कोई मरता है, जीता है अर्थात् नित्य रूप से उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है ।

अध्याय – ५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – राजन् ! अब तुम यह मत सोचो कि मैं मर जाऊँगा, यह तो पशुबुद्धि है, ऐसा तो पशु सोचता है । जन्म और मृत्यु तो सपना है । आत्मा तो जन्म और मृत्यु से परे स्वयं प्रकाशरूप है, इसलिए तुम भगवान् कृष्ण का ही चिन्तन करो । तुम मरोगे नहीं क्योंकि आत्मा तो अमर है । तक्षक तुम्हें भस्म नहीं कर पायेगा । तक्षक क्या है, मृत्यु क्या है, कुछ नहीं है ।

मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् – (श्रीभागवतजी - १२/५/१०)

यह आत्मा तो मृत्युओं की भी ईश्वर है ।
तुम इस समय केवल कृष्ण का चिन्तन करो ।
तुम्हारे लिए अन्तिम उपदेश यही है –

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।
बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥

(श्रीभागवतजी - १२/५/९)

तुम केवल कृष्ण के बारे में सोचो । मृत्यु के बारे में मत सोचो । कृष्ण और उनके नाम का स्मरण करो ।

शुकदेवजी ने अन्त में परीक्षित् जी को कृष्ण नाम का उपदेश किया ।

भगवान् का चक्र रक्षा करता है, मृत्यु कुछ नहीं है ।

कृष्ण कृष्ण कहो बारम्बारा
चक्र सुदर्शन है रखवारा

कृष्ण का नाम लेने से तुम्हारी सभी विपत्तियाँ दूर हो जायेंगी, अभय मिल जायेगा ।

विपद विदारण अभय प्रदाता

जब तुम अभय हो जाओगे, मृत्यु से भी छूट जाओगे तब तुम्हारा मंगल होगा और भगवान् की लीला में प्रवेश करोगे ।

भक्त जनन के मंगल त्राता

इसके बाद तुम कृष्ण का स्नेह (प्रेम) पाओगे । भगवान् के धाम में जाने से मृत्यु और सभी कष्ट दूर हो जायेंगे और अब भगवान् के धाम में पहुँचकर, मंगल को प्राप्त करके तुम भगवान् का स्नेह प्राप्त करोगे क्योंकि कृष्ण स्नेही हैं, प्रेमी हैं ।

परम सनेही मुरली वारा
ब्रजमंडल का है रखवारा

अन्त में शुकदेवजी बोले – राजन् ! मृत्यु क्या चीज है, तुम तो कृष्ण का स्मरण करो ।

अध्याय – ६,७

श्रीसूतजी कहते हैं – भगवान् के शरणागत व उनके द्वारा सुरक्षित राजर्षि परीक्षित् ने शुकदेवजी का सम्पूर्ण उपदेश बड़े ध्यान से सुना । अब वे सिर झुकाकर उनके चरणों के तनिक और पास खिसक आये तथा हाथ जोड़कर कहने लगे ।

राजा परीक्षित् ने कहा –

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना – (श्रीभागवतजी - १२/६/२)

हे भगवान् शुकदेवजी ! आप करुणा के मूर्तिमान स्वरूप हैं, आपकी कृपा से मैं सिद्ध हो गया हूँ । अब यह बात मेरे अनुभव में आ गयी है कि मृत्यु कुछ नहीं है ।

(उपदेश का फल यह है कि शिष्य उपदेश में कही हुई बात को अनुभव कर ले । उसका नाम है सत्संग, उसका नाम है कृपा, उसका नाम है महापुरुष, उसका नाम है शिष्य ।)

परीक्षित् जी शुकदेवजी से बोले – महाराज ! आपने कृपा करके मुझे भागवत महापुराण सुनाया, उसे सुनकर मैं परम अनुगृहीत और कृतकृत्य हो गया हूँ । इस पुराण में पद-पद पर भगवान् श्रीहरि के स्वरूप और उनकी लीलाओं का वर्णन हुआ है ।

इस पुराण में बार-बार यही सिखाया गया है कि कृष्ण की शरण में चलो । दिन-रात भगवान् का नाम लो ।

सूतजी कहते हैं – शुकदेवजी ने जब देख लिया कि अब काल परीक्षित् का कुछ नहीं बिगाड़ सकता तब वे जाने को तैयार हुए । उस समय परीक्षित् जी ने बड़े प्रेम से शुकदेवजी का पूजन किया । अब यह अन्तिम बार उन्होंने पूजा की और उसके बाद परीक्षित् जी कृष्ण के चिन्तन में स्थित हो गये और शुकदेवजी वहाँ से चले गये ।

अब तक्षक सर्प राजा परीक्षित् को डसने के लिए उनके पास चला । रास्ते में उसे कश्यप नामक एक ब्राह्मण मिले, उन्होंने तक्षक से कहा कि मैं तो परीक्षित् को जिला दूँगा, मैं तक्षक का विष उतार दूँगा । तक्षक ने बहुत सा धन देकर कश्यप को वहाँ से लौटा दिया और स्वयं ब्राह्मण के रूप में छिपकर राजा परीक्षित् के पास गया एवं उन्हें डस लिया । राजर्षि परीक्षित् तक्षक के डसने से पहले ही ब्रह्म में स्थित हो चुके थे । अब तक्षक के विष की आग से उनका शरीर सबके सामने ही जलकर भस्म हो गया । देवता लोग साधु-साधु के नारे लगाकर पुष्पों की वर्षा करने लगे ।

जब जनमेजय ने सुना कि तक्षक ने मेरे पिताजी को डस लिया है तो वह क्रोध में भरकर सर्पों को जलाने के लिए ब्राह्मणों के साथ अग्निकुण्ड में हवन करने लगा । तक्षक भयभीत होकर इन्द्र की शरण में गया । बहुत से सर्पों के भस्म होने पर भी तक्षक नहीं आया तो जनमेजय ने ब्राह्मणों से पूछा कि अब तक तक्षक भस्म क्यों नहीं हो रहा है ? ब्राह्मणों ने कहा – 'तक्षक इस समय इन्द्र की शरण में चला गया है ।' जनमेजय ने ब्राह्मणों से कहा – 'आप लोग तक्षक के साथ इन्द्र को भी अग्नि में जला दीजिये ।' जनमेजय की बात सुनकर ब्राह्मणों ने उस यज्ञ में इन्द्र के साथ तक्षक का अग्निकुण्ड में आवाहन किया । बृहस्पतिजी ने देखा कि आकाश से देवराज इन्द्र विमान और तक्षक के साथ ही अग्निकुण्ड में गिर रहे हैं तब उन्होंने जनमेजय के पास जाकर उनसे सर्प यज्ञ बन्द करवा दिया और इन्द्र तथा तक्षक दोनों की रक्षा की ।

सूतजी कहते हैं – देवगुरु बृहस्पति की बात का सम्मान करके राजा जनमेजय ने सर्प यज्ञ बन्द कर दिया ।

इसके बाद शौनकजी के प्रश्न करने पर सूतजी ने चारों वेदों की शाखायें बतायीं । वेदों की शाखायें बताने के बाद फिर सूतजी ने पुराणों के लक्षण बताये । पुराणों के दस लक्षण हैं – विश्वसर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु (ऊति) और अपाश्रय । कोई-कोई आचार्य पुराणों के पाँच ही लक्षण मानते हैं । दोनों ही बातें ठीक हैं क्योंकि महापुराणों में दस लक्षण होते हैं और छोटे पुराणों में पाँच । छोटे-बड़े अट्ठारह पुराण हैं ।

अध्याय – ८,९

शौनकजी ने कहा – सूतजी ! आप कृपा करके हमारे एक प्रश्न का उत्तर दीजिये । लोग कहते हैं कि मृकण्ड ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि

चिरायु हैं और जिस समय प्रलय ने सारे जगत् को निगल लिया था, उस समय भी वे बचे रहे । परन्तु वे तो इसी कल्प में हमारे ही वंश में उत्पन्न हुए एक श्रेष्ठ भृगु वंशी हैं और इस कल्प में अब तक प्राणियों का कोई प्रलय नहीं हुआ है । ऐसी स्थिति में यह बात कैसे सत्य हो सकती है कि जिस समय सारी पृथ्वी प्रलयकालीन समुद्र में डूब गयी थी, उस समय मार्कण्डेयजी उसमें डूब उतरा रहे थे और उन्होंने अक्षय वट के पत्ते पर बालमुकुन्द का दर्शन किया ।

सूतजी ने कहा – शौनकजी ! आपने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया । इससे लोगों का भ्रम मिट जायेगा । मृकण्ड ऋषि ने अपने पुत्र मार्कण्डेय के सभी संस्कार समय-समय पर किये । मार्कण्डेयजी विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्याय से सम्पन्न हो गये थे । उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था । शान्त भाव से वे रहते थे । सायं-प्रातः भिक्षा लाकर गुरुदेव के चरणों में निवेदन कर देते और मौन हो जाते । गुरुजी की आज्ञा होती तो एक बार खा लेते अन्यथा उपवास कर लेते । मार्कण्डेयजी ने इस प्रकार तपस्या और स्वाध्याय में तत्पर रहकर करोड़ों वर्षों तक भगवान् की आराधना की और इस प्रकार उस मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली, जिसको जीतना बड़े-बड़े योगियों के लिए भी कठिन है । उनकी मृत्यु पर विजय को देखकर ब्रह्मा, भृगु, शंकर, दक्ष प्रजापति, ब्रह्माजी के अन्य पुत्र तथा मनुष्य, देवता, पितर और अन्य सभी प्राणी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये ।

मार्कण्डेयजी इस प्रकार तपस्या, स्वाध्याय और संयम आदि के द्वारा अविद्या आदि सारे क्लेशों को मिटाकर शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा का ध्यान करने लगे, महायोग के द्वारा अपना चित्त भगवान् के स्वरूप में जोड़ते रहे । इस प्रकार साधन करते-करते उन्हें छः मन्वन्तर बीत गये । इस सातवें मन्वन्तर में जब इन्द्र को इस बात का

पता चला तब वे उनकी तपस्या से भयभीत हो गये और उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए उनके आश्रम पर गन्धर्व, अप्सराओं को भेजा। अप्सराएँ उनके सामने नाचने लगीं। गन्धर्व लोग गाने लगे, कामदेव ने उनके ऊपर अपना बाण छोड़ा परन्तु इन सबका सारा प्रयास व्यर्थ हो गया। ये सभी मार्कण्डेयजी के तेज से जलने लगे और उनके आश्रम से भाग गये।

एक दिन मार्कण्डेयजी पर कृपा करने के लिए नर-नारायण ऋषि उनके सामने प्रकट हुए। मार्कण्डेयजी ने धरती पर लोटकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया, उन्हें आसन पर बैठाया और उनकी पूजा की। इसके बाद मार्कण्डेयजी ने नर-नारायण भगवान् की स्तुति की। भगवान् नारायण ने प्रसन्न होकर मार्कण्डेय जी से कहा – 'तुम्हारे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत और तपस्या से हम तुम पर बहुत ही प्रसन्न हैं। तुम जो भी वरदान चाहते हो, मुझसे माँग लो।'

मार्कण्डेय मुनि ने कहा – 'भगवन्! मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ।' सूतजी कहते हैं – नर-नारायण भगवान् ने मुस्कुराते हुए मार्कण्डेयजी से कहा – 'ठीक है, ऐसा ही होगा।'

इसके बाद वे अपने आश्रम बदरीवन को चले गये। मार्कण्डेय मुनि अपने आश्रम पर ही रहकर निरन्तर चिन्तन करते रहते कि मुझे माया के दर्शन कब होंगे?

एक दिन की बात है, मार्कण्डेयजी नदी के तट पर भगवान् की उपासना कर रहे थे। उसी समय बड़े जोर से आँधी चलने लगी। बड़े भयंकर बादल आकाश में आ गये और जल की मोटी-मोटी धाराएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं। चारों ओर से चारों समुद्र पृथ्वी को डुबाने के लिए उमड़ने लगे। इस जल प्रलय से सारी पृथ्वी डूब गयी। उस प्रलय काल के समुद्र में करोड़ों वर्ष तक मार्कण्डेयजी डूबते-उतराते और

भटकते रहे । जब वे बहुत थक गये तो उन्होंने एक छोटा सा बरगद का पेड़ देखा । उस बरगद के पेड़ के दोनाकार पत्ते पर बाल मुकुन्द शिशु के रूप में लेटे थे और अपने दोनों हाथों से एक चरणकमल के अँगूठे को मुख में डालकर चूस रहे थे । उस शिशु को देखकर मुनि की थकान दूर हो गयी । उस बालक से मिलने के लिए जैसे ही वे आगे बढ़े तो उस बालक ने श्वास खींची और उसकी श्वास के साथ मार्कण्डेयजी उसके शरीर के भीतर घुस गये । उस शिशु के पेट में उन्हें अनन्त संसार दिखाई पड़ा । उसे देखते-देखते वे उस दिव्य शिशु के श्वास के द्वारा ही बाहर आ गये और फिर प्रलयकालीन समुद्र में गिर पड़े । फिर से उन्होंने वही बरगद का पेड़ और उसके पत्ते के दोने पर लेटे हुए शिशु को देखा । वे उसे आलिंगन करने के लिए आगे बढ़े, तभी वह शिशु अन्तर्धान हो गया । उस शिशु के अन्तर्धान होते ही वह बरगद का पेड़, प्रलयकालीन समुद्र भी गायब हो गया और मार्कण्डेय मुनि ने देखा कि मैं तो पहले की तरह अपने आश्रम में बैठा हुआ हूँ ।

अध्याय – १०

सूतजी कहते हैं – भगवान् की योगमाया का वैभव देखने के बाद इस माया से मुक्त होने के लिए वे भगवान् की शरण में गये ।

मार्कण्डेयजी ने मन ही मन कहा – 'प्रभो ! मैं आपकी शरण में हूँ ।'

सूतजी कहते हैं – उसी समय भगवान् शंकर पार्वतीजी के साथ नन्दी पर सवार होकर उधर आये और उन्होंने मार्कण्डेयजी को देखा ।

भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से कहा – हे देवि ! ये ऋषि लोक-परलोक की वस्तु, यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं चाहते फिर भी मैं इनसे मिलूँगा क्योंकि –

अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः – (श्रीभागवतजी - १२/१०/७)

जीव के लिए सबसे बड़ा लाभ यही है कि संतों-भक्तों का संग मिल जाये ।

धन बड़ी वस्तु नहीं है, स्त्री बड़ी वस्तु नहीं है, मुख्य वस्तु है भगवान् के भक्त का संग मिल जाए ।

महादेवजी बोले ! – हे देवि ! मैं इन मुनि के पास चलकर इनसे बात करूँगा ।

सूतजी कहते हैं – भगवान् गौरी-शंकर मार्कण्डेयजी के पास गये किन्तु वे भगवान् के ध्यान में नेत्र मूँदकर बैठे थे । उन्हें यह पता नहीं चल सका कि मेरे सामने स्वयं भगवान् गौरी-शंकर पधारे हैं । मुनि की स्थिति जानकर भगवान् शिव उनके हृदय में प्रवेश कर गये । अपने हृदय में अचानक शिवजी को देखकर मार्कण्डेय जी ने आँखें खोलीं तो बाहर भी उनके दर्शन किये । मार्कण्डेयजी ने भगवान शंकर, पार्वती और उनके गणों की पूजा की ।

भगवान् शंकर ने कहा –

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥

(श्रीभागवतजी - १२/१०/२३)

'तीर्थ' तीर्थ नहीं हैं, देवताओं की मूर्तियाँ देवता नहीं हैं । सबसे बड़े तीर्थ और देवता तो तुम्हारे जैसे संत हैं क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत दिनों में पवित्र करते हैं परन्तु तुम्हारे जैसे संत दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देते हैं । बड़े-बड़े महापापी भी तुम्हारे जैसे महापुरुषों के चरित्र श्रवण करने और दर्शन से ही शुद्ध हो जाते हैं ।

मार्कण्डेयजी ने सोचा कि ये ईश्वर होकर भी मेरे जैसे जीव की स्तुति कर रहे हैं । सर्वशक्तिमान भगवान् की यह लीला सभी प्राणियों

की समझ के परे है । उन्होंने महादेवजी से कहा – 'मैं आपसे एक वर माँगता हूँ कि भगवान् में, उनके शरणागत भक्तों में और आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे ।'

सूतजी कहते हैं – भगवान् शंकर मार्कण्डेय मुनि को वर देकर पार्वतीजी के साथ वहाँ से चले गये ।

अध्याय – ११

इस अध्याय में शौनकजी के प्रश्न करने पर सूतजी ने भगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधों के रहस्य का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने बारह सूर्यों और उनके गणों का वर्णन भी किया है ।

अध्याय – १२

इस अध्याय में सूतजी ने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत की विषय सूची का वर्णन किया है ।

प्रथम स्कन्ध में परीक्षित् जी की कथा है । दूसरे स्कन्ध में शुकदेवजी ने उपदेश देना प्रारम्भ किया है, उसमें ब्रह्माजी और नारदजी का संवाद तथा अवतारों की संक्षिप्त चर्चा का वर्णन है । तीसरे स्कन्ध में कपिल भगवान् द्वारा माता देवहूति को दिए गये उपदेशों का वर्णन है । चौथे स्कन्ध में दक्ष यज्ञ के विध्वंस, ध्रुवजी तथा पृथुजी के चरित्र का वर्णन है ।

पाँचवें स्कन्ध में प्रियव्रत चरित्र और उनके वंश का वर्णन है । छठे स्कन्ध में अजामिल की कथा, प्रचेतागणों से दक्ष की उत्पत्ति, वृत्रासुर का चरित्र वर्णित है । सातवें स्कन्ध में भक्त प्रह्लादजी के चरित्र का निरूपण है, आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों की कथा, गजेन्द्र मोक्ष, समुद्र मन्थन आदि का वर्णन है । नवें स्कन्ध में राज वंशों का चरित्र तथा भगवान् राम के चरित्र का वर्णन किया गया है । दशम स्कन्ध में विस्तार

से भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है । एकादश स्कन्ध में यदुवंश के संहार, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उद्धवजी को दिए गये उपदेशों का वर्णन है तथा बारहवें स्कन्ध में कलियुग के लक्षण, चार प्रकार के प्रलय और राजा परीक्षित के शरीर त्याग का वर्णन किया गया है ।

अन्त में सूतजी कहते हैं – जो मनुष्य गिरते-पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते अथवा छींकते समय विवशता से भी भगवान् का नाम लेता है, वह सब पापों से छूट जाता है ।

जिस वाणी के द्वारा भगवान् के नाम, लीला, गुण आदि का उच्चारण नहीं होता, वह वाणी बेकार है ।

अध्याय – १३

सूतजी कहते हैं – ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवगण जिनकी स्तुति करते हैं, ऋषि-मुनि वेदों द्वारा जिनका गान करते रहते हैं किन्तु कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूप को पूर्णतया न जान सका, उन भगवान् को नमस्कार है ।

इस अध्याय में विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या को बताया गया है तथा श्रीमद्भागवत की महिमा का वर्णन किया गया है ।

सबसे अन्त में सूतजी कहते हैं –

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

(श्रीभागवतजी - १२/१३/२३)

यह श्रीमद्भागवत का अन्तिम श्लोक है तथा भागवत का सार, भागवत का निचोड़ है । इसका अर्थ है – जिन भगवान् के नाम का संकीर्तन संसार के सारे पापों को नष्ट कर देता है तथा जिनके चरणों में

किया गया प्रणाम सब प्रकार के दुखों को दूर करता है, उन्हीं परम तत्त्व स्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्रीमद्भागवत सप्ताह यज्ञ के बाद दक्षिणा देने का विधान है । यदि आप दक्षिणा देना चाहते हैं तो श्रीमद्भागवत के इस अन्तिम श्लोक में जो नाम संकीर्तन की महिमा कही गयी है, इसी नाम संकीर्तन की दक्षिणा दीजिये । सभी श्रोताओं को भागवत श्रवण करने के बाद यह नियम लेना चाहिए कि अब वे अपने घर प्रतिदिन नियम से नाम कीर्तन करेंगे । यही भागवत की सर्वश्रेष्ठ दक्षिणा है और इसे सभी दे सकते हैं, अतः अवश्य देना चाहिए । घर-घर में सभी लोग नाम कीर्तन करें । स्त्रियाँ करें, पुरुष करें, जवान करें, बूढ़े करें, अपने बच्चों से भी नाम कीर्तन करवायें । इसी में श्रोता और वक्ता का कल्याण है ।

बोलो श्रीलाड़लीलाल की जय ।
श्रीमद्भागवत महापुराण की जय ।
श्रीव्यासजीमहाराज की जय ।
श्रीशुकदेवजीमहाराज की जय ।
श्रीबरसाने धाम की जय ।
श्रीगह्वरवन धाम की जय ।
श्रीराधामानबिहारीलाल की जय ॥

श्री राधा

श्री राधा